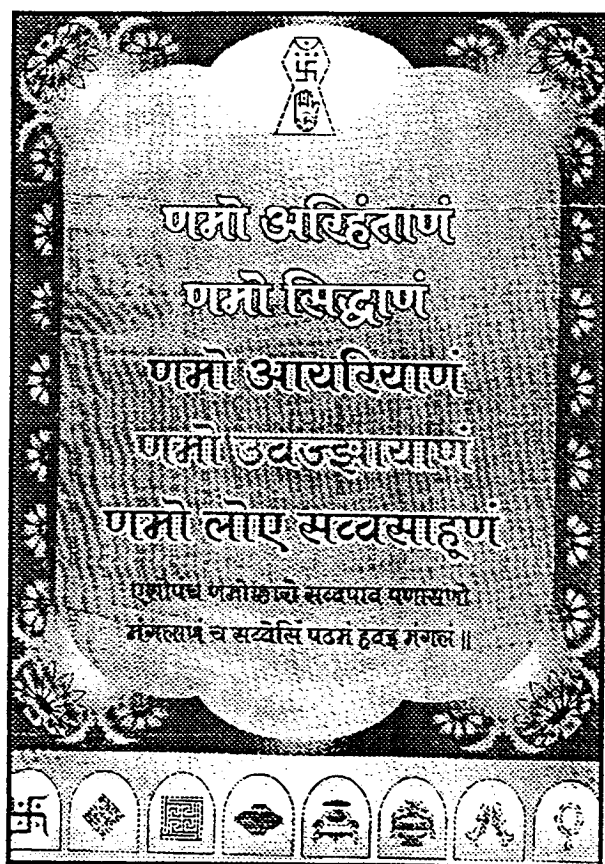


आस्था की ओर बढ़ते कदम



लेखक :
पुरुषोत्तम जैन



सम्पादक :
रविन्द्र जैन

प्रकाशक :

रदवी महावीर जन्म कल्याणक संयोजिका समिति, पंजाब
महावीर स्ट्रीट, पुराना बस स्टैंड, मलेस्कोटला - १४८ ०२३ (पंजाब)

समर्पण

जब यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा था इसी बीच २० जून २००२ को मेरे पूज्य पिता श्री स्वरूप चन्द जैन जी का स्वर्गवास हो गया। पुस्तक में मैंने उनका वर्णन जीवित अवस्था में किया है। सो विज्ञ पाठक इसे समझेंगे।

मैं यह ग्रंथ अपने पूजनीय पिता श्री स्वरूप चन्द जैन जी को समर्पित करता हूँ। जिनकी कृपा से मैं धर्म, समाज व परिवार से इस रूप में समाज के सामने हूँ।

शुभ चिंतक

दुर्गाजी

मंडी गोबिन्दगढ़।

स्वकथन

जीवन में कुछ पल ऐसे आते हैं जब मनुष्य को अपने जीवन का मुल्यांकन करने के लिए सोचना पड़ता है। यही सोच मनुष्य को अपने जीवन अनुभव संसार के सामने प्रस्तुत करने का सुअवसर प्रदान करती है। आस्था के नए आयाम प्रकट करती है जो नर को नारायण बनाती है। मेरा जीवन आस्था का सफर है। आस्था का यह सफर जीवन को हर क्षेत्र में प्रभावित करता है। मैंने अपने इस सफर को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। मेरा मानना है कि आस्था ही जीवन है, श्रद्धा है, देव, गुरु व धर्म का स्वरूप है। आस्था जी सम्यक्त्व है। आस्था के माध्यम से अर्हत अवस्था प्राप्त की जा सकती है। आस्था से गुरु के चरणों में शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है। आस्था से तीर्थ यात्रा की जाए तो व्यक्ति को यात्रा का फल मिलता है। आस्था से बंधे मैं और मेरा धर्म भ्राता रविन्द्र जैन एक दूसरे के प्रति समर्पित भाव से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आस्था ही है जो जीवन के हर क्षेत्र में नए आयाम खोलती है।

मेरी आस्था की यात्रा में मुझे देव, गुरु व धर्म की सेवा करने का अवसर मिला है। प्रस्तुत पुस्तक इसी आस्था की कहानी है। इस में मैंने अपने किए संस्था निर्माण, साहित्य व तीर्थ यात्राओं का वर्णन संक्षिप्त व आस्था पूर्वक वर्णन किया है। इस आस्था के सफर ने पंजाबी जैन साहित्य के अनुवाद को जन्म दिया। स्वतन्त्र हिन्दी-पंजाबी जैन साहित्य लेखन व सम्पादन को जन्म दिया। आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी के दर्शन किए। उनसे ज्ञान प्राप्त किया। अनेकों श्रावकों से धर्म प्रचार की प्रेरणा मिली।

यह आस्था का सफर ही था जिस ने मुझे जैन

तीर्थ यात्रा के लिए प्रेरणा दी। इन तीर्थ यात्राओं से इतिहास, पुरातत्त्व का ज्ञान तो प्राप्त हुआ ही, साथ में धर्म के प्रति श्रद्धा में बढ़ोत्तरी भी हुई।

आस्था के कारण धर्म तत्व को समझा। अहिंसा, अनेकांत व अपरिग्रह का पाठ पढ़ा। इस आस्था के सफर को मैंने जिस प्रकार तय किया है उसका वर्णन मैंने संक्षिप्त में लिखने की चेष्टा की है। जहां तक संस्थाओं का संबंध है इनका निर्माण व इनसे जुड़ना दोनों मेरी आस्था के प्रमुख अंग रहे हैं। संस्थाएं धर्म प्रचार में प्रमुख स्थान रखती हैं। संस्थाओं के माध्यम से ही अपने साहित्य का प्रचार करना सरल होता है।

आशीर्वाद :

मैं शुरू से ही इन घटनाओं को अपनी डायरी में लिखता रहा हूं। मेरी इन डायरीयों का सम्पादन मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन, मालेरकोटला ने किया है। यह मेरा समर्पित शिष्य है। इस नाते मैं अपने धर्मभ्राता को आशीर्वाद देना अपना कर्तव्य समझता हूं। इन डायरीयों का श्रम से सम्पादन करते हुए इसने मेरे विचारों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। मैं पुनः अपने शिष्य को अपने रिश्ते अनुसार आशीर्वाद देता हुआ इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं। मेरा धर्म भ्राता पिछले ३४ वर्षों से मेरे धर्म प्रचार की यात्रा, लेखन, सम्पादन में सहायक बना है। मैं आशा करता हूं कि भविष्य में भी यह मेरे प्रति समर्पित भाव में रह कर अपना धर्म कर्तव्य पालन करता रहेगा। ऐसा सहज समर्पित जीवन आस्था से ही प्राप्त होता है।

प्रस्तुत पुस्तक का नाम मैंने आस्था की ओर बढ़ते कदम रखा है। यह कृति आस्था की कहानी है। मैं

जैसा हूं उसे उसी ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा मैंने की है। इस कृति में मैंने उन महानुभावों का वर्णन किया है जिनसे मुझे अपने आस्था के सफर को जारी रखने में सहायता मिली है। आशा है कि विद्वत वर्ग इस कृति को साहित्य जगत में स्थान देकर अपना आशीर्वाद देगा और इस कृति की कमीयों की ओर ध्यान नहीं देगा।

मैं पुनः इस ग्रंथ के सम्पादक श्री रविन्द्र जैन का आभार प्रकट करता हुआ पाठकों अपना यह ग्रंथ भेंट करता हूं।

मण्डी गोबिन्दगढ़

३१-०३-२००३

शुभ चिंतक

५२२७/११/११

सम्पादकीय

आस्था की ओर बढ़ते कदम एक ऐसी कालजयी कृति है जिस में मेरे धर्मभ्राता, स्वनामधन्य, श्रमणोपासक श्री पुरुषोत्तम जैन मंडी गोबिन्दगढ़ ने धर्म के प्रति आस्था के विभिन्न आयामों का सुन्दर व सरल भाषा में चित्रण किया है। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे श्री पुरुषोत्तम जैन जी की डायरीयों का सम्पादन करने का शुभ अवसर मिला। इस के लिए मैं अपने धर्मभ्राता का ऋणी हूँ।

प्रस्तुत कृति धर्म के प्रति आस्था का ऐसा गुलदस्ता है जिस में जैन धर्म के इतिहास, परम्परा, प्रसिद्ध आचार्य, साधु, साधवियों से भेंट, पंजाबी विद्वानों से भेंट, सस्मरण व तीर्थ यात्राओं का सुन्दर भाषा में वर्णन किया है। वैसे ये डायरीयां किसी सम्पादन की मोहताज नहीं, पर अपने धर्मभ्राता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैंने अपने कर्तव्य को यथा शक्ति निभाने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत कृति को मैं अपने धर्मभ्राता श्री पुरुषोत्तम जैन जी भेंट करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

इस कृति के प्रकाशन में श्री चरणजीत सिंह, ओमेगा कम्प्यूटर, सामने प्रेम लता हास्पीटल, मालेरकोटला का हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने कठोर श्रम का परिचय देते हुए मुझे सहयोग दिया। इस कृति में जो भी पाठकों को त्रुटि नजर आए उसके लिए सम्पादक होने के नाते मैं क्षमा याचना करता हूँ। मैं इस कृति के प्रकाशन के लिए २६वीं महावीर जन्म कल्याण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब का भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस कृति को प्रकाशित करके पाठकों से मेरे धर्म भ्राता को खूब-खूब होने का अवसर प्रदान किया।

समर्पण दिवस

३१-०३-२००३

शुभ चिन्तक

गोबिन्द जैन

प्रकरण - 9

मानव जीवन के चार दुर्लभ अंग

संसार का अर्थ है - जन्म मरण की परम्परा। जन्म से बुढ़ापे तक की यात्रा का नाम जीवन है। जन्म जीवन का प्रारम्भ है, अंत नहीं। इस जन्म से पहले कितने जन्म हुए, कोई नहीं जानता भविष्य में कितने जन्म होंगे, इस बात को सर्वज्ञ परमात्मा ही जानते हैं। जीवात्मा कर्म बंधन में फंसी अनंतकाल से जन्म-मरण की परम्परा में चक्कर काट रही है। कब जन्म मरण की कर्म परम्परा का अंत होगा, कब जीवात्मा अपने विशुद्ध स्वरूप सिद्ध अवस्था को प्राप्त करेगी, यह कथन सर्वज्ञ अरिहंतों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता है। यह आत्मकर्मों से बंधा है। जीव कर्मों का कर्ता भोगता है। दुःख-सुख, स्वर्ग-नरक सब का कारण जीव के पूर्व कृत्य कर्म हैं। जीवन की यात्रा कर्म की यात्रा है। प्राचीन काल से ही मनुष्य के मन में दुःख-सुख का कारण जानने की इच्छा बलवती रही है।

विभिन्न धर्म के महापुरुषों ने प्राचीन काल से ही जन्म, मरण, आत्मा, परमात्मा, जीव, अजीव के संबंध में अपना चिंतन प्रदान किया है यह चिंतन ही जगत की उत्पत्ति का कारण बना है। कोई भी चिंतन तब तक सत्य नहीं होता, जब तक उसे अनुभव की कसौटी पर परखा न जाए। यह चिंतन जब खरा उतरता है, तब यही शाश्वत सत्य कहलाता है। चिंतन को अनुभवी भूमिका से गुजरना पड़ता है। जब हम किसी सत्य को हर पक्ष से परखते हैं : तब वह बात आत्म ज्ञान बन जाती है। मेरे पास स्वयं को परखने की

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कसौटी जैन धर्म का दर्शन है, जिसे भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक की तीर्थंकर परम्परा ने संसार के सामने प्रस्तुत किया। वह ज्ञान तीर्थंकरों ने लम्बे तप के माध्यम से प्राप्त किया।

जैन दर्शन ने सत्य की पहचान का मार्ग अनेकांतवाद का सिद्धांत है। जैन धर्म कभी एकांत सत्य या सत्यांश को स्वीकार नहीं करता। जैन धर्म में कदाग्रह के लिए कोई स्थान नहीं है। अनेकांतवाद कहता है कि मैं जो कहता हूं, वह ही सत्य नहीं, बल्कि जो सत्य है वह मेरा है सत्य की यात्रा ज्ञान की यात्रा है। अहिंसा, सयंम तप की यात्रा है। यह ज्ञान अरिहंत परमात्मा ने संसार के जीव को बांटा है। तीर्थंकर परम्परा का ज्ञान दो शब्दों में पूरा हो जाता है १. जीव २. अजीव।

सारा जैन तत्व साहित्य इन दो शब्दों की व्याख्या में समा जाता है। जीव चार प्रकार के होते हैं। १. देव २. मनुष्य ३. तिर्यंच ४. नारकी

जीव की अनेक जातियों - भेद उपभेद शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं। जीव का अर्थ खाली शरीरधारी जीव नहीं, उसका विशुद्ध अर्थ तो आत्मा है। जो व्यक्ति अरिहंतों के मार्ग पर चलता है वह सिद्ध मार्ग (मुक्त अवस्था) को प्राप्त कर लेता है।

अरिहंतों के मार्ग पर चल अरिहंत अवस्था प्राप्त की जा सकती है। अर्हत हैं सिद्ध परमात्मा बनता है कर्म बंधन को मुक्त हो जन्म मरण की परम्परा को समाप्त करता है।

इसी परम्परा तीर्थंकर परम्परा के अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर ने जीव के कल्याण के लिए श्री उतराध्ययन सूत्र के अध्ययन को धर्म के चार दुर्लभ अंगों की व्याख्या की है जो इस प्रकार है :

१. मानव जन्म
२. सर्वज्ञों द्वारा कथित सत्य धर्म का श्रवण
३. सत्य धर्म पर आस्था
४. उस आर्य धर्म पर सिद्धांत के अनुसार चलना।

१. मानव जन्म :

श्रमण भगवान महावीर ने धर्म का प्रथम अंग की व्याख्या करते हुए कहते हैं “विभिन्न प्रकार के कर्मों का उपार्जन करके, विभिन्न गोत्र वाली जातियों में उत्पन्न हो कर, पृथक् पृथक् रूप में प्रत्येक संसारी जीव समस्त विश्व में व्याप्त हो जाता है अर्थात् जन्म लेता है।”

“जीव अपने अपने कृत अनुसार कभी देवरूप में, कभी इस लोक में, कभी नरक में, कभी असुरकाय में जन्म लेता है।”

“यह जीव कभी क्षत्रिय होता है, कभी चण्डाल, कभी वर्णसंकर होता है, कभी कीट पतंग और कभी कुन्थु और कभी चींटी होता है।”

“जिस प्रकार क्षत्रिय लोग समस्त भोग उपभोग करने पर भी कभी विरक्ति को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्मों से दूषित जीव अनादि काल से आवर्त स्वरूप योनियों से मुक्त नहीं होते।”

“कर्मों के संग दूषित और अत्यन्त वेदना से प्रकट जीव योनियों में दुःख उठाते हैं।”

“कालचक्र से कभी कर्मों का क्षय हो जाने पर यह जीव आत्म शुद्धि प्राप्त करते हैं अर्थात् उस के पश्चात् मनुष्यता प्राप्त होती है।”

“लोक में वालाग्र मात्र ऐसा प्रदेश नहीं, जहां इस जीव का जन्म मरण न हुआ।”

२. धर्म श्रवण :

“मनुष्यत्व प्राप्त करना कठिन है। यह जन्म प्राप्त हो भी जाए तो सत्य धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है। भगवान् फुरमाते हैं।

“मनुष्य जन्म प्राप्त कर भी धर्म पालन के लिए योग्य परिस्थितियां दुर्लभ हैं इन में आर्य क्षेत्र परम दुर्लभ है। मनुष्य का जन्म ही जीवन का सार नहीं, धर्म पालन के लिए सच्चे देव (अरिहंत, सिद्ध) गुरु व धर्म का शरण कठिन है।”

इसलिए प्रभु महावीर आगे फुरमाते हैं :

“मनुष्य देह पा लेने पर भी धर्म का श्रवण (सुनना) परम दुर्लभ है जिसे सुन कर जीव तप, क्षमा और अहिंसा को अंगिकार करता है।”

“इस का अर्थ यह है कि धर्म का सुनना परम दुर्लभ है यह आर्य देश की प्राप्ति का संपूर्ण अंगों की प्राप्ति से संभव है।”

सुनने को प्रभु महावीर ने “जीवन का दूसरा अंग स्वीकार किया है।” क्योंकि अगर आर्य क्षेत्र में मनुष्य का जन्म भी हो जाता है तो कोई विरला ही धर्म सुन पाता है। धर्म श्रवण का बहुत महत्त्व है यह मिथ्यात्व (अज्ञान) के अंधकार को दूर करता है। श्रद्धा रूप ज्योति का प्रकाशक है, जीव आजीव में भेद का विवेचक है, पुण्य और पाप का मार्ग दर्शक है। ऐसे श्रुत चारित्र रूप धर्म का श्रवण बड़े पुण्य से निलता है। यह श्रवण धर्म है जिसे सुन कर जीव तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करता है। यह अमृतपान के सामान, एकान्तहित विधायक और हृदय में आनंद देने वाला है। यह अमृत कलश में ज्ञान तत्त्व, षट् द्रव्य, आठ कर्म, दस धर्म, पांच महाव्रत व पांच अणुव्रत से ज्ञान प्राप्त होता है।

३. श्रद्धा :

तीसरे दुर्लभ तत्व के रूप में प्रभु महावीर ने श्रद्धा को महान माना है। वह कहते हैं :

“कदाचित (कभी) धर्म का श्रवण भी हो जाए तो उस पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है, क्योंकि बहुत से लोग नैयायिक मार्ग (रत्नत्रय) को छोड़कर भी उस से पथ भ्रष्ट हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि धर्म को सुनना ही काफी नहीं, धर्म पर श्रद्धा आना बहुत कठिन है। कई लोग धर्म सुन कर भी संशय रखते हैं। इसी तरह कई लोग धर्म को सुन कर कुछ समय के लिए जागृत होते हैं पर मिथ्यात्व के जहर के कारण उसी अज्ञान अवस्था में पड़ जाते हैं जहां से वह निकले थे। इस लिए व्यक्ति को तीन रत्न (सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन व सम्यक् चरित्र) को धारण कर जीवन व्यतीत करना चाहिए, नहीं तो ऐसे हजारों उदाहरण पड़े हैं, जो मिथ्यात्व के कारण या धर्म के प्रति श्रद्धा के आभाव से इतिहास से मिट गये। जैन इतिहास में जैन सिद्धांत पर अश्रद्धा करने वाले को निन्हव कहा जाता है। जो संयमी होकर भी भटके उन निन्हवों में ६ प्रमुख नाम हैं : १. जमालि २. तिष्यगुप्त ३. आषाढभूति ४. अश्वमित्र ५. गंगाचार्य ६. रोहगुप्त ७. गोष्टमाहिल। यह लोग धर्म को जानकर भी संशय में फंस गये। इसी कारण वह मिथ्यात्वी (अज्ञानी) कहलाए। जैन इतिहास में सम्यक्त्व से मोक्ष का कारण माना गया है। सम्यक्त्व के लिए सच्चे देव (अरिहंत-सिद्ध) गुरु व धर्म का स्वरूप जानकर उन पर सच्ची श्रद्धा आना परम आवश्यक है। सम्यक्त्वी हमेशा प्रकाश में रहता है मिथ्यात्वी अंधेरा में जीता व मरता है। मिथ्यात्वी अपना लोक-परलोक मिथ्यात्व के कारण विगड़ाता

४. वीर्य :

प्रभु महावीर ने धर्म पर चलने के लिए जो अंतिम सिद्धांत फुरमाया है उसी का नाम संयम के प्रति वीर्य (शक्ति) है वह फुरमाते हैं :

“धर्म श्रवण (श्रुति और श्रद्धा प्राप्त) करके भी संयम में वीर्य (शक्ति) लगाना दुर्लभ है। बहुत से व्यक्ति संयम में अभिव्यक्ति रखते हुए भी सम्यक्त्व ग्रहण नहीं कर पाते”

कई लोग धर्म के तीनों अंग प्राप्त होने पर भी संयम के प्रति रुचि नहीं रखते। उस के कारण मिथ्यात्व के उदय से वह संयम ग्रहण नहीं कर सकते। उन्हें अमृत भी जहर लगता है। वह लोग साधु को असाधु समझते हैं, धर्म को अधर्म समझते हैं। पुण्य को पाप समझते हैं। ऐसे लोग जीवन ने सत्य धर्म को नहीं पा सकते। सारी आयु मिथ्यात्व के अंधकार में भटकते रहते हैं। इन्हीं कारणों के कारण प्रभु महावीर को इन्हीं तत्वों को परम दुर्लभ बताना पड़ा।

इस में यह बात भी सिद्ध होती है कि जीवन में राष्ट्र, धर्म, कुल, संयम का कितना महत्त्व है संसार में कई देश ऐसे हैं जहां सभ्य समाज नहीं, धर्म नहीं, परिवार नहीं। मात्र परम्पराएं हैं।

२

जीवन में त्रि-रत्न का महत्त्व

सम्यक्दर्शन :

सम्यक्दर्शन के प्रभाव से भावनाओं में जो निर्मलता आती है और संसार, शरीर और भोगों से जो वैराग्य उत्पन्न होता है, उससे व्यक्ति गृहस्थी में रहकर भी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 उसी प्रकार अछूता रहता है, जिस प्रकार कमल जल से, वेश्या अपने ग्राहकों से और सोना कीचड़ से। चक्रवर्ती सम्राट भरत अपने महामात्य से कहते हैं “मैं धन को तिनके के समान गिनता हूँ, मैं उसे नहीं लेता। मैं तो केवल अकारण प्रेम का भूखा हूँ और इसी से तुम्हारे महल में हूँ”। एक ही क्रिया का फल मिलेगा उसमें बुनियादी अन्तर होगा क्योंकि उस क्रिया की कर्तव्यता या अकर्तव्यता को सम्यक्दृष्टि व्यवहार से स्वीकार करता है जबकि मिथ्यादृष्टि उसे सिद्धांत से भी स्वीकार नहीं करता।

सम्यक्दर्शन एक अष्टांग अनुभूति है। इस अनुभूति के फलस्वरूप सम्यक्दृष्टि जीव जिन वचन में शंका नहीं करता, संसारिक सुखों की आकांक्षा नहीं रखता, साधुओं के मलिन शरीर आदि को देखकर घृणा नहीं करता, कुमार्ग और कुमार्गस्थों से लगाव नहीं रखता, अपने गुणों और दूसरे के दुर्गुणों की अव्यक्त रहने देकर अपने धर्म को निन्दा से बचाता है, वासनाओं आदि के कारण अपने धर्म से विचलित होने वाले को स्थिर करता है, सह-धर्मियों से उसी प्रकार प्रेम करता है जिस प्रकार गाय बछड़े से करती है, और विभिन्न प्रकार के आयोजनों से जैन धर्म की प्रभावना करता है। इन आठ में से एक भी अंग की न्यूनता होने पर सम्यक्दर्शन उसी प्रकार प्रभावहीन होता है जिस प्रकार एक भी अक्षर की न्यूनता से कोई मन्त्र विष की वेदना के निवारण में अंसमर्थ रहता है।

सम्यक्दृष्टि के लौकिक व्यवहार में परीक्षा प्रधानता स्वयं आ जाती है। नदी, समुद्र आदि में स्नान, बालू, पत्थर आदि का ढेर लगाना, पर्वत से कूद पड़ना, अग्नि में जल मरना आदि जो विवेकहीन क्रियाएं धार्मिक क्रियाओं के रूप में प्रचलित हो उन्हें वह कदापि नहीं करता।

सम्यक्दृष्टि जीव वरदान अथवा किसी सुख सुविधा की आकांक्षा से देव-देवियों की उपासना नहीं करता क्योंकि वे राग द्वेष से अतीत नहीं होते।

आरम्भ, परिग्रह, हिंसा आदि में पड़कर संसारिक चक्र में उलझे तथाकथित साधुओं को मान्यता नहीं देता। निरभिमानी अवश्य होता है अपने ज्ञान, आदर, सम्मान, कुल, जाति, वल, ऋद्धि, तप और शरीर की कितनी भी श्रेष्ठता रहे, वह नम्र ही रहता है क्योंकि वह अनुभव करता है कि अभिमान में आकर जो व्यक्ति अन्य धर्मावलंबियों का तिरस्कार करता है, वह अपने ही धर्म का उल्लंघन करता है।

सम्यक्दर्शन जीव की आन्तरिक और बाह्य क्रियाओं में एक ऐसा मोड़ लाता है कि वह आत्म-बाह्य पदार्थों से इतना निर्लिप्त हो जाता है कि चरित्र के लेशमात्र न रहते हुए भी वह मोक्षमार्गी माना जाता है जबकि आत्म-बाह्य पदार्थों में लिप्त होने वाला साधु भी अपने सम्पूर्ण चारित्र के रहते हुए भी मोक्षमार्गी नहीं माना जा सकता।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सम्यक्दर्शन अपने आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों में जीवन मूल्यों को प्रत्यक्ष पोषण देता है। कहा तो यह भी जा सकता है कि वह इनका उद्गम ही है। ज्ञान और चरित्र तभी सम्यक् होते हैं जब वे सम्यक्दर्शन पूर्वक हों। इसका अर्थ यह हुआ कि जनसाधारण के भी व्यवहार में मूल्यों का समावेश सम्यक्दर्शन के सद्भाव से ही सम्भव है।

सम्यग्दर्शन से जिन मनोभावों और बाह्य व्यवहार की निष्पत्ति होती है, वे सभी किसी भी सम्भ्रान्त नागरिक के लिए आदर्श होने चाहिए। अन्य सम्पूर्ण जैन साहित्य की ही भांति सम्यक्दर्शन को वही स्थान प्राप्त है जो शरीर में आत्मा का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
है। इसका पृथक् वर्णन या उल्लेख सर्वत्र न भी हुआ हो पर
इसके अमृत से ही जैन साहित्य का रसायन सिद्ध हुआ है।

सम्यक्ज्ञान :

जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में ऐसा ज्ञान
सम्यक्ज्ञान है जो न कम हो न अतिरिक्त, न विपरीत हो न
संदिग्ध। जैन न्याय में प्रमाण की परिभाषा ही सम्यक्ज्ञान के
रूप में दी गयी है। ज्ञान का विषय वस्तुतः केवल मात्र
स्वात्मा ही है, जिसे अपने आत्मा का ज्ञान है उसे तीनों
लोकों के तीनों कालों के सभी द्रव्यों के प्रत्येक गुण और
प्रत्येक पर्याय का ज्ञान होता है। इस गूढ़ किन्तु तर्कसंगत
व्याख्या का एक व्यवहारिक पक्ष भी है। आत्म-द्रव्य स्वभाव
से इतना निर्मल है कि जब वह पूर्णतया निष्कर्ष हो जाता है
तब उसमें तीनों लोकों का कण कण दर्पणवत् प्रतिबिम्बित
होने लगता है। यह प्रतिबिम्बन ही ज्ञान की व्यापकता का
सूचक है, अन्यथा वह इतना आत्म-केन्द्रित है कि एक
ज्ञानवान्, स्वात्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है यह कह कर भी
यथार्थ रह सकता है।

सम्यक्ज्ञानी का व्यवहार भी सम्यक् ही होता है। चाहे
उसमें आलोकिक या अतिरिक्त तत्त्व न हों। सम्यक्ज्ञान
चूँकि सम्यक्दर्शन पूर्वक ही होता है अतः एक सम्यक्ज्ञानी
उत्कृष्ट कोटि का विवेकशील होता है। विवेक ही वह वस्तु है
जो उसके व्यवहार को सम्यक् और असाधारण बनाती है
किसी भी क्रिया की कर्तव्यता या अकर्तव्यता का निर्धारण
इसी विवेक या भेद-विज्ञान के द्वारा होता है। खरे और खोटे
में अन्तर भी विवेक से ही संभव है। करोड़ों वर्ष तप करके
भी जो सफलता न मिल सके वह एक ज्ञानी पुरुष अपने
विवेकपूर्ण प्रयोग से क्षण भर में प्राप्त कर सकता है।
सांसारिक व्यवहार में समान रूप से उलझा एक मिथ्याज्ञानी

अनन्त काल तक जन्म-जन्मांतर में भटकता रहेगा, जबकि एक सम्यक्ज्ञानी यथाशीघ्र मुक्त होगा क्योंकि वह निरन्तर अनुभव करता है कि उसे जो भी उचित-अनुचित करना पड़ सकता है वह उसके पूर्वोपार्जित कर्मों का प्रतिफल है अन्यथा वह इस सबसे स्वभावतः अतीत ही है।

यही कारण है कि विषम परिस्थितियों में एक मिथ्याज्ञानी वेदना, क्रोध आदि की अनुभूति करता है जबकि सम्यक्दृष्टि तटस्थ और निर्विकार बना रहता है। ज्ञान महाफल का यही तो है कि विषम परिस्थितियों में भी या प्राणी ऐसी चेष्टाएं और विचार न करें जिनसे न कर्म बंधे और उसे अनन्त जन्मों में भटकना पड़े।

सम्यक्चारित्र :

स्वरूप के श्रद्धान से बाह्य वस्तुओं से मोह टूटता है, स्वरूप के ज्ञान से बाह्य वस्तुओं की अनावश्यकता निश्चित होती है, और इसीलिए पर रूप के प्रति स्वरूप का रागद्वेष छूटता है। रागद्वेष का यह छूटना ही सम्यक्चारित्र है राग और द्वेष दोनों ही शब्द सापेक्ष शब्द है क्योंकि संसार की सभी वस्तुओं से राग ही राग संभव नहीं और द्वेष ही द्वेष भी संभव नहीं। कहा जा सकता है कि जिन वस्तुओं से द्वेष न होकर मध्यस्थता हो सकती है, अतः राग को द्वेष की भांति त्याज्य नहीं टहराया जाना चाहिए। उत्तर होगा कि द्वेष की भांति राग भी एक विकार या वैभाविक परिणति हैं क्योंकि उसके कारण भी दृष्टि स्वरूप से हटकर पर रूप पर जा टिकती है। राग और द्वेष ही समान रूप से, स्वरूप में पर रूप के कर्तृत्व का या पर रूप में स्वरूप के कर्तृत्व का आरोप करते हैं।

आत्मा केवल ज्ञाता और दृष्टा ही है, और यदि कर्ता है भी व सर्वथा अपना ही पर का कदापि नहीं। यह सिद्धांत

ही राग और द्वेष को एक ही श्रेणि में लाता है। इस सिद्धांत पर दृढ़ रहता कोई व्यक्ति दया, दान परोपकार आदि पुण्य कार्य कर सकेगा या नहीं यह प्रश्न स्वभाविक है। उत्तर होगा कि यद्यपि निश्चय चारित्र के अन्तर्गत आत्मा की जो आलौकिक अवस्था होती है उसमें पुण्य कार्यों का, पाप कार्यों की भांति, विकल्प ही नहीं उठता तथापि व्यवहार के अन्तर्गत पाप से निवृत्ति और पुण्य में प्रवृत्ति का ही विधान है। पाप अर्थात् हिंसा आदि अशुभ से निवृत्ति और पुण्य अर्थात् दया आदि शुभ में प्रवृत्ति, ये दोनों ही ऐसे साधन हैं जिनका साध्य है शुद्ध अर्थात् धर्म इसका तात्पर्य यह हुआ कि व्यवहार चारित्र यदि साधन हैं तो निश्चय चारित्र उसका साध्य है। सम्यक् चारित्र के निश्चय और व्यवहार के रूप में दो भेद किये जाने से यह प्रतिफल होता है कि सभी प्रकार की चारित्रिक क्रियाओं के दो दो रूप होते हैं। सम्यग्दर्शन पूर्वक होने वाली किसी भी क्रिया के दृश्य रूप को व्यवहार चारित्र और उस क्रिया से होने वाली आत्मानुभूति को निश्चय चारित्र कहा जा सकता है इससे स्पष्ट है कि चारित्र के व्यवहारिक पक्ष अर्थात् दया, दान, परोपकार आदि का विकल्प तभी होता है जब तक आत्मानुभूति रूप निश्चय चारित्र अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर लेता। चारित्र शब्द, विशेषतया जैनाचार में इतना व्यापक है कि इसका प्रयोग विभिन्न अवसरों पर और विभिन्न उपेक्षाओं से किया गया है। उत्तम क्षमा, मृदुता सरलता, अलोभ, सत्य, अलोम, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, और ब्रह्मचर्य, नामक दस धर्मों को चारित्र कहा जा सकता है, तथापि सामायिक आदि के रूप में पांच प्रकार के चारित्र के भी विधान है क्योंकि वह मोक्ष प्राप्ति में साक्षात् कारण है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में प्रवृत्ति सम्यक्चारित्र है। इसके दो

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 भेद हैं : साधु और उपासक। साधु इन पांचों को महाव्रतों के रूप में ग्रहण करता है जबकि उपासक के व्रतों को अणुव्रत कहा जाता है।

३

मेरा सौभाग्य

प्रभु महावीर की कृपा से मेरा जन्म जिस परिवार में हुआ वहां धर्म के चारों दुर्लभ अंग प्राप्त थे। सर्व प्रथम मुझे धर्म का दुर्लभ अंग मनुष्य जन्म मिला। संसार में जिस जन्म को देव तक तरसते हैं। संसार में वैसे तो ८४ लाख योनियां मानी जाती हैं पर सर्व श्रेष्ठ योनि मनुष्य की मानी जाती है। जैन धर्म में चार योनियां प्रमुख मानी जाती हैं : १. मनुष्य २. पशु ३. नरक ४. देव

इसी योनि में मनुष्य चाहे तो आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा शुरू कर सकता है अगर अशुभ कर्मोदय हो तो नरक का द्वार खोल सकता है। अगर शुभ कर्म करे तो देव बन सकता है अशुभ कर्म करे तो दानव। इसी योनि में मनुष्य धर्म के चार अंग दान, शील, तप व भावना का पालन कर सकता है, अगर नीचे गिरे तो वासना, इच्छाओं व तृष्णाओं का कीड़ा बनकर भटक सकता है। यह मनुष्य श्रेष्ठ योनि है जिसे देव, देवीयां नमस्कार करते हैं इस भव में ही मनुष्य महाव्रत, समिति, गुप्ति, का पालन कर मुनि बन सकता है। चाहे संसार में रहकर धर्म पालन कर सकता है। हमारे सामने श्रावक आनंद जैसे दसों श्रावकों का वर्णन है जिन्हें संसार की हर वस्तु सुख उपलब्ध थी जिन्होंने प्रभु महावीर से श्रज्जवक के अणुव्रत धारण किए और देव लोक को प्राप्त किया। प्रभु महावीर ने स्पष्ट उद्घोष श्री दशवें

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कालिक सूत्र में प्रथम अध्ययन में किया।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, धर्म वही है, जिस लक्षण का अहिंसा, संयम व तप है। ऐसे धर्म का जो पालन करते हैं, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं। मुझे निरोग शरीर व इन्द्रियां मिली हैं। सुनने, समझने व देखने की शक्ति मिली है। इस जीवन के प्रमुख चार दुर्लभ अंग प्राप्त हुए हैं। वैसे यह कहा जाता है कि स्वास्थ्य शरीर में ही शुद्ध धर्म टहरता है।

‘मुझे वीतराग अरिहंतों, तीर्थकरों द्वारा कथित धर्म सुनने को मिला है ऐसा धर्म सुनना पिछले जन्मों के शुभ कर्म का सुफल है।’ नहीं तो व्यक्ति का मन धर्म के प्रति आकर्षित नहीं होता। आज जब मैं यह शब्द लिख रहा हूं तो जीवन की आधी सदी से ज्यादा का सफर तय कर चुका हूं। मैं विभिन्न आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं, साध्वीओं व अन्य शास्त्रीय पदवी धारी जैन संतों को मिला है। सभी का आशीर्वाद व सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है। सभी के प्रवचन मैंने सुने हैं और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि प्रभु वीतराग की बात का कथन जो भी करेगा स्वयं वीतराग हो जाएगा। प्रभु की वाणी अमृतमय है। इस में देश, काल, आयु, लिंग, जात-पात, छुआछूत का भेद नहीं है। प्रभु जहां प्रवचन करते हैं वहां पशु, मानव, स्त्री, देव व देवीयां परस्पर प्रेम से बैठकर सुनते हैं और अपना परम्परागत वैर भूल जाते हैं। इसी लिए उस स्थान को जैन परिभाषा में ‘समोसरण’ कहते हैं। समोसरण की महिमा अनुपम व अकथनीय है। प्रभु के अष्टप्रतिहार्य, अतिशय यहां घटित होता है। प्रभु अर्ध मागध में प्राकृत में उपदेश करते हैं।

प्रभु महावीर की तीसरी दुर्लभ बात भी मुझे बहुत आकर्षित करती है। यह बात बहुत ही दुर्लभ कही जा सकती

है, क्योंकि हम धर्म तो कई बार करते हैं, धर्म की बातें सुनते हैं, अनेक बातों को सत्य भी मानते हैं, पर हमारी इन पर श्रद्धा नहीं बनती। हमेशा संशय बना रहता है और श्री कृष्ण के शब्दों में “संशयवान् आत्मा विनाश को प्राप्त करती है। यह विनाश ही मिथ्यात्व है अगर श्रद्धा नहीं बनती तो चित भटकता रहता है। आज अधिकांश स्त्री पुरुषों की हालत ऐसी है। हर एक ब्रह्मज्ञानी कहलाना चाहता है। हर कोई कहता है कि उस के पास अंतिम परम सत्य है। पर मैं प्रभु महावीर की भाषा में कहूँ तो इतना ही पर्याप्त है कि कुछ भी अंतिम सत्य नहीं है। यहां तक जन्म भी अंतिम सत्य नहीं, मरण भी अंतिम सत्य नहीं। क्योंकि इस जन्म से पहले हमारे कितने जन्म कहां कहां हुए, कोई नहीं जानता। यह मरण भी जीवन का अंत नहीं। इस से पहले भी हम हर जन्म में मरे हैं, मर कर पुनः जन्में हैं। यहां तक ऐकेन्द्रीय व निगोध अवस्था में तो जन्मों की गणना ही नहीं की जा सकती। नरक स्वर्ग में दीर्घ समय तक रहे, यह भी कथन से बाहर है। कितने बार निगोध अवस्था के जीव बने। तीर्थंकरों से ईलावा कोई नहीं जानता।

इन बातों को ध्यान में रख कर हमें केवली कथित धर्म के अनुसार चलना चाहिए। उस पर यथा रूप श्रद्धा करनी चाहिए। मिथ्यावादियों के चमत्कार देख कर संतुलन खोना नहीं चाहिए। हमें सम्यक्त्व पर पूर्ण रूप से श्रद्धा रखते हुए देव, गुरु, व धर्म को उनके गुणों अनुसार श्रद्धा करनी चाहिए। इस श्रद्धा से मिथ्यात्व का उबड़-खावड़ रास्ता साफ हो जाएगा। सम्यक्त्व का साफ रास्ता प्रशस्त होगा।

जैन धर्म में सम्यक्त्व पर श्रद्धा ही जैन धर्म की प्रथम पहचान है। अंधेरे से प्रकाश की ओर यात्रा का प्रथम कदम सम्यक्त्व है। हमारे सम्यक्त्व की ओर श्रद्धा बढ़ाने में हमारे

वीतराग प्रभु, पांच महाव्रत धारी साधु सर्वज्ञ कथित धर्म प्रमुख सहायक हैं। श्री कृष्ण की श्रद्धा की बात की और किसी का ध्यान नहीं। लोग महापुरुषों के कथन को क्यों भूलाते हैं ? पता नहीं। संसार में उन्हें भटकना क्यों पसंद है ? धर्म वही परम सत्य है जो सम्यक्त्व में सहायक हो, सम्यक्त्व बढ़ाए, वह अन्य शास्त्रों से मिले, पूज्यनीय हो। धर्म का आधार श्रद्धा है, प्राण श्रद्धा है, आत्मा श्रद्धा है। श्रद्धा विहीन धर्म अधर्म है। श्रद्धा रहित किया गया अच्छा काम भी पाप का कारण बन जाता है। श्रद्धा में प्रमुख तत्व ज्ञान ही है। ज्ञान रहित श्रद्धा को लोग अंधश्रद्धा कहते हैं। हमें इसे अंधेरे से बचाने के लिए प्रभु महावीर ने श्रद्धा को धर्म के ४ दुर्लभ अंगों में स्थान दिया है।

श्रद्धा धर्म की माता है, पिता है, मित्र है। धर्म के इस तत्व की यात्रा के बाद हमारी यात्रा शुरू होती है। श्रद्धा के कारण ही गुरु की प्राप्ति होती है। गुरु की श्रद्धा हमें धर्म की पहचान करवाती है। इसी लिए नवकार मंत्र में सर्व प्रथम अरिहंत भगवान को नमस्कार किया गया है। इस के बाद सिद्ध परमात्मा को। चाहिए पहले सिद्धों को नमस्कार करना था। परन्तु गुरु ही हमें सिद्ध भगवान् का स्वरूप बतलाते हैं इसी कारण उन्हें पहले प्रणाम किया गया है।

धर्म का अंतिम व परम दुर्लभ तत्व ६ सुने धर्म पर चलना। मनुष्य जन्म तो कर्म के अनुसार मिल जाता है। आर्य देश में जन्म होने के कारण सर्वज्ञ कथित धर्म सुनने को भी मिल गया है। फिर शुभ कर्मों के उदय से धर्म के प्रति श्रद्धा भी हो गई है। फिर भी उस धर्म पर चलना परम दुर्लभ है। इस का कारण मिथ्यात्वी लोग हैं, जो चमत्कार को नमस्कार करते हैं। सम्यक्त्व पर दृढ़ रहना बहुत मुश्किल है। हजारों साल के तपस्वी की एक क्षण के मिथ्यात्व के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कारण भक्ति समाप्त हो जाती है। जैन इतिहास में हजारों साधक ऐसे आये, जो आये तो सिंह वृत्ति की तरह, पर गए शृंगाल की तरह। इस की उदाहरण में हमें पीछे कुछ नाम दे आये हैं। इन मिथ्यात्वी लोगों के भक्तों की संख्या भगवान महावीर के भक्तों से ज्यादा थी। इन में चार्वाक का, उदाहरण हमारे सामने है। जो कहता था कि “मानव जन्म वार वार नहीं मिलता, जो कुछ खाना-पीना है अभी कर लो, कल को तो तुम मिट्टी में मिल जाओगे। फिर कहां संसार आगमन होगा। आप तो धरती में मिल जाओगे।”

भगवान महावीर के समय ३६३ पाखण्डी मतों का वर्णन मिलता है। जिन को प्रभु महावीर ने अनेकांतवाद के सिद्धांत के साथ एक करने का प्रयत्न किया। महात्मा बुद्ध के जीवन में ६३ मतों का वर्णन मिलता है। इतनी दाशर्निक विचारधाराओं की सामना अनेकांत के सिद्धांत विना संभव नहीं था। वाकी सम्यक्त्व जब मिथ्यात्व की ओर बढ़ता है तो उस की पूर्व श्रद्धा का सिंहासन डोलता प्रतीत होता है। पर अगर सद्गुरु की संगत मिल जाए, मिथ्यात्व समाप्त हो जाता है। संसार में अधिकांश जीव मिथ्यात्व में फंसे हैं, उन्हें निकालने के लिए ही हमारे शास्त्र है।

सम्यक्त्व के आदर्श :

श्री उपासक दशांग सूत्र में कुण्डकोलिक श्रावक का वर्णन है। जिसे एक मिथ्यात्वी दैव ने धर्म मार्ग से गिराने के लिए आया था। उसने देव माया से उस के पुत्र के सात टुकड़े कर दिए। उस के मास को तला, लहू के छींटे मारे। फिर उस देव ने माता-पिता को मारने की धमकी दी। कुण्डकोलिक ने उस देव को पकड़ने की चेष्टा की। पर उस के हाथ में खन्वा आया। माता ने उन्हें पुनः धर्म में स्थिर किया। यह कुछ समय का अज्ञान था। जिस का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कारण मोह था। माता के सहयोग से वह पुनः धर्म में स्थिर हुआ।

यह श्रद्धा की कहानीयां हैं प्रभु महावीर के एक विदेशी साधक आद्रक कुमार के जीवन में कुछ समय अज्ञान की अवस्था आई। यहां तक प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभ देव के पुत्र भगवान बाहुवलि ने जब यह सोचा कि जिस धरती पर मैं खड़ा हूं वह धरा मेरे भ्राता भरत की है। तो मन में अज्ञान उत्पन्न हुआ सम्यक्त्व व मिथ्यात्व के बीच सिद्धांतों की भेद रेखा खींचने वाले अनेकों प्रमाणों व कथाओं से जैन ग्रंथ भरे पड़े हैं। इनमें से एक प्रसिद्ध कथा 'ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र' में मिलती है जो काफी ज्ञानवर्धक है।

“किसी नगर में दो मित्र रहते थे। एक बार वह वन में घूम रहे थे। उन्हें मयूरी के दो अण्डे प्राप्त हुए। दोनों मित्रों ने उन अण्डों को उठाया। वह सोचने लगे कि इन अण्डों को गर्मी देने से इनमें से सुन्दर बच्चे प्राप्त होंगे। दोनों घर आए। पहले मित्र ने उन अण्डों को पक्षियों के झुण्ड में रख दिया। दूसरे मित्र का स्वभाव पहले मित्र से विपरीत था। वह शंकालु स्वभाव का था। वह हर रोज अण्डे को उठाता, फिर उसे हिला कर देखता कि उस में बच्चा है या नहीं।

समय बीता। जिस मित्र ने अण्डे को योग्य गर्मी पहुंचाने के स्थान पर रखा था उसे उस की इच्छा का सुन्दर फल मिला। उसके यहां एक सुन्दर मयूर पैदा हुआ जो घर की छत की शोभा बना। मयूर आकर्षण का केन्द्र बना।

दूसरा मित्र जो अण्डा हिला कर देखता था, उसका अण्डा एक दिन टूट गया। इस के अविश्वास के कारण उसे कुछ प्राप्त नहीं हुआ।”

भगवान महावीर इन कथाओं को बताने के बाद फुरमाते हैं “सम्यक्त्वी पहले मित्र की भांति श्रद्धा भाव होता

आस्था की ओर बढ़ते कदम
है। उस श्रद्धा से वह धर्म रूपी सुन्दर लक्षण वालों सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, जो मोक्ष व सद्गति को प्राप्त करता है। इस के विपरीत मिथ्यात्वी जीव जो शंका के कारण ना तो स्वयं कुछ प्राप्त कर सकता है न उस का जीवन धर्म के प्रति जागरूक हो सकता है। ऐसा श्रद्धाहीन व्यक्ति की आस्था कहीं नहीं टिकती। वह मिथ्यात्व के कारण संसार समुद्र में भटकता रहता है।

वर्तमान पंजाब की ग्रामीण संस्कृति

भारत वर्ष प्राचीन काल से ही गांवों का देश कहलाता है। आज भी देश की अधिकांश जनसंख्या गांवों में रहती है। गांवों में प्रमुख धंधा कृषि है। दूसरे घरेलू काम काज भी इस काम के अंग हैं। जिस क्षेत्र में हम रहते हैं इसे वेदिक ऋषियों ने आर्यवर्त देश कहते थे। आर्यवर्त में सप्तसिन्धू प्रदेश पड़ता था जिस में सारा पाकिस्तान, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, अफ़ग़ानिस्तान, राजस्थान व कुछ भाग जम्मू व कश्मीर का क्षेत्र पड़ता था। इस में सात नदीयां बहती थी। समय बीता सिन्धू देश अलग माना जाने लगा। बाकी प्रदेश का नाम पंचनद देश पड़ा। मुसलमानों ने इसी पंचनद को पंजाब का नाम दिया। सिन्धूस्थान को हिन्दूस्तान नाम मिला। वैदिक काल से लेकर आज तक पंचनद देश के गांवों का जीवन प्राचीन काल जैसा है। एक नजर देखने से लगता है कि हजारों वर्ष के आक्रमण भी इस सभ्यता पर कुछ असर नहीं डाल सके। विभिन्न धर्मों, समुदायों में बंटे लोग फिर मानिसक वृत्ति से धार्मिक हैं। आधुनिक सभ्यता, जिसे हम पश्चिम की सभ्यता कहते हैं इसका प्रभाव गांवों में आया जरूर है पर गांवों पर कोई विशेष असर नहीं छोड़ सका। प्राचीन सभ्यता से गांवों को इकाई माना जाता है।

हमारे गांव सभ्यता व संस्कृति का जीवन रखने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इन्हीं कारणों से चौधरी परिवार ग्रामों में निक्षपक्ष परिवार माना जाता है। इस कारण उन्हें परिवार में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। हनारा परिवार गांवों में चौधरी परिवार था। मेरे बाबा श्री नाथ राम की लोग

आस्था की ओर बढ़ते कदम
बहुत कदर करते थे। अपने निजी मामलों में वे उनकी राय लेते थे।

हमारे पुरखे व मेरा जन्म स्थल :

मैंने सुना है कि हमारे पुरखे पीछे से रामपुर (मलौद) से आये थे। हमारा एक वुजुर्ग अपने ननिहाल कुनरा आया। फिर यहीं बस गया। हम कुनरा वाले कहलाने लगे। यह गांव संगरूर - वरनाला रोड पर २ किलोमीटर की दूरी पर सड़क से हट कर है। शहरी सभ्यता के प्रभाव से हमारा गांव काफी बचा हुआ है। इसी गांव में मेरे बाबा श्री नाथ मल जी व दादी दुर्गा देवी रहते थे। उन के दो सपुत्रों में मेरे पिता श्री स्वरूप चन्द जैन छोटे हैं। हमारा गांव सभ्यता संस्कृति व परम्पराओं का जीता जागता प्रमाण है। गांव मुख्य मार्ग पर होने के कारण जैन साधुओं का आगमन रहता है। लोग सब धर्म का आदर करते हैं। इसी कारण गांवों में मन्दिर, गुरुद्वारा व डेरा है। गांव का वातावरण शांत है। भूमि उपजाऊ है। सरलता के दर्शन हर स्थान पर हैं।

इस गांव के प्रमुख मेरा बाबा रहे। उन्होंने जीवन में अंतिम क्षणों में भी इस गांव में बिताए। हालांकि उनका समस्त परिवार के लोग धूरी आ गए थे। पर उन्होंने गांव व गांव वासियों को नहीं छोड़ा। मेरे बाबा सहज रूप से जैन साधुओं का बहुत सन्मान देते थे। उन्हें सच्चे साधू मानते थे। उनका दिखाया रास्ता आज भी हमारे परिवार के लिए आदर्श है। उनका कठिन अनुशासन व प्यार दोनों एक साथ अपनी संतान को मिले। उनके संस्कार आज भी हमारे परिवार में सहज प्राप्त होते हैं। इसी संस्कार युक्त परिवार में मेरा जन्म १० नवंबर १९४६ को माता लक्ष्मी देवी जैन व पिता श्री स्वरूप चन्द जैन के यहां पक्की गली धूरी (पंजाब) में हुआ। मैं अपने माता-पिता की तृतीय संतान हूं। मेरे से

आस्था की ओर बढ़ते कदम
बड़ी मेरी दो वहनें उर्मिल व निर्मला हैं। हम चार भाई व तीन वहनें हैं। हमारा परिवार एक प्रतिष्ठित परिवार है। इसका व्यापार क्षेत्र में अपना प्रसिद्ध स्थान है।

मेरे बाबा दीर्घायु थे। वह दानी व परउपकारी थे। उन्होंने अपना एक मात्र घर भी एक भाई को दान कर दिया। उन का चरित्र उनका इतना निर्मल था कि उन्होंने समस्त जीवन शुद्ध शाकाहार को ध्यान में रखा। उन्होंने अनेकों ग्रामीणों का मांस व शराब का परित्याग करवाया।

शराब से नफरत :

वे शराब से बेहद नफरत करते थे। इसी कारण से उनकी संतान इस बुराई से बची रही। “एक बार उनको चोट लगी तो लोगों ने कहा जख्म पर शराब लगाओ। जख्म ठीक हो जाएगा।” पर बाबा जी वृद्धावस्था में तकलीफ झेलते रहे, पर उन्होंने शराब का प्रयोग नहीं किया। यह थी उनकी अपने सिद्धांतों के प्रति आस्था। वह प्रमाणिक व नैतिक जीवन जीने में विश्वास रखते थे।

इन्हीं बातों का वर्णन मैने एक बार ज्ञानी जैल सिंह जी (भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति) से किया। तो वह प्रसन्न हुए। स्वः साध्वी स्वर्ण कांता जी की प्रेरणा से हमारी समिति ने उनकी स्मृति में एक अवार्ड की स्थापना की। जिस का नाम अहिंसा व मानवता के अवतार भगवान महावीर जी के नाम पर रखा गया। इस एवार्ड का नाम था ‘इंटरनैशनल महावीर जैन शाकाहार अवार्ड’।

मेरा बचपन :

मेरा बचपन आम बच्चों की तरह था। इस में कुछ भी असमान्य नहीं था। मेरा पालन पोषण मेरे माता-पिता ने बहुत ही धार्मिक वातावरण में किया। मुझ पर उन्होंने

इतना कठोर अनुशासन रहा है कि मैं कोई बात उन्हें पूछे बिना नहीं करता था। आज भी हर बात उन्हें बता कर करता हूँ। ताकि कहीं किसी कार्य में त्रुटि न रह जाए। मैंने अपने माता-पिता को अपनी बुद्धि के अनुसार चाहा है। पर मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उनके लिए कुछ कर पाया हूँ। माता-पिता का उपकार चुकाया नहीं जा सकता। यह श्रपण भगवान महावीर जी का कथन है। मेरे को यह कथन पूर्ण तथ्य पर लगता है। प्रभु महावीर कहते हैं “कोई व्यक्ति दिन रात्रि माता-पिता की सेवा करे, उन्हें कंधे पर उठा कर घूमता फिरे, उनकी हर बात को पूरा करे, फिर भी माता-पिता का उपकार नहीं चुका सकता।” कुरआन ने कहा है “मां के पांव के नीचे जन्नत है” जिस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए धर्म कर्म-कांड होता है उस से ज्यादा तो अपने घर में माता-पिता के दर्शन व सेवा से प्राप्त हो जाता है।

मेरे पिता शुरू से सादगी पसंद हैं। वह व्यर्थ क्रियाओं के विरोधी हैं। सच्चे साधुओं के प्रति समर्पित हैं। सादगी व संयम उनके जीवन के हर कार्य में झलकता है। हम उनके पद चिन्हों पर चल कर ही सफलता प्राप्त कर पाते हैं। उनका जीवन प्रमाणिक जीवन है। उनकी करनी व कथनी में अंतर नहीं है। उनके फैसले अटल होते हैं। वह सारे काम परिवार के विमर्श से सम्पन्न करते हैं। इस लिए सभी सदस्य उनका कहना मानते हैं।

मेरे पिता जी अपने व्यापार में प्रमाणिकता रखते रहे हैं। वह ऐसा करने में मुझे भी प्रेरणा देते रहे हैं। उन्होंने जीवन में अनेकों उतार चढ़ाव देखे, पर उन्होंने कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।

मेरी माता धर्म परायण महिला हैं। वचन से हम उन्हें देखते आए हैं कि वह प्रातः उठती हैं उठ कर

मन्दिर जाना उन के जीवन का अंग है। साधु, साध्वियों को सन्मान करता, उन्हें भोजन कराना और सेवा करना वह अपना धर्म समझती हैं। वह दान, शील, तप व भावना की साकार मूर्ति हैं। धर्म उनके अंग अंग में घटित होता है। जैन साधु साध्वियों के प्रवचन सुनना व समायिक करना उनकी दैनिक चर्या है। वह स्पष्टवादी व सत्यवादी हैं। हर मेहमान का सन्मान करना, तो उन से सीखा जा सकता है। माता के संस्कार ही संतान को संस्कार प्रदान करते हैं। वह गरीब की मदद करना अपना धर्म समझती हैं।

मेरे माता पिता ने मेरे पर परम उपकार है कि उन्होंने वचपन मुझे कभी किसी वस्तु की कमी का एहसास नहीं होने दिया। उन्होंने मेरी शिक्षा दीक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। मेरे पिता मेरा चरित्र व संस्कार के प्रति पूर्ण सजग थे। वह इस बात का ध्यान रखते थे कि मैं गलत संगत में न पड़ जाऊं। मेरे माता-पिता का यह आशीर्वाद ही था कि मैं आज इस रूप में समाज के सामने हूँ।

मेरा वचपन साधारण बच्चों की तरह था। मेरे माता पिता की इच्छा थी कि मैं पढ़ लिख कर कुछ बन सकूँ। इस दृष्टि से मुझे अच्छे स्कूल में दाखिल करवाया गया। पर मुझे स्कूल के नजदीक रखा जाता, जो मेरे घर के करीब होता। मेरे माता पिता के अतिरिक्त, मेरे अध्यापक भी परम कृपालु थे। मेरी श्रद्धा का केन्द्र थे। यह अध्यापक बच्चे को अपने पुत्र की भाँति शिक्षित करते थे। वह जमाना ही ऐसा था जब प्राइवेट स्कूलों में अध्यापक अपने विद्यार्थियों पर पूरा ध्यान देते थे। बच्चों का परिणाम अच्छा हो इस लिए अतिरिक्त समय भी लगाते थे। तनखाह कम होती थी। पर स्कूल का परिणाम आदर्श होता था। वातावरण पूर्णतयः धार्मिक होता था। मुझे एस. डी. स्कूल व आर्य स्कूल में पढ़ने

आस्था की ओर बढ़ते कदम का सौभाग्य मिला। मुझे इन अध्यापकों से बहुत स्नेह मिला। स्कूल के टाईम में मेरा कोई उल्लेखनीय मित्र नहीं था। मैं अपने तक ही सीमित था। मेरे माता-पिता का मेरे प्रति बहुत ध्यान रहा।

मेरी दैनिक चर्या संक्षिप्त थी। मेरे मित्र मेरे मुहल्ले के लोग थे। हमारे मुहल्ले में लोग आपसी सहयोग से रहते थे। परस्पर प्यार था। वह समय था जब पड़ोसी के वच्चे को अपना वच्चा समझा जाना मुहल्ले की विशेषता थी। यह विशेषता ही मेरे चरित्र निर्माण में मेरे बाल्यकाल से महत्त्वपूर्ण रही। माता पिता के स्वाभाव अध्यापक की अच्छी संगत व मुहल्ले के वातावरण ने मुझे धर्म के प्रति बढने की ओर प्रेरित किया। हमारे मुहल्ले में जैन मुनियों व साध्वीयों का आगमन रहता था। कभी कभी यह मुनि व साध्वीयां हमारे घर भोजन के लिए पधारते। भोजन के साथ साथ हमें प्रवचन में आने की प्रेरणा देते थे। उस समय मुझे धर्म का विशेष ज्ञान नहीं था। परन्तु घर का वातावरण इतना आदर्शक था कि जैन साधु, साध्वीयों को देखते ही मेरे पैर उनके चरणों में शीश झुकाने को बढ़ जाते। यह धर्म के प्रति श्रद्धा की शुरूआत थी जो आगे चल कर धर्म अध्ययन का कारण बनी।

यह आस्था के बीज थे। जो श्रद्धा के रूप में विकसित होने लगे थे। आज मैं सोचता हूं कि मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में समाज को कितना बड़ा हाथ होता है ? समाज मनुष्य को नई पहचान देता है। उस के जीवन को भी आगे बढाने व भविष्य निर्माण में परिवार, स्कूल, मुहल्ले के अच्छे वातावरण व समाज का प्रमुख हाथ रहता है। अच्छा वातावरण मनुष्य को स्वास्थ्य समाज प्रदान करता है। इस वातावरण का अहसान मेरे भावी जीवन का कारण बना है।

आस्था की ओर बढ़ते कदम
यह मेरे वचन की अनुभूतियों के कुछ अंश हैं।

अहिंसा का बीजारोपण :

श्रमण भगवान महावीर जिस धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा है। वह धर्म कौन सा है अहिंसा, संयम व तप। जो इस धर्म का पालन करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। ऐसा श्री दशर्वेकालिक सूत्र का कथन है। श्री सूत्रकृतांगसूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है।

इसी तरह प्रश्न व्याकरण सूत्र में अहिंसा के लिए अनेकों पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है। महाभारत में महर्षि वेद व्यास जी ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। इस्लाम में परमात्मा को रहम करने वाला रहीम कहा गया है। बौद्ध धर्म व ईसाई धर्म में कल्याण व सेवा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल में अनेकों भक्त हुए। जिन्होंने अहिंसा का प्रचार किया। अहिंसा को पाप कृत्य घोषित किया। वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा को प्रमुख स्थान महात्मा गांधी ने दिलाया। उनकी अहिंसा को गांधी दर्शन के नाम से जानते हैं।

वचन से ही मुझे जिस बात से नफरत रही है वह है हिंसा। हिंसा कहीं भी हो, कैसी भी हो, हिंसा है। हिंसा अनुमोदनीय नहीं हो सकती। यही कारण था कि वचन में जब कभी मैं बाहर खेलने जाता तो पाता कि कुछ लड़के गुल्लकवाजी करते थे। वे छोटे पक्षियों का बिना कारण शिकार करते थे। मुझे ऐसे शिकारीयों से नफरत थी। ऐसी हिंसा मेरे मन में कई तरह के प्रश्न उत्पन्न करती थी। मैं सोचता था कि इन निरिह प्राणियों को बिना दोष क्यों सजा मिल रही है। इन छोटी छोटी घटनाओं ने मेरे बाल मन पर अहिंसा के

बीज अंकुरित करने शुरू कर दिये। मुझे उन लोगों से भी घृणा होने लगी जो पशुओं पर शक्ति से ज्यादा भार लाद कर इन्हें पीटते। गरीब का शोषण करते। यह छोटी छोटी बातें थी जिन्हें मेरे मन पर गहरा प्रभाव होता। मैं अहिंसा दर्शन की ओर प्रभावित हुआ। स्कूल का समय तो खेल कूद में बीत जाता। इस तरह स्कूल के समय से ही अहिंसा धर्म की ओर अग्रसर होने लगा।

शिक्षा :

मैंने १९६३ में मैट्रिक की परीक्षा पूर्ण की थी। उस के बाद कस्तूरबा शिक्षण संस्थान राजपुरा का कार्यक्रम बना। चाहे इस स्थान पर मेरा मन नहीं लगा, फिर भी वहां मेरे मन को गांधीवाद ने काफी प्रभावित किया। मुझे लगा कि गांधीवाद और प्रभु महावीर की अहिंसा एक सिक्के के दो पहलु हैं। जहां मेरा मन नहीं लगा। मात्र कुछ माह के बाद मैं घर आ गया क्यों कि कालेजों में दाखिला बंद हो चुका था। मेरे को कभी भौतिकवाद प्रभावित न कर सका है। मेरे पिता जी गांधीवादी विचारों से प्रभावित हैं। मैंने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी के अहिंसक योगदान को समझा। मुझे इस आश्रम में अभूतपूर्व ज्ञान मिला। मेरा यह विश्वास पक्का हो गया कि जैन साधू ही अहिंसा का सच्चा रूप हैं चाहे अन्य धर्मों में अहिंसा के अंश पाये जाते हैं पर जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अहिंसा दर्शन प्रस्तुत किया है। वह संसार के प्रत्येक जीव के लिए अभूतपूर्व हैं। २६०० वर्ष बीत जाने पर भी उनकी अहिंसा जीवत है, शाश्वत है, वा जागृत है। यह वर्ष घर में रहकर व धर्म चर्चा (मुनि दर्शन) व समाज को समझने में बीता। इस समय कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

नौकरी :

१९६८ में मैंने पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के माध्यम से बी. ए. की परीक्षा सरकारी कालेज, मालेरकोटला से उत्तीर्ण की। परीक्षा समाप्त होते ही मुझे पंजाब लैंड मोर्टगेज बैंक मालेरकोटला में नौकरी प्राप्त हो गई।

यह नौकरी मेरी अहिंसा की दूसरी परीक्षा थी। यह बैंक किसानों का बैंक है। मुझे इस माध्यम से अपने किसान भाईयों की सेवा का अच्छा अवसर मिला। यह बैंक का कार्य पग पग दोषपूर्ण था जिस से मुझे वचना था। इस स्थान पर भ्रष्टाचार व्याप्त था। शराब व मांस का सेवन आम था। इन सबसे मैंने स्वयं को कैसे बचाया, यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानता। पर आज जब अपने १७ वर्ष बैंक में गुजारे सालों के बारे में सोचता हूं तो पाता हूं कि इस हालत में मैं किसी महापुरुष के आशीर्वाद से ही स्वयं को बचा पाया हूं, नहीं तो मैं आज ऐसा ना दीखता, जैसा दिखाई देता हूं।

यह बैंक मेरे लिए तीर्थ स्थान से कम नहीं रहा। जहां से मैंने बहुत कुछ पाया। बैंक के समय से ही धर्म की शरण में आ चुका था और यह भी सत्य है कि जो धर्म की शरण में आता है, धर्म उस का शरणागत बनता है। यह बैंक मेरी कर्म स्थली व धर्म स्थली बन गया। सबसे बड़ी बात मैं हर तरह के लोगों के परिचय में आया। मुझे व्यवहार धर्म का ज्ञान हुआ।

प्रकरण - २

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ की आचार्य परम्परा

बचपन में तो धर्म की बात कम समझ में आती थी पर धर्म के साथ जुड़े तो धर्म की यात्रा का बहुआयानी सफर शुरू हुआ। अब धर्म ही मेरी आस्था का सफर था। मैं शुरू में इतिहास का विद्यार्थी रहा हूँ। जिस सम्प्रदाय में मैंने सर्वप्रथम माना, उसका इतिहास जानने की चेष्टा भी की है। जब हम श्री उत्तराध्ययन सूत्र के अनुवादक का सम्पादन कर रहे थे तब मैंने जाना कि जैन धर्म के दो सम्प्रदाय प्राचीन काल से चले आ रहे हैं : १. अचेलक (वस्त्र रहित) २. सचेलक (वस्त्र सहित)। भगवान महावीर के निर्वाण के ६०० साल तक सारी विचार धारा, संस्कृति एक थी। पर आचार्य कुन्दकुन्द के समय जैन धर्म के सम्प्रदाय क्रमशः दिगम्बर व श्वेताम्बर कहलाए। तब से श्वेताम्बर व दिगम्बरों में सिद्धांतिक मतभेद शुरू हो गए। यह मतभेद बड़े मामूली स्तर के थे। ऐसी मान्यता भी है कि दिगम्बर व श्वेताम्बर सम्प्रदाय का समन्वय यापनीय संघ का निर्माण हुआ। जो बाद में दिगम्बर सम्प्रदाय का भाग बन गया। अकेले श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ८४ गच्छ पैदा हो गए। फिर चैत्यवादीयों का युग शुरू हुआ। नए ग्रंथों का निर्माण हुआ। भगवान् महावीर के सिद्धांतों को सब ने भूला दिया। जिस ब्राह्मण वादी परम्परा को छोड़ा था उसे किसी न किसी रूप में अपनाया जाने लगा। धर्म के नाम पर एक दूसरे को मिथ्यात्वी कहा जाने लगा। इन्हीं मतभेदों के कारण दोनों सम्प्रदायों में कई नए सम्प्रदायों का जन्म दिया। जिसने जैन

धर्म को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया। आज श्वेताम्बर पूजकों में और दूसरा अमुतिपूजक सम्प्रदाय स्थानक वासी हैं। इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय से निकला है तेरापंथ। इस पंथ के संस्थापक आचार्य भिक्षु जी महाराज थे। आप आचार्य रघुनाथ जी के शिष्य थे।

इसी तरह दिगम्बर सम्प्रदाय में तारणपंथ, वीस पंथ, तेरहपंथ निकले। गुजरात में पूज्य श्री कान जी स्वामी ने एक नया सम्प्रदाय चलाया। जिस का सारे गुजरात में अच्छा प्रचार हुआ। पर इतिहासक दृष्टि से जैन धर्म का सबसे नवीनतम सम्प्रदाय श्वेताम्बर तेरहपंथ है। इस सम्प्रदाय के साधु, साध्वी व आचार्य विद्वान रहे हैं। तेरह पंथ सम्प्रदाय की एक विशेषता अनुशासन है। तेरहपंथ में अधिकांश साधु साध्वी राजस्थान अथवा हरियाणा के ओसवाल हैं। मैं सर्वप्रथम इसी सम्प्रदाय के साधुओं की शरण में आना। मैं इस अध्याय के माध्यम से तेरहपंथ धर्म संघ के आचार्यों का परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस सम्प्रदाय के सभी आचार्यों के जीवन पर दृष्टि डालेंगे। ताकि पाठकों इस सम्प्रदाय के आचार्यों के बारे में जानकारी मिल सके।

आचार्य श्री भिक्षु जी :

जैसे पहले लिखा जा चुका है कि आप ने ही जैन श्वेताम्बर तेरहपंथ की स्थापना की थी। आप का जन्म कटांलिया (जोधपुर) के श्रावक बल्लु जी संकलेचा व माता दीपावाई के यहां संवत् १७८३ शुक्ल त्रयोदश में हुआ। बचपन से ही आप ओजस्वी शिशु थे। वैराग्य आप के शरीर के कण कण में समाया हुआ था। पहले वह पोतियाबंध सम्प्रदाय की ओर अग्रसर हुए। स्वयं को असंतुष्ट पा कर आप ने स्थानक वासी आचार्य श्री रघुनाथ को मुना। आचार्य भिक्षु की शादी अल्पायु में हो गई थी।

आप की पत्नी आपके रास्ते की रूकावट नहीं बन सकी। आप शीघ्र ही माता पिता व अन्य स्वजनों की आज्ञा से आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज के शिष्य बन गए। आप की दीक्षा २५ वर्ष की आयु में वगड़ी में हुई। गंभीर शास्त्र अभ्यास किया। गुरु की कृपा, आप पर हमेशा रहती थी। गुरु को भी अपने शिष्य की बुद्धि व ज्ञान पर गर्व था।

उस समय साधु समाज में कुछ बातें ऐसी आ गई थी जो शास्त्रों के अनुकूल नहीं थी। गुरु शिष्य के मध्य इन विचारों में मतभेद हो गया। गुरु से कोई समझौता न हो पाया तो १३ साधुओं के साथ आप ने स्थानक छोड़ दिया। वह जोधपूर आये। एक दुकान में ठहरे। सौभाग्य से वहां १३ श्रावक बैठे समायिक कर रहे थे। वहां श्री फातेहचन्द जी दीवान गुजरे। साधु व श्रावकों को देखा। फिर कहा अच्छा संयोग बना है। तेरह साधु व तेरह श्रावकों के पास ही भोजक जाति का एक कवि गुजर रहा था उस ने एक दोहा रचा। इस दोहे में साधुओं को तेरहपंथी कहा गया था। आचार्य भिक्षु को यह दोहा पसंद आया। उन्होंने कहा सत्य है। “हे प्रभु ! यह तेरा पंथ है। तात्विक दृष्टि से उन्होंने बताया “जो ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति का पालन करता है वह तेरहपंथी है।”

आचार्य श्री भिक्षु क्रांतिकारी आचार्य थे। उन्होंने कुछ सुधार अपने सम्प्रदाय में किए। वह महान तपस्वी थे। वह लोगों की जन भाषा राजस्थानी में धर्म प्रचार करते थे। सारा राजस्थान, मध्यप्रदेश उनका प्रचार क्षेत्र था। उन्हें राजस्थानी भाषा के सब से महान कवि होने का गौरव प्राप्त है। वह महान विचारक व कुशल आचार्य थे। उन्होंने अपनी परम्परा को स्थापित करने के लिए एक मर्यादा पत्र लिखा। जो इस संघ का विधान है।

इस महान दार्शनिक संत का देवलोक संवत् १८६० भाद्र शुक्ल त्रयोदशी को सिरियारी में ७७ वर्ष की आयु में हुआ। उन्होंने ५५ से अधिक ग्रंथों की रचना राजस्थानी भाषा में की। यह ग्रंथ आपके सूक्ष्म ज्ञान का प्रतीक हैं।

उन्होंने संसार को अनुशासन का पाठ पढ़ाया। सभी साधु साध्वीयों को एक आचार्य को ही गुरु मानने की आज्ञा दी। किसी को अलग गुरु कहलवाने से रोका। हर क्रांतिकारी की तरह आचार्य भिक्षु के कुछ विचारों का व्यापक स्तर पर विरोध हुआ। इन विचारों के आचार्य भिक्षु व उनके सम्प्रदाय को जैन धर्म में अलग पहचान मिली। आचार्य भिक्षु का सारा जीवन ही संघर्षमय था। पर उन्हें अपने सम्प्रदाय के लोगों के माध्यम से लोगों में काफी सन्मान भी मिला है।

द्वितीयाचार्य श्री भारमल जी :-

दूसरे आचार्य श्री भारमल का जन्म मेवाड़ के मुवो गांव में लोढ़ा परिवार में संवत् १८०३ में हुआ। आपके पिता किसनें जी व माता धारणी श्रमण संघ के प्रति समर्पित थे।

आप ने अपने पिता के साथ संयम अंगीकार किया। यह घटना नागोर में घटी। फिर आप ४ वर्ष बाद आचार्य श्री भिक्षु के परिवार के सदस्य बन गए। उनके समय १३ की संख्या घट कर मात्र ६ रह गई थी।

आचार्य श्री भारमल जी को भी आचार्य भीखन की तरह कष्टों का सामना करना पड़ा। आप का जीवन चमत्कारों का खजाना है। संवत् १८३२ में मृगशिरा को आप आचार्य पद सुशोभित हुए। जीवन में ४४ व्यक्तियों को संयम पंथ पर लगाया। आपका जीवन उतार चढ़ाव से भरा पड़ा है। राजनगर में आपका देवलोक हुआ।

तृतीया आचार्य श्री रायचंद जी :

आप का जन्म संवत् १८४७ में शवलीया गांव में श्रावण चतुरोजी व नाता कुशली जी के यहां हुआ। आप का धर्म से ओत प्रोत परिवार में थे। ११ वर्ष की आयु में आप साधू बने। आप के साथ आप के पिता भी साधू बने। ३ वर्ष आचार्य भिक्षु के सानिध्य में रहकर आगमों का अध्ययन किया। संवत् १८५७ में आप साधु बने। संवत् १८७७ में युवाचार्य पद पर आरूढ़ हुए। आचार्य श्री भारमल जी के पश्चात् आप आचार्य के पद पर सुशोभित हुए।

संवत् १८०८ की माघ कृष्णा को आप स्वर्ग सिधारे। आप सरलात्मा तपस्वी व आगम मर्मज्ञ थे। अनेकों प्राणीयों का आप ने कल्याण किया।

चतुर्थ आचार्य महान साहित्यकार श्री जीतमल जी :

महान विद्वान, उच्च कोटि के साहित्यकार, प्रथम राजस्थानी जैन आगम टीकाकार आचार्य श्री जीतमल ने अल्पायु में संयम ग्रहण किया। बुद्धि इतनी तेज थी कि मात्र १४ वर्ष की आयु में संत गुणमाला ग्रंथ लिख डाला। आप ने साढ़े तीन लाख पद परिणाम राजस्थानी साहित्य रचा।

इन का दूसरा नाम जय आचार्य था। इन्होंने संघ में अनुशासन लाने में जी जान एक कर दिया। इन्हें भी काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। पर तेरापंथ सम्प्रदाय में आगमों को सरल भाषा में प्रस्तुत कराने का श्रेय आप श्री को जाता है। आप राजस्थानी भाषा के महान विद्वान थे।

पंचमाचार्य श्री मधवागणि जी :

आप का जन्म १८१७ में चेन्न शुकल ११ को वीदांसर में हुआ। दचपन का नाम मेघराज था। पिता श्री

आस्था की ओर बढ़ते कदम
पुरणमल बेगवानी व माता वन्नों देवी थी। छोटी बहन गुलाब कंवर थी। जो बाद में साध्वी बनी।

संवत् १९०८ में आप वीदासर में जयाचार्य के चरणों में आए। आप के दीक्षा के भावों को देख कर माता व वहन भी तैयार हो गए।

संवत् १९०८ को लाढ़नू में आप की दीक्षा सम्पन्न हुई। फाल्गुन कृष्ण पक्ष को माता व वहिन की दीक्षाएं हुई। आप को दो बार चेचक का रोग हुआ। आप सुख दुख में सम रहने वाले वीतराग संत थे। आप ने तेरापंथ में संस्कृत की पढाई प्रारम्भी की। इस के लिए आप को भागीरथ प्रयत्न करने पड़े। आप को अनेकों संस्कृत ग्रंथ कण्ठास्थ थे। आगम, चूर्णि, निर्युक्ति ग्रंथ बाद थे। आप एक बार जो पढ़ लेते, वह भूलते नहीं थे।

२४ वर्ष की अवस्था में आप युवाचार्य बने। वह १८ वर्ष इस पद पर रहे। संवत् १९३८ भाद्र शुक्ला १२ से जयपुर में आप आचार्य पद पर विभूषित हुए। समस्त श्री संघ का विश्वास उन्हें प्राप्त था। सभी संघ उनकी आज्ञा मान कर स्वयं को अहोभागी समझता था।

संवत् १९४६ में रत्नगढ़ पधारे। वहीं वर्षावास अस्वस्थ अवस्था में बीता। चर्तुमास समाप्त कर आप सरदार शहर पधारे। महापर्व महोत्सव आनंद से बीता। संवत् १९४६ की चैत्र कृष्णा को समाधि मरण से आप देवलोक पधारे।

षष्ठ आचार्य श्री माणकगणि जी :

आप का जन्म संवत् १९१२ की भाद्र कृष्णा को जयपुर के जोहरी परिवार में श्री हुक्मचंद जी खारड व माता छोटा जी के यहां हुआ। वचपन में माता-पिता का स्वर्गवास होने के कारण इनका पालन पोषण लाला लक्ष्मण दास ने किया। लाला जी र्नेही धर्म निष्ठ और विशाल हृदय के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
स्वामी थे। आप श्री वचपन से ही विनित व सरल स्वभाव के थे।

संवत् १९२५ में आप ने १६ वर्ष की आयु में श्री जयाचार्य की शरण जयपुर में ग्रहण की थी। वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे। गुरु ने शिष्य को हर दृष्टि से परखा। संवत् १९२८ फाल्गुण शुक्ल ११ को लाडनु में आचार्य श्री से साधू जीवन ग्रहण किया।

फिर सेवा, स्वाध्याय व तप में लग गए। संस्कृत, ग्रंथों का विधिवत् अध्ययन किया। आप महान आत्मा थे। आप ने जन सामान्य से १९३८ को तेरापंथ शाषण की डोर संभाली। आप ने आम आदमी से लेकर राजा तक के लोगों को अपने उपदेशों से प्रभावित किया।

विधिवत् रूप से संवत् १९४९ को चेत्र कृष्ण ८ को आप का आचार्य पद महोत्सव मनाया गया। इनका आचार्य काल मात्र ५ वर्ष का ही रहा। संवत् १९५४ में उनका अंतिम चतुर्मास सुजानगढ़ में हुआ। मात्र ४२ वर्ष की अवस्था में आप अपनी साधना पूर्ण कर देवलोक पधारे।

सप्तम आचार्य श्री डालगणि जी म० :

तेरापंथ सम्प्रदाय के अष्टम आचार्य श्री डालगणि का जन्म संवत् १९०९ को आषाढ़ शुक्ला ४ को उज्जैनी नगरी में सेठ कनीराम जी व माता जडावा जी के यहां हुआ। वचपन में पिता का साया सिर से उठ गया। यह घटना उनके वैराग्य का कारण बनी। मां ने अपने बेटे का पालन शान शौकत व धर्मिक संस्कारों से किया।

मात्र ११ वर्ष की अवस्था में उनके मन में वैराग्य उमड़ पड़ा। संसार असार दिखाई देने लगा। पर माता का वैराग्य इन से कम न था। इसी कारण ३ वर्ष पहले माता जी ने साध्वी भोमा जी से दीक्षा अंगीकार की। यह बात संवत्

१६२० की आषाढ़ शुक्ला १३ की है।

माता का प्रभाव पुत्र पर पड़ता है। बालक को वैराग्य के मार्ग पर बढना सरल हो गया। समस्त परिजनों व वैभव को छोड़ उन्होंने संवत् १६२३ की भाद्रपद कृष्णा १२ को संयम अंगीकार किया। आप की बुद्धि बहुत तीव्र थी ४ वर्ष तक वह जयाचार्य के सानिध्य में ज्ञान अर्जित करते रहे। वह शास्त्र मर्मज्ञ हो गये। उन्हें कई आगम कण्ठस्थ थे। संस्कृत व राजस्थानी के अनेको श्लोक को कण्ठस्थ किया। वह महान वक्ता बने। इन्हीं योग्यताओं के कारण संवत् १६३० को वह अग्रणी बनाए गए। आप का समय धर्म चर्चाओं का युग था। इन चर्चाओं का आप ने समभाव से सामना किया।

आप ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, कच्छ, गुजरात व सौराष्ट्र के गांव गांव जाकर धर्म प्रचार किया। आप अपनी परम्परा के रक्षक आचार्य थे। आप ने अनेकों लोगों को संयम के मार्ग पर लगाया। संवत् १६५४ माघ कृष्णा १२ को आन श्री को आचार्य पद प्रदान किया गया। आप महान आचार्य थे। इस प्रकार लोगों के जीवन का निर्माण करते हुए अपने चरण कमल से धरती को पवित्र करते हुए आप लाडनू पधारे। जहां आप के दो चतुर्मास हुए। संवत् १६६६ की भाद्रपद शुक्ला १२ को आप का देवलोक हुआ।

अष्टम आचार्य श्री कालुगणी जी :

आप का जन्म संवत् १६३३ की फाल्गुण शुक्ला २ को वीकानेर राज्य के जालछापर गांव के कोठारी परिवार में हुआ। पिता का नाम श्री मूलचंद व माता का नाम छोंगा जी था। आप अकेली संतान थे। आप का शरीर बहुत सुंदर था। अल्पायु में पिता का ताय़ा सिर से उठ गया। पूर्व जन्म

आस्था की ओर बढ़ते कट्य
के पुण्य के संस्कार थे कि मात्र १२ वर्ष की आयु में आप ने आपकी मौसी की लड़की व माता ने आचार्य मधवागणी के चरणों में संयम अंगीकार किया। यह घटना संवत् १६४४ के आश्विन शुक्ला ३ की है।

जन्म के समय ज्योतिष्यों ने सुन्दर भविष्यवाणी की थी और इनके दादा को इनके सुन्दर भविष्य के बारे में बताया था। लगभग १२ वर्ष तक आप कठोर अनुशासन में शिक्षा ग्रहण करते रहे। आप गुरु आज्ञा को भगवत् आज्ञा मानने वाले थे।

मुनि कालुगणि जी संवत् १६६६ की भाद्रपद शुक्ला १२ को आचार्य डालगणि के स्वर्ग सिधारते ही इस परम्परा के अष्टम आचार्य बन गए। आप की इच्छा आचार्य पद की प्राप्ति नहीं थी वह तो संयम को श्रेष्ठ मानते थे। पर श्री संघ की आज्ञा को शिरोधार्य कर आप ने इस पद को स्वीकार किया।

आप ने आचार्य बनते ही तेरापंथ संघ में संस्कृत की पढ़ाई की। मुनियों व साध्वियों को भी अग्रसर किया। पं. घनश्याम जैसे ब्राह्मण को तैयार किया, ताकि वह जघन मुनियों को व्याकरण पढ़ाएं। आप ने प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य पंडित रघुनन्दन की सहायता से दो महान ग्रंथ भिक्षु शब्दानुशासन और कालूकोमदी की रचना अपने शिष्य मुनि चोथ मल्ल से करवाई। आप ने अनेकों प्राचीन श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन, तुलनात्मक दृष्टि से स्वयं किया। दूसरे मुनियों व साध्वियों को भी करवाया। आप ने अनेकों विदेशी विदवानों को भी प्रभावित किया।

राजस्थान राज्य के विभिन्न नरेशों व दरबारों में आप के ज्ञान की चर्चा थी। यह नरेश सहज रूप से आप

से प्रभावित थे। आप ने पुराने व नए क्षेत्रों में धर्म प्रचार किया। अधिकांश पुराने साधु साध्वी आप द्वारा दीक्षित हैं। तेरापंथ संघ में अच्छी बढ़ोतरी हुई। आप ने सभी विरोधों को हंस कर सहा।

आप गुणों का भण्डार थे। आगम मर्मज्ञ थे। आप ने दीक्षा संवंधी कानून के बारे में तत्कालीन समाज सरकार को विश्वास में लिया। आप के शिष्य शिष्याओं की संख्या और उनका अर्जित ज्ञान, दोनों ही आप की महानता को दर्शाते हैं।

नवम आचार्य तुलसी जी व वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ जी आप के गुण गाते नहीं थकते थे। वह अपनी सारी उपलब्धियों का श्रेय आप को देते हैं। आप का यश तेरामंथ का ही नहीं समस्त जैन धर्म का यश है; जो सर्वत्र व्यापत है। आप का स्वर्गवास ६० वर्ष की आयु में संवत् १८८३ को भाद्रपद शुक्ला ६ को हुआ।

नवम आचार्य, युग प्रधान, गणधिपति आचार्य श्री तुलसी जी :

जैन धर्म में तेरापंथ सम्प्रदाय को अपनी अलग पहचान दिलाने वाले अंतर्राष्ट्रीय संत आचार्य श्री तुलसी जी का जन्म २० अक्टूबर १८१४ को लाडनू के एक संपन्न जैन परिवार में हुआ। सारा परिवार धार्मिक था। माता पिता भाई वहन सभी धर्म के प्रति समर्पित थे। उन्हें घर में दीक्षा के योग्य वातावरण सहज रूप में प्राप्त हुआ। पिता के स्वर्गवास के बाद आप को संसार में विरक्ति हो गई।

घर वालों ने आप की दीक्षा का कुछ विरोध किया पर आप आचार्य कालुगणी जी की शरण में आ गए। वह अल्पायु में ही कवि, आगम मर्मज्ञ, वैयाकरण, दहुभाषा विध वन गए। उन्होंने जैन तेरापंथ धर्म संघ में फैला

पिछड़ापन दूर किया। सारे भारत की उन्होंने २ से ज्यादा यात्राएं की। तेरापंथ सम्प्रदाय में उन्हें वृद्ध साधुओं की सेवा, ममुक्षु केन्द्र की स्थापना, संघ एकजुटता, अणुव्रत अन्दोलन, प्रेक्षा ध्यान व समण समणी वर्ग की स्थापना जैसे स्वर्णिम कार्य किए। इन कार्यों ने इन्हें अंतर्राष्ट्रीय संत व जैन धर्म का प्रभावक आचार्य बना दिया। उन्होंने अपने साधुओं व साध्वियों को ज्ञान, कला व धर्म प्रचार के कार्य में लगाया। अणुव्रत के माध्यम से तेरापंथ साधु-साध्वीयां स्कूल जैल, कालेज व खुले मंच द्वारा नैतिकता का अभियान चलाने लगे। इस अभियान को भारत के हर राष्ट्रीय नेता ने सराहा। यही नहीं उन्होंने समाज की कमजोरी जैन एकता की ओर ध्यान दिया। इस कारण सभी जैन सम्प्रदायों के साधू साध्वीयां इकट्ठे प्रवचन करने लगे। भगवान महावीर के २५०० साला निवेद्य उत्सव पर उन्होंने जैन विश्वभारती लाडनू (विश्वविद्यालय) की स्थापना की। यह विद्यालय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म का प्रमुख शिक्षण संस्थान है। विदेशों में धर्म प्रचार के लिए उन्होंने समण व समणी वर्ग की स्थापना की है। यह वर्ग साधु व गृहस्थ के बीच सेतु का कार्य करता है। इनका आहार, विहार व निहार खुला है। बाकी चर्या साधुओं जैसी है। आप ने ध्यान की विधि प्रेक्षा ध्यान का विकास किया, यह विधि पहले लुप्त हो चुकी थी।

आचार्य तुलसी हिन्दी, राजस्थानी, प्राकृत, व संस्कृत के लेखक थे। उन्होंने आगम वाचना का कार्य सम्पन्न किया। फिर सभी आगम शुद्ध पाठों सहित प्रकाशित किए। उन्होंने तेरापंथ संबंधी फैले कई भ्रमों को दूर किया। माता जी, भाई साहिब, व वहन दीपा ने संयम ग्रहण किया।

ऐसे क्षेत्र जहां जैन धर्म को कोई नहीं जानता था वहां उन्होंने खुले प्रवचन स्वयं किये। साधु साध्वियों को ऐसा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 करने का आदेश दिया। अणुव्रत के कारण भारतीय राजनीतिज्ञ आप से बहुत प्रभावित थे। भारत के उपराष्ट्रपति राधाकृष्णण ने आप को अभिव्रदन ग्रंथ भेंट किया था।

वह अनुशासन प्रिय थे। एक बार अस्वस्थ अवस्था में उन्होंने आचार्य पद का भार मुनि नथ मल्ल जी को दिया। जो स्वयं प्रसिद्ध साहित्यकार, आगमज्ञ, ध्यानस्थ योगी हैं। आप उन्होंने ने स्वेच्छा से आचार्य पद त्याग दिया। ऐसा उदाहरण जैन इतिहास में कम ही मिलता है। उन्होंने धर्म प्रचार के सभी आधुनिक साधनों का उपयोग संयम में करते हुए किया।

आचार्य तुलसी एक महान प्रभावक आचार्य थे। ऐसा आचार्य कभी कभी पैदा होता है। मुझे भी आप के दर्शन कई बार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका विशाल शिष्य परिवार था। उनका धर्म संघ आज्ञाकारी है। उनका अनुशासन कठोर था। उनके राजनेताओं से मधुर संबंध थे। समाचार पत्रों में अपने साक्षात्कारों के कारण समाचार पत्रों में छाए रहते थे।

आप के समय तेरापंथ का व्यापक प्रचार जो पंजाब में हुआ, उनके प्रयत्नों का फल था। उनके शिष्यों ने उनकी आज्ञा को प्रभु की आज्ञा माना। वह आचार्य तुलसी का जीवन बहुआयामी व पूर्ण था। उनका व्यक्ति हर स्थान पर अपनी छाप छोड़ गया है। मुझे अनेकों बार आप से बात करने का सुअवसर मिला है। वह मेरे व मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साहित्यक कार्यों का सम्मान करते थे। उन्होंने श्री उत्तराध्ययन सूत्र के पंजाबी अनुवाद को अपना आशीर्वाद दिया। आपने नेपाल, आसाम, कर्नाटक, तेलंगाना, उड़ीसा, विहार, गुजरात, राजस्थान, जम्मू कश्मीर, आंध्रा, तामिलनाडू, में धर्म ध्वज फहराया। आपने समस्त भारतवर्ष के अतिरिक्त

आस्था की ओर बढ़ते कदम
अपने समण-समणी वर्ग के माध्यम से जैन धर्म को विश्वधर्म बनाया। संवत् १६६७ को आप को स्वर्गवास वांगपुर सिटी में हुआ।

दशम आचार्य महाप्रज्ञ जी :

आप आचार्य श्री तुलसी जी के आज्ञानुव्रती शिष्य हैं। आप सरस्वती पुत्र हैं। आप अपने गुरु के समान सरल, भव्य व्यक्तित्व के धनी, महान साहित्यकार, योगी, प्रेक्षा ध्यान के संस्थापक हैं। सैकड़ों ग्रंथों का निर्माण आपके हाथों से हुआ है। आप जैन धर्म के विश्व स्तरीय विद्वान हैं। आप के बारे में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। आप आचार्य श्री तुलसी जी के साथ साए की तरह रहे। स्वाध्याय, चिंतन, मनन, ध्यान साहित्य, आगमों का तुलनात्मक अध्ययन आप की प्रमुख उपलब्धियां हैं। आप ने अपने गुरु का नाम इस ढंग से रौशन किया कि समझ ही नहीं आता कि कौन से कार्य आचार्य तुलसी ने किये हैं और कौन से कार्य आचार्य महाप्रज्ञ ने। आप महावक्ता, तपस्वी, अनुशासन प्रिय हैं। सब से बड़ी बात है आप का अपने गुरु के प्रति प्रेम। आप बहुभाषा विद्वान, आगम मर्मज्ञ, इतिहासकार, सर्व धर्मों के जानकार हैं। आप दृढ़ अवस्था में भी तरुण जैसी स्फूर्ति के स्वामी हैं। समाज को आप से बहुत अपेक्षाएं हैं। आप भविष्य दृष्टा, संघ के कार्यो के प्रति जागरूक हैं। इसी जागरूकता का प्रमाण है उनका उतराधिकारी का चयन। उन्होंने आचार्य पद संभालते ही जहां आचार्य तुलसी जी की क्रान्ति को आगे बढ़ाते हुए बहुत से संस्थान मानव जाति को प्रदान किए वहां शिक्षा, सेवा, ध्यान शिविरों का क्रम शुरू किया। आप यात्रा कर सारे भारत का भ्रमण करते रहे हैं।

मैंने अपनी बात शुरू करने से पहले तैरापंथ का परिचय इस लिए दिया, ताकि मैं बता सकूं कि मुझे सम्यक्त्व

के वीज जैन धर्म परम्परा के गुरु ने प्रदान किये। उस जमाने में अणुव्रत अंदोलन चरम सीमा पर था। जन साधारण बिना टीका टिप्पणी से उस से जुड़ जाते थे। तेरापंथ सम्प्रदाय पंजाब में इसी शताब्दी में आया। पंजाब व हरियाणा के अग्रवालों ने संत व साध्वियों में धर्म प्रचार शुरू किया। इन संतों के व्याख्यान खुले होते थे। इन खुले व्याख्यानों का स्थान, समय निश्चित था। स्वयं १६४६ में आचार्य तुलसी प्रथम बार पंजाब पधारे। साधु साध्वी त्यागी थे। उनकी बात लोगों को सरलता से जंचने लगी। वह अणुव्रत का संदेश लेकर पंजाब पधारे थे। उनके उपदेशों को सभी वर्णों, जातियों, धर्मों के लिए सांझे थे। वह तीन तीन समय व्याख्यान करते। पंजाब की व्यापारिक मंडीयों में उनका व्यापक असर था। वह जन उपयोगी उपदेश देते थे। हजारों साधु साध्वी, उनका अणुव्रत का संदेश भारत के कोने कोने में धर्म प्रचार कर रहे थे।

इन साधुओं में से तीन साधुओं का गुप हमारे धूरी में भी ठहरा। उनके नाम थे श्री रावत मल्ल, श्री वर्धमान जी व श्री जय चन्द। तीनों ने मेरे परिवार व मुझे प्रभावित किया। मुझे इन्हें सुनने का सब से ज्यादा अवसर मिला। इनका चतुर्मास था हम चतुर्मास तीन समय जाते थे। इनका व्याख्यान सुनते। मेरे माता पिता इनके उपदेश अनुसार धर्म अराधना करते। हमने इन्हीं से गुरु धारणा ली और सम्यक्त्व के पाठ को सीखा। तीनों में सबसे बड़े थे मुनि रावत मल्ल जी और सबसे छोटे थे मुनि वर्धमान जी।

तीनों नुनिराज महान तपस्वी, तत्त्ववेत्ता, देव, गुरु व धर्म के प्रति समर्पण बढाने वाले थे। वह आचार्य तुलसी के अणुव्रत के माध्यम से जैन धर्म का प्रचार करते थे। अब श्री रावत मुनि जी व श्री वर्धमान मुनि जी का देव

आस्था की ओर बढ़ते कदम
लोक हो गया है। इन्होंने धर्म शिविरों के माध्यम से जैन साधुओं के नियम, जैन साधुओं के भोजन की विधि, वन्दना विधि को सिखाया“ ताकि भविष्य में आने वाले साधु साध्वियों को दिक्कत न आए। इसी समय हमें अणुव्रत परीक्षा व जैन धर्म की परिक्षाओं की तैयारी करवाई जाती। यह शिविर चारित्र निर्माण का आदर्श केन्द्र थे। बच्चे शिविरों के माध्यम से काफी सीखते। यह शिक्षा शिविर मैने तरूणाई की अवस्था में लगाए। इन संतों में श्री जयचंद जी महाराज आज भी गुजरात में धर्म प्रचार कर रहे हैं। यही तीन संतों ने हमें आचार्य तुलसी व जैन धर्म के बारे में समझाया था। इसके साथ उन्होंने मुझे जैन तत्वों व इतिहास का ज्ञान कराया।

प्रकरण ३

तीर्थंकर परमात्मा का स्वरूप

यह बातें सन् १९६८ के वर्ष की हैं यह मेरे जीवन के नवनिर्माण का वर्ष था। मेरा शुभ कर्म का उदय हो चुका था। मुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति वीतराग परमात्मा का स्वरूप समझाया गया। जैन धर्म में परमात्मा एक अवस्था का नाम है जैन धर्म जब आत्मा जन्म मरण से मुक्त होने की अवस्था में आती है तो सर्वप्रथम कर्म बंध के बंधन को तोड़ कर केवल्य ज्ञान, केवल्य दर्शन को प्राप्त करती है। ऐसी आत्मा तीन लोक में त्रिपंच व देव पुजित होती है। जीव व आजीव तत्त्व की व्याख्या करती है। इस अवस्था को साकार परमात्मा या अरिहंत कहते हैं। अर्हत में जो तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करते हैं वह जन्म से तीन ज्ञान के धारक होते हैं। दीक्षा लेते उन्हें चौथा ज्ञान मन पर्यव ज्ञान प्राप्त होता है। फिर पांचवा केवल्य ज्ञान प्राप्त कर वह तीर्थ की स्थापना करते हैं। ऐसी आत्माएं देवों द्वारा पूजित, अष्ट प्रतिहार्य व ३४ अतिशय युक्त मानी जाती हैं। स्वर्ग के ६४ इन्द्र उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल्य ज्ञान व मोक्ष के समय धरती पर अपने देव परिवार सहित उतरते हैं। इन की धर्म सभा को समोसरण कहते हैं। इन के शरीर विशेष लक्षणों से युक्त होते हैं। यह क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर धर्म रूपी चार तीर्थ की स्थापना करते हैं। यह तीर्थ हैं साधु, साध्वी, श्राविक व श्राविका। इसी तरह के २४ तीर्थंकर इस भरत खण्ड में अनंत वार जन्म लेते हैं। तीर्थंकर परम्परा महाविदेह क्षेत्र में शास्वत रहती है। वहां २० विहरमान तीर्थंकर भ्रमण करते रहते हैं। जैन धर्म में यह देव का रूप हैं इसी का भाग हैं निराकार परमात्मा जिन्हें जैन परिभाषा में सिद्ध परमात्मा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 कहते हैं। हर अरिहंत अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर सिद्ध
 बनता है। जैन न तो एकेश्वरवाद को मानते हैं न ईश्वर को
 सृष्टि का कर्ता मानता है। कर्म के फल का कर्ता व भोक्ता
 आत्मा को मानता है। जैन दृष्टि में आत्मा गुणों की दृष्टि से
 एक है। संख्या की दृष्टि में जितने जीव हैं उतनी आत्माएं हैं।
 यही आत्मा कर्मबंधन से मुक्त हो सिद्धावस्था को प्राप्त
 करती है। जैन धर्म ईश्वर के अवतारवाद की धारणा नहीं है।
 जैन कर्म प्रधान, श्रमण धर्म है।

गुरु का लक्षण :

जैन धर्म में दूसरा लक्षण गुरु है। गुरु ३६ गुणों
 का स्वामी होता है। वह ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, चार
 काषायों के मुक्त, पांच इन्द्रियों के विषयों पर काबू करने
 वाला होता है। इस गुरु का दूसरा नाम श्रमण, निग्रन्थ है।
 वह अपनी साधना से लोक व परलोक के विषयों को जीत
 कर जन समान्य में धर्म का प्रचार करता है। यह वीतरागी
 गुरु छह प्रकार के जीवों की हिंसा से वनते हैं।

धर्म का स्वरूप :

जैन धर्म का तीसरा तत्व धर्म है। यह धर्म
 मिथ्यात्व रहित सम्यक्त्व है। इस में शोक का कोई स्थान
 नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कथित धर्म ही सच्चा धर्म है।
 धर्म की शरण ग्रहण करने वालों को जरूरी है कि वह सर्वज्ञों
 द्वारा कथित जिन आज्ञा का अक्षरता से पालन करे।
 तीर्थंकरों द्वारा कथित जीव अजीव सिद्धांतों शास्त्रों के
 अनुसार जाने। फिर माने। फिर उन सिद्धांतों के अनुसार
 चले। इस देव गुरु धर्म का स्वरूप ही सम्यक् दर्शन जिसे
 दूसरी भाषा में सम्यक्त्व भी कहते हैं।

सम्यक्त्व का महत्व :

सम्यक्त्व के पालन के लिए आचार्य उमास्वाती ने तत्त्वार्थ सूत्र में तीन रत्न को सम्यक्त्व माना है। वह हैं सम्यक्त्व दर्शन (सही श्रद्धा) कण्यक ज्ञान, सम्यक् चारित्र (सही ढंग से उस पर चलना) इसी लिए उनका कथन है :

“सम्यक्त्व दर्शन ज्ञानचारित्राणी मोक्ष मार्ग”

यह तत्व था जिसे मैंने श्रावक होने के नाते गुरु धारणा के समय स्वीकार किया। सात कुव्यसन का त्याग श्रावक का पहला लक्षण है। जैसे मुनि कहलाना कठिन है वहां श्रावक कहलाना भी सरल नहीं। इन तीनों मुनियों ने मुझे सम्यक्त्व का रत्न प्रदान किया। मुझे गुरु के रूप में आचार्य श्री तुलसी के नाम से गुरु दीक्षा प्रदान की गई। मेरे जीवन में सब नया था। सम्यक्त्व की महिमा जैन धर्म में कितनी है कि इस की परीक्षा की कभी कभी हो जाती है। सम्यक्त्वो धर्म पर दृढ़ रहता है। सब धर्मों का सम्मान करते हुए अपने धर्म का पालन करना उसका लक्षण है, गुण है। श्रावक धर्म का क्षेत्र बहुत विशाल है। इस के लिए बहुत रास्तों से गुजरना पड़ता है। सम्यक्त्व पर मिथ्यात्व कैसे परीक्षा लेता है, इस विषय में एक घटना का उल्लेख करना ही काफी है।

“किसी समय अंवड नाम का सन्यासी, अपने भेष में प्रभु महावीर के दर्शन करने आया। गणधर गौतम इन्द्रभूति ने उस का सम्मान किया। प्रभु महावीर का उपदेश सुनने के बाद वह जब जाने लगा तो प्रभु महावीर एक धर्मलाभ अपनी श्राविका सुलझा के नाम दिया। वह सन्यासी हैरान था कि इस श्राविका में ऐसा कौन सा गुण है कि प्रभु महावीर ने इसे धर्म लाभ प्रेषित किया है। अंवड सन्यासी बहुत सी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी था। वह जैसा रूप या भेष चाहे बदल सकता था अंवड सन्यासी नगर के बाहर आया। उस ने विष्णु का रूप बनाया। चतुर्भुजी विष्णु के रूप को देख नगर वासी उमड़ पड़े। विष्णु बने अंवड ने कहा 'जाओ सुलसा को कहा उस के लिए विष्णु साक्षात्कार से धरती पर आ गए हैं वह मुझे वन्दना कर अपना जीवन धन्य करे।

लोगों की भीड़ सुलसा के घर की ओर उमड़ पड़ी। लोगों ने कहा सुलसा तू धन्य है तेरे कारण हमें भगवान् विष्णु के दर्शन हो गए हैं। तुझे त्रिलोकी नाथ ने याद किया है। तू चल के उनकी भक्ति कर। सुलसा-ने कहा 'ऐसे देव को नहीं मानती। यह तो किसी मायाधारी का कार्य है जो मुझे अपने सम्यक्त्व से गिराने आया है। लोगों ने सुलसा श्राविका का उतर मायाधारी विष्णु को दिया। कुछ समय के बाद अंवड सन्यासी ने ब्रह्मा का रूप बनाया। सही प्रक्रिया दोहराई गई सुलसा का वही उतर था जो विष्णु के संदर्भ में उसने दिया था। अंवड सन्यासी ने सोचा, जरूर सुलसा में ऐसी विशेषता है जिस कारण प्रभु महावीर ने इस धर्म लाभ प्रेषित किया है। यह सामान्य महिला नहीं थी। उस की धर्म के प्रति आस्था देख उस अंवड ने अंतिम तीर छोड़ा। उसने शिव का रूप बनाया। वह सुलसा के दर पर मांगने आया। सुलसा बाहर आई। उसने कहा "तू क्यों लोगों में अपने भ्रम से मिथ्यात्व फैला रहा है। तू न विष्णु है, न ब्रह्मा, न शिव। तीन लोक के अधिनायक देव क्या ऐसे भागते फिरते हैं तू जो दीखता है वह है नहीं। क्यों लोगों को भ्रमा कर पाप का भागी बनता है। मैं प्रभु महावीर की कृपा से देव का स्वरूप जानती हूँ तू धरती का प्राणी है देव नहीं। जो भी दात है प्रत्यक्ष व अभय रूप से कहो। मैं तुम्हारी गलती के लिए तुम्हें क्षमा देती हूँ।

एक तरफ अंबड सन्यासी का चिंतन गहरे में हुआ था। वह सम्यकत्व का स्वरूप तो जानता था। पर सुलसा का सम्यकत्व कितना दोष रहित है। उसे जानने के लिए उस ने यह रूप धारण किया था। अंबड सन्यासी अपने प्रत्यक्ष रूप में आया उसने सुलसा को प्रणाम किया और कहा कि तीर्थंकर प्रभु महावीर ने आप को धर्म लाभ भेजा है।

मैं तो आप के सम्यकत्व की परीक्षा कर रहा था। मुझे इस कृत्य के लिए क्षमा करें। सुलसा ने अंबड को सहधर्मों सा सन्मान दिया। क्योंकि उस के शास्ता का संदेश इसे प्राप्त हुआ था। इस आशीर्वाद के पीछे गहन रहस्य छिपा था। वह रहस्य था सुलसा की धर्म आराधना। इसी आराधना के कारण सुलसा ने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिए पूर्व जन्म में कठोर साधना करनी पड़ती है। अरिहंत बनने के लिए अरिहंत की उपासना करनी पड़ती है। सिद्ध बनने के लिए सिद्धों की उपासना करनी जरूरी है। जीवन में सारभूत है तत्त्व सम्यकत्व, विकास का मार्ग है सम्यकत्व। विनाश का मार्ग है मिथ्यात्व। हमें हर समय मिथ्यात्व के तप से सावधान रहना है।

प्रकरण - ४

धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन से मालेरकोटला में प्रथम भेंट

जीवन घटनाओं का नाम है हर पल, हर क्षण तथ हर समय कुछ न कुछ संसार में घटित होता रहता है। मेरे जीवन में भी एक महत्वपूर्ण घटना ३१ मार्च १९६६ को मालेरकोटला बैंक में घटित हुई। यह घटना किसी पूर्व जन्म के शुभकर्मों का उदय थी। जब मेरी धर्म यात्रा श्री रविन्द्र जैन मेरे जीवन का सहयोगी बन गया। संसार में एक बात ही कठिन है वह है स्वयं के वारे में कुछ कहना या जो अपना हो उनके वारे में कहना। मैं नहीं जानता कि रविन्द्र जैन ने संक्षिप्त मुलाकात में ही मुझे अपना गुरु मान लिया। मैंने भी उसे अपना धर्मभ्राता माना। इसका जीवन एक शब्द में ही पूर्ण हो जाता है वह शब्द है “निस्वार्थ भाव से समर्पण”। पता नहीं इसने मुझ में कौन सा गुण देखा ? यह प्रश्न अब भी अनुत्तरीय है। पर मैंने जैसे पहले कहा ‘रविन्द्र जैन मेरे जीवन का अंश भाग बन चुका है। मुझे इस के परिचय में कुछ शब्दों में लिखता हूँ।

“मालेरकोटला के एक सामान्य जैन परिवार में श्री रविन्द्र जैन का जन्म २३ अक्तुबर १९४६ को (भैय्या दूज) को हुआ। शुरू में दसवीं बड़ी मुश्किल से पास हुई। फिर कृषि उप-निरीक्षक का डिप्लोमा पी.ए.यू. लुधियाना से कर सरकारी नौकरी शुरू की। बहुत अल्पायु में यह नौकरी में आया। फिर नौकरी में ही इसने वी.ए. पंजाबी विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। वी.ए. धर्म शिक्षा की परीक्षा में हम दोनों ने पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला से सम्पन्न की। यह व्यक्ति

मेरे जीवन के हर दुःख सुख को अपना समझता है। मेरा हित इसका हित है। जिस कार्य को शुरू कर देता है उसे पूरा करके छोड़ता है। इस के कारण मुझे जैन समाज की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न सम्प्रदायों के मुनियों से मुलकात, साहित्य प्रकाशन, समारोह, संस्था निर्माण में इस का दिमाग काम करता है। पर यह कार्य मेरे नाम से करता है, अपना नाम छिपाने की चेष्टा करता है। यह त्यागी व संयमी है। यह स्वार्थ के वशीभूत कार्य नहीं करता। हमारा जीवन एक दूसरे के लिए है। इसी लिए विद्वान लोग हमारे प्रेम को सम्मान से देखते हैं। मैं ज्यादा बात को अधिक न बढ़ाता हुआ इस से हुई भेंटवार्ता के अंश प्रस्तुत कर रहा हूं।

“उन दिनों श्री रविन्द्र जैन मालेरकोटला में तर्जिस कर रहा था। किसी काम के लिए यह हमारे बैंक में एक मित्र के साथ आया। यह सूचना के लिए पहले भी आता था। पर मेरा इस से कभी संवाद नहीं हुआ था। श्री रविन्द्र जैन का मित्र, मेरा भी मित्र था। उसे किसी विभागीय सूचना की जरूरत थी। मैंने सूचना के बाद दोनों को चाय पिलाई।

फिर रविन्द्र जैन ने मुझ से मेरा नाम पूछा। नाम पूछने के विशेष कारण था उसे बैंक में उसे सप्ताह सूचना इकट्ठी करके भेजनी होती थी। मैंने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं तेरापंथी हूं। आचार्य श्री तुलसी मेरे गुरु हैं। मैं पुरुषों में जो उत्तम है उनका दास हूं। मेरी इस बात से मेरा धर्मभ्राता बहुत प्रभावित हुआ। फिर मैंने इसे धूरी अपने घर आने का निमंत्रण दिया। यह संक्षिप्त भेंट थी। जो मेरे जीवन पर छाप छोड़ गई। इस भेंट ने हमें जीने की कला का इतिहास सिखाया। धर्म के प्रति स्वाध्याय बढ़ा। फिर इस भेंट ने समर्पण की यात्रा का सफर शुरू किया। इस भेंट में मैंने रविन्द्र जैन को धूरी आने का निमंत्रण दिया। मेरे धर्मभ्राता ने

इत्ने सहर्ष स्वीकार किया। मुझे अनुभव हुआ कि हमारी भेंट अज्ञाधारण है। मैं जिस व्यक्ति से मिल रहा हूं यह संसार की कननाओं, वासनाओं, इच्छाओं से कोसों दूर है। यह तो जैन धर्म की भव्य आत्मा है। मेरा सौभाग्य है कि मैं इस व्यक्ति से मिल रहा हूं।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। एक दिन यह मुझे मेरे घर के पास मिला। मेरे घर का पता पूछा। मैंने इसे अने को कहा। इसने कहा “अभी शाम हो रही है, फिर कभी जरूर आऊंगा”। फिर एक दिन वह मंगलमय समय आ गया। जब मेरा धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन को किसी सरकारी काम के लिए धूरी आना पड़ा।

मुझे इस ने स्वयं बतलाया कि मुझे एक सूचना इकट्ठी करने के लिए धूरी आना है मैं आप के दर्शन करूंगा। मैंने कहा “क्या बात करते हो ? दो दिन आते जाते रहने ? क्या फायदा ? आप दो दिन काम समाप्त कर के रोजाना मेरे घर आ जाया करें। यह घर आप का ही है”।

मेरी इस बात का मेरे धर्मभ्राता ने शिरोधार्य किया। वह दो रातों मेरे घर पर रुका। यह दिन कुछ गर्मी के थे पर इतनी ज्यादा गर्मी नहीं थी। यह दो दिन हमें एक दूसरे को समझने के लिए अच्छा अवसर मिला। मुझे लगा कि जो व्यक्ति मेरे सामने बैठा है वह मैं ही हूं। मैं और मेरे धर्मभ्राता में मात्र शरीरिक अंतर है। आत्मा की दृष्टि से हम एक हैं। मेरा धर्मभ्राता सत्य के करीब है। यह अनुभव की भूमिका पर जीने वाली जीवात्मा है। मैंने अनुभव किया कि मेरा इस व्यक्ति से कई जन्मों का रिश्ता है। एक जन्म में इतना अनुभव नहीं किया जा सकता। इसका त्याग, वैराग्य, व आध्यात्मिक जीवन ने मेरे जीवन पर अमिट छाप छोड़ दी। यह भेंट इस कारण असाधारण थी कि मैं जैन धर्म के

इस प्रभावक श्रावक से मिल रहा था, जिसे शहर के निवासी सन्मान की दृष्टि से देखते थे। उस दिन से हमारा दैनिक मिलना शुरू हुआ। जब हम मिले थे तब हमारे पास कोई पुस्तक नहीं थी पर यह इस के सहज समर्पण का फल है कि हमारे पास हजारों ग्रंथ हैं। आज मैं जो हूँ, जैसा हूँ इस सब के पीछे मेरे धर्मभ्राता की मेरे प्रति भक्ति व सहज समर्पण के कारण हूँ इस समर्पण की यात्रा ने हमें पंजाबी भाषा के प्रथम जैन लेखक, अनुवादक, इतिहासकार व कहानीकार तक बना दिया। मैं जीवन में अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन की भेंट को महत्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूँ। यह अपनी बात की चेष्टा करता है पर अंतिम रूप से सिर झुका कर मेरा निर्णय मान लेता है। यह कई बार मेरे से चर्चा करता है, जिस से इसके ज्ञान का ही पता चलता है। आज इसने मुझे नई पहचान दी है। मैं एक करवे से राष्ट्रपति भवन तक पहुँचा। इस का श्रेय मेरे माता-पिता, गुरुओं के आशीर्वाद, परिवार के सहयोग के वाद मेरे धर्मभ्राता को ही जाता है। यह रिश्ता देश, काल, जाति, रंग, आयु के भेद से परे है। मेरी हमेशा चेष्टा रही है कि मैं अपने धर्मभ्राता को हर तरह संतुष्ट व प्रसन्न रखूँ। उसे कभी अपनी दूरी का एहसास न होने दूँ। पर संसार के कार्यों में आदमी ऐसा उलझता है कि अपनों को चाहते हुए भी कम ध्यान दे पाता है। इन सब बातों के होते हुए भी मेरे धर्मभ्राता में गुण ही गुण हैं। वह दूसरों के गुणों को अपनाता है। वह किसी को भी एक पल में प्रभावित कर सकता है। वह हर कार्य में मेरी सूरत देखता है। एक बात हम दोनों में समान है वह यह कि धर्म के प्रति आस्था। यही आस्था का ही फल था कि मुझे विभिन्न विद्वानों, मुनिराजों, साध्वियों व आचार्यों के दर्शन करने, उनसे भेंटवार्ता करने, पुस्तकें लिखने की, तीर्थ यात्रा की प्रेरणा मिली।

शुरू से ही मैं स्वाध्यायशील था। परन्तु रविन्द्र जैन ने पहले मुझे पहले प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया। फिर संपादन का कार्य प्रदान किया। उसके बाद मैं भी सरस्वती की आराधना करने लगा। रविन्द्र जैन ने यह सब कार्य अपने बलबूते पर किये। वह व्यर्थ तर्क से दूर रहता है। उसे मेरा अनुशासन पसंद है।

श्री रविन्द्र जैन ने १९७२ में पंजाबी में लिखना शुरू किया। जो अब तक चालू है। महावीर की वाणी का प्रचार करने वाले हम प्रथम अनुवादक बने। इस सारे कार्य का श्रेय व प्रेरिका जिन शासन प्रभाविका, साध्वी रत्ना जैन ज्योति, साध्वी श्री स्वर्ण कांता व उनकी शिष्या सरलात्मा इ साध्वी श्री सुधा को जाता है। साधुओं श्रमण फूल चंद म०, रत्न मुनि जी म० ने हमें आशीर्वाद दिया।

मेरी शादी :

रविन्द्र जैन की मुलाकात के बाद १९७३ में मेरी शादी संगरूर के जैन परिवार की लड़की नीलम जैनसे हुई वह धर्म कार्यों में मेरी सहायता करती है। मेरी पुत्री वन्दना, अनु व पुत्र अरिहंत भी मेरे धर्म कार्यों में बाधक नहीं बने। इस प्रकार घर में रहते हुए मुझे धर्म आराधना का अवसर मिला है।

देहली यात्रा व जैन मुनियों से मिलना :

अपने धर्मभ्राता के मिलने के बाद जीवन में एक अध्यात्मिक सफर शुरू हुआ। जिस के माध्यम से हम जैन धर्म की प्रसिद्ध हस्तियों के सम्पर्क में आये। यह अवसर था १९७२ में देहली की एशिया - ७२ प्रदर्शनी देखने का अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ मैं देहली गया। यह मेरा देहली का प्रथम सफर था। मेरे धर्मभ्राता का दूसरा सफर था। हम

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 साधारण ट्रेन से देहली पहुंचे। पहले स्वः साध्वी महेन्द्र कुमारी के दर्शन किये। वहां फालतु सामान रखा। फिर एशिया - ७२ प्रदर्शनी देखी। उस जमाने में रूस का मण्डप सब से आकर्षित था वहां चांद से लाई गई मिट्टी के कण रखे गए थे। हर देश का अपना मण्डप था, हर प्रदेश का अपना स्थल था। एक स्थल को देखने के लिए बहुत समय चाहिए था, पर हम तो मात्र २-३ दिन में काफी देखना चाहते थे। अपने समय के अनुसार हमने यह प्रदर्शनी देखी। दिन में खाना खाया। शाम को हम आगरा जाने वाली ट्रेन में बैठे। उस समय आगरा में जैन जगत के प्रसिद्ध उपाध्याय श्री अमर मुनि जी विराजमान थे। हम सुबह पहुंचे। जिस स्थान पर हम गए उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के दर्शन न हुए। उन के गुरु वयोवृद्ध आचार्य स्वः श्री पृथ्वीचंद जी म० के दर्शन हुए। वहां स्नान किया। फिर उस पर आए जहां कवि श्री विराजमान थे। कवि जी एक क्रांतिकारी संत थे। वैदिक, बौद्ध व जैन धर्म पर उन का समान अधिकार था। आप ने हिन्दी साहित्य में ९०० से ज्यादा पुस्तकें प्रदान की हैं। वीरआयतन राजतृह आप की देन है। उस समय आप श्री उत्तराध्ययन सूत्र का सम्पादन करवा रहे थे। उनके पास श्री श्री चन्द्र सुराणा आगरा बैठे थे। हमारी उनसे प्रथम मुलाकात थी। इस भेंट में हमने उनकी एक हिन्दी पुस्तक (महावीर सिद्धांत व उपदेश) का पंजाबी अनुवाद करने की आज्ञा मांगी थी। उनका आशीर्वाद अंतिम क्षण तक हमारे साथ रहा। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान की। आगरा में फिर ताज महल देखा। ताज के बाद दयाल बाग देखा। वापसी नथुरा में श्री कृष्ण जन्म भूमि देखी। वापिस शाहदरा में एक रिश्तेदार के यहां रुक कर अगले मुनि आचार्य श्री सुशील कुमार जी के दर्शन किए, जो कि अंतराष्ट्रीय स्तर के संत थे। वाद में

अस्था की ओर बढ़ते कदम

उनके हर कार्यक्रम से हमारा नाम जुड़ गया। यह भेंटों से हमें कुछ करने की प्रेरणा मिली। मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन ने महावीर सिद्धांत व उपदेश पुस्तक का अनुवाद करना शुरू किया। आचार्य सुशील कुमार जी म० की प्रेरणा से हमें २५०० साला महावीर निर्वाण महोत्सव समिति मनाने की प्रेरणा मिली। हम इस कार्य में जी जान से जुट गये। हालांकि उस समय हमारी आयु बहुत कम थी। समाज को भी नहीं समझा था। लेखन कार्य चलता रहा।

जैन आचार्य, अणुव्रत, अणुशास्ता,
युगप्रधान, गणाधिपति

श्री तुलसी गणि जी महाराज के प्रथम दर्शन

पिछले अध्ययनों में मैंने तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य का परिचय देते हुए आचार्य तुलसी का परिचय दिया था। परन्तु १९७३ तक मेरे को उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। जो कार्य जब होना होता है वह तब ही होता है वह मेरी मान्यता है। आचार्य श्री तुलसी जिन्हें मैंने गुरु माना था उनके दर्शन १९७३ तक न कर सका। इसका कोई विशेष कारण नहीं था। वैसे मैं कुछ सफर कम ही करता था। पर कुछ संयोग बना और कुछ मुझे सम्यक्त्व प्रदान करने वाले श्री रावत मुनि, श्री वर्द्धमान मुनि, श्री जय चन्द्र महाराज की सशक्त प्रेरणा थी कि आप गुरुदेव आचार्य श्री तुलसी जी महाराज के दर्शन कीजिए। मेरे लिए यह एक शुभ अवसर था, जब मैं संसार के सब से शक्तिशाली धर्म गुरु से मिल रहा था। मेरे मन में उनके बारे में अथाह श्रद्धा थी। इस यात्रा ने इस श्रद्धा को नया रूप दिया। मुझे कुछ करने का उत्साह बना जिसका परिणाम २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी के रूप में आया।

कारण ऐसा बना कि आचार्य तुलसी जी ने अखिल भारतीय स्तर पर एक मीटिंग २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी कमेटी की एक मीटिंग बुलाई थी। एक तीर से दो निशाने वाला काम हुआ। आचार्य श्री का उस वर्ष का चतुर्मास हिसार के जिंदल भवन में था। हम धूरी से रात्रि को चले। सुवह ही आचार्य श्री के प्रवास स्थल पर पहुंचे। यह मंगलमय समय सुवह का था। जब हम पहुंचे तो विशाल प्रवचन स्थल देखा। यह पंडाल बड़े व्यवस्थित ढंग से बनाया गया था। यात्रीयों का तांत लगा हुआ था। मैं अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ गुरुदेव के दर्शनों को पहुंचा। वहां पहुंचते ही वृंदा-वांसी होने लगी। जैन साधु ऐसे मौसम में ना बाहर निकलते हैं न भोजन करते हैं। वह वर्षा रुकने का इंतजार करते हैं। आचार्य श्री की दिनचर्या शुरू होने वाली थी। वह भी वर्षा रुकने का इंतजार कर रहे थे।

मैं व मेरा धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने आचार्य श्री के चरणों में वन्दन किया। पहचानने में समय नहीं लगा, क्योंकि उने चित्र को हम हमेशा प्रणाम करते हैं। मैंने देखा 'एक श्वेत वस्त्रधारी चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, चेहरे पर दार्शनिकों सी मुस्कुराहट ने मेरा अभिनन्दन किया। अचानक वर्षा में हम कुछ घबरा गए थे। पर उनकी शरण में आते ही सब बात भूल गए। फिर उन्होंने हमारा वन्दन सरलता से स्वीकार करते हुए पहले मुझे संबोधित करने हुए पूछा "भाई ! आपका नाम क्या है ? आप कहां से आए हो ? क्या काम करते हो ?, यह सीधे सादे प्रश्न थे। हर प्रश्न में उनकी महानता झलक रही थी। मैं सोचने लगा कि कहां लाखों लोगों द्वारा वन्दनीय आचार्य और कहां हम दुनियावी लोग। उनकी महानता उनकी विनम्रता व शालीनता सराहनीय थी। मैंने कहा "गुरुदेव ! मैं धूरी से आया हूं। मेरा नाम पुरुषोत्तम

दास है। मैं नौकरी करता हूँ।”

गुरुदेव ने कहा, “तुम पुरुषोत्तम दास हो, पुरुषोत्तम जैन क्यों नहीं ?” मेरी इच्छा है कि आप पुरुषोत्तम जैन कहलाओ। जिन का उपासक ही जैन कहलाता है।” यह उनका इशारा था और मेरे सुनहरे भविष्य की ओर, जिस की कल्पना मैं किया करता था। मैंने आज्ञा मानते हुए कहा, “आज से मैं आप का पुरुषोत्तम जैन हूँ। आप की आज्ञा भगवत् आज्ञा है।” जैन धर्म में आचार्य से बढ़ कर कोई पद नहीं। उस की आज्ञा सर्वमान्य होती है। आचार्य बहुत मध्यम कद व आकर्षण प्रतिभा के धनी थे। वह अपनी एक बात से ही लोगों का जीवन बदल देते थे। अणुव्रत के माध्य से लाखों लोगों को नैतिकता व प्रमाणिकता का पाठ पढ़ा चुके थे।

इसी भेंट में आचार्य श्री ने हमें स्वाध्याय की प्रेरणा दी। मुझे ध्यान है जब रविन्द्र ने एक प्रश्न आचार्य से उनकी परम्परा के बारे में पूछा था। वह प्रश्न शास्त्रीय आधार का था। श्री रविन्द्र जैन ने पूछा, “आप के सम्प्रदाय में आचार्य तो हैं पर उपाध्याय जैसा पद क्यों नहीं है ?”

आचार्य भगवान् ने उत्तर दिया, “ भाई ! हमारे प्रथम आचार्य भिक्षु बहुत नवान थे। उन्होंने साधू-साध्वियों को पद के लिए लड़ते झगड़ते देखा था। उन्होंने सभी पद आचार्य पद में इकट्ठे कर दिये। क्योंकि आचार्य पद से सब पद छोटे होते हैं। तब से अब तक हमारे सम्प्रदाय में आचार्य के सिवा कोई पद नहीं। वही हमारे संघ में अनुशासन का मुख्य कारण है। हमारे संघ में सभी साधु-साधवियाँ एक आचार्य के शिष्य होते हैं।”

इस तरह आचार्य श्री से थोड़ी सी मुलाकात जीवन की पूंजी बन गई। सब से बड़ी बात जो उन्होंने अपनी भेंट वार्ता में प्रेरणा स्वरूप रही, वह थी, “देखो

अस्था की ओर बढ़ते कटन
 संसार में कुछ न कुछ प्रमाणिक कार्य करना चाहिए। मेरी दृष्टि में सब से महान लेखक होता है जो कभी नहीं मरता। वक्ता समय के साथ बीत जाता है। मेरी दृष्टि में लेखक संसार में अजर अमर है। समय भी लेखक को न कभी मिटा सका है न मिटा सकता है।”

यह स्वर्णिम वाक्य मेरे जीवन में क्रान्तिकारी वाक्य थे जिन्हें मैं किसी ग्रंथ से कम की संज्ञा नहीं देता। आचार्य तुलसी के वह वाक्य हमें साहित्य की रचना का प्रेरणा स्रोत हैं। संसार में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो आत्मा पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। आचार्य तुलसी से भेंटवार्ता मेरे जीवन में अमूल्य निधि है। जहां उन्होंने हमें साहित्य लिखने का आशीर्वाद दिया, वहां उन्होंने इस मीटिंग में बुला कर समाजिक कार्य करने का सौभाग्य प्रदान किया।

दोपहर को अखिल भारतीय श्री श्वेतान्वर तेरापंथी जैन महासभा कलकत्ता की मीटिंग आचार्य श्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। जिस में आचार्य श्री ने समस्त तेरापंथियों को दूसरे सम्प्रदायों से मिल कर, हर राज्य में समिति गठित करने की प्रेरणा दी। उनका दूसरा रूप हमें मीटिंग में देखने को मिला, जब उन्होंने जैन एकता की बात को ध्यान में रखकर २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी मनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने इस बात का प्रमाण स्वयं दिया, जब उन्होंने देहली के अणुव्रत भवन को २५००वां महावीर निर्वाण शताब्दी समिति का कार्यालय बना दिया। आचार्य श्री ने २५००वां महावीर शताब्दी पर जैन समाज को एक अद्भुत तोहफा “जैन विश्वभारती लाइन” के नाम से दिया। समस्त भारत में यही एक मात्र सर्वमान्य सम्प्रदाय संस्थान है जिसे यू.जी.सी. ने विश्वविद्यालय का दर्जा दिया है। अब इस विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. तक जैन धर्म,

प्रेक्षा, ध्यान, जीवन विज्ञान पर की जा सकती है।

आचार्य श्री तुलसी जी महान राष्ट्र भक्त थे। राष्ट्र के सामने कोई समस्या आई तो उन्होंने सरकार का साथ दिया। सभी राजनैतिक दल आचार्य श्री को जैन धर्म का सर्वमान्य नेता मानती थी। सभी सरकारें उनकी बात अणुव्रत के माध्यम से सुनती थीं। उन्हें अपना महान नेता मानकर उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न करती। उनका जीवन अभय का जीता जागता प्रमाण है। वह कितने कष्ट, पीड़ा आए, डरे नहीं। मुझे इस के बाद भारत के विभिन्न भागों में उनके दर्शन करने का लाभ सपरिवार मिला। अंतिम समय उनके मृत्यु अवसर पर सारा संसार इकट्ठा हुआ। आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से अणुव्रत अवाडं स्थापित हुआ। मेरे जीवन में हर समय उनका आशीर्वाद रहा। ऐसा धर्म गुरु परम दुर्लभ है। वह मेरी आस्था का आधार थे।

आचार्य तुलसी भारत की कुछ मानी हुई हस्तियों में से एक थे। उन्होंने अपने जीवन में हिन्दी, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत भाषा में बहुत साहित्य रचा। जैन आगम वाचने के वह प्रमुख थे। भारत के पूर्व राष्ट्रपति व प्रसिद्ध विद्वान सर्वपल्ली डा० राधा कृष्ण ने उन्हें भारत की कुछ हस्तियों में से एक गिना, जिन से वह प्रभावित थे। भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने उन्हें भारत ज्योति पद से अलंकृत किया।

आप से पहले तेरापंथ¹ सम्प्रदाय एक पिछड़ा सम्प्रदाय था। विद्या का अभाव था। आचार्य श्री आगमों के मर्मज्ञ की एक श्रेणी खड़ी की। व्याकरण, कोष जैन विश्वकोश पर कार्य, शुरू हुआ जैन शोध को बढ़ावा देने के लिए जैन विद्या पर सम्मेलन होने लगे। इस सम्मेलनों में देशों विदेशों के विद्वानों के अतिरिक्त उनके शिष्य भी भाग लेते थे।

इतने बड़े संघ के नेता होने के बावजूद वह आम लोगों के गुरु थे। गुरु जो भी ऐसे जो जात पात, छुआ-छूत, रंग, नस्ल, लिंग आदि के भेदों से दूर अपनी साधना में रत रहते थे। जब उन्होंने आचार्य पद त्यागा तो जैन इतिहास में इसे आश्चर्यजनक घटना माना गया। क्योंकि जैन परम्परा के अनुसार आचार्य सारी आयु भर रहता है। आचार्य श्री को जब यह पद साधना में रूकावट बनने लगा, तो उन्होंने इस पद को एक झटके से छोड़ दिया। वह अल्पायु में संयम लेकर शीर्ष ही आचार्य पद से विभूषित हुए। वह परम साधक थे। उन्होंने स्वयं संयम पाला। हजारों साधु, साध्वीयों, समण, समणीयों को जैन धर्म में दीक्षित किया। उन्होंने हमारे जैसे हजारों परिवारों पर आशीर्वाद से मंगलमय उपकार किया।

आधुनिक संसार की समस्याओं के प्रति वह बहुत जागरूक थे। वह अणुबम का मुकाबला अणुव्रत से करने में विश्वास रखते थे। आचार्य तुलसी जी का स्वभाव वच्चों में वच्चों जैसा था। वह धर्म रक्षक थे। बड़ी-२ विपत्तियां उनके जीवन में आईं, दूसरों धर्मों के विरोध को उन्होंने हंस कर सहा। उनका सारा जीवन मानवता को समर्पित था। वह कहते थे :- “मैं पहले मानव हूं, फिर जैन हूं, फिर तेरापंथ सम्प्रदाय का आचार्य हूं। यही मेरा परिचय है।” लाखों लोगों को व्यसन मुक्त कर, उन्हें अहिंसा, सत्य, विनय, सरलता, सहनशीलता का उपदेश दिया। मैं आज जो भी बातें इस पाठ में लिख रहा हूं सब अनुभव जन्य हैं। मुझे वैदिक दर्शन का वह श्लोक याद आता है। :

“गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देव महेश्वर हैं,
गुरु साक्षात् परमेश्वर हैं, ऐसे साक्षात् परमेश्वर को मेरी
कोटिशः वन्दना।”

प्रकरण ५

संस्थाओं का निर्माण

२५००वीं महावीर निर्वाण शताब्दी की

भारत सरकार द्वारा घोषणा

राष्ट्रीय समिति की स्थापना :

आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री सुशील मुनि जी, उपाध्याय श्री अमर मुनि जी, साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के आशीर्वाद से हम संस्थाओं के निर्माण की ओर आगे बढ़े। इन कार्यों में प्रमुख कार्य था भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए चारों सम्प्रदायों की कमेटी का निर्माण करना। अब हमारे लिए प्रमुख समस्या थी जैन धर्म में से हमारा कम परिचय। छोटी आयु होने के कारण हमें कोई जानकारी नहीं थी। जैन धर्म सदियों से विभिन्न सम्प्रदायों में बँट रहा है। कभी श्वेताम्बर, कभी दिगम्बर, कभी स्थानकवादी कभी तेरहपंथी। सभी सम्प्रदायों की मान्यता भिन्न भिन्न है। पर सिद्धांतों की दृष्टि से जैन धर्म में एकता है। इस एकता का आधार अनेकांतवाद का सिद्धांत है। भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण शताब्दी समिति में जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों, मुनियों के नेतृत्व में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक समिति गठित की। राष्ट्रपति इस के सरप्रस्त बने। समिति की पहली मीटिंग में ५० लाख रूपए अखिल भारतीय स्तर के समारोह पर खर्चने की घोषणा की गई। समिति ने राज्यस्तरीय समिति गठित करने का फैसला लिया गया। इसी दृष्टि से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने राज्य सरकारों को समितियां गठित करने को लिखा। कई राज्य सरकारों ने

आस्था की ओर बढ़ते कदम
समितियां बना कर कार्य शुरू कर दिया।

राज्य स्तरीय २५००वीं महावीर निर्वाण शताब्दी समिति की स्थापना

पंजाब में जैन समाज बहुत धीमी गति से चल रहा था। वहां कोई समिति स्थापित नहीं हुई थी। यह महज इतिहास था कि हमें प्रवर्तक श्री फूलचंद जी महाराज के माध्यम से लुधियाना श्री संघ से मिलने का अवसर मिला। पूज्य श्री रत्न मुनि जी व श्री त्रिलोक मुनि जी से मिलन हुआ। समिति के बारे में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रमुख से बातचीत की। पर जैन समाज इकट्ठा होने का नाम न लेता था। सभी अपने सम्प्रदायों के दायरे से बंधे हुए थे। कोई सम्प्रदाय भी स्वयं को कम नहीं समझता था। हम समाज के लिए विल्कुल नए थे। हमारी आयु के आधार पर हमारे अनुभव का अंदाजा लगाते थे।

एक दिन मैंने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन से कहा “आप एक ऐसा प्रोग्राम बनाओ जिस से कोई छोटी सी समिति का गठन हो सके।” श्री रविन्द्र जैन ने मुझे इस समिति का संयोजक घोषित किया। वह स्वयं कार्यकारिणी सचिव बने। हमने एक विज्ञापन ‘आत्म रश्मि’ मासिक लुधियाना में दिया, जिस में मालेरकोटला की कुन्दनलाल जैन धर्मशाला में एक मीटिंग के लिए समस्त समाज के अग्रणी नेताओं को पधारने की प्रार्थना की गई थी। हमने एक सप्ताह का समय भी दिया था। साथ में स्थापित समिति की रूप रेखा व उद्देश्य का वर्णन था। हमारे इस विज्ञापन पर जैन समाज में कुछ हलचल हुई। लुधियाना जो चार सम्प्रदायों के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 राज्य स्तरीय संगठनों को मुख्यालय था, उन में से कुछ ने हम से पत्र व्यवहार किया। पर हमारा दुर्भाग्य था कि हम जैन एकता की बात करते थे वह समाज के सभी लोग अपनी मान्यता के दायरे में उलझे हुए थे। वह न तो हमारी बात ठीक ढंग से सुनते थे, न समझने को तैयार थे। सभी नेता हमारी बात सुनते। सुनने के पश्चात् एक शब्द में उत्तर दे देते कि मीटिंग करके हम आपको बता देंगे। उनका यह उत्तर हमारे उत्साह को कम न कर पाया। हम समाज के लिए कुछ करना चाहते थे। हमारे लोग ही हमारी बात को ठीक से समझ नहीं पा रहे थे। पर हम काम कर रहे थे। हम ने मीटिंग से पहले समिति का विधान तैयार किया।

इस का एक मात्र कारण यह था कि हम जन्म जात नेता न थे ना ही किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसे में हम इन नेताओं से क्या सहयोग की अपेक्षा कर सकते थे। इन सब बातों के बावजूद हम निरंतर काम करते रहे। हमें प्रवर्तक श्री पद्मचन्द जी महाराज, प्रवर्तक श्री फूलचन्द जी महाराज, श्री रत्न मुनि जी महाराज, साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की प्रेरणा आगे बढ़ा रही थी। वह प्रत्येक कार्य में हमारा हौसला बढ़ा रहे थे। इन्हीं दिनों हमें हमारी धर्म गुरुणी पंजाबी जैन साहित्य की प्रेरिका साध्वी रत्न, उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। श्वेताम्बर समाज के प्रमुख आचार्य समुद्र विजय व श्री जय विजय जी हमारी प्रेरणा का कारण बने। तेरापंथ सम्प्रदाय में साध्वी श्री मोहनकुमारी जी महाराज तारानगर हमारा मार्गदर्शन करते रहे। विचित्र स्थिति थी, सभी साधू, साध्वी अपनी सम्प्रदाय मान्यता को एक तरफ कर जैन एकता की प्रेरणा देते थे पर नेता लोग अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलापते थे। यह विचित्र

अनुभव हमारे लिए मार्ग दर्शक बने।

प्रथम मीटिंग और समिति की स्थापना :

आखिर वह दिन भी आ गया, जिस के लिए हम प्रयत्न करते रहे। भव्य जैन धर्मशाला में जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों के नेता व कार्यकर्ता पधारे थे। सभी का स्वागत मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन ने किया। उनका खान पान की व्यवस्था हमारे जिम्मे थी। समिति में अधिकांश लोग मालेरकोटला, धूरी, संगरूर, लुधियाना व फरीदकोट से पधारे थे। इन सब में प्रमुख श्री तिलकधर शास्त्री सम्पादक 'आत्म रश्मि', एस.एस. जैन सभा का प्रतिनिधित्व करते थे। श्री आत्मानंद जैन सभा की ओर से सेंट श्री भोज राज जैन पधारे थे। तेरापंथी समाज की ओर से श्री सुल्तान सिंह जैन प्रधान तेरापंथी जैन सभा पंजाब, उप प्रधान श्री राम लाल धूरी का नाम उल्लेखनीय है। बहुत संक्षिप्त भाषण हुए। विचार विमर्श ज्यादा हुआ। श्री सुल्तान सिंह जैन ने हमें कुछ पत्र दिए जो कई राज्य सरकारों द्वारा स्थापित समितियों की सूचना थे। सर्वप्रथम इस समिति का नामकरण श्री तिलकधर शास्त्री ने किया। उन्होंने इसे २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब का नाम दिया।

इस का मुख्यालय मेरे धर्मभ्राता के घर मालेरकोटला को रखा गया। फरीदकोट से प्रो० संतकुमार जैन जैसे सज्जन पधारे।

दूसरे प्रस्ताव में सरकारी समिति बनाने के लिए सरकार से पत्र व्यवहार का अधिकार हम दोनों को दिया गया।

तीसरे प्रस्ताव में पंजाबी जैन साहित्य के प्रकाशन अनुवाद व लेखन का कार्य समिति को सौंपा गया। इस के लिए दो सलाहकार नियुक्त किए गए। जिनके नाम थे श्री तिलकधर शास्त्री व डा० एल. एम जोशी रीडर बुद्धईज्म

अस्था की ओर बढ़ते कदम
पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला। समिति का निर्माण इस तरह से किया गया कि इस में चारों सम्प्रदायों को स्थान मिल सके। इसकी रूप रेखा इस प्रकार तय की गई :-

१. प्रधान

२. चारों सम्प्रदायों के प्रधानों से ३ प्रधान बनाए गए।

३. चारों सम्प्रदायों के सचिव को प्रधान सचिव नियुक्त किया गया। श्री रविन्द्र जैन कार्यकारिणी और मुझे संस्था का संयोजक होने को अनुमोदित किया गया।

४. सभी लोगों का विचार था कि समय कम है। इस लिए मीटिंगों में समय बर्बाद न कर के सरकारी समिति के गठन के प्रत्यन किए जाएं।

५. यह प्रस्ताव पारित हुआ कि निर्वाण शताब्दी को अहिंसा वर्ष घोषित करवाया जाए। गली, मुहल्लों, बाजारों, संस्थाओं के नाम भगवान महावीर पर रखे जाएं।

६. केन्द्रीय समिति के हर प्रोग्राम में सहयोग किया जाए।

इस सनिति के प्रमुख फरीदकोट निवासी स्व. प्रोफेसर संत कुमार जैन को बनाया गया। श्री संत कुमार जैन जी के पिता श्री कस्तूरी लाल फरीदकोट के प्रधान थे। यह परिवार धर्म निष्ठ था। इन्हें हमारी मीटिंग में भण्डारी पद्म जन्द जी म. ने भेजा था। जो हमारे कार्य के जीवन भर अनुमोदक रहे। यह कार्यकारिणी की कदर पहचानते थे। उन्हें बहुमान देते थे। आपके शिष्य श्री अमर मुनि जी म. प्रसिद्ध वक्ता, लेखक व टीकाकार, बहुत सी संस्थाओं के संस्थापक हैं। भण्डारी जी के कार्य को उन्होंने उनके स्वर्गवास के बाद आगे बढ़ाया।

भण्डारी जी बहुत सरलात्मा थे। उनका आशीर्वाद, मीठी बोली ने लोगों को प्रेरणा, अनेको संस्थाओं का निर्माण करवाया। उनके जीवन के प्रमुख अंग थे उन्हीं की कृपा से

आस्था की ओर बढ़ते कदम
हमें सेठ भोज राज जैन वटिण्डा व श्री संत कुमार जैन
फरीदकोट मिले।

उन पदों को पाने का समय था। सब से बड़ा पद
खाली था। पर इस की पूर्ति जल्दी ही हो गई कुछ दिनों बाद
मुझे पटियाला जाने का अवसर प्राप्त हुआ स्व. डा एल. एम.
जोशी के आवास पर ठहरे थे। सुबह उन्हें वटिण्डा लेकर के
जाना था। उस दिन आचार्य आत्मा राम जी का जन्म दिन
था। हमें प्रथम श्री जोशी के दर्शनों का लाभ मिला। वैसे मेरा
धर्मभ्राता इन से पूरी तरह परिचित था। वह श्रमण संस्कृति
का महान इतिहासकार थे। उन्होंने पंजाबी यूनिवर्सिटी में जैन
चेयर खुलवाने में अमूल्य सहयोग दिया था। हम दिनों
वटिण्डा में नव निर्मित जैन स्थान में एक दिन पहले
पहुंचे। डा. जोशी और हम तीनों के साथ एक महात्मा और
पधारे थे। उनका नाम था श्री कृष्णाचन्द्राचार्य। सफेद वेशभूषा,
गौर वर्ण, वृद्धावस्था का वह योगी श्री जिनेन्द्र गुरूकुल
पंचकूला के संस्थापक स्वामी धनीराम जी महाराज के शिष्य
थे। दोनों मालेरकोटला आए हुए साधु सम्मेलन में संयम हट
लिए त्यागमूर्ति गुरूकुल में वच्चों को जैन संस्कार दिलाये जा
सके। वह बहुत विद्वान आचार्य थे। उन्होंने श्री पार्श्वनाथ
जैन विद्याश्रम हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी में पढ़ाया था। वह
वहां से प्रकाशित होने वाले “श्रमण पत्रिका” के संपादक थे।
अनकी चर्चा जैन साधु जैसी थी। उन्होंने मुखवस्त्रिका,
रजोहरण का त्याग गुरूकुल के लिए स्व. आचार्य आत्मा राम
जी महाराज की आज्ञा से मालेरकोटला में हुए साधु सम्मेलन
में किया था। इन्हें जंगल में एक भक्त ने विशाल भू-खण्ड
प्रदान किया। वहां पांच कूले (नाले) बहते थे। उन्होंने इस
स्थान को पंचकूला नाम दिया। विशाल आकर्षित सरस्वती
भवन का निर्माण उनकी देन है। ऐसे भव्य आत्मा के दर्शन

और उन्हें सुनने का सौभाग्य मिला। इसी मीटिंग में सेठ भोज राज जैन बटिण्डा को प्रधान घोषित किया गया। सेठ साहिब महान दान दाता थे। यह समारोह आचार्य आत्मा राम जी के जन्म महोत्सव पर किया गया था। भण्डारी जी के शिष्य श्री अमर मुनि जी को सुनने का प्रथम अवसर था।

सरकारी समिति की ओर बढ़ते कदम

हमारी समिति ने निश्चय किया था कि पंजाब सरकार से समिति का गठन कराना हमारा पहला कार्य होगा। यह कार्य काफी कठिन था। हमें सही रास्ते का पता नहीं था। किस से पत्र व्यवहार करना है ? किस से मिलना है, समझ से परे था। यही शताब्दी में भारत सरकार बहुत से महापुरुषों की शताब्दियां मना चुकी थी। भारत सरकार महात्मा बुद्ध की शताब्दी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में मनाई थी। इसी वर्ष समस्त बुद्ध आगमों का हिन्दी लिपिांतर सरकार ने सुलभ करवाया। फिर गुरु गोविन्द सिंह, गुरु नानक, महात्मा गांधी की शताब्दी भारत सरकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाई थी। सारा जैन समाज इसी भावना के साथ कार्य कर रहा था। परन्तु जैन समाज के एक वर्ग ने इस शताब्दी कमेटी को दिल्ली हाई कोर्ट तक ले गया। विपक्षी लोगों ने ३ याचिकाएं इस आधार पर सरकार के खिलाफ डाल दी कि भारत सरकार को महावीर निर्वाण महोत्सव मनाने का कोई अधिकार नहीं। यह देश धर्म निरपेक्ष है। भारत सरकार को न तो समिति गठित करने का अधिकार है न समिति को धन देने का अधिकार है। जैन जिस ढंग से चाहे अपने धर्म का प्रचार करें। अपनी इस जनहित याचिका में उन्होंने गुजरात के जैन आचार्यों को साथ रखा जो प्रधानमंत्री

श्रीमति इंदिरा गांधी के विरोधी थे। इस याचिका ने सारे कार्य पर रोक लगवा दी। अदालत ने याचिका विचारार्थ स्वीकार कर ली थी। अदालत के फैसले से तहलका मच गया। परस्पर फूट सामने आने लगी। पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी जो अदालत में गए थे। अधिकांश जैन समाज तो इस समारोह में सरकार की सहायता चाहता था।

यह वातावरण कुछ समय के लिए चल सका। अधिकांश जैन समाज सरकार के साथ था। सरकार के पक्ष में अदालत ने फैसला सुनाते हुए कहा “धर्म निरपेक्ष का अर्थ यह नहीं कि भारत धर्म विहिन राज्य है। भारत में धर्म निरपेक्षता का अर्थ है सब धर्मों का सम्मान पूर्वक स्थान देना ही धर्म निरपेक्षता है। इस दृष्टि से हर धर्म के महापुरुष का जन्म दिन मनाना सरकार का अधिकार और कर्तव्य है। भारत में धर्म निरपेक्षता का अर्थ इंग्लैण्ड की तरह नहीं।”

यह असत्य पर सत्य की विजय थी। जिस महापुरुष ने संसार को अहिंसा अनेकावाद व अपरिग्रहवाद जैसे सिद्धांत प्रदान किए। स्त्री व शूद्र की दयानीय स्थिति को सुधारा। धर्म संघ में सब को बराबर का स्थान दिया। ब्राह्मण तथा वेद की गुलामी से लोगों को मुक्ति दिलाई सब लोगों को धर्म करने का अधिकार प्रदान कि। जात-पात व अस्पृश्यता को जड़ से उखाड़ फेंका, ऐसे परमात्मा वर्द्धमान महावीर का २५०० साला निर्वाण महोत्सव मनाने में रुकावट डालना, महानिंदनीय कृत्य था। यह वर्ष जैन धर्म का स्वर्णिम युग था।

अब हम पंजाब सरकार से पत्र व्यवहार करने में लग गए। हमारे किसी पत्र का सरकार की ओर से कभी उत्तर न आया। पर जो काम जिस घड़ी में होना होता है तभी होता है। हम प्रयास छोड़ने वाले नहीं थे। हमारे मन में

आया कि क्यों न सभी विधानसभा सदस्यों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाए। मैंने व धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने एक सरकूलर पत्र विधान सभा के सभी सदस्यों को लिखा। जिस में उनसे प्रार्थना की गई थी कि वह सरकारी समिति गठित करने में दबाव डालें। हमने सभी राजनैतिक पार्टियों के सदस्यों का यह पत्र डाला। पर इस पत्र का भी पहले पत्रों जैसा हाल हुआ। जैन समाज में कोई विशेष उत्साह नहीं था। कहने को हम समिति के अधिकारी थे कुछ लोग इस समिति के सदस्य जरूर थे पर चलने वाले हम दो थे। तीसरा तो प्रभु का आशीर्वाद था जो साधु, साध्वियों के माध्यम से हमें मिलता जाता था। भण्डारी श्री पद्म चन्द्र जी महाराज की प्रेरणा से हम पंजाबी विश्वविद्यालय में विद्वानों को जैन साहित्य पहुंचाने लग गए थे। उनको जिन शासन श्री स्वर्ण कांता जी महाराज की प्रेरणा से हम ने पंजाबी में जैन साहित्य की और कदम बढ़ाना शुरू कर दिया। दोनों महापुरुषों ने हमारे इस प्रथम प्रयत्न का सम्मान किया। कुछ समय के पश्चात् पंजाबी जैन साहित्य का कार्य साध्वी स्वर्ण कांता जी ने अपने कुशल हाथों में लिया। जो उन दिनों से लेकर उनके समाधि धारण करने के बाद भी चल रहा है।

बात समिति के गठन की चल रही थी जिस के लिए हम प्रयासरत थे। हमारा प्रचार अपने ढंग से बढ़ रहा था। अभी सारा कार्य धीमी गति से चल रहा था।

सन्मति नगर (कुष्प) में मुख्य मंत्री ज्ञानी जैन सिंह से भेंट व समिति का निर्माण :-

हम पंजाब सरकार से संपर्क का प्रयत्न कर रहे थे। एक दिन सुखद समाचार मिला कि पंजाब के तत्कालिन मुख्यमंत्री ज्ञानी जैन सिंह सन्मति नगर कुष्प पधार रहे हैं।

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 कुष्प गांव हमारे पूजनीय क्रांतिकारी आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज का जन्म स्थान है। आचार्य श्री शास्त्रों के मर्मज्ञ प्रवचन भूषण सरलात्मा हैं। उन्होंने पंजाब, हरियाणा, हिमाचल व जम्मू कश्मीर में संस्थाओं का जाल बिछा दिया है। उन्होंने अपने जन्म स्थान सन्मति नगर में तब हाई स्कूल का निर्माण किया, जब मीलों तक सरकारी स्कूल नहीं था। स्कूलों के अतिरिक्त आप गायन कला में प्रवीण हैं। अनेकों पुस्तकों की रचना आप ने की है। कुष्प में अब संस्थाओं का जाल बिछा दिया है। ग्रामीण जनता तक आप ने भगवान महावीर के संदेशों से जनसाधारण को जोड़ा है। आप ने हजारों लोगों को जैन धर्म में दीक्षित किया। पंजाब की राजनीति में आप की अलग पहचान है। आप का जन्म इसी धरती पर १९२४ में ब्राह्मण श्री देवराज व माता श्री गंगा देवी के यहां हुआ। फिर श्री जगदीश चन्द्र जी महाराज से संयम ग्रहण किया।

इन्हीं आचार्य ने अपने स्कूल के एक समारोह में पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह को निमन्त्रण दिया। इस समारोह में मालेरकोटला की विधायिका श्रीमती साजिदा बेगम भी पधारी थी। हम दोनों ने एक मैमोरेण्डम समिति के लैटर पैड पर तैयार किया। इस मांग पत्र के बारे में पहले हमारी बात आचार्य श्री विमलमुनि जी महाराज से बात हो गई थी। स्टेज पर मुख्य मंत्री ज्ञानी जैल सिंह विराजमान थे। हम ने वहीं मांग पत्र ज्ञानी जी को भेंट किया। ज्ञानी जी ने उसी समय हमारे मांग पत्र को पढ़ना शुरू किया। एक लाल पेंसिल से हमारे पत्र को अंडर लाईन किया। वाद में आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में हमारी मांग पर पूरा जोर दिया। समारोह समाप्त हुआ। ज्ञानी जी से हमारी भेंट अलग से हुई। महाराज श्री ने ज्ञानी जी को शीघ्र कमेटी की स्थापना करने की प्रेरणा दी। ज्ञानी जी ने इस

कार्य में पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

इसी मीटिंग में हमारी समिति का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया। उन्होंने सदस्यता फार्म भरा। हमें कुछ संतुष्टि हुई। तब से राष्ट्रपति बनने तक हमारा ज्ञानी जी से अच्छे संबंध बन गए। राष्ट्रपति पद से हटने के बाद भी उन का स्नेह हमारे साथ बना रहा। ज्ञानी जैल सिंह महान देश भक्त थे। एक गांव के मामूली परिवार में जन्म लेकर वह भारत देश के राष्ट्रपति भवन तक पहुंचे। ज्ञानी जी हमेशा जन साधारण से जुड़े रहे। वह प्रजा मण्डल लहर की देन थे। देश के निर्माण के बारे में सतत चिन्तित रहते।

यही घटना थी जो समिति के निर्माण की प्रथम चरण था। हमें इस मुलाकात को फलीभूत होने में कम समय लगा। शायद एक सप्ताह का समय बीता होगा। हमें मुख्य मंत्री के प्रिंसिपल सचिव श्री एस.पी. वागला का बुलावा आ गया। हमें किसी भी दिन आकर समिति की रूप रेखा तय करने को कहा गया था। यह हमारे लिए परम हर्ष का विषय था। मेरे लिए सचिवालय जाने का प्रथम अनुभव था। हम दोनों बात में कोरे थे। मैंने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन तो ज्यादा घवराते थे। पर अब गेंद हमारे पाले में आ चुकी थी। इसे संभालना था। जैन धर्म की सेवा का अवसर बड़े पुण्य से मिला। समाज में हमारा स्थान बनने जा रहा था। हम कुछ मुनियों व साध्वियों से मिले जिन में प्रमुख मुनि शांति प्रिय जी महाराज थे जो चंडीगढ़ में विराजमान थे। उनका सहयोग हमें मिल रहा था। पर समिति निर्माण में आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज का प्रमुख सहयोग था।

प्रिंसिपल सचिव से भेंट :

आखिर वह दिन आ गया जिस का इंतजार था। मैं कागजों में मामले में थोड़ा सुरत हूं। पर प्रभु की कृपा से

मेरे धर्मभ्राता लिखने व पत्र व्यवहार में कम नहीं है। वह सब बातें एक पत्र में लिख कर ले गए। साथ में भारत सरकार का वह पत्र भी था जो केन्द्रीय शिक्षा उप मंत्री श्री डी.पी. यादव ने सारे भारत को समिति निर्माण के लिए लिखा था। जिस में राज्यों को समिति निर्माण करने के लिए दिशा निर्देश दिए गए थे।

श्री वागला को हम सचिवालय में दोपहर के बाद मिले। स्वागत कक्ष में जाते हुए तलाशी से गुजरने पड़ा। फिर स्वागतकर्ता से सामना हुआ। कर्मचारियों ने फोन से आज्ञा मांगी। जो उन्हें श्री वागला ने दे दी। पंजाब का यह सचिवालय सात मंजिला है। पंजाब में सर्वप्रथम लिफ्ट यहां लगी थी। यह पंजाब के स्वर्गीय मुख्य मंत्री श्री प्रताप सिंह कैरों जी की देन है। वैसे तो सारा चंडीगढ़ ही इस राष्ट्र भक्त की देन है। श्री कैरों विदेशों में पढ़े थे। उन्हें पंजाब व भारत माता से शुरू से ही प्रेम था। वह अनुशासन प्रिय थे। उनका लगाव नेहरू परिवार से था। भाखड़ा नंगल डैम उनकी देन है। वह आधुनिक पंजाब के निर्माता थे। वह पंजाब एकता के प्रबल समर्थक थे। इस विशाल सचिवालय में अब तो तीन सरकारें चल रहीं हैं। पंजाब, हरियाणा व चण्डीगढ़। हम दोनों रिकार्ड सहित सीढ़ियां चढ़ने लगे तो किसी ने राय दी कि लिफ्ट में चढ़ जाओ। एक मिन्ट में पहुंच जाओगे। हम लिफ्ट के माध्यम से शीघ्र पहुंच गए। हम श्री वागला के कार्यालय की ओर बढ़े। उनके चपड़ासी को स्लिप भेजी। वह अपने दफ्तर में हाजिर थे। उन्होंने हमें बुलावा भेजा फिर सम्मान सहित हमारी बात सुनी।

छोटे से दफ्तर में सभी कुछ भव्य था। आखिरकार पंजाब सरकार सारी इसी सचिवालय से संचालित होती है। मंत्रियों, उनके सचिवों के दफ्तर साथ-साथ हैं। उपर से यहां

की सिक्क्योरिटी का पूरा ध्यान रखा जाता है। हम श्री वागला के सामने बैठे थे। किसी उच्चाधिकारी से हमारी प्रथम भेंट थी। उन्होंने हम से पूछा कि पहले ऐसी समिति का कहां निर्माण हुआ है। इस बात को सुन कर सारा रिकार्ड व केन्द्र सरकार का पत्र श्री वागला जी को दिखाया। उन्होंने हमारे से पूछा “आप कैसी संस्था का निर्माण चाहते हो ?”

मैंने कहा “जैसा भारत सरकार का आप को निर्देश है कि यह एक वर्ष प्रभु महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए जैनों के चार सम्प्रदायों को लेकर कमेटी बने। जिस के संरक्षक माननीय राज्यपाल व प्रधान मुख्यमंत्री, विद्वान, लेखक व राजनेताओं को हम से प्रतिनिधित्व दिया जाए।” हमारे कई समिति की राज्यस्तरीय सूची थी जो श्री वागला की प्रस्तुत की गई।

उन्होंने हमारे साथ पांच मिन्ट चर्चा की। फिर उन्होंने कहा “आपका कार्य हो जाएगा। भविष्य में आप श्री दीवान जी से मिल कर सनिति की रूप रेखा व विधान तय कर लेना। मैं श्री दीवान जी को निर्देश दे दूंगा। भविष्य में आप किसी भी कार्य के लिए उनसे मिलना। निश्चित रहो, हमारी पंजाब सरकार किसी राज्य से पीछे नहीं रहेगी।”

यहां एक बात का उल्लेख मैं बार बार करना चाहता हूं कि इस छोटी सी आयु में अपने साधनों द्वारा हमें इतना विशाल कार्य करना था, जो हम ने कैसे किया, कौन सी रूकावटें आईं। सभी का वर्णन आगे करूंगा। पर श्री वागला जी की सज्जनता ने हमें प्रभावित किया। संक्षिप्त सी मुलाकात में हमने बड़ा कार्य कर लिया था।

समिति निर्माण के प्रयास और सफलता :

जैसे मैंने पिछले प्राकरण में बताया था कि हम दोनों ने किस प्रकार भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण

आस्था की ओर बढ़ते कदम
महोत्सव मनाने की समिति की स्थापना मालेरकोटला में की थी। फिर मुख्यमंत्री के सचिव के निमंत्रण पर उन्हीं के प्रिंसीपल सचिव श्री एस. पी. वागला से मिले थे। यह मीटिंग बहुत सफल रही। मैंने पुनः लिखा है कि समिति निर्माण के लिए श्री दीवान जी की ड्यूटी लगा दी थी।

अब हम पुनः सरकारी समिति की रूप रेखा में जुट गए। हमारे २५-३० चक्कर चंडीगढ़ में लगे। हम बार बार श्री दीवान साहिब से सचिवालय में उनसे मिलने लगे। उन्हें हमें भी भरोसा दिलाना पड़ा, कि हम वास्तव में जैन समाज के प्रतिनिधि हैं हमें समिति के बारे में हर फैसला लेने का अधिकार है। एक दिन श्री दीवान जी ने कहा “आप अपनी सूची तैयार कीजिए। सरकारी सदस्यों की सूची मैं तैयार करता हूँ।” कुछ दिन बाद हम दोनों ने एक सूची तैयार की। जिस में श्वेताम्बर-दिगम्बर समाज के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया।

१. प्रधान

२. उप-प्रधान

३. सचिव

यह दोनों सरकार व जैन समाज में बराबर से लेने थे। जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों का किस प्रकार प्रतिनिधित्व हो, उस के बारे में फैसला लेना था। श्वेताम्बर समाज व श्री महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब के सदस्य तो हम बता सकते थे परन्तु दिगम्बर समाज का प्रतिनिधित्व हमें मिल नहीं रहा था।

दिगम्बर समाज से पत्र व्यवहार हुआ। दिगम्बर जैन समाज ने चंडीगढ़ के एक वरिष्ठ वकील का नाम सुझाया। जिस का नाम हम ने सरकार को दिया। दूसरा हम ने अपनी समिति में पंजाब के वरिष्ठ जैन संतों के विशिष्ट

अतिथि रखा जिस में साध्वी श्री मोहनकुमारी 'तारानगर' व उपप्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्णकांता का नाम भी शामिल किया गया। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी ने अपने नाम की मंजूरी दे दी। परन्तु तेरापंथी साध्वी को संस्था में शामिल करने के लिए पत्र व्यवहार आचार्य श्री तुलसी जी से करना पड़ा। अंत आचार्य तुलसी जी महाराज की ओर से हमें आज्ञा पत्र मिल गया। स्थानक वासी मूर्तिपूजक को वरावर स्थान दिया गया। तेरामंथ का तृतीय व दिगम्बर सम्प्रदाय को अंत में स्थान मिला। हमारी समिति क्योंकि समिति की संस्थापक थी उस के द्वारा भेजे समस्त नाम सरकार ने ले लिए गए। हमारे लिए यह गौरव का विषय था।

समिति की स्थापना की सरकारी घोषणा :

आखिर वह घड़ी आ पहुंची। हमारी मेहनत सफल हुई। जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हम ने यह प्रयत्न किया था प्रभु महावीर के आशीर्वाद से इस में सफलता मिल गई। एक राज्यस्तरीय समिति गठित हुई। जिसके संरक्षक माननीय राज्यपाल थे। समिति के प्रधान मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह थे। कार्यकारिणी अध्यक्ष सेठ भोज राज जैन को बनाया गया। प्रधान सचिव शिक्षा मंत्री श्री गुरमेल सिंह बने। कार्यकारिणी मंत्री शिक्षा सचिव बनाए गए। बाकी समिति जैसे और किस प्रकार कार्य करेगी यह प्रथम मीटिंग में तय होगा। यह समिति एक कार्यकारिणी भी बनाएगी। जो निर्वाण शताब्दी के प्रोग्राम तय करेंगे। नोटिफिकेशन की खबर सभी समाचार पत्रों में आ गई थी।

हम दोनों जब नोटिफिकेशन की प्रति लेकर निकले, तब लुधियाना के कुछ सज्जन सरकार से समिति के गठन के बारे में बातें करने गए थे। क्योंकि उनके कुछ मित्रों के नाम शामिल नहीं थे। उन सज्जनों के नाम भी इस कमेटी

अस्थ की ओर बढ़ते कदम
 में शामिल थे पर वह अपने स्तर पर प्रयास कर रहे थे।
 वाद में उन सज्जनों की इच्छा से कुछ और नाम डाल दिए
 गए। समिति का दायरा विस्तृत हो रहा था। जब हम चले थे
 मात्र दो थे। परन्तु अब सैकड़ों कार्यकर्ता जुड़ गए। यह
 हमारे उत्साह को बढ़ाने के लिए काफी था।

प्रथम मीटिंग :

काफी प्रयत्नों व जदो-जहद के बाद समिति की
 मीटिंग बुलाई गई। इस में पंजाब मंत्री मण्डल के सभी मंत्री
 जैन समाज के सदस्य शामिल हुए। इसे मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल
 सिंह ने संबोधन किया। इस मीटिंग में श्री महावीर जैन संघ
 पंजाब का निर्माण हुआ, जिस में मुझे उप-प्रधान चुना गया।
 इस संस्था का दफ्तर लुधियाना जैन धर्मशाला में बना। इस
 मीटिंग के बाद हमें अपनी समिति का कार्य करना था। मैंने
 संयोजक होने के नाते इस समिति का कार्य हाथ में लिया।
 हमारा ध्यान पंजाबी भाषा में जैन साहित्य का लेखन की
 ओर अग्रसर हुआ।

इस प्रथम मीटिंग का कोई खास निर्णय नहीं
 हुआ। पर लुधियाना में हुई मीटिंग में कार्यकारिणी समिति
 बनाई गई। इस मीटिंग में महावीर डायरी, जिला स्तर पर
 स्तूप, चौक व बाजार का निर्माण करने का फैसला किया
 गया। राज्य स्तर का समागम लुधियाना के दरेसी ग्राउंट में
 मनाने का निश्चय हुआ। भगवान महावीर का जीवन चरित्र
 पंजाबी में प्रकाशित करने की जिम्मेवारी भाषा विभाग पंजाब
 को सौंपी गई। पंजाबी विश्वविद्यालय में जैन चेयर के निर्माण
 का फैसला किया गया। भगवान महावीर ने सेवा को परम धर्म
 कहा है। इस दृष्टि से किसी मैडीकल संस्थान का निर्माण
 किया गया। हर जिले में एक समारोह, सरकारी स्तर पर
 मनाने का निश्चय हुआ।

कार्यकारिणी की अगली मीटिंग जालंधर में निश्चित हुई। यह मीटिंग बहुत प्रमुख थी। इस मीटिंग में ज्ञानी जैल सिंह जी ने भगवान महावीर फाउंडेशन नामक अर्ध-सरकारी संस्था का निर्माण किया। इसके अध्यक्ष मुख्यमंत्री स्वयं बने। इस संस्था को पांच लाख रूपए ग्रांट देने की घोषणा की गई। यह १९७४ का वर्ष था, जब लाख रूपए की बहुत कीमत थी। इस ५ लाख का प्रयोग कैसे किया जाए ? इस बात का निर्णय कार्यकारिणी पर छोड़ दिया गया। कार्यकारिणी ने फैसला किया कि लुधियाना में एक भगवान महावीर होम्योपैथिक कालेज की स्थापना की जाए। जिस के लिए पंजाब सरकार जमीन व अन्य साधन उपलब्ध कराएंगी। जैन समाज इस के लिए व्यापक सहयोग करेगा।

सरकार ने अपने निर्णय अनुसार सभी घोषणा को क्रियान्वित कर जैन समाज का मन जीत लिया। इसी वर्ष डायरी छपी। जो भगवान महावीर की शिक्षाओं से भरी हुई थी। यह डायरी सचित्र थी। जो प्रभु महावीर के जन्म से संबंधित घटनाओं को प्रस्तुत करती थी। डायरी पंजाबी, हिन्दी व अंग्रेजी में प्रकाशित हुई। पुस्तक ३ साल बाद प्रकाशित हुई। इसी बीच हिन्दी से पंजाबी में अनुवादित महावीर सिद्धांत और उपदेश प्रकाशित हो गई। इस पुस्तक का सम्मान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ। सारे पंजाब में कमेटीयों को इस समारोह में सहयोग करने के लिए एक अधिसूचना जारी हुई। अधिसूचना में नगर पालिकाओं से हर शहर में भगवान महावीर के नाम से चौक, पार्क व बाजारों का नामकरण करने का आग्रह किया था। पंजाब के हर छोटे बड़े कस्बे में यह कार्य शुरू किए गए। पंजाब के हर शहर में प्रभु महावीर के नाम से बाजार, गली, मुहल्लों का नामकरण हुआ। भारत सरकार ने इस वर्ष को अहिंसा वर्ष

घोषित कर दिया था। जिस में हर तरह के शिकार पर प्रतिबंध लगा दिया। किसी को नया लाईसेंस देने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पुराने लाईसेंस जो शिकार के लिए जारी किए गए थे रद्द कर दिए गए। आज ये प्रतिबंध जो वर्ष के लिए लागू था, हमेशा के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून बन गया। अब तो मांसाहारी देश भी इस कानून का सख्ती से पालन करते हैं। जीव और पर्यावरण की रक्षा को इस से जोड़ा गया।

केन्द्रीय समिति की गतिविधियां

इधर पंजाब की समिति के कार्यक्रम चल रहे थे। उधर दिल्ली की केन्द्रीय समिति के कार्यक्रम चरम सीमा पर पहुंच चुके थे। जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों के आचार्य व मुनि एक मंच पर समारोह करने लगे। संसार के सामने जैन धर्म को अपनी बात प्रस्तुत करने का सुअवसर मिला। जैन धर्म का संसार में सब से प्रचीनतम् धर्म माना जाने लगा। जैन एकता का कार्य २५०० वर्ष बाद होना प्रारम्भ हुआ। लोग जैन धर्म के संस्थापक के रूप में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से परिचित हुए। सब से बड़ी बात जो हुई वह तीन प्रमुख कार्य थे जिस को इस समिति की प्राप्ति कहा जा सकता है। इस के अतिरिक्त हर गांव व नगर में महावीर के नाम से चौकों, स्कूलों व तीर्थों का निर्माण हुआ।

तीन प्रमुख कार्य :

१. जैन ध्वज का निर्माण

चारों सम्प्रदायों के आचार्यों ने एक पंच रंग ध्वज को मान्यता प्रदान की, जो नवकार मंत्र का स्वरूप प्रकट करता था। विशेष बात यह थी कि अरिहंत पद का रंग सफेद मध्य में रखा गया। बीच में स्वास्तिक, सिद्धशिला

को स्थापित किया गया था। सिद्ध शिला के उपर एक विन्दू निराकार परमात्मा का प्रतीक सिद्ध शिला के नीचे तीन विन्दू ज्ञान, दर्शन, चरित्र का प्रतीक है। ऐसे स्वास्तिक का निर्माण प्रभु की प्रतिमा के आगे चावलों से किया जाता है। इसके आगे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु प्रतीक हैं।

२. एक प्रतीक :

इस वर्ष जैन धर्म का एक प्रतीक बना। इस आधार पर जैन शास्त्रों में वर्णित लोक को माना गया। जैन धर्म के अनुसार सारा संसार का आकार चौदह राजु लोक हैं इस के नीचे के भाग में एक नरक है। मध्य में मनुष्य रहते हैं। उपर देवलोक है। जब देव लोक समाप्त हो जाता है तो सिद्ध शिला है। जहां मुक्त आत्माएं विराजती हैं। इसके नीचे उमारवाती का एक सुवाक्य लिख गया जिसका अर्थ है। “जीवन सहयोग पर निर्भर है।

३. एक ग्रंथ :

जैन के दो प्रमुख सम्प्रदायों के अलग ग्रंथ हैं। आचार्य विनोवा भावे जी की प्रेरणा से क्षुल्लक जिनेन्दु वर्णी ने समण सुत सर्व मान्य ग्रन्थ का संकलन दोनों सम्प्रदायों के ग्रंथों से किया। इस ग्रंथ को जैन धर्म में गीता, धम्म पद, जपु जी, का स्थान प्राप्त है। वैसे सभी भारतीय धर्मों में अलग अलग ग्रंथ हैं पर साथ में एक सार भूत ग्रंथ भी है। इसी तरह जैन धर्म का सारभूत ग्रंथ समण सुत है।

जैन धर्म के इतिहास में भगवान महावीर के निर्वाण स्थान पावापुरी जल मन्दिर पर एक टिकट जारी दीवाली १९७५ को भारत के राष्ट्रपति ने जारी किया। यह स्वतन्त्रता के बाद जैन धर्म पर सर्व प्रथम टिकट था। विदेशों में भी इस वर्ष काफी जैन साहित्य प्रकाशित हुआ। जैन विश्वभारती लाडनू में आगम प्रकाशन के शोध स्तर पर कार्य

ग्रन्थ की जोर बढ़ते कदम
जारी हुआ। जैन विश्व कोष का निर्माण इसी वर्ष शुरू हुआ। यह कार्य अब भी जारी है। संसार के हर कोने से हर रोज इस समारोह मनाने का समाचार मिल रहें थे।

भारत में जैन मत के बड़े बड़े स्मारक, वनस्थली, मन्दिरों का निर्माण हो रहा था। देहली में भारत सरकार को भगवान महावीर मैमोरियल १३० एकड़ भूमि पर भगवान महावीर वनस्थली का निर्माण हुआ। भारत सरकार प्रभु महावीर के जन्म दिन का अवकाश सारे देश में स्वीकृत करने की घोषणा की गई। इस सारे समारोह में प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। विहार में राजगृह में उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज ने वीरायतन संस्थान का निर्माण किया। यह केन्द्र सेवा, साधना श्रुतिका प्रमुख केन्द्र है। इस संस्थान के निर्माण में आचार्य साध्वी चन्दना जी का प्रमुख हाथ है। देहली के अन्दर प्राकृत भाषा के प्रचार के लिए प्राकृत भारती की स्थापना की गई इस संस्था के प्रेरक प्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य श्री विद्यानंद जी ने की है। आप आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के शिष्य हैं।

आप की एक शिष्या माता ज्ञान मति ने जैन भूगोल खंगोल का प्रतीक जम्बूदीप का निर्माण हस्तिनापूर में किया जो १० साल में सम्पूर्ण हुआ। इसी तरह हर तीर्थ में कुछ नए म्यूजियम बनाए गए जहां जैन पुरातत्व को संभाला गया। अपभ्रंश संस्कृत आदि भाषाओं के साहित्य को पुनः प्रकाशित करने के कार्य प्रारम्भ हुए। नए मंदिर बने। जैन तीर्थों पर नव निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। धर्मशालाओं का निर्माण हुआ। पुराने तीर्थों का जीर्णोद्धार किया गया। इन तीर्थों पर जीव कल्याण पशुशालाएं, वृद्धाश्रम, बालाश्रम, गुरुकुल, त्यागी निवासों की स्थापना हुई।

दिल्ली में ही साध्वी भृगावती जी ने वल्लभ

स्मारक की स्थापना १०० बीघा भूखण्ड पर की। जिस में स्कूल, समाधि, मंदिर, ध्यान केन्द्र, विशाल पुस्तकालय का हस्तलिखित भण्डार शामिल है। यह भव्य स्थल जैन कला, संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है।

प्रकरण - ६

विदेशों में जैन धर्म : एक

क्रांतिकारी परम्परा का सूत्रपात

भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव पर जैन धर्म ने अहिंसा, अनेकांत, व अपरिग्रहवाद के सिद्धांतों के प्रचार के लिए अंतराष्ट्रीय प्रचार की योजना पर ध्यान केन्द्रीत किया। जैन धर्म का प्रचार प्रसार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव से अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर तक संसार के कोने कोने में होता रहा है। भगवान महावीर के समय ईरान देश के एक राजकुमार आद्रक ने प्रभु महावीर के चरणों में प्रवज्या ग्रहण की थी। भगवान महावीर के समय अरब देशों में जैन धर्म होने का प्रमाण है। स्वयं भगवान महावीर ने अपने दीक्षा काल के बाद तप करते हुए अनायं देशों में जैन धर्म का प्रचार किया था। विदेशों में जैन धर्म के बारे में दिगम्बर परम्परा में तो बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है।

बौद्ध ग्रंथों में एक स्थान पर वर्णन आया है कि लंका के अनुराधापुर में निग्रंथों के विहार का वर्णन है। जब जैन तीर्थंकरों का युग आया था उस समय सफर का साधन पशु द्वारा संचालित वाहन था। भगवान् महावीर पशुओं के इस शोषण के विरुद्ध थे। इस लिए उन्होंने अपने साधु व साध्वियों से इस प्रकार वाहन का प्रयोग करने से रोका। पर

आस्था की ओर बढ़ते कटन
 प्रभु महावीर ने नाव में यात्रा करने की आज्ञा प्रदान की। उन्होंने अनेकों बार वैशाली से राजगृही तक आते हुए नाव द्वारा गंगा पार की थी। इस के बारे में आगमों में प्रमाण उपलब्ध हैं। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद सभी मौर्य सम्राटों ने जैन धर्म के विदेशों में फैलाने का प्रयत्न किया। इन समारोहों में सम्प्रदायिकता का उल्लेख जैन इतिहास में सन्मान से लिया जाता है। इस के बाद उज्जैन में कालकाचार्य को अपनी वहिन साध्वी सरस्वती की रक्षा के लिए ईरान जाना पड़ा। इस तरह ईरान देश के राजाओं में जैन धर्म फैला। यह घटना ईसा पूर्व २ सदी की है। उस समय उज्जैन में गर्दभिल्ल का राज्य था। आचार्य ने इस राजा को हटा कर पहले शकों को गद्दी पर बैठाया गया। फिर शक जब प्रजा का शोषण करने लगे, तो उन्होंने अपने भानजे चन्द्रगुप्त को उज्जैन का शासन दिया। कालकाचार्य बहुत प्रभावक आचार्य थे। उन्होंने स्वयं स्वर्ण भूमि (वर्मा), जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया तक जैन धर्म का झंडा बुलंद किया।

फिर जैन धर्म से संरक्षण मिलना बंद हो गया। मध्य काल से मुस्लिम काल तक जैन धर्म सिमट कर भारत तक सीमित रह गया। इस काल में जैन धर्म का दूसरे धर्मों व राजाओं ने काफी नुकसान पहुंचाया।

जैन धर्म का साहित्य विदेशों में १८वीं सदी में पहुंचा। १९वीं सदी में अमेरिका में विश्व धर्म संस्था शिकागो में आयोजित हुआ, जिस में श्वेताम्बर आचार्य श्री आत्मानंद जी महाराज ने बंबई के एक बैरिस्टर श्री वीर चंद राघव जी गांधी को जैन धर्म का प्रतिनिधि बना कर भेजा।

आचार्य श्री आत्मानंद जी महाराज प्राचीन मुनि परम्परा का पालन करते हुए स्वयं न गए। यह वही कान्फ्रेंस थी, जिस में विवेकानंद जी ने हिन्दु धर्म का प्रतिनिधित्व

किया था। यह कान्फ्रेंस में श्री वीरचन्द राघव गांधी सफल वक्ता थे। वह लम्बा समय अमेरिका में प्रवचन देते रहे। अमेरिका के स्थानीय लोग उनके भक्त बन गए। लोगों को पहली बार पता चला कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है, यह हिन्दू धर्म से निकला नहीं, ना ही बौद्ध धर्म की शाखा है।

पर इस प्रचार का असर लम्बे समय तक रहा।

पुनः वैरिस्टर चम्पतराय ने इंगलैंड में धर्म प्रचार किया। पर कोई भी साधु विदेश में नहीं गया। एक श्वेताम्बर मुनि श्री चित्रयानु ने १९७० में वाहन प्रयोग कर अमेरिका में पहुंचे। २ वर्ष तक मुनि भेष में रहने के पश्चात वह गृहस्थ कोष में आ गए। पुनः धर्म प्रचार में जुट गए। जो आज भी गुरुदेव नाम से जाने जाते हैं। हजारों की संख्या में अमेरिकन उन के श्रावक हैं। उन्होंने ३० से ज्यादा अंग्रेजी भाषा में ग्रंथ लिखे हैं।

प्रथम सार्थक यत्न :

आखिर समस्त जैन समाज का चिंतन इस मामले में प्रारम्भ हुआ। मुनि लोग धर्म प्रचार करना चाहते थे, पर वाहन के मामले में कोई सहमति नहीं थी। इस मामले में सर्वप्रथम क्रांतिकारी कदम राष्ट्रीय संत उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज ने उठाया। उन्होंने विश्व धर्म सम्मेलन के आचार्य सुशील कुमार जी महाराज को विदेशों में धर्म प्रचार की आज्ञा दी। इस यात्रा का इतना विरोध हुआ कि उन्हें अपनी परम्पराओं से अलग कर दिया गया। उन्होंने अर्हत जैन संघ की स्थापना की। अंतराष्ट्रीय महावीर जैन मिशन के माध्यम से एक प्लेटफार्म बनाया। इस मिशन में समस्त विश्व के शाकाहारी व जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के श्रावकों को लिया।

आचार्य श्री सुशील मुनि जी विश्व धर्म संस्था के

संस्थापक थे। उनकी संस्था विश्व प्रसिद्ध थी। सभी संसार के धार्मिक नेता उनसे परिर्विंधत थे। संस्था के सम्मेलन भारत में होते रहे। इस की शाखाएं विदेशों में भी थीं। वह प्रमाणिक आचार्य थे। पहले ही भ्रमण में वह संसार के विभिन्न देशों में गए। वहां उन्होंने जैनों को संगठित किया। वह पहले गैर राजनीतिज्ञ थे जिन्हें पोप ५ ने रोम में सिंहासन से उतर कर सम्मानित किया। वह पहले धार्मिक नेता थे जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ ने महावीर का संदेश सुनाने के लिए बुलवाया था। भगवान महावीर निर्वाण शताब्दी में जिन चार मुनियों का प्रमुख हाथ था वह थे : श्री सुशील कुमार जी महाराज, मुनि श्री नथ मल्ल (महाप्रज्ञ) मुनि श्री विद्यानंद जी महाराज, मुनि श्री जनक विजय जी। आचार्य सुशील कुमार जी महाराज ने जैन इतिहास में वह कार्य किये, जिसके लिए वह हमेशा याद किए जाएंगे।

आचार्य श्री सुशील कुमार जी ने हजारों अमेरिका निवासीयों और १० लाख प्रवासीय जैनियों को प्रभु महावीर का संदेश सुनाया। उन्हें ध्यान, पर्यावरण, अहिंसा, निशस्त्रीकरा जैसे सिद्धांतों के बारे में समझाया। जैन धर्म, दर्शन, मंत्र, विज्ञान, आदि विषयों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों ने जैन धर्म पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने अपने जीवन काल में ५० जैन केन्द्र, ३५ जैन मंदिर और अनेकों संस्थाओं व अंतराष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से जैन धर्म का प्रचार किया।

इनका मुख्य कार्यालय न्युजर्सी में स्थापित हुआ। जहां १०८ ऐकड़ भूखण्ड पर जैन तीर्थ सिद्धाचलम की स्थापना आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने विदेशी भूमि पर की। जो इस सदी की महान इतिहासक घटना थी। इस प्रकार जैन धर्म यूरोप व एशिया में फैला।

उनकी सफलता को देखकर जैन धर्म के अन्य

आस्था की ओर बढ़ते कटन
 समझ आया। इस समाज में विकास की अथाह संभावनाएं छुपी हैं। प्रचार के हर माध्यम को हम समाज अपनाते समय अपनी प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखे हुए हैं। इस का सत्यरूप उस समारोह वर्ष में देखने को मिला जब हमें हर स्थान पर गुरुओं ने सम्मानित किया। जैन धर्म में भगवान महावीर का संदेश है कि “मनुष्य वही शूरवीर है जो धर्म में शूरवीर है।” विनय धर्म का मूल है। विनयवान व्यक्ति हर स्थान पर प्रशंसा पाता है। प्रभु महावीर के यह सिद्धांत हमारे जीवन के कीर्ति स्तंभ हैं।

इस प्राकरण में मैंने निर्वाण महोत्सव पर हुए कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का सूक्ष्म व सरल विवेचन करने की चेष्टा की है। इस महोत्सवों की कड़ी में कई काम अंतराष्ट्रीय स्तर पर हुए। जिस में आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज की विदेश यात्रा थी।

आचार्य तुलसी जी ने अंतराष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा और शांति के लिए कार्य करने वाले के लिए अणुव्रत अवार्ड की स्थापना हुई। इस अवार्ड से अहिंसा व अणुव्रतों के क्षेत्रों में कार्य करने वालों का जय तुलसी फाउंडेशन द्वारा सम्मान किया जाता है। इसी वर्ष भारतीय ज्ञान पीठ ने जैन प्रदर्शनी का निर्माण किया। आचार्य तुलसी जी, व स्थानकवासी परम्परा की कई संस्थाओं ने आगम प्रकाशन का कार्य शुरू किया। इन प्रकाशनों में जैन साहित्य विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने लगा। श्री तारक जैन ग्रंथालय, भारतीय ज्ञान पीठ, सन्मति ज्ञान पीठ संस्थाओं ने जैन साहित्य को काफी बड़ी मात्रा में प्रकाशित किया। भारतीय ज्ञान पीठ ने जैन स्थापत्य व कला के नाम से ३ ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। जिसका विमोचन तत्कालिन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया। जैन प्रतिमाओं, कलाकृतियों व हस्तलिखितों की

प्रदर्शनी का आयोजन राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर किया गया।

भगवान महावीर का सचित्र जीवन चारित्र आचार्य श्री यशोविजय जी ने तैयार करवाया। दिगम्बर जैन तीर्थों का परिचय देने वाले ग्रंथों का प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन तीर्थ समिति ने किया। इस ग्रंथ के ५ खण्ड थे। यह सभी सचित्र व विस्तारपूर्वक थे। गुजराती साहित्य विपूल मात्रा में प्रकाशित हुआ। हमारी समिति ने पंजाबी भाषा में ग्रंथ प्रकाशन शुरू किया। इस में अर्धमागधी से शास्त्रों का पंजाबी अनुवाद स्वतन्त्र लेखन, कथा साहित्य समिलित था। उस का प्रकाश प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर का परिचय देने वाले अनेकों वृहद् चित्र बने। इन में दो का उल्लेख करना जरूरी है। पहली फिल्म थी “महासती मैना सुन्दरी” दूसरी फिल्म थी “जैन तीर्थ दर्शन”। भारतीय ज्ञान पीठ ने भगवान महावीर के जीवन पर एक डाकूमेंटरी फिल्म तैयार की। इसी प्रकार भगवान महावीर का एक जीवन चारित्र आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी ने लिखा। जिस में श्वेताम्बर व दिगम्बर सामग्री का प्रयोग किया गया था। इस ग्रंथ का नाम था : “महावीर : एक अनुशीलन”। ऑडियो, विडियो भजनों के रिकार्ड सभी कम्पनियों ने निकाले। तब कम्प्यूटर का भारत में प्रवेश नहीं हुआ था। तब कम्प्यूटर युग विदेशों की वस्तु थी। इंटरनेट कोई नहीं जानता था। जैन धर्म का प्रगतिशील धर्म है। हर नई वस्तु को यह अपनाने को तैयार रहता है।

इस शताब्दी में जैन एकता को बहुत बल मिला। जिस का प्रमाण एक ध्वज, एक ग्रंथ व एक प्रतीक को मानना था। इस सदी में बहुत नई संभावनाओं को जन्म दिया। प्राचीन ग्रंथों का प्रकाशन बहुत संस्थाओं ने किया।

भारत व विदेशों में हुए समारोह व कार्यक्रम व उपलब्धियों का वर्णन मैंने जैन एकता के माध्यम से किया है। एक बात और जिस पर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, वह है जैन धर्म के इतिहास ग्रंथों का लेखन। जैन आचार्यों का इतिहास, जैन धर्म का मौलिक इतिहास ; आचार्य देशभूषण, जैन धर्म का मौलिक इतिहास ८ खण्ड में आचार्य श्री हस्तीमल जी ने तैयार करवाया। ३२ आगम का हिन्दी प्रकाशन ३ मुनि श्री मिश्री मल जी के सम्पादन में व्यावर से प्रकाशित हुआ। श्री जम्बू विजय ने श्री महादोर जैन विद्यालय मुम्बई के माध्यम से कुछ आगम को शुरू रूप से टीका सहित छपवाया। कई संस्थाओं को गुजरात में गुजराती अनुवाद सहित आगम प्रकाशित किए। एल.डी. शोध संस्थान अहमदाबाद, श्री पार्श्वनाथ जैन पीठ वाराणसी, वैशाली जैन शोध संस्थान प्राकृत भारती जयपुर, पच्चीसवीं महावीर जैन शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब, भारतीय ज्ञान पीठ दिल्ली, अहिंसा मंदिर दिल्ली, भाषाओं में साहित्य की वाढ़ आ गई। श्री आत्मा नंद जैन सभा भावनगर ने पत्राचार में अगमों का टीका, निर्युक्तियाँ, चुर्णि, भाष्य प्रकाशित कर निशुल्क बांटे। आचार्य तुलसी व उनके शिष्यों ने अपना साहित्यिक योगदान किया।

जैन इतिहास पर हुए कार्य ने जैन धर्म, जाति, परम्परा संस्कृत का एक शाश्वत पहचान प्रदान की। यही पहचान ने जैन धर्म को उनकी इतिहासिक विरासत व उनकी भारतीय साहित्य के योगदान के प्रति अवगत कराया। आज वही पहचान कार्य कर रही है, जैन धर्म जो बौद्ध धर्म के बाद भारत का अल्पसंख्यक धर्म है, जिस की पहचान समाप्ति पर थी इस समिति में हुए कार्यों के कारण इस धर्म को नए प्राण मिले। जैन धर्म का विदेशों में प्रथम बार प्रचार प्रसार

आस्था की ओर बढ़ते कदम
हुआ। सब से बड़ी बात यह हुई कि जैन धर्म में आपसी राग द्वेष की भावना जो सदियों से घर कर चुकी थी, इस वर्ष दम तोड़ने लगी। जिस का फल यह हुआ कि अब ऐसे साधु साध्वियों को पसंद नहीं करता है जो सम्प्रदायक हो, न ही ऐसे गृहस्थ श्रावक को पसंद करता है जो आपसी वैर वैमनस्य का कारण बने। यह समिति की महान देन थी।

इस वर्ष सम्प्रदायिक साहित्य समाप्त हो गया। अपनी अपनी परम्परा में रह कर सब धर्मों का सन्मान इस शताब्दी वर्ष की महान देन है। अब सभी परम्परा के साधु साध्वियां एक मंच पर प्रवचन करते हैं। जैन एकता को बढ़ावा देते हैं।

प्रकरण - ७

हमारी संस्था द्वारा कुछ संस्थाओं का निर्माण

मैंने पिछले प्रकरणों में पंजाब में हमारे द्वारा स्थापित समिति व पंजाब सरकार स्थापित समिति के निर्माण का वर्णन किया है। हमारी २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब ने सरकारी समिति के कार्यों को कर वाकी अन्य उद्देश्यों के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। हमें अब पंजाबी जैन साहित्य के लिए कार्य करना था। चाहे सरकारी समिति में कार्य करने थे। परन्तु दोनों महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति किसी का ध्यान नहीं था। हमारे दोनों कार्यों को प्रवर्तक भण्डारी श्री पदम चन्द्र जी महाराज व स्व० उप्रवर्तनी साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त था। हम अपने लक्ष्य की ओर धीमी गति से बढ़ रहे थे।

जैन चेयर के लिए पत्र व्यवहार

हमारी समिति की स्थापना से यह हमारी प्रमुख मांग थी। इस की पृष्ठ भूमि के पीछे डा० एल.एम. जोशी व भण्डारी श्री पदमचन्द्र जी महाराज की प्रेरणा काम कर रही थी। एक बात मजेदार थी कि लोग जैन चेयर का अर्थ ठीक ढंग से नहीं समझ रहे थे। पहले अपने लोगों को जैन चेयर का अर्थ। समझाने में काफी समय लग गया। इसी तरह लोग निर्वाण का अर्थ जन्मदिन करते या निर्वाण को निर्माण लिखते। यह सभी धर्म प्रचार की कमी के कारण हो रहा था। यह हालात जैन धर्म के सामान्य लोगों से लेकर आम लोगों तक थी। मुझे लगा कि लोग धर्म के प्रति जितनी आस्था रखते हैं उतना वह धर्म के मूल तत्वों से अनभिज्ञ हैं।

इस वर्ष में देश विदेशों में जैन चेयर प्रमुख विषय रहा। हमारे लिए यह नई बात नहीं थी, क्योंकि पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में गुरु गोविन्द सिंह भवन का निर्माण हो चुका था इस भवन में एक कला दीर्घा गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन से संबंधित थी। पांच स्तम्भ भवन एक तालाब के मध्य में बनाए गए हैं। हर स्तम्भ सिक्ख धर्म के ५ ककार का प्रतीक है। यह प्रतीक हैं : कंघा, कड़ा, कच्छा, कृपाण व केश। इन स्तम्भ भवनों में पांच धर्मों को स्थान मिला। उनके नाम थे : हिन्दू धर्म, सिक्ख, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम। पर दुःख का विषय था कि जैन धर्म को छोड़ दिया गया था। भारत वर्ष में धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कराने वाला यह एक मात्र भारत का संस्थान है। जैन चेयर ना होना हमारे लिए दुःख व क्षोभ का विषय था मैं व धर्म भ्राता रविन्द्र जैन इस संदर्भ में सरदार कृपाल सिंह नारंग को इस कार्य के लिए विशेष रूप से मिले उन्हें जैन धर्म लेखक मुनि सुशील कुन्वर की पुस्तक भेंट की। उन्होंने यह पुस्तक और हमारे द्वारा भेजा मांग पत्र स्व० डा० हरवंस सिंह प्रमुख धर्म अध्ययन को भेजा। कुछ दिनों बाद हमें एक पत्र लेकर उनसे मिले। उन्होंने मांग पत्र देख। हमारी बातों को ध्यान से सुना। उन्हें हमारी बात तथ्य पूरक लगी। डा० हरवंस सिंह एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रोफेसर थे जिन की आत्मा पवित्र थी। उनके मन में जैन धर्म व दर्शन के प्रति श्रद्धा थी। उन्हें विभाग की गलती का अहसास हुआ। उन्होंने डा० जोशी को बुलाया। डा० जोशी हमें विभाग में ले गए। उन्होंने हमें बताया जैन धर्म वैदिक काल से प्राचीन धर्म है। वेदों में भगवान ऋषभ देव का वर्णन आया है। प्रायः सभी पुराणों उपनिषदों में जैन धर्म का वर्णन है। सिन्धु घाटी के लोग भी इसी धर्म को मानते थे। इसी श्रमण धर्म से

वैदिक धर्म निकला है। स्वयं वैदिक ग्रंथ भगवान् पार्श्वनाथ के चतुर्ग्रन्थ व निगण्ट नाएपुत महावीर के वर्णन से भरे पड़े हैं। हम वैदिक धर्म और जैन धर्म का एक विभाग बनाने की बात करते हैं, जो श्रमण संस्कृति विभाग कहलाएगा।

डा० जोशी ने जो कहा वह सत्य था। पर जैन व वैदिक धर्म एक नहीं हैं। वह एक दूसरे के काफी करीब हैं। इस दृष्टि से जैन धर्म पर अलग विभाग होना चाहिए। यह मेरा दृष्टिकोण था परन्तु अभी इस विभाग के खुलने का समय नहीं आया था। कुछ ही दिनों बाद हमें डा० जोशी का पत्र मिला। जिस से जैन चैतन्य के बारे में कुछ बात करने के लिए लिखा गया था। हम दोनों गए। उन्होंने हमें कहा “अभी यू.जी.सी. ने ५०००० रूपए गांधीवाद अहिंसा व जैन धर्म के प्राप्त हुआ है इस पैसे से एक लैकचरार रख लेते हैं।

हमें इस समाचार से अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई। हमारे लिए जैन विभाग का खुलना चैतन्य से कम नहीं था। जल्द ही उन्होंने वैशाली प्राकृत जैन शोध संस्थान के डा० अतुलनाथ सिन्हा की नियुक्ति हो गई। अब इस विश्वविद्यालय में जैन धर्म की पढ़ाई अन्य धर्मों की तरह चालू हो गई और आज भी चालू है। यह स्वतंत्र विभाग न था ये गुरु गोविन्द सिंह तुलनात्मक अध्ययन विभाग का अंग था। पर इस कार्य की शुरुआत अच्छी रही। डा० सिन्हा प्राकृत भाषा के विद्वान हैं उन्होंने वाराणसी में भी शिक्षण कार्य किया है। वह जैन धर्म व वैदिक धर्म के प्रकाण्ड पंडित हैं।

उनके आने से भण्डारी श्री पदमचन्द्र जी महाराज सरगम हो गए। हजारों रूपयों के ग्रंथ लाइब्रेरी के लिए पहुंचाने शुरू किये। जिस में सभी सम्प्रदायों के ग्रंथ थे। हमारी गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने भी भारतीय ज्ञान पीठ देहली का समस्त दिगम्बर साहित्य इस विभाग को

भेंट किया। उन्होंने अपना हस्तलिखित भण्डार यूनिवर्सिटी को दान कर दिया। तेरापंथ समाज संगरूर के माध्यम से तेरापंथी जैन साहित्य पहुंचने लगा। धीरे धीरे इतना साहित्य हो गया कि जैन विभाग की लाईब्रेरी हर विभाग की लाईब्रेरी से बड़ी हो गई। जिस समय पंजाब के राज्यपाल श्री एम. एस. चौधरी पधारे उस समय यूनिवर्सिटी ने २५०० साला महोत्सव पर डा० नथ मल टाटीया जो डा० सिन्हा के गुरु थे उन्हें प्रवचन के लिए आमंत्रित किया गया। इस समारोह में यूनिवर्सिटी में प्रथम जैन समारोह हुआ। डा० नथ मल टाटीया का सारा जीवन जैन धर्म, दर्शन पढ़ाने में बीता। वह वैशाली शोध संस्थान के निदेशक भी रहे। जैन विश्व भारती लाडनू में अंतिम समय तक रहे। वहां Visiting Professor के रूप में विदेशों में जैन धर्म पढ़ाते रहे। इस अवसर पर जैनईज्म पुस्तक का विमोचन राज्यपाल ने किया। डा० टाटीया भाषण बहुत महत्वपूर्ण था जिसे यूनिवर्सिटी ने प्रकाशित किया। इस अवसर पर उपाध्याय श्री अमर मुनि जी हिन्दी पुस्तक “महावीर सिद्धांत और उपदेश” का पंजाबी भाषा में अनुवाद माननीय राज्यपाल को भेंट किया गया। माननीय राज्यपाल ने एक जैन पुस्तक प्रदर्शनी व हस्तलिखित ग्रंथों की प्रदर्शनी का उद्घाटन भी किया था। इसे यूनिवर्सिटी ने जैन कोरनर का नाम दिया। डा० सिन्हा के आगमन से यूनिवर्सिटी में हमें अनेकों बार आना पड़ा। डा० सिन्हा व डा० जोशी को हमने अपने समाज के प्रमुख साधु साधवियों, श्रावकों से मिलवाया है। यूनिवर्सिटी के अधिकारीयों से पता चला कि आप का विभाग तो खुल गया है पर जैन चेयर नहीं। हम ने इस संदर्भ में डा० एल.एम. जोशी की सहायता प्राप्त की। उन्होंने चेयर का प्रारूप तैयार किया। फिर अपनी विभागीय सिफारिश भी की। इस प्रारूप

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में एक प्रोफ़ेसर, एक रीडर, एक रिसर्च फैलो व सेवादार की सिफारिश की गई। वर्ष का मिसलेनियस ५०,००० खर्चने की सिफारिश की गई थी। हमें केस की एक प्रति दी गई जिसे हमने शिक्षा मंत्री श्री गुरमेल सिंह से सिफारिश करने का डी. पी.आई पंजाब को पहुंचा दिया। यूनिवर्सिटी के प्रारूप को यथा रूप मंजूरी मिल गई। पर यह कार्य निर्वाण शताब्दी के बाद हुआ।

जैन चेयर की स्थापना व समारोह

आखिरकार जैन चेयर की मंजूरी मिल गई। फिर आया किसी योग्य व्यक्ति की नियुक्ति का प्रश्न। समाचार पत्रों में प्रोफ़ेसर की नौकरी के लिए विज्ञापन दिया गया। लम्बी तलाश की गई। विद्वानों से संपर्क किया गया। इस विज्ञापन के आधार पर मात्र ३ नाम आए। पर पधारे २ महानुभाव पर इस संदर्भ में एक बात और कहनी है। कि यहां के उप-कुलपति जर्मन गए हुए थे, यहां उन्होंने एक जर्मन प्रोफ़ेसर को जैन प्रोफ़ेसर की भारत में नियुक्ति की बात की थी। यह प्रोफ़ेसर थे डा० कलासि ब्रुन जो जैन धर्म दर्शन, तत्व के महान ज्ञाता थे। उनके ज्यादा शिष्य उनके देश के जर्मन लोग थे। यह लोग प्राकृत भाषा को जानने के लिए जैन धर्म को पढ़ते हैं, उनके शिष्यों में से एक गुजरात का भारतीय डा० बी.बी. भट्ट थे। डा० कलास ब्रुन ने उनकी योग्यता की प्रशंसा करने हुए अंतर्राष्ट्रीय लेखक बताया। डा० भट्ट भी इसी इंटरव्यू में आ गए। दूसरे सज्जन थे डा. के. रिषभ चन्द्र। डा० भट्ट की अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। वह जर्मन, फ्रेंच, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत भाषा के महान विद्वान भी थे। अंतर्राष्ट्रीय

स्तर पर उनकी अपनी पहचान थी।

इस चेयर पर उनकी नियुक्ति हो गई। डा. भट्ट सपरिवार पटियाला में आ गए। अब चेयर के उद्घाटन का प्रोग्राम था। यह प्रोग्राम हमारी सहाल से तैयार किया गया। इस अवसर पर माननीय राज्यपाल श्री जय सुख लाल पधारे। बहुत ही महत्वपूर्ण प्रोग्राम इस चेयर के उद्घाटन का था। राज्यपाल ने प्रभु महावीर की प्रतिमा को मालार्पण किया। यह प्रतिमा आचार्य समुद्र विजय जी महाराज ने इस विभाग को भेंट की थी जो अब भी विभाग में है।

दूसरा उपक्रम था इस संस्था के अंतरगत प्राकृत भाषा के प्राकण्ड पंडित आचार्य आत्मा राम जी महाराज की पुनः स्मृति में आचार्य श्री आत्मा राम जैन भाषण माला का आयोजन की स्थापना। इस भाषण माला की प्रेरणा प्रवर्तक श्री फूल चंद जी महाराज ने की थी। जिस के लिए धन श्री चन्दन वाला जैन श्राविका संघ ने अर्पित किया था। इस भाषण माला का उद्घाटन आचार्य आत्मा राम जी महाराज के चित्र को मालार्पण करके किया गया। आचार्य श्री के विदेशी शिष्य ने दिया। इस अवसर पर बहुत ग्रंथों के सैट महानुभावों को भेंट किए गए। इस अवसर पर जर्मन के एक विदेशी विद्वान व जर्मन के राजदूत एक महिला पधारी थी।

उस दिन ३ समारोह हुए थे। दोपहर के बाद विद्वानों का समारोह हुआ। जिस में मैंने ५०००/- रूपए का चेक धर्म अध्ययन विभाग के अध्यक्ष को भेंट किया। सारी व्यवस्था डा० भट्ट ने स्वयं की थी। इस अवसर पर विदेशी प्रतिनिधियों का लैक्चर हुए। इस अवसर पर डा० रोथ विशेष रूप में पधारे। डा० रोथ आचार्य श्री आत्मा राम जी से प्रभावित थे। आप डा० हर्नन जैकोबी की परम्परा से थे। समारोह बहुत रंगीन था। समस्त उत्तर भारत से लोग पधारे

थे। डा० भट्ट का पहला समारोह था। उनके आने के बाद इस चेयर को उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह भवन से स्वतंत्र विभाग बना दिया। उन्होंने इस भवन का नाम “महावीर चेयर फार जैन स्टडीज” रखा। वह इस संस्था के प्रथम निदेशक बने। डा० भट्ट के पास पुस्तकों की अथाह सम्पदा थी। भारतीय अंतर्राष्ट्रीय विद्वानों से उनका अच्छा परिचय था। अनेकों विदेशी विद्वान उनके मित्र थे। अनेकों शोध पत्र पत्रिकाओं में उनके शोध निबंध व समीक्षाएं प्रकाशित होती रहती हैं। अनेकों देशों में भारतीय व जैन विषयों पर उनके प्रवचन होते हैं। उनकी प्रेरणा से हमारी समिति ने अनेक कार्य किए हैं। इस में साहित्य की दृष्टि से युनिवर्सिटी में लाइब्रेरी की स्थापना प्रमुख थी।

इसी समारोह में भगवान महावीर की अंतिम देशना की उत्तराध्ययन का विमोचन माननीय राज्यपाल ने अपने कर कमलों से किया। इस ग्रंथ का पंजाबी अनुवाद की प्रेरणा हमें डा० जोशी की कृति धम्मपद से मिली थी। दोनों ग्रंथ श्रमण संस्कृति के पावन ग्रंथ थे। इस ग्रंथ में जो श्रम हम ने किया वह महत्त्वपूर्ण था परन्तु इस ग्रंथ के हर पृष्ठ को श्रमण उपाध्याय श्री फूल चंद जी महाराज ने पंडित तिलकधर शास्त्री से सुना था। जरूरत अनुसार श्रमण जी ने संशोधन किया। यह शास्त्र पंडित अर्धमागधी प्राकृत से अनुवादित प्रथम ग्रंथ था, जिस के प्रकाशन के बाद हम पंजाबी भाषा के प्रथम अनुवादक, संपादक, टीकाकार बन गए। हमारे से पहले यह सौभाग्य किसी साधु या श्रावक को प्राप्त नहीं हुआ था। पंजाबी विश्वविद्यालय में किसी जैन शास्त्र का यह प्रथम विमोचन था। इस संसार में अर्ध मागधी भाषा के सब रूप आयु के अनुवादक थे। यह समारोह जैन चेयर के उद्घाटन पर ही हुआ। जिसे कई

अस्था की ओर बढ़ते कदम समाचार पत्रों ने स्थान दिया। जैन चेयर की स्थापना से हमारा जैन समाज में अनोखा स्थान बन गया। इस का कारण यह था कि हम दोनों की आयु सभी कार्यकर्ताओं से कम थी। अब हम दोनों डा० भट्ट का परिचय जैन समाज के प्रमुख मुनियों, आचार्यों, उपाध्याय, साधु, साध्वियों से करवाया।

गुजरात में जन्मे डा० भट्ट ने जैन धर्म निक्षेप सिद्धांत पर विदेशों में रह कर कार्य किया है। उन के माध्यम से पता चला कि विदेशों में जैन धर्म पर दो सदियों से काफी कार्य हुआ है। यह शोध कार्य अंग्रजी से पहले का है। इस का कारण जर्मन भाषा व संस्कृत में शोध कार्य काफी मात्रा में होता आया है। आज जर्मन के विश्वविद्यालयों में जैन धर्म, भाषा विज्ञान के रूप में पढाया जाता है। जर्मन में जैन धर्म पर शोध करने का ढंग अनुपम व प्रमाणित है।

डा० भट्ट विद्वान होने के साथ साथ सामाजिक व्यक्ति भी हैं। उन्होंने सारे भारत के प्रमुख आचार्यों में अपनी पहचान, अपने शोध कार्य के माध्यम से बनाई है। जैन चेयर हमारी गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। इस चेयर के अंतर्गत हमने कई संस्थाओं का निर्माण किया था। इन का वर्णन करने से पहले मैं बताना चाहता हूं कि डा० भट्ट ने यूनिवर्सिटी में ३ दिन का समारोह “एन अनली जैनीज्म” पर रखा। सैकड़ों विद्वान भारत के कोने कोने से पधारे थे। मुझे इसी समय वैशाल, जयपुर, अहमदाबाद, पुणे, नलंदा, दिल्ली, वाराणसी, मेरठ, मद्रास से पधारे प्रमुख जैन विद्वानों को मिलने का अवसर मिला। हमारे द्वारा उन्हें अपना पंजाबी साहित्य भेंट किया गया। इस सम्मेलन में जो विद्वान नहीं आए थे उनके पेपर पढ़े गए। सभी पेपर किसी कारण प्रकाशित नहीं हो सके। पर हमारे जीवन में ऐसा

पहला अवसर था जब इतने विद्वानों के दर्शन व उन्हें सुनने का सौभाग्य मिला। डा० भट्ट जितना समय इस चेयर पर रहे, सारी व्यवस्था ठीक चली। उनके वापिस जर्मन लौटने पर अभी यह चेयर खाली है।

जैनोलिजकल रिसर्च कौंसिल की स्थापना :

२५००वें महावीर निर्वाण शताब्दी के शुभ अवसर पर मेरे मन में एक ख्याल आया कि जैन विद्वानों की एक भारतीय संस्था का निर्माण हो, जो पंजी संपर्क का माध्यम बने। जैन शोध के कार्य की सूचना का आदान प्रदान करे। इसी बात को ध्यान में रख कर गुरुणी साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज की प्रेरणा से इस कौंसिल की स्थापना की गई। इस में जैन विद्वानों को ही शामिल किया जाता। हमारी यह कोशिश को बहुत कम सफलता मिली। इस कार्य जिस ढंग से हम चाहते थे आगे न बढ़ सका। यह एक कटु अनुभव था। पर इस संस्था के माध्यम से हम विद्वानों से जुड़ गए। पत्र व्यवहार बना। हम इस का उपयोग पंजाबी जैन साहित्य लिए भी करना चाहते थे, जो प्रायः असम्भव था। क्योंकि जैन विद्वान इस क्षेत्रिय भाषा से अपरिचित थे। मैं इस का डायरेक्टर बना। इस संस्था के स्व० सेठ भोज राज जैन संरक्षक बने। इस के सचिव मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन थे। सारे भारत में हर भाषा में जैन साहित्य उपलब्ध है पर पंजाबी में किसी ने कलम नहीं उठाई। हमें साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की बलवती प्रेरणा, सहयोग संरक्षण सतत् मिलता रहा। साध्वी श्री पंजाबी साहित्य की उपयोगिता को अच्छी तरह पहचानती थी। वह ग्रामों में धर्म प्रचार करने वाली साध्वी थी। हमारे हर कार्य में हमारा उत्साह बढ़ाती थी। उनके उपकार मेरे जीवन आचार्य तुलसी के शिष्य

जयचन्द्र जी के बाद सब से ज्यादा है।

आचार्य श्री आत्मा राम जैन भाषण माला की स्थापना - ३

श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन परम्परा में आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज का अपना स्थान है। वह आचार्य अमर सिंह जी महाराज की परम्परा के आचार्य थे। उनके गुरु श्री शालिग राम जी थे। आप का जन्म राहों के क्षत्रिय परिवार में चोपडा वंश में सेठ मनसा राम व माता परमेश्वरी देवी के यहां हुआ। अल्पायु में माता पिता का साया सिर से उठ गया। आप के पालन पोषण की जिम्मेवारी आप की दादी ने निभाई कुछ समय के बाद वह भी स्वर्ग सिधार गईं। बालक आत्मा राम संसार में अकेले पड़ गए। उनको संसार की क्षणभंगुरता का अहसास हुआ। उन्हें बचपन में ही जैन मुनियों को सुनने का अवसर मिला। जिस के कारण वैराग्य के रंग और पक्का होने लगा। छोटी सी आयु में आप ने साधु जीवन अंगीकार कर दीक्षा स्वीकार की। फिर स्वयं को शास्त्र पढ़न पाठन में इतना लगाया कि जीवन के अंतिम वर्षों में वह दृष्टिहीन हो गए पर तब तक वह २० आगमों पर हिन्दी टीका संस्कृत छाया सहित लिख चुके थे। इन कुछ प्रकाशन इनके स्वर्गारोहण के बाद भी प्रकाशित हुए। वह श्रमण संघ के प्रथम आचार्य घोषित हुए। उनके सम्मान में २२ स्थानक वासी आचार्यों ने अपने पद की चादर जैन एकता के लिए उतार कर इन्हें समर्पित कर दी। उन को आचार्य पद इन की अनुपस्थिति में सर्वसम्मति से दिया गया। आप ने अनेकों भव्य आत्माओं को दीक्षा देकर मोक्ष का रास्ता बताया। इन में कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं जैसे कि प. हेम चन्द्र जी महाराज, श्री खजान चंद जी

महाराज, श्री रत्न मुनि जी महाराज, श्री ज्ञान मुनि जी (१) महाराज, श्री ज्ञान मुनि जी महाराज (२) उपाध्याय मनोहर मुनि जी, पंडित हेम चन्द जी के शिष्य भण्डारी श्री पद्म चन्द जी महाराज धर्म प्रभावक थे। पं. खजान चंद्र जी ने स्त्री शिक्षा के लिए स्कूलों व जैन स्थानकों का जाल बिछा दिया। उनके शिष्य प्रवर्तक श्री फूलचंद जी 'श्रमण' थे। जिन्होंने अपने बाबा गुरु के स्थानांग सूत्र, उपासक दशांग सूत्र का प्रकाशन करवाया। पूज्य श्री ज्ञान मुनि (२) पहुंचे साधु थे। आप ने अपने गुरु की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अनेकों आगमों पर स्वयं टीका लिखी हैं। श्री ज्ञान मुनि जी ने अनेकों परोपकारी संस्थाओं का निर्माण भी विभिन्न स्थलों पर करवाया है। प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्म चन्द जी महाराज के शिष्य उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी महाराज ने सचित्र आगम प्रकाशन अंग्रजी, हिन्दी भाषा में करवाया है। पूज्य श्री ज्ञान मुनि जी के प्रमुख शिष्य डा० शिव मुनि जी महाराज आज कल श्रमण संघ के चतुर्थ आचार्य पटधर के रूप में समाज में ध्यान व समाधि के माध्यम से नव चेतना का संचार कर रहे हैं। स्व० श्री खजान चन्द्र जी महाराज के एक शिष्य श्री त्रिलोक मुनि जी महाराज जो कि जैन आगमों के महान् विद्वान व समाज सुधारक हैं उन्होंने ने भी अनेकों परोपकारी संस्थाओं का निर्माण किया।

आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने उस समय हिन्दी भाषा का प्रचार किया जब कि पुराने पंजाब में उर्दू, फारसी व अंग्रजी का जोर था। आपने लाहोर और ऐंटल कालिज के लिए प्राकृत भाषा का सिलेबस तैयार किया। आपने आगमों के अतिरिक्त ६० ग्रन्थ हिन्दी भाषा को प्रदान किए हैं। जो कि जैन धर्म के विभिन्न विषयों पर आधारित हैं। आप की जैन धर्म साहित्य व संस्कृति को महान देन हैं

जिसको जैन समाज सदैव याद रखेगा। आप ने श्वेताम्बर स्थानक वासी समाज में टीका, चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य व संस्कृत पढ़ने की परम्परा डाली, ताकि लोग शास्त्रों को ठीक ढंग से समझ सकें। आप पहले पंजाब जैन संघ के उपाध्याय बने फिर आचार्य। फिर आप को सनस्त जैन समाज ने श्रमण संघ का प्रथम आचार्य सम्राट नियुक्त किया। आप हिन्दी भाषा में जैन आगमों के प्रथम टीकाकार हैं। आप ने अनेकों देशी विदेशी विद्वानों को अपने आगम ज्ञान व चमत्कारों से प्रभावित किया। आप ध्यान योगी थे। हमेशा आप का जीवन श्री संघ को आगे बढ़ाने की योजनाओं में लगा रहता। कैंसर जैसा रोग आ जाने पर भी आप इस का आप्रेशन बिना कलोरोफोरम सूँघे करवाया। आप की सहनशीलता ला-मिसाल थे। आप कभी किसी में दोष नहीं देखते थे। अंत रामय आप के शरीर को बीमारीयों ने इतना घेरा कि लोग आचार्य श्री से पूछते कि क्या बात है ? आप जैसे महापुरुषों को रोग क्यों घेरता है ? आप तो हमेशा ध्यानस्थ रहने वाले हैं। यह बात हमारी समझ से परे है ?

महाराज श्री जी फुरमाते “भव्य जीवो ! मैं अपने कर्मों का कर्जा इस धरती पर उतारना चाहता हूँ। मरने के बाद भी हम कर्जदार रहें, फिर इस साधना का क्या फल ? हर दुःख से मेरे कर्म झड़ते हैं। इस प्रक्रिया से मुझे समाधि प्राप्त होती है।”

आचार्य श्री महान राष्ट्र भक्त थे। भारत के बड़े बड़े राज नेता इन से विमर्श करने आते थे। इन से कई विषयों पर विमर्श करते थे। आपने आजादी की लड़ाई में अपना योगदान डाला। पंडित जवाहर लाल नेहरू रावल पिंडी में आप से मार्ग दर्शन प्राप्त करने आए। ३० जनवरी १९६२ को आप का समाधि मरण लुधियाना में हुआ। इतने महान

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 आचार्य की स्मृति में सारे भारत में संस्थाओं का जाल बिछा है पर ऐसी कोई संस्था नहीं बनी थी जो आप के द्वारा प्ररूपित सिद्धांतों का प्रचार कर सके। आचार्य श्री ने सारा जीवन जैन साहित्य के विभिन्न पक्षों पर प्रमाणिक साहित्य तैयार किया। उनके साहित्य के प्रचार व प्रसार की कमी कई वर्षों से की जा रही थी। इस कमी को पूरा करने के लिए जैन चेयर में आचार्य आत्मा राम जैन भाषण माला की स्थापना, जैन चेयर के उद्घाटन के समय हुई। जिसका अच्छा प्रभाव पड़ा। इस भाषण माला में पंजाब के विद्वानों व विद्यार्थियों को बहुत लाभ मिल रहा है।

इस भाषण माला के प्रथम भाषण कुलपति की अध्यक्षता में हुआ। पहले प्रवचन में बहुश्रुत भाषण श्रमण संघ के सलाहकार कवि श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने आचार्य श्री आत्मा राम व्यक्तित्व व कृतित्व पर हुआ। पूज्य ज्ञान मुनि जी अपने नाम के अनुरूप महान् विभूति थे। आप साहित्य के अतिरिक्त समाज सेवा में अग्रसर रहते थे। आप ने अनेकों परोपकार के कार्य करने की प्रेरणा अपने भक्तों को दी है। आप श्रमण संघ के प्रथमाचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज के शिष्य हैं। आप का प्रवचन सिनेट हॉल में रखा गया। जैन चेयर के प्रमुख डा० भट्ट ने श्री ज्ञान मुनि जी का परिचय देते हुए कहा “आप आचार्य श्री के विद्वान शिष्य हैं, आप ने लम्बे समय आचार्य श्री की सेवा की है। आप की श्रुत सेवा महान है। आज एक शिष्य के श्री मुख से अपने गुरु की महिमा सुनने का अवसर मिलेगा।” श्री ज्ञान मुनि जी का सन्मान वाईस चांसलर महोदय ने किया। उन्होंने भाषण माला का प्रधानगी भाषण देते हुए श्री ज्ञान मुनि जी महाराज के पंजाबी होने के बावजूद उनको संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं पर कार्य करने पर वधाई दी।

फिर श्री ज्ञान मुनि जी महाराज का भाषण शुरू हुआ। यह भाषण कम प्रवचन ज्यादा था। अपनी सरल भाषा में श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने अपने गुरु का गुणगान किया। उन्होंने अपने जीवन में चमत्कारी घटनाओं का वर्णन किया। श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने आचार्य श्री के अतिरिक्त जैन धर्म के विभिन्न आगमों पर प्रकाश डाला। प्रवचन के अंत में उन्होंने विद्वानों व विद्यार्थियों की जिज्ञासाओं यथोचित समाधान किया। फिर धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत कर मुनि जी का श्रोताओं की ओर से धन्यवाद किया गया।

इस प्रकार भाषण माला का प्रथम भाषण संपन्न हुआ। इसके बाद इस भाषण माला को देश में ही नहीं, विदेशी विद्वान भी बुलाए गए। भारत के विद्वानों में आचार्य तुलसी का मंगलमय प्रवेश अपने आप में अनोखी घटना था। ४० साधु साध्वीयां युनिवर्सिटी कैम्पस में फैल गए सारे उत्तर भारत के श्रद्धालु इस समारोह में पधारे थे। यह समारोह भव्य था।

दूसरा मंगलमय प्रवचन गुरुणी उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का था। उसी दिन उन का परिचय हिन्दी पंजाबी में प्रकाशित किया गया। फिर साध्वी जी को जिनशासन प्रभाविका पद से विभूषित किया गया। सम्मान के रूप में एक शाल समर्पित किया गया। डा० हरमिंद्र सिंह कोहली ने अभिनंदन पत्र जैन शोध विभाग पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला की ओर से पढ़ा। यह किसी जैन साध्वी को प्रथम निमंत्रण था। इस से पहले कभी यूनिवर्सिटी ने ना तो किसी साध्वी को कभी भाषण के लिए निमंत्रण दिया, न ही सम्मानित किया गया। यह साध्वी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी। इस अवसर पर डा० एच.एस. कोहली, डा० धर्म सिंह व डा० सज्जन सिंह विशेष रूप से पधारे। जैन साध्वी

ग्रन्था की ओर बढ़ते कदम
 के जीवन को करीब से देखने का इन लोगों का प्रथम अवसर था। साध्वी श्री से अनेकों लोगों ने जैन धर्म व इतिहास के विषय में प्रश्न पूछे। हर प्रश्न का समाधान साध्वी श्री ने अपनी बुद्धि से दिया। उनका भाषण शेख सादी के फारसी के कलाम से हुआ। इस दिन मुझे पता चला आप उर्दू, फारसी भाषा की विदूषी भी थीं। यह प्रथम अवसर था कि साध्वी जी के प्रवचन से इतने विद्वान आकर्षित हुए। उन्होंने अपने बहुत से दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर महासाध्वी जी से पाया। वाईस चांसलर साहिव महासाध्वी के पदार्पण से प्रसन्न थे। उन्होंने कहा “आज मंगलमय महोत्सव है, हमारा यूनिवर्सिटी आंगन, आप जैसी भगवान महावीर की शिष्या को अपने मध्य पाकर प्रसन्न हैं। आप और आप का शिष्य परिवार हमें साक्षात् देवीय लगती हैं। आप व आप की शिष्या हर समय जप, तप, ध्यान में लीन रहती हैं। आप का अनुशासन प्रिय जीवन संयम की जीती जागती उदाहरण है। आप के हमारे यहां पधारने अभिनंदन करते हैं और इच्छा करते हैं कि भविष्य में भी आप हमारे यहां पधारते रहोगे। सभी का धन्यवाद डा० भट्ट ने किया। इस भाषण माला में बहुत से विद्वानों के दर्शन करने का सौभाग्य मिला, इन विद्वानों में जर्मन की प्रो० मेटे का प्रवचन प्रसिद्ध है। उन्होंने सूत्रकृतांग सूत्र के वीरथूई पर अपना प्रवचन दिया। अपने प्रवचन में आप ने फुरमाया “आर्य सुधर्मा कृत महावीर स्तुति मात्र गुरु वन्दना ही नहीं, वह स्तुति संसार की प्रथम कविता है। जिस में छंद, अलंकार, विशेषणों का शुद्ध प्रयोग प्रथम बार किया गया है। श्रीमती मेटे के वाक्य का कई विद्वानों ने वुरा मनाया। उन विद्वानों की मान्यता थी कि वेद संसार की प्रथम कविता हैं। वह प्रारम्भ से गाकर पढ़े जाते रहे हैं। सो आप का कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। डा. मेटे का उत्तर

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 था “चाहे वेद या अन्य ग्रंथों को गाकर पढ़ने की प्राचीन परम्परा है पर यह कविता के सारे नियम पूरे नहीं करते। कविता के अपने नियम हैं अपना विषय है। इस दृष्टि से यह संपूर्ण प्रथम स्तुति है।

डा० मेटे अपने विचारों पर दृढ़ थी। उन्हें हमारा लिखित पंजाबी साहित्य भेंट किया गया। चाहे श्रीमती मेटे पंजाबी नहीं जानती थीं फिर भी उन्होंने हमारे साहित्य की प्रशंसा करते हुए इसे मील का पत्थर बताया। यह साहित्य उन्होंने वालिन विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में रखने का निर्णय किया।

फिर इस भाषण माला में श्री अगर चन्द नाहटा वीकानेर व श्रीमती शारदा गांधी का हिन्दु व जैन रामायण पर भाषण हुआ। श्री नाहटा का नाम भारतीय साहित्य, पुरातत्व, हस्तलिखित विषयों में जाना माना नाम है। वह कुछ समय मेरे घर मेहमान रहे। नारवाड़ी पहरावे में वह पधारे थे। कोई लिखित भाषण उनके हाथ में नहीं था। वह अपने भाषण से एक दिन पहले पधारे थे। रात्रि को वह मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के यहां रुके। श्री नाहटा शुद्ध धार्मिक वृत्ति के श्रावक थे। सारी रात्रि समाधिक करते थे। सुबह उठ कर ही देव पूजा करने के बाद ही भोजन लेने का उनका नियम था। उनकी अपनी लाइब्रेरी एक यूनिवर्सिटी से बढ़कर है। उन्होंने हिन्दी के रासो साहित्य को साहित्य को अवगत कराया। सारे भारत में भ्रमण कर हस्तलिखित भण्डारों की सूची बनाई। वह इतिहास केसरी थे। सैकड़ों ग्रंथ उन्होंने संपादित किए थे। वह मामूली पढ़े लिखे थे। परन्तु उन्होंने अपनी शिक्षा से सैकड़ों विद्वानों का निर्माण किया। उन्होंने साधु साध्वियों के शास्त्रों का अध्ययन कराया। अनेकों विदेशी विद्वान भी इनसे प्रभावित थे।

यह भाषण माला काफी ज्ञानवर्धक रही है। इस भाषण माला में हमें जैन विद्वान डा० कैलाश चन्द्र जैन का प्रसिद्ध विषय जैन धर्म में ईश्वर की अवधारणा के बारे में भाषण सुनने को मिला। डा० जैन भारतीय ज्ञान पीठ के प्रमुख सम्पादक रहे हैं। आप दिगम्बरों ग्रंथों के प्रकाशक पंडित माने जाते हैं। जैन धर्म की ईश्वर की धारणा इतनी विचित्र है कि कई लोग जैन धर्म को नास्तिक तक कह देते हैं। इसका कारण जैन धर्म का ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता न मानना व वेदों का विरोध है। इस सब के बावजूद जैन धर्म परलोक, पुर्नजन्म, कर्म, नरक, स्वर्ग, मोक्ष को मानना है। वेद को मानने से अगर कोई आस्तिक कहलाता है, तो इस्लाम, यहूदी, मुसलमान, सिक्ख व भक्ति मार्ग के संत भी नास्तिक ठहराएंगे। ब्राह्मणों की इस परिभाषा का डा० जैन ने खुल कर खण्डन किया। जैनों की ईश्वर के प्रति विचारधारा को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया। यह चर्चा हिन्दी में के कारण सरल व स्पष्ट थी। लोगों को जैन धर्म की ईश्वर के प्रति अवधारणा, निर्वाण, आत्मा व कर्म संबंधी विचारों का पता चला। विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर भी डा० कैलाश चन्द्र जैन ने दिया।

इन भाषणों में एक महत्वपूर्ण नाम है डा० जगदीश चन्द्र जैन बम्बई का नाम उल्लेखनीय है। अपनी स्मृति में भारत सरकार ने डाक टिकट जारी किया है। वह भी दो बार भाषण देने पधारे। वह किसी समय चीन में भारत के राजदूत कार्यलय में हिन्दी पढ़ाते थे। आप ने प्राकृत भाषा का इतिहास ग्रंथ लिखा, प्राचीन जैन तीर्थ नामक पुस्तक, श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यापीठ वाराणसी में प्रकाशित हो चुकी है। इन का एक भाषण जैन शासन देवी

आस्था की ओर बढ़ते कदम

वात हो रही है। भारत में जैन प्रारम्भ से ही अल्पसंख्यक रहे हैं। १९६२ में अल्पसंख्यक आयोग को कानूनी मान्यता मिली, तो जैनों का नाम निकाल दिया गया। जब पुनः सरकार तैयार हुई, तो समय बीत चुका था। कई लोग अल्पसंख्यक का अर्थ आरक्षण लगाते हैं। यह बिल्कुल गलत है। क्योंकि भारत में आरक्षण मात्र पछड़ी श्रेणी व अनुसूचित जाति के लिए है, धर्म के लिए कोई आरक्षण नहीं। कुछ लोग तर्क करते हैं कि ऐसा करने से जैन लोग नीच जातियों में माने जाएंगे। दोनों की बातें गलत हैं। यह मांग जैन लोग इस लिए कर रहे हैं कि जैन धर्म को स्वतंत्रता वनी रहे। सांस्कृतिक पहचान वनी रहे। हालांकि कुछ आर.एस.एस. से प्रभावित नेता धीमे स्वर में इसका विरोध करते हैं। अगर धर्म को जाति नीच ही मानी जाए तो क्या सिक्ख नीच हैं ? पिछड़ी श्रेणी में, कई दक्षिण भारतीय जातियां हैं उनमें जैन हैं वह अपनी जाति के कारण हैं, धर्म के कारण नहीं ? यह इतिहासक पहचान को बनाए रखने का मामला है। जिस के लिए हमारे पूर्व आचार्यों ने कुरबानी दी थी।

आज भारत में मध्य प्रदेश, बिहार, तामिलनाडू, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा ने जैन को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान कर दिया है। सब से बड़ा दवाव केन्द्र सरकार पर बढ़ा है। अगर जैन यह दर्जा नहीं लेते तो जैनों को अपने संस्थान, अपनी इच्छा से चलाने असंभव हैं। क्योंकि आज के युग में जो संस्थान जैन अपने धन से खोलते हैं, अल्पसंख्यक दर्जा मिलते ही उनमें ५० प्रतिशत विद्यार्थी आरक्षित हो जाएंगे। दूसरा जैन मन्दिर, जो स्वयं जैन चलाते हैं, यह दर्जा मिलने के कारण सरकार के हाथों में सीधे चले जाएंगे। वैसे केन्द्र सरकार को इस में एतराज नहीं होना चाहिए। परन्तु राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी

अस्था की ओर बढ़ते कटम
 जानें जा चुकी हैं। यह भूचाल २६ जनवरी २००१ को आया था। लाखों लोग बेघर हो गए। सारे विश्व से सहायता आ रही है। दुख की बात है, कि यह सारे शहर जैन बहुसंख्यक थे। कई जैन मन्दिरों का नुकसान हुआ। ३५ के करीब साधु साध्वियों को पता नहीं चल सका। जैन समाज ने गुजरात राहत कोष में विपूल धन देकर सहायता कार्य को आगे बढ़ाया। वीरभद्रराज राजगृही और श्री नकोड़ा पार्श्वनाथ ट्रस्ट का कार्य उल्लेखनीय है जो अब भी चल रहे हैं। इस से ज्यादा भगवान महावीर के सिद्धांतों की अच्छी पालना और क्या हो सकती है।

देहली में एक राष्ट्रीय समारोह सम्पन्न हो चुका है। इस वर्ष को अहिंसा वर्ष के रूप में मनाया जाना है। सारा साल समारोह मनाए जाने हैं। नए प्रकाशन हो रहे हैं। पहले हमारी २५वीं सन्निति पंजाब जो महावीर निर्वाण शताब्दी समिति के वैनर तले प्रकाशन व अन्य कार्य करती थी, अब यही समिति, जन्म कल्याणक समिति के वैनर तले कार्य कर रही है। इस के अभी पांच प्रकाशन हो चुके हैं। इनमें साध्वी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज की ३ अनापूर्वी का प्रकाशन है। सचित्र कथा की पुस्तक नन्दलाल गणिकार हैं एक हमारा ग्रंथ सचित्र भगवान महावीर है। समिति मुझे संयोजक मान कर कार्य कर रही है। इसके कार्यकारिणी सचिव मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन है।

यह वर्ष कार्य का वर्ष है। इस में भारत सरकार टिकट जारी कर चुकी है। महावीर वनस्थली दिल्ली का विकास कर रही है। सरकारी समिति भगवान महावीर मैमोरीयल को संपूर्ण करने का निश्चय कर चुकी है। यह वर्ष अहिंसा वर्ष है। इस वर्ष जैन समाज में अपने अधिकारों की प्रति चेतना जागी है। जैन धर्म को अल्पसंख्यक दर्जा देने की

आस्था की ओर बढ़ते कदम वात हो रही है। भारत में जैन प्रारम्भ से ही अल्पसंख्यक रहे हैं। १९६२ में अल्पसंख्यक आयोग को कानूनी मान्यता मिली, तो जैनों का नाम निकाल दिया गया। जब पुनः सरकार तैयार हुई, तो समय बीत चुका था। कई लोग अल्पसंख्यक का अर्थ आरक्षण लगाते हैं। यह विल्कुल गलत है। क्योंकि भारत में आरक्षण मात्र पछड़ी श्रेणी व अनुसूचित जाति के लिए है, धर्म के लिए कोई आरक्षण नहीं। कुछ लोग तर्क करते हैं कि ऐसा करने से जैन लोग नीच जातियों में माने जाएंगे। दोनों की बातें गलत हैं। यह मांग जैन लोग इस लिए कर रहे हैं कि जैन धर्म को स्वतंत्रता बनी रहे। सांस्कृतिक पहचान बनी रहे। हालांकि कुछ आर.एस.एस. से प्रभावित नेता धीमे स्वर में इसका विरोध करते हैं। अगर धर्म को जाति नीच ही मानी जाए तो क्या सिक्ख नीच हैं ? पिछड़ी श्रेणी में, कई दक्षिण भारतीय जातियां हैं उनमें जैन हैं व अपनी जाति के कारण हैं, धर्म के कारण नहीं ? यह इतिहासिक पहचान को बनाए रखने का मामला है। जिस के लिए हमें धर्म आचार्यों ने कुरवानी दी थी।

आज भारत में मध्य प्रदेश, बिहार, तामिलनाडू, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा ने जैन को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान कर दिया है। सब से बड़ा दवाव केन्द्र सरकार पर बढ़ा है। अगर जैन यह दर्जा नहीं लेते तो जैनों को अपने संस्थान, अपनी इच्छा से चलाने असंभव हैं। क्योंकि आज के युग में जो संस्थान जैन अपने धन से खोलते हैं, अल्पसंख्यक दर्जा मिलते ही उनमें ५० प्रतिशत विद्यार्थी आरक्षित हो जाएंगे। दूसरा जैन मन्दिर, जो स्वयं जैन चलाते हैं, यह दर्जा मिलने के कारण सरकार के हाथों में सीधे चले जाएंगे। वैसे केन्द्र सरकार को इस में एतराज नहीं होना चाहिए। परन्तु राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
होने के कारण सरकार ऐसा नहीं कर पा रही।

आज भी भारत में अनेकों संस्थाएं जैन धर्म के प्रति द्वेषवमन कर रही हैं। वह जैन मुनियों को जला देती है। प्रतिमाओं का अपमान करती है। अपनी खरीदी सम्पत्ति पर मंदिर नहीं बनाने देती। जैन समाज को वह वर्ग भी अब यह सोचने को मजबूर हो गया है, जो कभी अल्पसंख्यक दर्जा को विरोध करता था। इस बात को ध्यान में रखकर मुझे पंजाब राज्य कांग्रेस में अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ में उपसभापति नियुक्त किया गया। इस का अच्छा उत्तर मिला। जैन समाज अपने अधिकारों को समझने लगा है। जिन राज्य सरकारों का मैंने वर्णन किया है उनकी विधानसभा ने यह पास किया है। दर असल राज्य सरकारों का विषय है। जैन समाचार पत्रों में इस विषय की चर्चा है। भारत के मान्नीय उच्चतम न्यायालय ने इसे राज्यों का विषय माना है।

वाकी अधिकतर संस्थाओं में जन्म कल्याणक महोत्सव पर भव्य योजनाएं सामने आ रही हैं। इनमें एक योजना हमारे पंजाब में आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज ने प्रस्तुत की है। इस योजना का नाम है “आदिश्वर धाम”। सन्मति नगर कुष्प कलां में ७० बीघा जमीन में एक कम्प्लैक्स तैयार हो रहा है। इस में मूलनायक भगवान ऋषभदेव हैं, इस में दादावाड़ी है। एक २४ तीर्थंकरों का भव्य मन्दिर व म्यूजियम बन रहा है। दादावाड़ी में प्रभावक आचार्य साधु व साध्वी की प्रतिमाएं हैं। इसी के प्रांगण में गौ सदन, साधु उपाश्रय, साध्वी उपाश्रय, भोजनालय का भी निर्माण हो चुका है। मंदिर का कार्य लम्बा है। जो चल रहा है। धर्मशाला निर्माणाधीन है। मूल भव्य मंदिर का निर्माण चल रहा है।

इसी भव्य प्रांगण में हमने अपनी गुरुणी स्व० उपप्रवर्तनी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज के नाम से पुस्तकालय

आस्था की ओर बढ़ते कटम का निर्माण करवाया है। साध्वी श्री स्वर्ण कांता के गुरु भक्त इसमें सम्पूर्ण रूप से सहयोग दिया। यह भवन उसी समय तैयार हो गया था जब हमारी गुरुणी बीमार थीं। उनकी शिष्याएं साध्वी गुरुणी सुधा जी महाराज व साध्वी राजकुमारी जी महाराज का आशीर्वाद व सहयोग हमें इस संदर्भ में मिलता रहा है। इस भव्य भवन में हमारे परिवार का भी कुछ सहयोग रहा है।

इसी संदर्भ में साध्वी श्री महिमा श्री के नाम का उल्लेख करना जरूरी है। वह मालेरकोटला में तीर्थंकर साधना केन्द्र की संचालिका हैं। उन्होंने अनेकों बच्चों को जैन धर्म पढाया है। उन्होंने मेरा सम्मान पर्यूषण पर्व पर जैन समाज रत्न से किया। उनके इस केन्द्र निर्माण में मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन का भी सहयोग रहा है। शुरू से वहां भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान करने का भाव था। इसी बात को ध्यान में रख कर इसी वर्ष उन्होंने एक दर्शनीय जैन मंदिर का निर्माण किया। इस के समारोह में मुझे मुख्य अतिथि घोषित किया गया। प्रतिमा के नीचे मुझे निर्देशक लिख कर सम्मानित किया गया। जीवन में प्रथम बार मैंने जिन प्रतिमा के १८ अभिषेक देखे। इतना भव्य समारोह पहले कभी साध्वी जी के यहां नहीं हुआ था। बाहर से लोग आये। अभिषेक पूजा श्री महेन्द्र जैन मस्त देव दर्शन धूप समाना वालों ने करवाई। बाद में स्नात्र पूजा में मैंने भाग लिया।

इस प्रकार २६वीं महावीर जन्म कल्याणक पर राज्य स्तरीय समारोह लुधियाना में हुआ। जिस में दूसरी बार समस्त जैन समाज इकट्ठा हुआ। मुख्यमंत्री पंजाब ने अढाई करोड़ रूपए भगवान महावीर स्मारक के लिए घोषित किए जो उन्होंने शीघ्र ही समिति को सौंप दिए। इन रूपयों से

आस्था की ओर बढ़ते कदम
खन्ना लुधियाना रोड़ पर ११ ऐकड़ का भूखण्ड खरीदा गया है। जिस पर जैन सनाज भगवानी महावीर का सुन्दर स्मारक सभी जैन सम्प्रदायों के सहयोग से निर्माण कर रहा है।

पंजाब सरकार ने सोने व चांदी के सिक्के एग्री इंडस्ट्री के माध्यम से जारी किए। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने पांच रूपए का करंसी सिक्का व सौ रूपए का यादगारी सिक्के जारी किए। इनका विमोचन माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने किया। सरकार ने इस शताब्दी वर्ष में जैन तीर्थों के रख-रखाव पर काफी ध्यान दिया गया है। इसके लिए जैन संस्थाओं को उचित अनुदान भी दिया है।

प्रकरण - ८

मेरा अन्य संस्थाओं से संबंध

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। वह समाज से कुछ प्राप्त करता है। समाज को कुछ देता है। इसी संदर्भ में जहां मैंने पिछले प्रकरण में अपने द्वारा स्थापित संस्थाओं का उल्लेख किया है। अब इस प्रकरण में मैं उन संस्थाओं का वर्णन करूंगा, जिनसे मेरा संबंध रहा है। जिन संस्थाओं ने मुझे अपनी संस्थाओं में स्थान देकर सेवा का सुअवसर प्रदान किया है। इन संस्थाओं में सर्वाधिक संस्थाएं विश्वधर्म सम्मेलन संस्थापक, प्रसिद्ध अंतराष्ट्रीय जैन आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज की संस्थाएं हैं। इन में कुछ संस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है :

विश्वधर्म संगम :

आचार्य श्री सुशील कुमार जी इस के संस्थापक थे। इस संस्था का उद्देश्य संसार के सभी धर्मों को एक मंच पर लाना था। इस कार्य में आचार्य श्री के विश्वभर के धार्मिक, समाजिक व राजनैतिक नेताओं का महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा। इन में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी, डा० राधाकृष्ण व प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू व इंदिरा गांधी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस संस्था की सारे विश्व में शाखाएं हैं। मैं इस संस्था का डैलीगेट सदस्य हूँ।

इंटरनैशनल जैन कान्फ्रेंस :

जैनाचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज द्वारा स्थापित इस संस्था का उद्देश्य संसार भर के जैनों को एक मंच पर लाना है। आचार्य श्री ने अपने जीवन काल में इस

संस्था की ओर बढ़ते कदम
 संस्था का विकास संसार भर में किया। उनकं जीवन में ३ सम्मेलन विदेशों में हुए। जिनका मुझे विधिवत् निमंत्रण मिला। मूझे नई दिल्ली में हुए सम्मेलन में शामिल होने का सौभाग्य मिला। मैं तब से इस संस्था का डैलीगेट मैबर हूं। इस सम्मेलन पर हम ने पंजाबी साहित्य भी भेंट किया था।
इंटरनैशनल जैन कांग्रेस :

इस जैन कान्फ्रेंस का विस्तार रूप कांग्रेस के रूप में आया। इस के कई सम्मेलन विदेशों की धरती पर हुए। एक सम्मेलन भारत में नई दिल्ली के विज्ञान भवन में हुआ। तब विशाल पुस्तक प्रदर्शनी का भव्य आयोजन हुआ। सारे संसार से जैन विद्वान वहां शामिल हुए। इसका मुख्यालय सिद्धाचलम न्यू-जर्सी यू.एस.ए. में है।

श्री महावीर जैन संघ पंजाब (लुधियाना) :

इस संस्था का मैं उपप्रधान हूं। इस के माध्यम से भगवान महावीर का २५०० साला निर्वाण महोत्सव मनाया गया।

महावीर इंटरनैशनल :

यह समाज सेवी संस्था है। इस की स्थापना जयपूर में हुई थी। मुझे इस के जयपुर अधिवेशन में शामिल होने व डैलीगेट बनने का अवसर मिला। मैं मालेरकोटला शाखा का संयोजक बना। इस संस्था ने दीन दुखियों की सेवा में क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। विशेषतः विकलांगों के लिए निशुल्क अंग लगाने की व्यवस्था ये संस्था आज भी कर रही है।

विश्व पंजाबी लेखक सम्मेलन :

यह संसार के पंजाबी लेखकों की संस्था है। इस के दो सम्मेलनों में मैं डैलीगेट रहा हूं। इस संस्थाओं के

अस्था की ओर बढ़ते कदम
सम्मेलन विश्व के कोने कोने में होते रहते हैं। इस संस्था के प्रथम सम्मेलन को प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने संबोधन किया अंतिम दिवस राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने संबोधन किया। इन सम्मेलनों के माध्यम से हमें लेखकों से मिलने का मंच मिला। इस का एक सम्मेलन इस वर्ष चंडीगढ़ व लाहौर में हो चुका है। चण्डीगढ़ के सम्मेलन में मैंने भाग लिया था। इस में पाकिस्तानी पंजाबी लेखकों से मिलना हुआ।

अंतराष्ट्रीय महावीर जैन मिशन :

इस संस्था की स्थापना संसार में जैन धर्म के प्रचार हेतु की थी। इस संस्था में कार्य करने का मुझे सौभाग्य मिला है। इस संस्था के माध्यम से आचार्य श्री सुशील कुमार जी ने जैन संस्थाओं का अंतराष्ट्रीय स्तर पर जाल बिछा दिया। इस संस्था ने बहुत से अंग्रेजी भाषा में प्रकाशन किए हैं। इस संस्था की सब से बड़ी देन न्यूजसी में सिद्धांचल जैन तीर्थ है। इस संस्था ने संसार के कोने कोने में जैन मंदिर, आश्रम व ध्यान केन्द्रों की स्थापना की है।

विश्व अहिंसा संघ :

अहिंसा प्रेमियों के लिए यह सुन्दर मंच है। इस में हर धर्म, क्षेत्र, जाति, रंग के भेद के बिना शामिल हो सकता है। इस के एक सम्मेलन में मुझे डेलीगेट बनने का सौभाग्य मिला। इस की स्थापना आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने की थी। यह अहिंसा, पर्यावरण व पशु कल्याण हेतु कार्य करने वाली संस्था है।

विश्व हिस्टरी कांफ्रेंस :

यह कांफ्रेंस पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला में होती है। मैं कई वर्षों से लगातार डेलीगेट चला आ रहा हूँ। इस

कांफ्रेंस में इतिहासकारों से अच्छी भेंट हो जाती है। इतिहास के बारे में विमर्श हो जाता है।

पंजाबी साहित्य अकादमी लुधियाना :

यह संसार के पंजाबी लेखकों की केन्द्रीय संस्था है। जिसे सरकार की सहायता प्राप्त है। इस के सदस्य बनने के लिए पहली शर्त है कि कम से कम ३ पुस्तकें पंजाबी भाषा में प्रकाशित हो चुकी हों। हम दोनों इस संस्था के लाईफ मैम्बर हैं। इस के चुनावों में हमें भाग लेने का सौभाग्य मिला है।

आचार्य सुशील कुमार जैन मैमोरीयल ट्रस्ट :

इस संस्था की स्थापना आचार्य साध्वी डा० साधना जी महाराज ने, आचार्य श्री सुशील कुमार जी के स्वर्गवास के बाद की थी। इस का उद्देश्य आचार्य का स्मारक बनाना था। साध्वी जी की आज्ञानुसार स्मारक का कार्य चल रहा है। इस स्मारक की १०० सदस्यों वाली विश्व स्तरीय कमेटी के हन दोनों सदस्य हैं।

साध्वी स्वर्ण अभिनंदन ग्रंथ समिति :

उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की ५०वीं दीक्षा जयंती पर, गुरुणी के भक्तों ने इस समिति का निर्माण किया था। समिति ने मुझे संयोजक रखा गया। अभिनंदन ग्रंथ में मुझे प्रधान सम्पादक बनाया गया। इस समिति के तत्वाधान में अभिनंदन ग्रंथ छपा।

आदिश्वरधाम :

आदिश्वर धाम के संस्थापक जैन आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज हैं। उन्होंने इस ट्रस्ट की कार्यकारिणी का उप-प्रधान नियुक्त किया है। मैं जितनी सेवा इस संस्था की करना चाहता हूँ, वह पर्याप्त नहीं। इस संस्था के कार्य में

मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन बहुत सहायक हैं। वह हर कार्य में मेरे से विमर्श करते हैं। साध्वी स्वर्णा जैन पुस्तकालय इसी विमर्श का फल है। इस पुस्तकालय को साध्वी गुरुणी श्री सुधा जी महाराज ने पुस्तकों का सहयोग दिया है। यह धाम जैन मुनि श्री विमल चन्द्र चैरिटेबल, सन्मति ट्रस्ट के आधीन कार्य करता है। ट्रस्ट की संस्थाएं कुष्प, जगराओं, जालंधर, उदमपुर, जम्मू व पठानकोट व रणवीर सिंह पुरा में हैं। यह संस्था अनेकों स्कूलों, कालेजों, सिलाई स्कूलों, साईंस कालेजों, मंदिरों, गौ सदनों व उपाश्रयों को चलाती है। कुष्प में भव्य जैन मंदिर बन रहा है जिसकी आधारशिला आचार्य श्री नित्यानंद जी महाराज ने की थी। सारे भारत में यह स्थान जैन कला, स्थापत्य व संस्कृति का केन्द्र बन जाएगा। हमारी गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का यह अनुपम व शाश्वत स्मारक होगा। यह संस्था पंजाब का भविष्य में नाम करेगी। इस संस्था की संचालिका साध्वी डा० जैन भारती जी महाराज हैं। जो ३० वर्षों से संस्था की सेवा कर रही हैं। उनके साथ उनकी शिष्याएं भी सेवा कर रही हैं।

श्री श्वेताम्बर आदिश्वर धाम जैन मन्दिर सोसाईटी :

यह कुष्प में बन रहे मंदिर का भाग है। मैं इस कमेटी का सदस्य हूँ। मेरा धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन इस संस्था का सचिव है। मंदिर निर्माण की जिम्मेवारी गुरुदेव ने इस संस्था को सौंप रखी है। इस मंदिर की सारी प्रेरणा गुरुदेव को शिष्या डा० जैन भारती साध्वी, साध्वी श्री रमा भारती व साध्वी श्री आशा भारती जी हैं। इस मन्दिर को खरतरगच्छ के प्रसिद्ध उपाध्याय गणिमणि प्रभवसागर जी महाराज ने २४ जैन प्रतिमाएं श्री जिनकान्ति सागर ट्रस्ट

आस्था की ओर बढ़ते कदम
मांडवला के माध्यम से इस मन्दिर को भेंट की हैं।

अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ के वाईस चेयरमैन :

मैं पंजाब प्रदेश कांग्रेस के अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ का उप-सभापति रह चुका हूँ। मेरा शुरू से विश्वास रहा है कि जैन धर्म एक अल्पसंख्यक धर्म है। गिनती में कम है। कम का कम के रूप में मान्यता न देना अपराध है। हमारे नेता जो संविधान के प्रति आस्था रखने की प्रतिज्ञा करते हैं पर संविधान का पालन ५२ सालों में नहीं कर पाए। संविधान की धारा २५(४) में जैन, बौद्ध व सिक्खों को अल्प संख्यक माना गया है। उनके विशेष अधिकार निश्चित हैं। वह अपनी संस्थाएं अपनी आस्था के अनुसार चला सकते हैं। पर एक विशेष राजनैतिक दल में अधिकारी जैन होने के कारण यह मांग दवा दी गई। पूर्व समाज भलाई मंत्री श्री रामूवालीया मंत्री व अल्पसंख्यक आयोग जब जैनों को यह अधिकार देने को तैयार हुए तो एक राजनैतिक पार्टी ने इस बात का विरोध किया कि हम हिन्दू समाज का अंग हैं। हमें यह दर्जा नहीं लेना।

सरकार ने समझ लिया कि जैन लोगों का कोई राजनैतिक संगठन नहीं। इस लिए इस मांग को ठण्डे बस्ते में डाल रखा है। पर अब जब जैनों पर जालोर, पाली में जुल्म हुए, उनके मकान तोड़े गए, मुर्तियां तोड़ी गई तो जैनों की नींद खुली अब विरोध करने वाली पार्टियां भी दबी जुवान से जैनों की मांग इस का समर्थन करती है। मुझे शुरू से कांग्रेस से लगाव रहा है। इस चुनाव में चौधरी अब्दुल गुफार चेयरमैन ने प्रमुख भाग लिया। मैं वाईस चेयरमैन बना। कांग्रेस के दिल्ली कांग्रेस हैड-क्वार्टर पर जाने का सौभाग्य मिला। अल्प संख्यकों पर इस वर्ष अलवर में जुल्म हुए। ईसाई मिशनरी डाक्टर को जिंदा जला दिया गया। शांति

प्रिय लोगों ने राजघाट गांधी की समाधि पर धरणा दिया। एक दिन मैंने भी धरणा दिया। प्रसन्नता की बात थी उस दिन सभी धर्म के अल्पसंख्यक गुरु शामिल थे। मुझे उनसे भेंट करने व साहित्य भेंट करने का अवसर मिला। मैंने अपने पूरे वर्ष केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को इस संदर्भ में लिखा। अब कांग्रेस प्रधान श्रीमति सोनिया गांधी से देहली में जैनों ने यह मांग उठाई है। मुझे विश्वास है कि जल्द ही केन्द्र सरकार कोई ठोस कदम उठाएगी।

मैंने इस प्रकरण में उन संस्थाओं का संक्षिप्त पर महत्वपूर्ण वर्णन किया जिन की स्थापना मैंने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की प्रेरणा से की थी। आचार्य सुशील कुमार जी महाराज के उपकार हम कैसे भूला सकते हैं जिन्होंने जैन धर्म को विश्व के कोने कोने तक पहुंचाया। उनके स्वर्ग वास से पहले ही साध्वी डा० साधना जी महाराज गुरुदेव को कार्यों को आगे बढ़ा रही थी। उनके स्वर्गवास के बाद उन्होंने आचार्य सुशील मुनि पर शोधनिबंध लिख कर डी.लिट. की डिग्री प्राप्त की। आचार्य सुशील गौ सदन, आचार्य सुशील मार्ग, आचार्य सुशील चौक नई दिल्ली की स्थापना ही। होशियारपुर के पास एक हस्पताल का निर्माण पंजाब सरकार के सहयोग से करवाया। आचार्य सुशील मुनि के गुरु श्रद्धेय आचार्य सोभाग्य मुनि का आशीर्वाद भी कम नहीं रहा।

इसी प्रकार पंजाबी भाषा में जैन साहित्य लिखने के कारण मुझे बहुत सारी पंजाबी संस्थाओं का बुलावा आता रहता है। इन संस्थाओं ने हमारे जैन साहित्य का बहुत सन्मान किया है। इस कारण विद्वानों से मिलने का अवसर मिला है।

संस्थाओं के निर्माण के साथ साथ मुझे कुछ

संस्थाओं की सेवा करने का अवसर मिला। इन संस्थाओं की स्थापना कर व इन से जुड़ कर भी मेरी आस्था को बहुत बल मिला। मुझे अपने धर्म को फैलाने के लिए सुन्दर मंच मिला। संस्था के माध्यम से अपनी बात पहुंचाई जा सकती है। जो हम जन साधारण को कहना चाहते हैं वह अपनी इच्छा व शक्ति अनुसार कह सकते हैं। यह संस्था हमें नई पहचान देती है। इन के माध्यम से अपने किए कार्यों को प्रकट करने का अवसर मिलता है। जैन धर्म के बारे में जो जन साधारण में शंका पाई जाती है उन्हें दूर करने की कोशिश भी हो जाती है। कुल निला कर यह संस्थाएं हमारे कार्य को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई है।

प्रकरण - ६

अवार्डों की स्थापना

किसी महापुरुष की स्मृति को ताजा रखने के कई ढंग हैं इन में अवार्ड का अपना स्थान है। साध्वी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज ने हमें ऐसे अवार्ड की स्थापना के लिए प्रेरणा दी जिनसे जैन धर्म व अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने वालों का सम्मान हो। उन्हें किसी विशेष दिवस पर बुला कर समाज सम्मानित करे। उनके कार्यों से समाज परिचित हो। जब से जैन चेवर पटियाला की स्थापना हुई थी तब से हमारा संपर्क विद्वानों से निरंतर बनता रहा है। उनकी साहित्यिक गतिविधियों का पता रहता है। पर उन्हें सम्मानित करने का ढंग अवार्ड से बढ़कर कोई नहीं लगा। यह सरल प्रक्रिया है, इस अवार्ड की कोई निश्चित राशि, स्थान नहीं है। हां निश्चित तिथि जरूर हो सकती है। जब उस महापुरुष का जन्म, दीक्षा व पुनः जयंती हो अवार्ड दिया जा सकता है। एक कार्य कठिन है, वह है विद्वानों के कार्य का चुनाव। इस के लिए एक सब कमेटी का निर्माण हुआ। यह कमेटी अपना सुझाव साध्वी श्री को प्रेषित करती। हमारी संस्था २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब जो अब २६वीं महावीर जन्म कल्याणक शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब को स्थान ले चुकी है, ने यह कार्य अपने हाथों में लिया। इसी प्रकार के दो अवार्डों की स्थापना स्व० उप-प्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की प्रेरणा से की है। प्रथम अवार्ड हिन्दी भाषा की प्रथम जैन महिला लेखिका प्रवर्तनी साध्वी पार्वती जी महाराज को समर्पित है। दूसरा अवार्ड मेरे दादा स्व० श्री नाथ राम जी जैन कूनरा की

आस्था की ओर बढ़ते कदम
मुकदमे की पैरवी के लिए आगरा आते तो इस जैन मित्र के वहां ठहरते थे, वहां आप के पिता श्री बलदेव सिंह का परिचय जैन साधुओं से हुआ। श्री बलदेव सिंह जैन मुनियों के प्रवचन सुनने लगे। जैन मुनियों का तप, जप व स्वाध्याय पूर्ण जीवन उन्हें अच्छा लगता था। बलदेव सिंह व उनकी धर्मपत्नी अपनी संतान से बहुत स्नेह करते थे।

एक बार श्री बलदेव सिंह अपनी बेटी पार्वती को लेकर आगरा में आए। वहां जैन मुनियों का प्रवचन सुना। दर्शन वन्दन किया। पहली ही भेट में बालिका पार्वती जैन मुनियों के जीवन से बहुत प्रभावित हुई। वह आचार्य नागर मल्ल जी से बहुत प्रभावित हुई। आचार्य श्री ने ज्योतिष के आधार पर श्री बलदेव सिंह को बताया कि तुम्हारी बेटी साधारण बालिका नहीं है यह भविष्य में जैन धर्म की शोभा बढ़ाएगी। अच्छा है इस लड़की को आप जैन धर्म को समर्पित कर दो। श्री बलदेव सिंह ने कहा, “महाराज ! मैं आप की हर बात मानने को तैयार हूं, पर इतना बड़ा फैसला लेने से पहले मुझे इस बालिका की माता से विमर्श करना पड़ेगा।

वापिस आ कर माता-पिता ने सहमति से बालिका को आचार्य श्री को समर्पित करने का निर्णय किया। आचार्य श्री ने इस बालिका को साध्वियों के सुपुर्द कर दिया। उस समय आप अल्पायु में थे। आचार्य श्री के शिष्य परिवार में आप ने जैन धर्म के शास्त्रों का अध्ययन शुरू किया। संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, हिन्दी, गुजराती व फारसी भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। आप ने थोड़ा अंग्रेजी भाषा का अध्ययन भी किया।

मात्र १३ वर्ष की आयु में आप अपनी ३ सखियों के साथ साध्वी बन गईं। साध्वी बनते ही आप ने

शास्त्रों का अध्ययन गुरूओ से विधिवत् रूप से अर्जित किया। आप की ज्ञान पिपासा इतनी तेज थी कि आप ने शास्त्र अध्ययन के लिए योग्य गुरूणी की तलाश शुरू की। आप देहली पधारे, वहां साध्वी मेलों के संघ में शामिल हो कर विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। साध्वी श्री का सारा जीवन क्रान्तिकारी था। उस समय समाज दहेज प्रथा, स्त्रियों में अशिक्षा, जात-पात, छुआ-छूत, बाल विवाह, व युवा वर्ग विभिन्न कुव्यसनों में फंसा हुआ था। आप ने इन बुराईयों के विरुद्ध कमर कसी। स्थान-स्थान पर खुले प्रवचन कर जैन ध्वज को उंचा फहराया। आज पंजाब में जितना साध्वी परिवार दिखाई देता है। अधिकांश का संबंध आप की परम्परा से है। आप ने अपने समय के सभी परम्पराओं के महात्माओं से धर्म चर्चाएं की थीं। शेरे-पंजाब लाला लाजपतराय आप के परम भक्त थे। जैन धर्म छोड़, आर्य समाज ग्रहण करने के पश्चात भी वह उनके प्रवचन सुनने आते थे। वह आप को धर्म माता मानते थे। आप के जन्माने में नाभा राज्यों में ब्राह्मणों ने जैन साधुओ का प्रतिबंध नाभा नरेश हीरा सिंह से लगवा दिया। आप ने इस आज्ञा को भंग कर देवी चौक नाभा में भाषण दिया। राजा के मंत्री आए। उन्होंने कुछ प्रश्न किए। जिनका साध्वी श्री ने विद्वतापूर्ण लिखित उत्तर दे कर लोगों की जैन धर्म के प्रति फैली आशंका का निवारण किया। उस के बाद कभी भी नाभा स्टेट में जैन मुनियों का प्रवेश बंद नहीं हुआ। महाराजा हीरा सिंह स्वयं आप के दर्शन करने पधारे। आप ने राजा को धर्म का प्रतिबोध दिया।

महासाध्वी के उपदेशों से अनेकों भव्य आत्माओं ने अपना कल्याण किया। जिन में कई लड़कियां तो बहुत प्रतिष्ठित घराने से थीं। इन में रायकोट निवासी साध्वी श्री राजमति जी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं साध्वी

श्री राजमति जी महाराज की शिष्य साध्वी श्री ईश्वरी देवी थी। साध्वी श्री ईश्वरी देवी जी की शिष्या साध्वी श्री पार्श्ववती जी महाराज थी। साध्वी श्री पार्श्ववती जी महाराज ही हमारी गुरुणी उप-प्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की दीक्षा गुरुणी थीं।

महासती पार्वती महान विदूषी थीं। वह हिन्दी भाषा की प्रथम जैन महिला लेखिका थीं जिन्होंने ४० से ज्यादा ग्रंथ हिन्दी साहित्य को प्रदान किए। उनके कुछ ग्रंथों का अनुवाद उर्दू भाषा में भी हुआ। उन्होंने अपने समय में जैनों के विभिन्न सम्प्रदायों के अतिरिक्त आर्य सामज के खण्डन का उत्तर सशक्त ढंग से दिया था। उनके ग्रंथ पढ़ने से उनकी योग्यता का पता चलता है। वह पंजाब सिंहनी थी। उनका भव्य शिष्य परिवार था। वह लेखिका के अतिरिक्त कवियत्रि थी। आप ने ढाल-चौपाई में अनेकों जैन चारित्र को पद्यमय ढंग से प्रस्तुत किया था। अभी वह ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

ऐसी भव्य आत्मा को समर्पित है इंटरनैशनल पार्वती जैन अवार्ड जिसे बहुत से राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय विद्वान प्राप्त कर कृत-कृत हो चुके हैं। जिन में कुछ का वर्णन हम आगे संक्षिप्त में करेंगे। इसी महा साध्वी की स्मृति में हमारी समिति ने जैन ऐकता को प्रमुख रखते हुए इस अवार्ड की स्थापना की है। इस के दो लाभ हमें मिले। सर्वप्रथम तो इस अवार्ड के माध्यम से प्रवर्तनी श्री पार्वती जी महाराज उनके साहित्य व समाज को देने के बारे में संसार को पता चला। हमारी गुरुणी उपप्रवर्तनी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज के कार्य की जैन, अजैन समाज में प्रशंसा हुई।

इस का दूसरा लाभ बहुत महत्वपूर्ण था। इस के माध्यम से हम संसार के लब्धि प्रतिष्ठित जैन विद्वानों के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 परिचय में आए। उनकी रचनाओं व कार्य से हम अवगत हुए। उन्हें इस अवार्ड के माध्यम से सम्मानित करने का हमें सौभाग्य मिला। मेरी धर्म के प्रति आस्था को नया आयाम मिला। यह अवार्ड भविष्य में हमारे सम्मान का कारण बना। पर हम इस सम्मान को अपना सम्मान नहीं मानते, बल्कि भगवान महावीर व जैन संस्कृति का सम्मान मानते हैं। इस सम्मान के माध्यम से हम बहुत सारे विद्वानों के संपर्क में आए। इस में कुछ एक का परिचय हम देना ठीक समझते हैं। इस का प्रथम अवार्ड संगारिया मंडी राजस्थान में डा० भट्ट के गुरु कलास वरून जर्मन को उनकी अनुपस्थिति में मिला। यह भव्य समारोह जैन युवा मण्डल ने जैन साध्वी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज की प्रेरणा से किया।

दूसरा अवार्ड डा० वी. भट्ट निर्देशक जैन चेयर को उनके निक्षेप संधी सूक्ष्म विवेचन के लिए मानसा में हमारी गुरुणी साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज के सानिध्य में प्रदान किया गया। एक भव्य समारोह था। मानसा के विशाल जैन स्कूल में भव्य समारोह रखा गया। यह अक्षय तृतीया का इतिहासिक दिन था। यह दिन वर्षों तप करने वालों के लिए पवित्र दिन होता है। इसी दिन भारत वर्ष के जैन हस्तिनापुर व शत्रुंजय तीर्थों पर वर्षों तप का पारणा करते हैं। यह वर्षों तप का संध भगवान ऋषभदेव से है। उन्हें एक वर्ष तक तप करने के बाद हस्तिनापुर में राजा श्रेयांस ने पारणा इक्षु रस से करवाया था। इसी की स्मृति में श्रमण वर्ग व साधु वर्ग इसी दिन तीर्थ व गुरु चरणों में इक्षु रस से पारणा करवाया जाता है। महासती जी का वरसी तप के पारणों भी उसी दिन था। इस में सर्वप्रथम मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने महासती का परिचय साध्वी स्वर्णकांता का परिचय व डा० भट्ट के कार्य का अपने लिखित भाषा में

उल्लेख किया गया। फिर एक जैन ट्राफी, शाल, प्रशस्ति पत्र व कुछ सन्मान राशी डा० भट्ट को दी गई। डा० भट्ट ने अपने भाषण में महासाध्वी श्री पार्वती जी महाराज के जीवन व उनकी साहित्य रचनाओं पर हिन्दी में भाषण दिया। डा० भट्ट मूलतः गुजराती है। उन्हें हिन्दी बोलने में कठिनाई आती है। जैन धर्म का उत्कृष्ट विद्वान हैं। अनेक भारतीय व विदेशी भाषाओं में पंडित हैं। अपने भाषण में उन्होंने साध्वी श्री को हर रचना पर विवेचन दिया। उन्हें महान धर्म रक्षिका की संज्ञा दी। उन्होंने महासाध्वी व हमारी समिति का, उन्हें यह अवार्ड के लिए आभार प्रकट किया।

इस प्रकार इन अवार्डों की घोषणा होने लगी। हम वर्ष भर अच्छे साहित्य की तलाश में रहते। जो पुस्तक हमारी कसौटी पर ठीक उतरती, उस को अवार्ड का नाम साध्वी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज को प्रेषित कर दिया जाता। महासाध्वी श्री स्वर्ण कांता जी महाराज हमारे द्वारा अनुमंडित रचना का निरीक्षण स्वयं करतीं। कई बार वह कृति और कृतिकार के बारे में चर्चा भी करती। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के वार्तालाप से उनकी शास्त्र ज्ञान के प्रति समझता के दर्शन होते हैं। इस अवार्ड के संबंध में मेरा लगातार यह प्रयत्न रहा है कि इस अवार्ड के लिए महिला लेखिका का चयन हो। चाहे वह कोई नियम नहीं था। मात्र इच्छा थी जिसका कारण यह था क्योंकि हमारी अवार्ड की नायिका एक विदूषी महिला है। इस की प्रेरिका भी एक महिला है। इस लिए मातृशक्ति के संगठन के लिए यह जरूरी है कि महिलाओं का सम्मान हो। भारतीय संस्कृति मातृ प्रधान संस्कृति है। ठीक है मध्यकाल में स्त्री और शुद्र को एक जी तराजू में रखा गया। पर श्रमण संस्कृति ने अनादिकाल से स्त्री को पुरुष के बराबर स्थान दिया। जैन

तीर्थंकरों के संघ में हमेशा साध्वीयों व श्राविकाओं की संख्या अधिकांश मात्रा में रही है। स्वयं श्रमण भगवान महावीर के श्री संघ में आर्य चन्दना सहित ३६,००० साध्वीयों का परिवार था। इन साध्वीयों में हर देश, कुल जाति, रंग, नस्ल व वर्ण की साध्वीयां थी। भगवान महावीर के बाद जैन धर्म में श्रमणी में परिवार चलता रहा। जैन इतिहास साध्वीयों के कारनामों से भरा पड़ा है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पुत्रीयों बाही, सुन्दरी का अपना इतिहास है। १६ तीर्थंकर भगवती मल्ली थीं। साध्वी राजुल की गौरव गाथा जैन इतिहास की शान है। पंजाब के स्थानकवासी इतिहास में सुनाम की साध्वी ज्ञाना का महत्वपूर्ण स्थान है। कहते हैं एक समय ऐसा भी आया, जब पंजाब में कोई साधू न रहा। ऐसे में सुनाम के श्री ज्ञाना जी महाराज ने अपने भानजे को संयम पथ पर आरुढ़ कर, साधु बनाया। उन्हें आगम का ज्ञान दिया। धीरे धीरे उनके शिष्य परिवार में साधुओं की संख्या बढ़ने लगी। समय आने पर साध्वी ज्ञाना जी ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया। साध्वी पार्वती जी महाराज का ऐसे साध्वी परिवार से रिश्ता था जिस ने जैन धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ समर्पित कर दिया।

अवार्ड का सिलसिला चालु हो चुका था। अब विद्वानों की खोज शुरू की। इस खोज में कुछ इतिहासक व्यक्तियों को अवार्ड दिए गए। जिस से अवार्ड की शोभा को चार चांद लग गए। हमने एक सनारोह दिल्ली में साध्वी डा० सरिता जी महाराज के नेश्राय में रखा। इस में फ्रांस की प्रसिद्ध जैन विदूषी डा० सी. कैय्या व डा० नलिनि वलवीर पधारी। यह अवार्डों का सुझाव डा० भट्ट ने रखा था। उस जमाने में देहली में वीडियो ग्राफी आ चुकी थी। इस अवार्ड के वितरण से पहले हम साध्वी स्वर्ण कांता जी महाराज के

परिवार के यहां ठहरे। उनके निवास वीर नगर, गुड़ मंडी में है। यहीं महाराज संसारिक बड़े भ्राता स्व. जगदीश चन्द्र जैन से मिले। बड़े सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने हमें अपने बच्चों की तरह रखा। उन्होंने महाराज श्री के दीक्षा से पहले के हालात, पाकिस्तान के समय की स्थितियां, लूटमार, महाराज की दीक्षा का आंखों देखा हाल सुनाया। १९४७ के बाद वह किस प्रकार अमृतसर, मेरठ व दिल्ली घूमते रहे। सारा दृश्य उनकी आंखों के सामने घूम रहा था। स्व. श्री जगदीश जैन भारत-पाक विभाजन को भूले नहीं थे। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के संसारिक छोटे भाई स्व० सुरेन्द्र कुमार जैन दिल्ली में रहते थे। सारा परिवार महाराज का हर तरह से ध्यान रखता। उन से बातें कर मेरे ज्ञान में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। उनका ज्ञान अनुभव पूरक था।

सदेरे हमें अपने विदेशी मेहमानों से मिलने ओवराय कांटीनैटल होटल जाना था। सुबह हुई, साध्वी श्री सरिता जी महाराज उस समय पी.एच.डी. नहीं थे। पर वह आगे पढ़ रहे थे। उन से हम प्रोग्राम तय कर चुके थे। इस लिए सुबह अपने विदेशी मेहमानों को मिलने पहुंचे। डा० कैय्या हमारी अंग्रेजी कम समझ रही थीं। परन्तु उनकी शिष्या डा० नलिनि बलवीर हिन्दी बोल सकती थीं। उन्होंने हमें हिन्दी में बात करने को कहा। उन्होंने बताया कि उनके पिता भारतीय व माता फ्रेंच हैं। उनकी माता जो फ्रांस उच्चायुक्त कार्यालय में हिन्दी पढ़ाने का कार्य करती है। उनकी संतान ही डा० नलिनि बलवीर है। उनका परिचय भारतीय विद्वानों व साधुओं से बहुत है। मैंने डा० सी. कैय्या का बायो-डाटा लिया। उनके बारे में धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन को बोलना था। निश्चित समय पर हम दोनों मेहमान जैन स्थानक सदर बाजार में पधारे। जैन सभा ने

उन्हें अभिनंदन पत्र समर्पित किया। अतिथियों व हमारा सम्मान किया।

समारोह साध्वी सरिता के मंगलाचरण व प्रवचन से शुरू हुआ। अपने प्रवचन में साध्वी श्री सरिता जी ने प्रवर्तनी श्री पार्वती जी का वर्णन विस्तार से किया। कई बातें उन्होंने प्रवर्तनी के बारे में ऐसी बताई, जिनका हमें पता न था। फिर हुआ मेहमानों का अभिनंदन। उनके गले में हार डाले गए। फिर मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने अपना लिखित भाषण व घोषणा पत्र पढ़ा। विदेशी जैन विदूषी इस समारोह से बहुत प्रसन्न हुई। उस ने अपनी सहायक अनुवादिका व शिष्या डा० नलिनि बलवीर की और से धन्यवाद पत्र पढ़ा। मैंने विदूषी डा० कैय्या को अवार्ड की ट्राफी, सम्मान राशि, प्रशस्ति पत्र व शाल ओढ़ाया। डा० नलिनि बलवीर का भी सम्मान किया गया। मेरे द्वारा अगला अवार्ड डा० नलिनि बलवीर को देने की घोषणा की गई। यह अवार्ड वाद में जर्मन राजदूत ने डा० भट्ट की सहायता से जर्मन पहुंचाया गया। इस समारोह में साध्वी सरिता जी ने धन्यवाद करते हुए कहा कि मैं साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की आभारी हूं कि उन्होंने मुझे यह स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। मैं उनकी ऋणी हूं। वह हमारी गुरुणी तुल्य है। उनका स्नेह व आशीर्वाद हमें हनेशा मिलता रहा है। भविष्य में मिलता रहेगा। तब से हमारा संपर्क दोनों विदूषियों से चलता रहा है। उन्होंने हमारे सूत्रकृतांग व निरयवालिका सूत्र में भूमिका लिखी है। मेरा पत्र व्यवहार आप से चलता रहता है।

इसी श्रृंखला में यह अवार्ड विश्व में जैन धर्म का प्रचार करने वाले, जैनाचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज

को चादर, ट्राफी सहित प्रदान किया गया। उन्हें कलिकाल कल्प तरु पद से विभूषित किया गया। यह समारोह विज्ञान भवन में हुआ।

आचार्य डा० नगराज जी महाराज को इस सम्मान को प्राप्त करने वालों में अग्रणी हैं जिन्हें जैन धर्म दिवांकर पद से अलंकृत किया गया। इस पद का प्रतीक चादर, ट्राफी उन्हें प्रदान की गई। उनसे यह अवार्ड उनकी कृति आगम और त्रिपिटक के लिए प्रदान किया गया। इसी क्रम में हम इस अवार्ड को प्राप्त करने वाले साधुओं में एक नाम और सामने आया वह था मुनि श्री रूप चन्द्र जी महाराज। इन संतों ने विदेशों में जैन धर्म जहां प्रभावना की है वहां हिन्दी भाषा में कई ग्रंथों की रचना की है। उनका सम्मान एक सादा समारोह में किया गया। उनकी कृति सुना है मैंने आयुष्मान को सन्मानित किया गया।

आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज की आज्ञानुवर्ती शिष्या डा० साधना जी महाराज बहुत प्रभाविका साध्वी हैं। जहां वह महानधर्म प्रचारिका, समाज सुधारिका, प्रवचन कवियत्रि हैं वहां वह संस्कृत, प्राकृत साहित्य की महान ज्ञाता हैं वह पहली जैन साध्वी हैं जिन्होंने पी.एचडी. की है। उनका शोध निबंध “अपभ्रंश जैन साहित्य” था। इसी ग्रंथ के लिए उन्हें भव्य समारोह में एक चादर ओढ़ाई गई। पूर्व केन्द्रीय संचार मंत्री स. बूटा सिंह ने उन्हें हमारी अवार्ड समिति की ओर से ट्राफी प्रदान की। इस अवसर पर मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने साध्वी जी का गुण गान किया। उनके उपकारों व जैन समाज के प्रति उन की देन के लिए, समाज का ध्यान उनकी और कराया गया। आचार्य श्री के देवलोक के वाद जिस तरह उन्होंने श्री संघ और आश्रम की देख रेख में जो ध्यान दिया है वह सतुल्य है। यही नहीं

अस्था की ओर बढ़ते कदम
 उन्होंने भारी विरोध के बीच आचार्य श्री की समाधि के निर्माण का कार्य जारी रखा है। आचार्य श्री के कार्य को आगे बढ़ाया है। उनकी परम्परा की रक्षा सुन्दर व्यवस्थित ढंग से की है। अगला अवार्ड डा० दमोदर शास्त्री को प्रदान किया गया। उन्होंने संस्कृत भाषा में जैन धर्म पर किये कार्य के लिए दिया गया।

इस अवार्ड के जीवन में एक महत्वपूर्ण प्रसंग तब आया, जब गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज देहली में पधारी। मैं यहां एक बात बता दूं कि महाराज श्री जीवन में दो बार ही देहली पधारे थे। एक बार जब उनके पिता श्री खजान चन्द जैन व माता दुर्गा देवी जी जैन जीवित थे और अंतिम बार उनके स्वर्गवास के बाद देहली पधारे। वहां उन्होंने देहली के विभिन्न भागों को पवित्र किया। चतुर्मास करोल बाग में किया। यह १९९२ की बात है। उस समय हमारे पंजाबी ग्रंथ भगवान महादेव जी की द्वितिय आवृत्ति करोल बाग के सुश्रावक सेठ सुशील कुमार जैन ने प्रकाशित करवाई थी। उस समय पंजाब कम्प्यूटर का नया युग आया था। हमारा यह ग्रंथ लुधियाना में मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन की देख रेख में छपा। उस समय ६ दिसंबर की घटना हुई नहीं थी। पर यह ग्रंथ ६ दिसंबर १९९२ के बाद प्रकाशित होना शुरू हुआ। उन दिनों मालेरकोटला में कफर्यू था। मेरे धर्म भ्राता ने यह ग्रंथ लुधियाना में रह कर एक सप्ताह में प्रकाशित करवा दिया। जब ग्रंथ छपा, तभी कफर्यू भी समाप्त हो चुका था। श्री चतुर्मास की समाप्ति पर वीर नगर गुड मंडी में एक समारोह रखा गया। जिस में साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के विदाई महोत्सव पर, यह अवार्ड कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के जैन बौद्ध धर्म के विद्वान डा० धर्म चन्द्र जैन को दिया गया। उनका शोध

प्रबंध तो बौद्ध धर्म पर था पर आप जैन धर्म के प्रकाण्ड पंडित हैं। जैन नय, व्याकरण इतिहास पर आप का पूर्ण अधिकार है। इस अवसर पर हमारे द्वारा अनुवादित श्री सूत्रकृतांग का पंजाबी अनुवाद साध्वी श्री को समर्पित किया गया। डा० जैन ने इस अवसर पर श्री सूत्रकृतांग सूत्र में प्रतिपादित विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला। इसी अवसर पर मेरे को डा० जैन पर बोलना था। मैंने इस अवसर पर कहा “आप संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित हैं आप ने अनेकों शोधार्थियों को जैन धर्म पर पी.एचडी. करवाई है। आज भी इनके आधीन कुछ पी.एचडी. कर रहे हैं। जैन नय निक्षेप पर आप माने हुए विद्वान हैं।

इस अवसर पर साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने स्वेच्छा से अगला अवार्ड श्रीमती पुष्पकला जैन को उनके शोध निबंध “स्याद्वाद मंजरी” पर देने की घोषण कर डाली। श्रीमती जैन को यह अवार्ड देने में कुछ विलंब हुआ। श्रीमती जैन एक प्रध्यापिका हैं। उन्होंने इतने गूढ़ विषय पर कार्य किया है। महासाध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की ५०वीं दीक्षा जयंती पर उन्हें यह अवार्ड अनेकों साधु-साध्वियों, श्रावक व श्राविकाओं के मध्य दिया गया। ऐसा भव्य समारोह उत्तर भारत में कम ही देखने को मिला है।

इस अवार्ड को उस समय और महत्व मिला जब हमारी समिति ने इस अवार्ड को विश्व प्रसिद्ध पंजाबी कवियत्री, नावलकार, कहानीकार व निबंधों की लेखिका डा० अमृता प्रीतम को सन्मानित किया गया। उनका जैन धर्म के विभिन्न आयामों के कार्य के लिए यह सम्मान था। श्रीमती अमृता प्रीतम हमारी पूर्व परिचयत लेखिका थीं। उन्हें हमारे द्वारा लिखित सारा साहित्य मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन प्रेषित करते रहे हैं। उन्होंने एक बार मुझे कच्चे धागे का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
रिश्ता नामक पुस्तक अपने आवास पर भेंट की थी। यह पुस्तक स्वपनों पर आधारित थी। उसी पुस्तक की प्रेरणा से मैंने अनजाने रिश्ते पुस्तक लिखी। जिसका सम्पादन मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने किया था। अमृता जी ने इस पुस्तक का विमोचन भी किया। इस में से एक स्वप्न अपनी पत्रिका नागमणि में प्रकाशित किया था। वह सचमुच संसार की सरल मना लेखिका हैं। अंतराष्ट्रीय स्तर पर संसार में प्रसिद्ध पुरस्कार वह प्राप्त कर चुकी हैं। वह सूफी परम्परा की पक्षधर हैं। उनके विचारों में आजकल आचार्य रजनीश की छाप स्पष्ट है। उन्हें दिल्ली सरकार ने २१वीं सदी की लेखिका घोषित किया है।

उन्हें यह अवार्ड उनकी वृद्धावस्था के कारण घर पर ही सादगी भरे समारोह में दिया गया। अमृता जी ने हमारे साहित्य और प्रभु महावीर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। उन्होंने साध्वी पावर्ती जी महाराज की क्रांतिकारी रचनाओं के लिए उन्हें याद किया। साथ में जैन धर्म की साध्वी परम्परा अच्छी लगी, जो बिना किसी भेद भाव से समस्त स्त्री जाति को बराबर का अधिकार देती है। उन्हें इस से पहले भारतीय ज्ञान पीठ अवार्ड मिल चुका था। भारत सरकार का शायद ही कोई अवार्ड हो जो उन्हें न मिला हो।

इस तरह यह अवार्ड का कार्यक्रम चलता रहा। अब साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का स्वर्गवास होने के बाद इस अवार्ड का जिम्मा उनकी विदूषी शिष्या साध्वी सुधा जी महाराज के आधीन हैं, जो हमारे हर कार्य में हमें आशीर्वाद देती रहती हैं।

इंटरनैशनल महावीर जैन शाकाहार अवार्ड

यह अवार्ड अहिंसा, शाकाहार जो जैन संस्कृति के

प्रमुख सिद्धांत हैं उनका प्रचार प्रसार करने वाले को दिया जाता है। पर आज का समाज इतना दूषित है कि ऐसे व्यक्ति गिने चुने मिलते हैं। बड़े जी प्रयत्न के बाद हमने यह अवार्ड नामधारी नेता श्री एच.एस. हंसपाल को भैण्णी साहिब (लुधियाना) में प्रदान किया। उनके बारे में हमें ज्ञानी जैल सिंह जी राष्ट्रपति के सचिव श्री पंछी ने बताया था। वह उस समय राज्य सभा के सदस्य थे। हमने उन्हें अवार्ड की सूचना देहली में उनके आवास पर दी। उन्होंने अवार्ड स्वीकार करते हुए कहा वसन्त पंचमी को नामधारी सम्मेलन होता है। इस में हमारे सतगुरु जगजीत सिंह जी पधारते हैं आप वहां आ जाईए।

हम भैण्णी के लिए श्री पंछी के साथ तैयार हुए। सारा गांव नामधारीयों का था। सतगुरु महाराज जी ने अपनी माला से हमारा सन्मान किया। हमारा समारोह दोपहर को रखा गया। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने सतगुरु श्री जगजीत सिंह जी की मौजूदगी में घोषणा पत्र पढ़ा। श्री हंसपाल जी के कार्यों की प्रशंसा की गई। मैंने श्री हंसपाल को शाल, अवार्ड राशि व ट्राफी भेंट की। सतगुरु महाराज जी को व श्री हंसपाल जी को सारा पंजाबी जैन साहित्य भेंट किया गया। इस दिन संसार भर के नामधारी इकट्ठे होते हैं। हमें उस दिन नामधारीयों से संबंधित इतिहासिक स्थल पर घूमाया गया। उनका गाय प्रेम देखने को मिला। उनकी देश भक्ति देखी। सभी नामधारी चमड़े का प्रयोग नहीं करते। सफेद खादी वस्त्र धारण करते हैं - शुद्ध शाकाहारी हैं।

प्रकरण - १०

हमारा साहित्य

साहित्य किसी समाज का दर्पण होता है। जैन साहित्य भारतीय व विदेशी भाषा में प्रकाशित हुआ, हो रहा है, भविष्य में भी होगा। जैन आचार्यों ने जीवन के हर पक्ष पर हर भाषा में साहित्य भारतीय संस्कृति को प्रदान किया है। आज भी लाखों हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारों में अप्रकाशित अवस्था में पड़े हैं। जिनका स्वाध्याय करने के लिए अनेकों संस्थाओं का निर्माण हुआ है। जैन आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज कहा करते थे, “जैनों से कई गुणा जैन साहित्य है।” जैन आचार्यों ने साहित्य निर्माण का एक सागर रचा है। यह परम्परा भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक पूर्वों, अंगों, उपांग, छेद सूत्रों प्रकिर्णक के रूप में विद्वान रहों। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् पूर्वों का ज्ञान लुप्त हो गया। पूर्वों का ज्ञान कितना विशाल था व अल्प आगम जो उपलब्ध हैं उनकी भव्यता का अनुमान देववाचक संकलित नंदी सूत्र में देखा जा सकता है। भगवान महावीर ने मोक्ष के लिए ज्ञान का सर्व प्रथम तत्व माना है। जिस ज्ञान में कोई शंका न हो। जिसे सर्वज्ञों ने कथन किया हो। ऐसे ज्ञान के संबंध में प्रभु महावीर ने मोक्ष मार्ग का कारण बताया है।

“मोक्ष मार्ग में ज्ञान की महत्ता को स्वीकार करते हुए प्रभु महावीर फुरमाते हैं :-

पढमं णाणं तओ दया

“साधक को प्रथम ज्ञान अर्जित करना चाहिए उस के पश्चात् उस ज्ञान के अनुसार दया (करुणा) आदि नियमों का पालन करना चाहिए।”

“स्वाध्याय के समान तप भूत काल में था न भविष्य में होगा ना वर्तमान में है।” ऐसा प्रभु महावीर का कथन है।

स्वाध्याय का एक अर्थ तो शास्त्रों का पठन पाठना है, दूसरा अर्थ आत्मा का अध्ययन है। स्वाध्याय करने वाले की कर्म निर्जरा होती है। स्वाध्याय करने वाला महातपस्वी है।

जैन धर्म में साहित्य दो प्रकार है (१) मुक्ति का कारण अंग उपांग साहित्य (२) अलोकिक या मिथ्या श्रुत। जिस श्रुत के पढ़ने से राग द्वेष बढ़े वह मिथ्या श्रुत है। श्रावक को दोनों तरह का साहित्य पठनीय है। पर मुझे तो आराधना सम्यक्त्व साहित्य की करनी है। हम श्रावक हैं, श्रावक धर्म के आराधक हैं। इस धर्म पर चलने का प्रयास करते हैं। इसके प्रचार प्रसार में स्वयं को लगाकर, धर्म की प्रभावना में सहायक बनने का प्रयत्न करना, हमारे जीवन का लक्ष्य है। हमारा सारा साहित्य धर्म के प्रचार प्रसार हेतु है। किसी धर्म की आलोचना हेतु नहीं।

भगवान महावीर के युग से लेकर वीर वि. सं. ६६८ तक आगम साहित्य श्रुत परम्परा से आगे चलता रहा। लिखना ठीक समझा जाता था। फिर आचार्यों ने सोचा “पंचम काल” (कलियुग) के प्रभाव से बुद्धिशील हो रही है, वृहत साहित्य नष्ट हो चुका है। बाकी साहित्य की रक्षा के लिए समस्त साहित्य को लिपिवद्ध करना, संघ हित में है” इसी विचार से गुजरात के वल्लभी नगर में ५०० साधुओं का सम्मेलन देवार्धीगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में हुआ। जिस में शेष याद साहित्य को लिपिवध किया गया। आज यही साहित्य श्वेताम्बर समाज का आधार है। दिगम्बर परम्परा ने इस साहित्य को कुछ मतभेदों को कारण मानने से इन्कार

आस्था की ओर बढ़ते कदम
करता है। यह सम्प्रदायः आचार्य कुन्दकुन्द जैसे ज्ञानीयों द्वारा रचित साहित्य को आगम तुल्य मानता है। दोनों परम्पराओं में विशेष सिद्धांतिक मतभेद नहीं, हां कुछ बातों को लेकर मामूली मतभेद हैं।

श्वेताम्बर साहित्य में कुछ आगम काफी प्राचीन हैं। उनकी भाषा काफी प्राचीन है। कुछ आगमों की गाथाएं दिगम्बर ग्रंथ मूलाचार में उपलब्ध हैं। समस्त जैन साहित्य का कभी पंजाबी अनुवाद नहीं हुआ था। इस का मुख्य कारण पंजाबी भाषा की एक लिपि न होना भी हो सकता है। स्वतंत्रता से पहले पंजाबी, फारसी गुरुमुखी अक्षरों में लिखी जाती थी, अब भी पाकिस्तान में पंजाबी फारसी लिपि लिखी व पढ़ी जाती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस भाषा की लिपि सिक्खों की धर्म लिपि गुरुमुखी हो गई। इन्हीं गुरुमुखी अक्षरों को पंजाबी के रूप में मान्यता मिली। १९६७ के बाद पंजाबी भाषा सरकारी भाषा बन गई।

पंजाब में रहने वाले साधारण जैन व अन्य लोग इस भाषा में साहित्य उपलब्ध न होने के कारण जैन धर्म से अनभिज्ञ थे। यह कमी जहां मुझे अखर रही थी, वहां गांव में प्रचार करने वाले साधु साध्वी भी इस कमी को महसूस करते थे, परन्तु उनका काम हिन्दी में चल जाता था। काम रुकता तो गांव में आकर था। इन सभी कमीयों को देख कर मैंने अपने धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन से विचार विमर्श किया। यह विमर्श ही हमारे साहित्यिक भविष्य का आधार बना। हम ३१ मार्च १९६६ को जब मिले थे, तब से ही स्वाध्यायशील थे। बहुत सी जैन धर्म व अणुव्रत की परिक्षाएं पास की थी। श्री रविन्द्र जैन तो पांचवीं कक्षा से जैन शिक्षा ग्रहण कर रहा था। हमें अपना उद्देश्य समझ में आ चुका था। गुरुओं का आशीर्वाद हमारे साथ था। उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

जास्था की ओर बढ़ते कदम
 महाराज, आचार्य श्री तुलसी जी महाराज, आचार्य श्री सुशील कुमार, आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज, उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज, भण्डारी श्री पदम चन्द जी महाराज, वर्तमान आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी महाराज, प्रवर्तक श्री फूल चन्द जी महाराज, श्री रत्न मुनि जी महाराज, आत्मनिधि मुनि श्री त्रिलोक चंद जी, मुनि श्री जय चन्द जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त था। फिर हमारा हाथ उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने धामा। उन्होंने आखिरी श्वास तक साथ निभाया। आज हम जो हैं, जैसे हैं वह सब पंजाबी जैन साहित्य व साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के आशीर्वाद से हैं। उनके स्वर्णवास के बाद उनके इस कार्य को उनकी शिष्या साध्वी श्री सुधा जी महाराज बढ़ा रही हैं।

हमारा साहित्य

मैं अपने सारे साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार करता हूँ :

विषय

भाषा

१. अनुवादित साहित्य - अर्धमागधी प्राकृत
२. अनुवादित साहित्य - हिन्दी
३. अनुवादित साहित्य - संस्कृत

हमारी मूल रचनाएं :

१. मूल साहित्य - पंजाबी
२. मूल साहित्य - हिन्दी

सम्पादित साहित्य :

१. सम्पादित ग्रंथ
२. अभिनंदन ग्रंथ
३. पुरुषोत्तम प्रज्ञा

मेरे द्वारा रचित साहित्य :

१. समर्पित जीवन
२. अनजाने रिश्ते
३. आस्था की ओर बढ़ते कदम

मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन की रचनाएं :

१. श्रमणोपासक पुरुषोत्तम जैन
जिन शाषण प्रभाविका जैन ज्योति श्री स्वर्ण
कांता जी महाराज द्वारा सम्पादित साहित्य :

१. अनमोल वचन २. नन्दन मणिकार
- साध्वी श्री व हम दोनों द्वारा सम्पादित साहित्य

:

१. निरयावलिका सूत्र (अनुवादक आचार्य श्री आत्मा राम
जी महाराज)

स्वतन्त्र शोध लेख :

हम इस संदर्भ में सर्वप्रथम अर्धनागधी भाषा से पंजाबी में अनुवादित साहित्य का विवरण देंगे। जो हम मामूली व्यक्तियों की प्रतिष्ठा का कारण बना। इस साहित्य में हमारे द्वारा निम्नलिखित आगमों का अनुवाद किया गया जिनमें अधिकांश प्रकाशित हो चुके हैं :

हमारे द्वारा प्रकाशित आगम हैं :

१. श्री उत्तराध्ययन सूत्र
२. श्री उपासक दशांग सूत्र
३. श्री सूत्रकृतांग सूत्र
४. गच्छाचार प्रकिर्णक
५. तेंदुलवैचारिक
६. वीरथुई

७. गच्छाचार प्रकिर्णक

हमारा अप्रकाशित साहित्य :

१. निरयावलिका सूत्र
२. दशवेकालिक सूत्र
३. ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र

यह सूची मैंने हमारे द्वारा अनुवादित, सम्पादित व टीकाकार के रूप में प्रकाशित अर्धमागधी प्राकृत साहित्य की है। जैन तीर्थंकरों ने अपना धर्मउपदेश स्थानीय लोकभाषा में दिया है। इसी भाषा का नाम अर्धमागधी है। इसी भाषा में तीर्थंकरों ने धर्म उपदेश दिया। यह भाषा कई भाषाओं की जननी है। इसका व्याकरण कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेम चन्द्र जी महाराज ने किया था। इस का नाम सिद्ध-हेम व्याकरण है। जैन आगमों पर संस्कृत भाषा में टीका आचार्य शीलांकाचार्य व आचार्य अभय देव सूरि ने लिखे हैं। नियुक्ति की भाषा प्राकृत है। संस्कृत व प्राकृत भाषा का मिला जुला रूप चुर्णि में उपलब्ध होता है। नियुक्ति के अतिरिक्त राजस्थानी व गुजराती में उपलब्ध हैं। नियुक्तिकार आचार्य भद्रबाहु है। चुर्णि के रचिता आचार्य श्री जिन दास गणिकमाक्षमण हैं। इसी तरह विभिन्न भाषाओं में जैन आगमों पर कार्य हर युग में विद्वानों ने किया है। अपनी विद्वता की धाक जमाई है। वर्तमान में आगमों पर मुनि श्री पुण्य विजय, श्री जिन विजय, श्री जंबु विजय श्री आचार्य आत्मा राम जी महाराज, आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री नथ मल (आचार्य महाप्रज्ञ), उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज व आचार्य श्री मिश्री मल्ल के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र - १ :

श्रमण भगवान महावीर अपना धर्म प्रचार करते

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 हुए पावापुरी नगरी में चतुर्मास हेतु पधार चुके थे। प्रभु का यह अंतिम चतुर्मास था। प्रभु महावीर का प्रथम क्रान्तिकारी उपदेश भी इसी नगर में हुआ था। जिस में इन्द्रभूति सहित ४४०० से ज्यादा ब्राह्मणों ने प्रभु महावीर के कर कमलों से दीक्षा ली थी। प्रभु महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, अरिहंत, तीर्थंकर बन चुके थे। वह सर्व जीवों के कल्याणार्थ धर्म उपदेश कर रहे थे। चतुर्मास का काफी भाग व्यतीत हो चुका था। प्रभु महावीर एक चुंगी में ठहरे थे। अंतिम समय जानकर प्रभु महावीर ने अंतिम धर्म उपदेश देना शुरू किया। यह उपदेश ही उतराध्ययन सूत्र में लिपिवद्ध है। इस के ३६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्ययन अपने आप में स्वतन्त्र विषय है। यह ग्रंथ जैन धर्म का सार भूत ग्रंथ कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में प्राचीन काल से टीका, टव्या नियुक्ति चुर्णि लिखी जाती रही है।

इस ग्रंथ पर ४६ के करीब टीकाएं प्राचीन काल से १८ सदी तक लिखी जा चुकी हैं। यह टीकाएं श्री अगर चन्द नाहटा के भण्डार में देखी जा सकती हैं।

इस ग्रंथ की प्राचीनता बौद्ध ग्रंथ धम्मपद व महाभारत में देखी जा सकती है। दोनों ग्रंथों के कई श्लोक का तुलनात्मक अध्ययन उतराध्ययन सूत्र से किया जा सकता है। प्रवर्तक श्री फूल चन्द जी 'श्रमण' ने इस सूत्र के बारे में कहा है :

“जो कुछ उतराध्ययन सूत्र में है, वह सारे जैन आगमों में है, जो उतराध्ययन सूत्र में नहीं, वह किसी आगम में नहीं। आगम से प्रतिपादित हर विषय श्री उतराध्ययन सूत्र में उपलब्ध होता है।”

ऐसे महत्वपूर्ण सूत्र का अनुवाद हमने १९७३ में करना शुरू किया जो १९७६ में प्रकाशित हुआ। प्राचीन

निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु ने इस सूत्र की महत्वपूर्ण स्तुति इस प्रकार की है :

“जो जीव भव भ्रमण को समाप्त करके शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य है जिनका भव में बंधन कम रह गया है। इस प्रकार के महापुरुष श्री उतराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन का शुद्ध हृदय से अध्ययन करते हैं। जिनका भव बंधन बाकी है। जिनका संसार भ्रमण बाकी रह गया है। जिन जीवों के अशुभ कर्मों के कारण अशुभ विचार है वह उतराध्ययन का अध्ययन करने के अयोग्य है। इस लिए जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित शब्द और विशाल अर्थों वाले इस उतराध्ययन सूत्र का विधि सहित तप करके, गुरुओं से प्रसन्नता से अध्ययन करने चाहिए।”

इस ग्रंथ की गणना मूल सूत्र से की गई है। दशवेकालिक, आवश्यक सूत्र के बाद नव दीक्षिता साधु व साध्वी के लिए इस शास्त्र का अध्ययन जरूरी है। प्रथम अध्ययन विनय श्रुत में भिक्षु को मर्यादा से जीवन गुजारने का निर्देश है। गुरु व शिष्य का रिश्ता, उस के लक्षण बताए गए हैं। ४८ गाथा वाले अध्ययन में शिष्य को अनुशासन में रहने का आदेश है। शिष्य को विनित बनने का उपदेश है। विभिन्न उदाहरणों से विनयवान शिष्य को विनय धर्म ग्रहण करने का आदेश है। इस उपदेश में अविनित शिष्य को सड़े कान वाली कुतिया व सूअर से तुलना की गई है। शिष्य को समझाया गया है कि गुरु की किसी बात का गुस्सा न करे। गुरु के समक्ष कैसे बैठें ? कैसे बात करें ? कैसे झूठे वचनों से बचें ? कैसे विनय वान हो कर गुरु से ज्ञान अर्जित करें ? सब का वर्णन समझाया गया है।

दूसरे अध्ययन में साधु जीवन में आने वाले कष्टों का वर्णन है। इन कष्टों के कारण कई बार कई लोग

साधु जीवन तक छोड़ देते हैं। इन्हें परिषह की संज्ञा दी गई है। ये २२ हैं। सभी परिषह साध्वाचार के प्राण हैं इस में ४६ गाथा हैं यह तृतीय अध्ययन का नाम चतुरंगीय है। इस में धर्म के ४ महत्वपूर्ण अंगों की दुर्लभता का वर्णन है। यह अंग हैं :

१. मनुष्य जन्म	२. सम्यक् धर्म का सुनना
३. श्रद्धा	४. पुरुषार्थ।

ये इस अध्ययन में २० गाथाएं हैं। यह अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। जो मननीय है।

चतुर्थ अध्ययन के नाम असंस्कृत अध्ययन है। इस में मनुष्य को सावधान करते हुए कहा गया है “जीवन क्षण भंगुर है, यह जीवन की डोर कभी टूट सकती है। मृत्यु के समय धन, सम्पत्ति, रिश्तेदार, सगे-संवंधी, मित्र और माता-पिता कोई सहायक नहीं होता। इस लिए मनुष्य को प्रमाद का त्याग कर, सत्य धर्म की शरण ग्रहण करनी चाहिए। इसकी १३ गाथाएं हैं। यह वैराग्य पूर्ण अध्ययन है। पांचवे अध्ययन का नाम अकाम नरणीय है। इस में ज्ञानी और अज्ञानी की मृत्यु का अंतर बताया गया है। ज्ञानी पंडित परण स्वीकार करता है। अज्ञानी वाल मरण। इस की ३२ गाथाएं हैं। इस में मुनि को सनाधि मरण स्वीकार करने की बात कही गई है।

छठा अध्ययन कुल्लक निग्रंथीया नाम से प्रसिद्ध है। इस की १८ गाथाएं हैं। इस में जीव से अज्ञान से वचने का उपदेश प्रभु महावीर ने दिया है। वह फुरमाते हैं कि कर्मों का फल भोगते जीव का कोई सहारा नहीं बनता। इस लिए सम्यक दृष्टि जीव संसार के किसी पदार्थ के प्रति लगाव नहीं रखे। जीव को वैर, अहिंसा, चोरी छोड़ने का उपदेश दिया गया है। इस अध्ययन में बताया गया है, कि मात्र तत्त्व

भाषा, ग्रंथों का ज्ञान जीव का कल्याण नहीं कर सकता। सम्यक् ज्ञान द्वारा ही आत्मा का कल्याण संभव है।

सातवें अध्ययन के नाम उरभ्रीय है। इस में विभिन्न उदाहरणों द्वारा जीव को समझाया गया है कि इन्द्रियों के सुख क्षण भंगुर हैं। यह कुछ समय ही सुख देते हैं। ज्यादा समय तो यह दुःख ही देते हैं। इसी कारण ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों के विषय भोगों में नहीं फंसता। इस अध्ययन में ३० गाथाओं में विभिन्न उदाहरण देकर जीवन की क्षण भंगुरता समझाई गई है। इस अध्ययन में एक कहानी ऐसी है जो वाइवल में भी प्राप्त होती है।

आठवें अध्ययन का नाम कापलिय है। इस में कपिल मुनि द्वारा ५०० चोरों को दिया उपदेश शामिल है। इस उपदेश को सुन कर यह चोर प्रतिबोधित हुए। वह मुनि बने। कपिल मुनि के माध्यम से भगवान महावीर फुरमाते हैं “विरक्ति, संयम, विवेक, दुर्गति से बचाने वाले हैं। भोगों से मुख मोड़ना और परिग्रह का त्याग ही कर्म बंधन से छुटकारा दिलाता है।” इस अध्ययन की २० गाथाएं हैं।

नवमें अध्ययन का नाम ‘नमि प्रवज्या’ है। इस अध्ययन में मिथिला के राजा नमि व इन्द्र के प्रश्नोत्तर हैं। इन्द्र भेष बदल कर राजा को साधु बनने से रोकता है। यह प्रश्नोत्तर जीवन की सच्चाई है। इस अध्ययन में ६२ गाथाएं हैं।

दसवें अध्ययन में प्रभु महावीर ने अपने शिष्य को प्रमाद से बचने का वैराग्य उपदेश दिया है। गौतम का इन्द्रिय क्षीण होने की शिक्षा प्रदान की है। यह अध्ययन इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन का नाम द्रुम पत्रिका है। इस की ३६ गाथाएं हैं।

ग्यारहवां अध्ययन बहुश्रुत पूजा है। इस में ज्ञानी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 व अज्ञानी के लक्षण बताए गए हैं। शिक्षा ग्रहण के पांच कारण बताए गए हैं। १. न हंसने वाला २. इन्द्रिय निग्रह करने वाला ३. हृदय विदारक भाषा कहने वाला ४. शुद्ध आचार वाला ५. अच्छे चारित्र वाला।

इस में ३० गाथाएं हैं।

वारहवां अध्ययन का नाम हरिकेषी है। इस में चण्डाल जाति के एक मुनि का वर्णन है। इस में जैन धर्म में वेद यज्ञ का स्थान का पता चलता है। जैन धर्म में न वेद का स्थान है, न ब्राह्मणों के कर्म काण्ड का। यहां तपस्या का महत्व है जाति का नहीं। इस अध्ययन में ४७ गाथाएं हैं।

तेरहवें अध्ययन में चित्त सम्भूति मुनि भाईयों का वर्णन है इस में ३५ गाथाओं में आपसी वार्तालाप के माध्यम के प्रभु महावीर के उपदेश दोहराया गया है। इस की ३५ गाथाएं हैं। इस में चित्त मुनि द्वारा अपने राजा बने भाई को वैराग्यमय उपदेश दे रहा है।

चौदहवें अध्ययन का नाम इषुकारीय है। इस अध्ययन में भृगु पुरोहित व उसकी पत्नी यशा तथा दो पुत्रों राजा रानी कमलावती, राजा इषुकारीय के दीक्षा के प्रसंग है। इस अध्ययन में वैदिक परम्परा की कई मान्यताओं का खण्डन है। प्राचीन काल में राजा उस व्यक्ति की सम्पत्ति ग्रहण कर लेता था जिस की संतान न हो। राजा भी भृगु पुरोहित के परिवार की दीक्षा का समाचार सुन कर कार्य करने जा रहा था पर रानी कमलावती के उपदेश से वह इस कार्य से रुक गया। इस अध्ययन परस्पर वार्तालाप के रूप में है। इस अध्ययन की ५३ गाथाएं हैं।

१५वें अध्ययन का नाम सभिक्षु है। इस अध्ययन में अच्छे भिक्षु के गुण बताए गए हैं। इस अध्ययन में बताया गया है कि सच्चा साधु राग, द्वेष छोड़ कर संसारिक संसर्ग

आस्था की ओर बढ़ते कट्य
 से दूर रहता है। अपनी प्रसिद्धि नहीं चाहता, न ही ज्योतिष से आजीविका चलाता है। सच्चा साधू खूबा खूबा खा कर गुजारा करता है। तप व स्वाध्याय में समय व्यतीत करता है। भिक्षा की प्राप्ति पर किसी को आशीर्वाद नहीं देता, न मिलने पर श्राप नहीं देता। वह जात पात के भेद से उपर उठ कर समभाव से विचरण करता है। सच्चा साधु कर्म की निर्जरा द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है। इस में गाथाओं की संख्या १६ हैं।

१६वें अध्ययन ब्रह्मचर्य समाधि स्थान है। इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य व्रत पर भगवान महावीर ने अच्छी व्याख्या की गई है। किस तरह विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। उस के बारे में बताया गया है। यह ब्रह्मचारी भिक्षुओं के लिए निर्देश के रूप में है। एक स्थान पर कहा गया है “जो कटिन ब्रह्मचर्य का विशुद्ध रूप से पालन करता है वह देव, दानव, गंधर्व, यक्ष व राक्षसों द्वारा पूजनीय, वन्दनीय होता है। इस अध्ययन के १२ प्रश्न गद्य रूप में हैं।

१७वां अध्ययन गाथा रूप में है।

१८वां अध्ययन संजयीय है। जो काफी प्राचीन लगता है। इस अध्ययन में भारतवर्ष में हुए चक्रवर्ती, तीर्थंकरों, प्रत्येक बुद्ध का गुणगान ५४ गाथाओं के रूप में किया गया है। इस में जैन इतिहास की प्राचीनता छुपी है।

१९वें अध्ययन में मृगापूत्र द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का सुन्दर वर्णन है। मृगापूत्र सुग्रीव नगर के वलभद्र का सपूत्र था। इस राजा की रानी का नाम मृगावती था। उसी के पूत्र को किसी मुनि को देखते ही पूर्व भव याद आ गया। पूर्व भव याद आते ही उसे संसार के बंधन झूठे नजर आने लगे। उस ने राजपाट का त्याग कर संयम ग्रहण किया।

आस्था की ओर बढ़ते कटन
मृगापूत्र के माध्यम से श्रमण भवान महावीर से संसार को वैराग्य मय उपदेश दिया। वह अध्ययन जीवन को बदलने की क्षमता रखता है। गाथा की संख्या ६८ है।

२०वें अध्ययन का नाम महानिर्गन्धीया अध्ययन है। यह इतिहास अध्ययन में राजा श्रेणिक की मण्डी कुक्षी चेत्य में ध्यान कर रहे अनाथी मुनि की धर्म चर्चा है। राजा श्रेणिक ने अनाथी मुनि के रूप, लावण्य को देख कर कहा “ भिक्षु मुझे बताओ कि तुम भिक्षु क्यों तुम साधु बन गए ? तुम्हारे मन में कौन सी चोट थी, जो तुम्हें इस मार्ग पर ले आई। अनाथी मुनि ने उत्तर दिया “ राजन ! मैं अनाथ था इस लिए मुनि बन गया।” राजा ने सोचा वह यतीम बालक है। मुझे इस की सहायता करनी चाहिए। राजा ने पुनः कहा “मैं तुम्हारा नाथ बनता हूँ। तुम साधु जीवन त्याग कर मेरे महिलों में चलो।” अनाथी मुनि ने उत्तर दिया “राजन ! जो स्वयं अनाथ है वह किसी का नाथ कैसे बन सकता है ?” राजा को अपनी अनाथता का अर्थ समझ न आया। उसने कहा “मुनि राज शायद आपको पता नहीं कि मैं मगध सम्राट विंजसार श्रेणिक हूँ। यह जो मेरे यहां संसार की हर सुख सुविधा मौजूद है। तुम मेरे साथ चलो और जीवन का आनंद व सुख का उपभोग करो।” राजा के इस भोग निमंत्रण से मुनिराज को राजा की अज्ञानता पर तरस आया फिर मुनिराज ने इस अध्ययन के माध्यम से अपनी पूर्व जीवन कथा बताते हुए अपनी कथा सुनाई।

“राजन् मैं भी आप की तरह एक राजकुमार था। मेरा भी भरा-पूरा परिवार, धन संपदा थी। मेरे पास अनेकों दास व दासीयां, सेना व पशुधन था। मेरे परिजन व प्रजा मेरी आज्ञा का पालन करते थे। सब कुछ ठीक ढंग से चल रहा था पर अशुभ कर्म उदय से एक बार मुझे एक

आंख का रोग हो गया। इस रोग के निवारण के लिए वैद्यों ने अनेको उपचार किए। फिर मंत्र-तंत्र व यंत्र भी मेरी पीड़ा को कम न कर सका। मेरे माता-पिता की चिंता इस रोग को कम करने में सहायक न हो सकी। मेरी पत्नी जो हर समय मेरी सेवा में रहती थी वह भी मेरी पीड़ा को कम करने में किसी प्रकार का सहयोग न कर सकी। इस प्रकार सब कुछ होते हुए भी मैं अनाथ था। मेरा धन-धान्य व परिवार मेरी पीड़ा में काम न आ सका। कोई मेरा नाथ न बन सका। फिर मैंने धर्म का सहारा लिया। मैंने सोचा कि अगर मैं इस रोग से मुक्त हो जाऊं तो मैं साधु जीवन ग्रहण कर लूंगा। ऐसा सोच कर मैं रात को सोया सुबह उठा तो मेरा रोग धर्म के प्रताप से समाप्त हो चुका था। मैंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार साधु जीवन ग्रहण किया। अब मैं अपना नाथ स्वयं हूं। मुझे किसी नाथ की जरूरत नहीं। अब मेरा धर्म ही मेरा नाथ है। इस सुन्दर अध्ययन में ६० गाथाएं हैं जिन में अनाथ सनाथ का भेद बताया गया है।

२१वें अध्ययन का नाम समुन्द्रपालीय है। इस समुद्रपाल के किसी अपराधी को देख कर दीक्षा लेने का वर्णन है। बाकी अध्ययन में साधूचर्या का वर्णन है। इस में २४ गाथाएं हैं। साधू को राग द्वेष रहित जीवन विताने का उपदेश है।

२२वें अध्ययन भगवान नेमिनाथ के जीवन से संबंधित है। इस अध्ययन में रथनेमि जो भगवान का भ्राता था, के साधु जीवन से भटकने का वर्णन है। उसे भगवान नेमिनाथ की मंगेतर साध्वी राजुलमति साधु जीवन में उपदेश के माध्यम से संयम में स्थिर करती है। इस अध्ययन का नाम रथनेमिया है। इस में ४७ गाथाएं हैं।

२३वां अध्ययन जैन इतिहास का महत्त्वपूर्ण

आस्था की ओर बढ़ते कदम
अध्ययन है। इस में प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य केशीश्रमण व प्रभु महावीर के शिष्य इन्द्रभूति गोतम के वार्तालाप का वर्णन है। इस में जिन कल्प व स्थविर कल्प का वर्णन है। भगवान महावीर ने इस माध्यम से अपना रिश्ता श्रमण भगवान पार्श्वनाथ व उनकी परम्परा से जोड़ा है। इस अध्ययन से हमें गणधर गोतम स्वामी के महान चारित्र का पता चलता है। इस अध्ययन में ८६ गाथाएं हैं।

२४वें अध्ययन का नाम प्रवचनमाता है। इस अध्ययन में आठ प्रवचन माता का वर्णन है जो माता की तरह साधु के पांच महाव्रत की रक्षा करती है। यह माताएं हैं ५ समिति व ३ गुप्ति। इन प्रवचन माता का पूत्र साधु समाज में आदर सत्कार पाता है। इस अध्ययन में २७ गाथाएं हैं।

२५वें अध्ययन का नाम यज्ञीय है। इस में ब्राह्मण परम्परा के हिंसक यज्ञ का वर्णन है। इस अध्ययन में वेदों का मुख, यज्ञ का मुख, नक्षत्रों का मुख बताया गया है। इन्द्रिय निग्रह, राग-द्वेष, कषाय में नुक्ति का उपदेश दिया गया है। इस अध्ययन में कहा गया है “सभी वेद पशु वध का उपदेश और आधीन रखने की बात करते हैं। यज्ञ पाप का कारण है। वेद, यज्ञ पाठ करने वाला या यज्ञ करने वाले की रक्षा नहीं कर सकते क्यों कि कर्म बलवान है।

२६वां अध्ययन का नाम समाचारी है। समाचारी साधु जीवन की व्यवस्था का नाम है। साधु जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यह समाचारी साधु को संयमी जीवन के प्रति संगठित करती है। समाचारी साधुओं का संविधान है। जिस का पालन हर साधु के लिए जरूरी है। समाचारी में साधु की दैनिकचर्या का वर्णन है। इस अध्ययन में यह भी बताया गया है कि संयमी समाचारी का कैसे पालन करे। इस में साधु की शयन, बैठना, प्रमार्जन, ध्यान, गुरु शिष्य के

जार्था की ओर बढ़ते कदम
संवंधों पर ५४ गाथाओं में प्रकाश डाला गया है।

२७वें अध्ययन में गर्ग मुनि का वर्णन है। जो बहुत तमस्वी व निपूण आचार्य थे। इस के विपरीत आप के शिष्य दम्भी, अविनित व अनुशासनहीन थे। गर्गाचार्य ने ऐसे शिष्यों का परित्याग कर एकांत साधना करने का निश्चय किया। इस अध्ययन का नाम क्षुल्लिका है। जिसका अर्थ दुष्ट वैल है जो रास्ते में गाड़ी से पीछा छुड़वा स्वामी के लिए मुश्किल का कारण बनता है। इस अध्ययन में विनय व अविनय में अंतर बताया गया है। इस अध्ययन में १७ गाथाएं हैं।

२८वें अध्ययन का नाम मोक्ष मार्ग गति है। इस अध्ययन में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक्चारित्र व सम्यक्तप को मोक्ष मार्ग कहा गया है। ५ प्रकार के ज्ञान, षट् द्रव्य, नव तत्वों, २० प्रकार के सम्यकत्, आगमों का वर्णन है। इस में सम्यकत् चारित्र के भेद, तप के भेदों का संक्षिप्त व सरल वर्णन है। मात्र ३६ गाथाओं में सारे जैन दर्शन की रूप रेखा प्रस्तुत की गई है।

२९वां अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वह प्रश्नोत्तर के रूप में है। इस में ७३ प्रश्नों का उत्तर है। इन में संवेग, निवेद, धर्म श्रद्धा, सहधर्मी वातरत्न, आलोचना, निंदा, गृहा, समायिक, चतुर्विंशतित्त्व, वन्दन, प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग, प्रत्याख्यान, स्तुती, मंगल, प्रतिलेखना, प्रायश्चित्त, क्षमायाचना, स्वाध्याय, वाचना, प्रतिपुच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्म कथा, श्रुत, एकाग्रता, संयम, तप, व्यवधान, सुखसांत, अप्रतिवधता, विविक्त शयासन, विनिर्वतना, संभोग, उपधि, आहार प्रत्याख्यान, कषायत्याग, योग, देह मोह का त्याग, सहायता न चाहने, भक्त प्रत्याख्यान, समभाव प्रत्याख्यान, प्रतिरूपता, सेवा, सर्वगुण संपन्नता, वीतरागता, क्षमा, निरलोभना,

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 श्रुता, मृदुता, भावसत्य, करण सत्य, योग सत्य, मन वचन व काया गुप्ति, समधारणा, वाक्य को सम्यक् ढंग लगाना, चक्षु, घ्राण, जीभ, स्पर्श के विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष और मिथ्या दर्शन पर विजय पाने का फल बहुत सरल ढंग से बताया गया है। इस के अंतर्गत १४ गुणस्थान का वर्णन आ गया है। सभी प्रश्न जैन दर्शन की भूमिका के मुख्य प्रश्न हैं। इन के उत्तर प्रभु नडावीर ने सरल ढंग से दिए हैं।

३०वें अध्ययन का नाम तपोमार्ग गति है। इस में भिन्न भिन्न प्रकार के तपों का वर्णन है। तप के दो भेद किए गए हैं : बाह्य तप, आंतरिक तप। दोनों तपों के भेदों का वर्णन सविस्तार से किया गया है। इस अध्ययन में ३७ गाथाएं हैं।

३१वां अध्ययन चरणविधि है। इसका अर्थ विवेकपूर्ण किया कर्म। इस अध्ययन में संयम के प्रति विवेक और असंयम के प्रति अविवेक रखने के लिए उपदेश दिया गया है। इस अध्ययन में ३ दण्ड, ३ गौरव, ३ शल्य, ४ विकथा, ४ संज्ञा, ५ इन्द्रियों के ६ विषय, भिक्षु की ४२ दोष प्रतिमाएं, ७ भय, ८ मद, ९ गुप्ति, १० प्रकार के धर्म, श्रावक की ११ प्रतिमाएं, १३ क्रिया स्थान, १४ भूत ग्राम जीव समूह, १० परमधर्मिक देवों के भेदों का वर्णन, सूत्रकतांग के १६ अध्ययनों के नाम, १७ तरह का संयम, १८ प्रकार का अब्रह्मचर्य, २० असमाधि के कारण, २२ भिक्षा के दोष, सूत्रकृतांग के २७ अध्ययन, ५ महाव्रत की २५ भावनाएं, सत्यव्रत की ५ भावनाएं, ब्राह्मचर्य व्रत की ५ भावनाएं, ५ इन्द्रियों के विषय, साधु के २७ गुण, पापश्रुत के २६ भेद, सिद्धों के ३१ भेद, और ३३ आशातनाओं का वर्णन है। यह

सब कुछ मात्र २१ गाथाओं में वर्णन किया गया है।

३२वें अध्ययन का नाम अप्रमाद स्थान है। इस अध्ययन में अशुभ विचारों के त्याग और अशुभ कार्य छोड़ने के लिए निर्देश दिया गया है। अशुभ कार्यों में लगे रहना प्रमाद है। इस अध्ययन में राग द्वेष को कर्म का मूल बीज कहा गया है। इन्द्रियों में विषयों पर संयम रखने की आज्ञा दी गई है। इस अध्ययन में १११ गाथाएं हैं।

३३वां अध्ययन का नाम कर्म प्राकृति है। इस में जैन धर्म के कर्म सिद्धांत का वर्णन किया गया है। इस में ८ प्रकार के कर्मों का भेद और प्रभाव का वर्णन किया गया है।

३४वें अध्ययन लेश्या का वर्णन है। लेश्या जैन धर्म का परिभाषित शब्द है। छहलेश्याओं में वर्णन में प्रभु महावीर ने बताया है कि यह लेश्या का स्वभाव कैसा है ? रंग कैसा है ? आत्मा का कर्म के साथ संबंध स्थापित कैसे करती है ? किस प्रकार कर्मबंधन का कारण बनती है। इस अध्ययन की ६१ गाथाएं सब विस्तृत रूप से मिलती हैं।

३५वें अध्ययन का नाम अनगार मार्ग गति है। इस अध्ययन में साधु को उसका धर्म पालने के लिए विस्तार से प्रेरित किया गया है। साधु राग द्वेष रहित हो कर जन्म मरण की इच्छा छोड़ दे। इच्छाओं का निग्रह करके संयम की ओर अग्रसर हो। संसरा कर अर्थ कामना है, वासना है, कामना और वासना से मुक्त होना, जन्म व मरण से मुक्त होना है। निर्वाण है। यह निर्वाण ही सिद्ध अवस्था है। इस अध्ययन में २१ गाथाएं हैं।

अंतिम अध्ययन ३६वां है। इस का नाम जीव-आजीव विभक्ति है। जैसा इस के नाम से वर्णन है इस में जीव आजीव की विस्तार से व्याख्या की गई है। इस में जीव के भेद, आजीव के भेद का विस्तार से वर्णन है। इस

आस्था की ओर बढ़ते कदम
अध्ययन के बाद प्रभु महावीर का निर्वाण हो गया। ऐसा इस अध्ययन की अंतिम गाथा व आचार्य भद्र बाहु रचित कल्प सूत्र में बताया गया है।

इस ग्रंथ का विमोचन पंजाब के महामहिम राज्यपाल श्री जय सुखलाल हथी ने पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में जैन चैयर के उद्घाटन समारोह में किया। इसकी समीक्षा दैनिक अजीत पंजाबी में प्रकाशित हुई।

उपासक दशांग सूत्र- २ :

हमारे द्वारा प्रकाशित श्री उपासक दशांग पंजाबी भाषा का सर्व प्रथम किसी अंग शास्त्र का पंजाबी अनुवाद है। काफी समय से मेरे मन में यह चिंतन चल रहा था कि किसी ऐसे ग्रंथ का अनुवाद किया जाए जिसका संबंध श्रावक (उपासक) धर्म से संबंधित हो। मैंने अपने मन की बात अपने धर्म भ्राता रविन्द्र जैन से की। उन्होंने बड़े लम्बे विमर्श के बाद श्री उपासक दशांग सूत्र का पंजाबी अनुवाद का सूझाव रखा। क्योंकि ४५ आगमों में वही मात्र ऐसा आगम है, जो श्रावक धर्म का प्ररूपण करता है। इसका स्थान अंग साहित्य में आता है। ज्यादा आगमों में मुनि चर्या का वर्णन है। वैसे श्वेताम्बर आगमों में श्रावकाचार पर विभिन्न ग्रंथ, भिन्न भिन्न भाषाओं में मिलते। मैंने अपने धर्मभ्राता को इनका अध्ययन करने को कहा। इस अंग पर मात्र एक संस्कृत टीका आचार्य अभयदेव सूरि जी ने लिखी है। इस टीका की एक प्रति अंवाला में हमें स्व० आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्नसूरि जी महाराज से हिन्दी अनुवाद वाली प्राप्त हुई। मैंने इस टीका के अतिरिक्त आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज की हिन्दी टीका भी पढ़ी। इस आगम में प्राचीन जैन श्रावकों के जीवन का सांस्कृतिक रहन सहन का वर्णन मिलता है।

इस आगम में भगवान महावीर के १० श्रावकों का वर्णन है। इसके १० अध्ययन हैं। यह आगम में प्रत्येक श्रावक भगवान महावीर से १२ व्रत ग्रहण करता है। इस ग्रंथ के लिए आशीर्वाद उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज ने भेजा था। आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज व आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरेश्वर जी महाराज का आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ की भूमिका श्री अगर चन्द्र नाहटा जी ने लिखी थी। दस अध्ययनों का सार इस प्रकार है :

१. प्रथम अध्ययन में आनंद श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करने का वर्णन है। इस अध्ययन में आनंद श्रावक की अथाह सम्पदा का वर्णन है। खेती, पशु, जहाज, स्वर्ण मुद्राओं का वर्णन है। इस अध्ययन में आनंद श्रावक को अवधि ज्ञान की प्राप्ति का वर्णन है। अवधि ज्ञान के विषय में आनंद श्रावक ने गौतम स्वामी की चर्चा का वर्णन है। गौतम जैसे महान् गणधर द्वारा अपनी गलती का श्रावक आनंद से क्षमा याचना की प्रार्थना का मार्मिक वर्णन है। इस अध्ययन में १२ व्रतों, अतिचारों का विधि विधान है। श्रावक क्षरा प्रतिमा धारण करने का वर्णन है।

(२) द्वितीय अध्ययन कामदेव श्रावक के जीवन का वर्णन, देवता द्वारा परिषह : कामदेव का व्रत में अडोल रहने का वर्णन है। इस में भी श्रावक द्वारा अणुव्रत ग्रहण करने का वर्णन, व प्रतिमा अराधना का वर्णन है।

(३) तृतीय अध्ययन में चुल्लीपिता श्रावक के वैभव पूर्ण जीवन का वर्णन है। चुल्लीपिता के जीवन में एक देव रात्री में उपसर्ग कर उसके तीन पुत्रों को मार डालता है, क्योंकि वह देवता की धमकी की प्रवाह नहीं करता। फिर देव माता भद्रा को मारने की धमकी देता है। जिस कारण श्रावक साध

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 ना से विचलित हो जाता है। जिस से उसकी माता धर्म में पुनः स्थिर करती है। इस में श्रावक की मातृ भक्ति का पता चलता है।

चतुर्थ अध्ययन में सुरादेव श्रावक द्वारा साधना लीन होने पर ३ पुत्रों की जघन्य हत्या करता है। फिर १६ रोग उत्पन्न होने की धमकी देता है। जिससे श्रावक घबरा जाता है। वह देव माया के चक्र में फँस कर घबरा जाता है जिसे उसकी पत्नी धर्म में स्थिर करती है।

पांचवें अध्ययन में चुलशतक श्रावक की श्रावक धर्म अराधना का वर्णन है। इस में भी एक रात्री एक मिथ्यात्वी देव आकर पुत्रों को मारने की धमकी देता है। फिर श्रावक पुत्रों के टुकड़े काट कर लहु के छींटे उस पर फैंकता है। चुल्लशतक को दृढ़ कर देव उसका समस्त धन नाश करने की धमकी देता है। धन सम्पत्ति की धमकी से श्रावक घबरा जाता है। वह उस देव को पकड़ने दौड़ता है। अंधेरे में आवाज़ लगाता है। सारा विवरण वह अपनी धर्म पत्नी से कहता है। पत्नी उसे धर्म पर स्थिर करती है। व्रत भंग के लिए प्रयाश्चित करने को कहती है। इस प्रकार इस श्रावक का वर्णन है।

छठे अध्ययन में कुण्डकोलिक श्रावक का वर्णन है। वह भी प्रभु महावीर का श्रावक धर्म का अराधक था। एक दिन दोपहर को वह अपनी अशोक वाटिका में ध्यान में लीन था। एक देव प्रकट होकर कहने लगा “हे कुण्डकोलिक ! मंखलि पुत्र गोशालक का धर्म बहुत अच्छा है। उस में उत्थान, बल, वीर्य पुरस्कार, पराक्रम के लिए कोई स्थान नहीं। सब कुछ नियति के अनुसार माना गया है। तुम भगवान महावीर के धर्म को छोड़ कर गोशालक का धर्म ग्रहण करो।”

इस के प्रश्न का जो कुण्डोलिक उत्तर देता है वह दार्शनिक जगत में बहुत महत्त्व रखता है। वह कहता है “हे देव ! तुम्हे देवलोक में इस प्रकार की त्रिधि सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हुई ?”

देव ने कहा “हे देवानुप्रिया ! मुझे यह अलोकिक देवत्व विना पराक्रम व परिश्रम से प्राप्त हुआ है।”

कुण्डकोलिक ने कहा “हे देव ! जो तुम्हें अलोकिक बुद्धि विना उत्थान, पराक्रम आदि से प्राप्त हुआ है तो जिन जीवों के पास उत्थान, पराक्रम आदि नहीं वह सब देव क्यों नहीं बनते ? तुम्हारा कथन मिथ्या है प्रभु महावीर का धर्म सत्य पर आधारित है। इस वार्तालाप के बाद देव चला गया। श्रमण भगवान महावीर उस के नगर में धर्म प्रचार करते हुए पधारे। वह भी प्रभु महावीर के दर्शन पहुंचा। प्रभु महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। अपनी धर्म सभा में प्रभु महावीर ने देवता कुण्डकोलिक के साथ हुई देव चर्चा की घटना को दोहराया। उन्होंने फुरमाया, “अगर घर में रह कर कोई श्रावक देवता को धर्म चर्चा में हरा सकता है, तो आप ने अनगर हो अंग उपांग के जानकार हो आप के लिए क्या असंभव है ? आप को इस श्रावक से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

सातवां अध्ययन में कुंभकार जाति के श्रावक सद्दाल पुत्र का वर्णन है। यह मंखलि पुत्र गोशालक का परम उपासक था। इस की पत्नी भी गोशालक भक्ति में डूबी रहती थी। एक रात्रि एक देव ने तीर्थंकर जिन वीतराग के आगमन की सूचना दी। सद्दालपुत्र गोशालक को तीर्थंकर, मानता था। अगली सुबह प्रभु महावीर पधारे। प्रभु महावीर ने सद्दालपुत्र को सदमार्ग पर लगाया। फिर गोशालक उस के वहां आया। उसने उसका सम्मान पहले की तरह नहीं किया। पर जब गोशालक ने प्रभु महावीर की प्रशंसा की तो

आस्था की ओर बढ़ते कदम
सद्दालपुत्र ने उसकी सेवा भोजन, पानी संस्तारक से की। इस अध्ययन में सद्दालपुत्र के विस्तृत ज्ञान का पता चलता है। वह एक साथ प्रभु महावीर से चर्चा करता है दूसरी ओर मंखलि पुत्र गोशालक को प्रभु महावीर की स्तुती करने के लिए प्रेरित करता है। यह अध्ययन इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

द्वै अध्ययन में महाशतक श्रावक का वर्णन है। उसकी १६ पत्नीयों में रेवती प्रमुख थी। वह पापिन थी। वह महाशतक की धर्माश्रयना में रुकावट डालती। उस ने जहर से अपनी १६ सोतेयों को मार कर, उन की संपत्ति पर अधिकार कर लिया। वह मदिरा व मांस में इतनी लोलुपी थी कि राजाजा का उल्लंघन कर वह अपने मायके एक वछड़ा मंगवा कर खाती थी। इन सब के बावजूद महाशतक की साधना निरंतर चल रही थी।

लम्बी साधना के बाद वह महाशतक को अवधि ज्ञान हो गया। एक रात्रि जब वह धर्म अश्रयना कर रहा था। शराव व मांस का सेवन कर खुले वालों सहित वह श्रावक महाशतक के पास आई। श्रावक को उस की गंदी हरकतों पर क्रोध आ गया। उस श्रावक ने रेवती को शीघ्र मरने और मरने के बाद नरक की भविष्यवाणी की। इस भविष्यवाणी को सुन रेवती भयभीत हुई। वह अब नशा भूल चुकी थी। यह भविष्यवाणी थी कि रेवती १६ रोगों से तड़प कर मरेगी। प्रभु महावीर को अपने श्रावक की भविष्यवाणी का पता चला तो उन्होंने महाशतक को ऐसा करने के लिए प्रायश्चित्त करने को कहा। प्रभु महावीर से महाशतक ने आज्ञा सहर्ष स्वीकार प्रायश्चित्त ग्रहण किया। प्रभु महावीर ने श्रावक को ऐसा सत्य बोलने से रोका, जो हिंसा का कारण हो।

नवम अध्ययन में नंदिनी फिता के श्रावक जीवन का वर्णन है। दसवें अध्ययन में सालिहिपिता का वर्णन है। इन दोनों श्रावकों के जीवन में कोई उल्लेखनीय घटना घटित नहीं हुई।

इन सभी श्रावकों के जीवन का उल्लेख करने वाली कुछ गाथाएं संग्रहणी सूत्र में उपलब्ध हैं। यह मूल शास्त्र भाग नहीं। यह गाथाएं शास्त्र का सार हैं।

दसों श्रावकों के नगर - एक श्रावक, वाणिज्य ग्राम, चम्पा में एक, वाराणसी में दो, कपिलपुर में एक, पोलासपुर में एक, राजगृह में एक, श्रावस्ती में दो श्रावक पैदा हुए।

२. पत्नीयों के नाम :

शिवनंदा, भद्रा, श्यामा, धन्ना, बहुला, पुष्पा, अग्निमित्रा, रेवती, आदि, उपत्नीयां , अश्विनी और फलगुमित्रा।

३. मरणोत्तर देव विमानों के नाम :

अरुण, अरुणाभ, अरुणप्रभ, अरुणकातं, अरुण्णेषु, अरुणध्वज, अरुणभूत, अरुणावंतसर, अरुणागव, और अरुणाशील में देव भव में पैदा हुए।

४. पशुधन :

एक ब्रज में १०,००० गायें होती थीं। उसी के अनुसार १० श्रावकों के ब्रजों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है। (१) ४, (२) ६, (३) ८, (४) ६, (५) ६, (६) ६, (७) ६, (८) ८, (९) ४, (१०) ४,,

५. धन : प्रथम श्रावक के पास १२ करोड़, दूसरे के पास १८ करोड़, तीसरे के पास २४ करोड़, चौथे के पास १८

आस्था की ओर बढ़ते कदम
करोड, पांचवे के पास १८ करोड, छठे के पास १८ करोड, सातवें के पास ३ करोड आठवें के पास २० करोड स्वर्ण मुद्राओं का अपार धन था।

हर श्रावक ने ११ प्रतिमाओं को धारण किया। सभी श्रावक कृषि योग्य जमीन के स्वामी था। आनंद श्रावक के पास ५०० हलों के योग्य कृषि भूमि थी। १५ सौ रथ, पाच माल डुलाई के वाहन थे। ८ किश्तीयां थी। बाकी श्रावकों के पास कितने पशु वाहन थे उनका वर्णन इस शास्त्र में नहीं आया। सद्दाल पुत्र की ५०० दुकानें थी। जहां छोटे बड़े वतन वेचने के लिए उस ने नौकर रखे थे। इस ग्रंथ का सारा खर्च साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की संसारिक माता दुर्गा देवी (लाहौर) ने किया। इस ग्रंथ का विमोचन एक भव्य समारोह में देहली के, लाल किला के भव्य प्रांगन में हुआ। इस सम्मेलन में विश्व के कोने कोने से विदेशी धार्मिक विद्वान व पत्रकार सम्मिलित हुए। भारत के प्रमुख नेताओं में डा० कर्ण सिंह व अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष जेयरमैन डा० गोपाल सिंह ददी उपस्थित हुए। अनेकों देशी-विदेशी पत्रकार आए थे। इस सम्मेलन के आयोजक विश्वधर्म संगम संस्थापक आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने किया था। इस अवसर पर रूहानी सत्संग मिशन के परम संत कृपाल सिंह जी विराजमान थे। सम्मेलन का उद्घाटन तत्कालिन गृहमंत्री ज्ञानी जैल सिंह जी ने किया। उन्होंने जामा मस्जिद से कवूतर छोड़ कर सम्मेलन का उद्घाटन किया। कवूतर शांति का प्रतीक माने जाते हैं। इस ग्रंथ में इंटरनैशनल महावीर जैन मिशन की तत्कालिन सचिव श्रीमती गुरुशक्ति (जैरी) का महत्वपूर्ण संदेश था। प्रस्तावना हमारी थी। वह ग्रंथ उप-प्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को मालेरकोटला में भेंट किया गया।

इस ग्रंथ का विमोचन डा० गोपाल सिंह दर्दी चेयरमैन अल्पसंख्यक आयोग ने किया। यह किसी पंजाबी जैन ग्रंथ का अखिल विश्व स्तर पर प्रथम विमोचन था। उन्होंने हमारे इस अनुवाद की युक्त कंठ से प्रशंसा की। आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने इस ग्रंथ का परिचय हिन्दी व अंग्रेजी में दिया। हमें व हमारी गुरुणी जी को पंजाबी साहित्य की सेवाओं के लिए उन्होंने साधुवाद दिया। हमें उनका व संसार की महान आत्माओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ को संसार के कोने कोने तक पहुंचाने के लिए, विश्व भर के २०० प्रतिनिधियों को यह ग्रंथ भेंट किया गया। डा० दर्दी प्रथम पंजाबी जैन ग्रंथ को देख कर एक बार चकित रह गए। उन्होंने विमोचन का अवसर प्रदान करने के लिए आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज का आभार प्रकट किया। इस बात का वर्णन उन्होंने अपने भाषण में किया।

हमारो हौंसला बड़ा, मैं लम्बी अस्वस्था के बाद ठीक हुआ था। मैं प्रभु महावीर का धन्यवाद करने दिल्ली से श्री महावीर जी तीर्थ पहुंचा। इस तीर्थ के बारे में हमने सुना ही था, दर्शन नहीं किए थे। हमें इस तीर्थ के बारे में जैसा देखा था उस से अधिक पाया। कहने को यह दिगम्बर तीर्थ है, पर यहां सारे भारत से हर जाति, वर्ग के व नस्ल के भक्तगन देश विदेश से आते हैं। यह मंदिर राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में स्थित है। मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन हर वर्ष इस तीर्थ पर वन्दन करने जाते हैं। पर यहां पहली बार हम इस विमोचन समारोह के बाद गए थे।

श्री सूत्र कृतांग सूत्र - ३

जैन आगम साहित्यों में श्री आचारंग सूत्र के बाद सूत्रकृतांग का स्थान है। यह एक ऐसा दार्शनिक ग्रंथ है

आस्था की ओर बढ़ते कटन
जिस में ३६३ ऐसी मतों का वर्णन है, यह दर्शन वह है जो इतिहास के नक्शे से मिट चुके हैं। भारतीय इतिहास में यह ग्रंथ महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस ग्रंथ का अनुवाद करने का हम दोनों को सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस शास्त्र के अनुवाद से पहले हमें विभिन्न दर्शनों के अध्ययन का अवसर मिला। इस ग्रंथ के शुरू में विस्तृत भूमिका महत्वपूर्ण है। इस सूत्र के दो स्कंध हैं प्रथम स्कंध में १० अध्ययन हैं। द्वितीय स्कंध में ७ अध्ययन हैं।

प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन का नाम समय है। इस में समय परसमय का वर्णन है। वध, हिंसा और वैर का कारण परिग्रह है। पर वादीयों के तीन सौ मतों की मान्यता का वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन वैतालिय में समिति, कषाय विजय, परिषहविजय का उपदेश भगवान महावीर ने अपने श्रमणों को सुन्दर ढंग से दिया है।

तृतीय अध्ययन का नाम उपसर्ग है। इस में श्रमण को सुख व दुख समता में रह कर संयम पर दृढ़ रहने का उपदेश है। जैसे पानी के अभाव में मछली छटपटा कर प्राण त्याग देती है इसी तरह श्रमण प्रतिकूल स्थितियों में प्राण तक त्याग दे, पर परिषह में भी व्रतों का पालन करे।

चतुर्थ अध्ययन स्त्री परिज्ञा बहुत महत्वपूर्ण है। जो ब्रह्मचारी मुनि है वह ध्यान को भूल कर भोग में उलझ जाता है। वह साधना से भ्रष्ट हो जाता है। अतः मुनि को स्त्री संसर्ग से वचना चाहिए।

पांचवा अध्ययन का नाम नरक विभिक्त है। इस में नरक में पैदा होने वाले जीवों की वेदना का चित्र प्रस्तुत कर, मनुष्य को पाप से वचने का उपदेश दिया गया है।

छटा अध्ययन वीरथुई है। यह प्रभु महावीर की

स्तुती है। इस के रचियता आचार्य सुधर्मा स्वामी हैं। यह संसार की प्रथम स्तुती में है जो छन्द अलंकार के सभी नियमों की कसौटी पर खरी उतरती है। इस में विविध उपमाएं देकर प्रभु की स्तुती की गई है। उन के वीतरागी जीवन की झलक इस स्तुती से मिलती है।

सातवें अध्ययन का नाम कुशील है। इस में कुशील का वर्णन है। आठवें अध्ययन का नाम वीर्य है। इस में बताया गया है कि भिक्षु को असंयम का परित्याग कर संयम में पुरुषार्थ करना चाहिए।

नौवा अध्ययन का नाम धर्म है। इस में धर्म पर सुन्दर चिंतन प्रस्तुत किया गया है। दसवें अध्ययन का नाम समाधि है। इस में भाव समाधि पर प्रकाश डाला गया है। ग्यारवें अध्ययन का नाम मार्ग है। इस में सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चरित्र व तप पर प्रकाश डाला गया है।

बारहवां अध्ययन समोसरण है। इस अध्ययन में अक्रियावादी, अज्ञानवादी विनयवादी और क्रियावादी चार समोसरणों का उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख भारतीय इतिहास की निधि है। दूसरे दार्शनिकों का आचरण व व्यवहार कैसा था ? इसका सुन्दर चित्रण इस अध्ययन में मिलता है। इन मतों की मान्यताओं का वर्णन है। तेहरवां अध्ययन यथातथ्य है। इस में क्रोध और उस के दुष्परिणामों को बताकर साधु को धर्म के प्रति श्रद्धालु व माया रहित जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है।

१४वें अध्ययन ग्रंथ में बताया गया है कि साधु को बाह्य और अंतर परिग्रह से युक्त होकर संयम की उत्कृष्ट साधना करनी चाहिए। पन्द्रहवें आदान या आदानीय अध्ययन में बताया गया है कि विवेक की तेजस्विता के साथ संयम साधना उत्कृष्ट होनी चाहिए। सोलहवें गाथा अध्ययन

आस्था की ओर बढ़ते कदम में निगंध, भिक्षु, श्रमण शब्दों की व्याख्या की गई है। यह सब साधु के पर्यावाची नाम हैं जो प्राचीन काल से जैन साधु के लिए प्रयोग होते थे।

द्वितीय श्रुत स्कंध का दूसरा नाम महानिश्चिथ है। इस के सात अध्ययन हैं। इन सात अध्ययनों में अधिकांश दार्शनिक विवेचन के साथ ही आचार का सुन्दर विवेचन है। इन अध्ययनों के बारे में आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने जैन आचार के पृष्ठ ३६६ में बताया है :-

विना प्रयोजन के मनोरंजन हेतु की जाने वाली हिंसा अनर्थ दण्ड है। श्रमणों को संयम पूर्वक आहार ग्रहण करना चाहिए। जो साधक षट् काय के जीवों के वध का परित्याग नहीं करता, उनके साधु मित्रवत् व्यवहार नहीं करता, उसकी भावना सतत्, सावधानुशासन की रहती है जिस से निरंतर वह श्रमण कर्मवध करता है। अतः प्रत्याख्यान आवश्यक नहीं, अनिवार्य है। आचार का सही पालन करने के लिए व अनाचार से बचने के लिए भाषा विवेक आवश्यक है। आद्रक कुमार मुनि ने गोशालक, वोद्ध, भिक्षु वेदवादी ब्राह्मण, हस्तीतापस आदि के साथ विस्तार से चर्चा करके उन परम्पराओं के आचार का खण्डन कर सम्यक आचार का प्रतिपादन किया है। लेप गाथापति के धार्मिक जीवन के माध्यम से गृहस्थ के आचार का वर्णन हुआ है। पार्श्वपत्य पेडालपुत्र और गणधर गौतम की आपसी महाव्रत धर्म और पंच महाव्रतों की चर्चा का विश्लेषण है।

इस तरह प्रस्तुत आगम में भी अध्यात्मिक सिद्धांतों को जीवन में ढालने का और शुद्ध श्रमणाचार का पालन करने के लिए अत्याधिक दल दिया है। श्रमणों को संसारिक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेना चाहिए और न ही अपना मन प्रकट करना चाहिए, उसे मध्यस्थ भाव रखना

चाहिए।”

इस आगम के अनुवाद में बहुत कठिनाईयाँ आईं। इस आगम के प्रथम भाग की भाषा काफी प्राचीन है। पंजाबी भाषा में अनुवाद के लिए योग्य शब्दों का आभाव बहुत खटका।

सारा कार्य हम दोनों ने एक वर्ष में पूरा किया। एक वर्ष विद्वानों को दिखाने व विमर्श में लग गया। फिर हमारी प्रेरिका साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का आशीर्वाद व प्रेरणा से यह आगम प्रैस में गया। इस आगम के अनुवाद में विद्वानों का हमें उतना सहयोग नहीं मिला जितना श्री उत्तराध्ययन सूत्र के संदर्भ में मिला था। फिर भी प्रभु महावीर का आशीर्वाद हमारे साथ था। इसी का सुफल था कि यह अनुवाद कठिन होते हुए भी हमें सुगम लगा। इस तरह इस आगम का पंजाबी अनुवाद व्याख्या सहित तैयार हो गया।

एक वर्ष इस अनुवादक के प्रकाशन में लग गया। पंजाब में आतंकवाद का समय था। कुछ श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस में कम ज्यादा होने के कारण कुछ भाग इस आगम को हमें बाहर से छपवाना पड़ा। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने सारे प्रूफ पढ़े। जिल्द की व्यवस्था हुई। कुछ भाग ज्ञानी प्रिंटिंग प्रैस ज्ञानी की थी। वह पंजाबी भाषा में कुशल था। हमारा कार्य इस प्रैस से जल्द पूरा हो गया। उसका कारण यह था कि उस प्रैस में सारा कार्य पंजाबी में होता था। प्रैस घर में थी। इस के विपरीत श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस में हिन्दी में काम की अंवार लगी हुई थी। पर प्रैस के मैनेजर श्री राजकुमार शर्मा का सहयोग भी महत्वपूर्ण रहा।

इस आगम के लिए दो शब्द फ्रांस की जैन विदूषी डा० नलिनी वलवीर ने लिखे। इस ग्रंथ का विमोचन

इंटरनैशनल जैन कांग्रेस के अवसर पर दिल्ली के विज्ञान भवन में हुआ। इसका विमोचन स्वयं आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने किया। आप ने स्वयं इस शास्त्र की प्रस्तावना लिखी।

गच्छाचार प्रकीर्णक - ४

इस छोटे से ग्रंथ में आचार्यों ने श्रमण के लिए गच्छ में रहना अनिवार्य बताया है। गच्छ में रह कर भी साधक अपनी साधन निर्देश रूप से पूरी कर सकता है। इस में शिष्य को गलती हो जाने पर प्रायश्चित्त लेने के लिए गुरु के समक्ष प्रायश्चित्त करने का विधान है। अगर किसी कारण गुरु जिन मार्ग से विपरीत चले तो उसे शुद्ध मार्ग पर चलाना शिष्य का कर्तव्य है। अगर शिष्य ऐसा नहीं करता तो वह गुरु का शत्रु माना गया है। प्राकीर्ण में आचार्य को संघ का पिता माना गया है। वह स्वयं साध्याचार का पालन करता है। संघ के हर साधु से आचार्य इस का पालन करवाता है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो ऐसा आर्चा मोक्ष मार्ग का अधिकारी नहीं। धर्म संघ का शत्रु माना गया है। सारणा, वारणा, प्रेरणा करने वाला गच्छ होता है। इस में रह कर प्रत्येक साधु अपने पापों का प्रायश्चित्त द्वारा नष्ट करता है। जिसे आचार्य प्रदान करता है। इस प्रकार साधक में नए दोष पैदा नहीं होते। जिस गच्छ में गीर्ताथ मुनियों की संख्या ज्यादा हो उसे सुगच्छ कहा है।

इस ग्रंथ में श्रमण के अतिरिक्त श्रमणीयों की मर्यादा का भी कथन है। आचार्य ने श्रमणीयों को कहा है जिस गच्छ में स्थविरा महासाध्वी के पश्चात युवा साध्वी शयन करती है वह सुगच्छ है। ऐसा गच्छ ज्ञान दर्शन चारित्र्य का आधारभूत श्रेष्ठ गच्छ है। श्रमण श्रमणीयों को परस्पर

संबंध नहीं बनाना चाहिए। ऐसा रिश्ता आग के करीब घी का रिश्ता है। इस लिए श्रमण को बाल, वृद्ध, नातिन और भगिनि के शरीर का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। साध्वीयों को गृहस्थों के कार्यों में किसी प्रकार का संबंध नहीं रखना ही सुगच्छ का लक्षण है। इस सूत्र में गच्छ की परिभाषा गच्छ में रहने वाले साधू व साध्वीयों के कर्तव्य का स्पष्ट वर्णन है। साध्वीयों के बारे में इस शास्त्र में विशेष मनोविज्ञान चैतावनी दी गई है।

यह ग्रंथ प्रकिणक कहलाता है इस का विमोचन १० नवंबर को हुआ था। यह हमारी अर्ध वार्षिक पत्रिका पुरुषोत्तम प्रज्ञा के अंक का भाग था। यह पत्रिका का संपादन प्रकाशन मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन करते हैं। यह पत्रिका मेरे नाम को समर्पित उनकी गुरु भक्ति का प्रतीक है। उन्होंने इस प्रकिणक का अनुवाद करने की मेरे को प्रेरणा ही नहीं दी, बल्कि इस अनुवाद को हर प्रकार से सहयोग दे कर प्रकाशित किया। इस ग्रंथ को पढ़ने के पश्चात् हमें पुरातन जैन गच्छ परम्परा और उस के अनुशासन का पता चलता है।

वीरथुई - ५

वीरथुई कोई स्वतंत्र रचना नहीं। यह तो प्रभु महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा द्वारा की गई गुण पूरक स्तुति है। जिसे श्री सूत्रकृतांग सूत्र में स्थान दिया गया है। जैन समाज ही नहीं, समग्र कव्य जगत में यह प्राचीनतम काव्य है। गणधर सुधर्मा के शिष्य आर्य जम्बु स्वामी ने पूछा “प्रभु ! आप ने तो श्रमण भगवान महावीर को बहुत करीब से देखा है, सुना है, ऐसे श्रमण भगवान महावीर कैसे थे ? उनका गुण ज्ञान कैसा था ? कृपया मुझे बताएं।

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य सुधर्मा ने अपने

अस्था की ओर बढ़ते कदम शिष्य आर्य जम्बू के सामने ऐसा चित्र खींचा है जैसा उसी प्रकार का उन्होंने प्रभु महावीर का स्वरूप देखा था। सुना। वैसा सुधर्मा स्वामी ने स्तुती के रूप में अपने शिष्य आर्य जम्बू स्वामी को कह डाला।

“जैसे दानों में श्रेष्ठ अभयदान है, सत्त्यों में वही सत्य है जो किसी जीव की हानि का कारण न बने। तपों में उत्तम ब्रह्मचर्य तप है। लोक में उत्तम श्रमण ज्ञातापूत्र है।”

इस प्रकार के यह श्लोक बंध यह स्तुति प्रभु महावीर के प्रति श्रद्धा व आस्था का प्रतीक है। एक शिष्य अपने गुरु के प्रति क्या सोचता है ? इस का मनोविज्ञानिक व श्रद्धापूर्ण वर्णन इस स्तुती के हर शब्द में झलकता है।

इस वीरथुई पर अनेकों देशो-विदेशों के विद्वानों ने कार्य किया है। इस में जर्मन निवासी श्रीमती मेटे का नाम प्रसिद्ध है। उनका प्रवचन पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के प्रांगन में हमें सुनने का अवसर मिला। हमें भी इस बात की प्रेरणा मिली। हमने इस स्तुती का पंजाबी अनुवाद प्रकाशित किया। इस पुस्तक का अनुवाद का विमोचन आचार्य आत्मा राम भाषण माला के अवसर पर पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में हुआ था।

नवकार मंत्र व्याख्या - ६

जैन धर्म का मूल मंत्र नवकार है। यह मंत्र सव मंत्रों में श्रेष्ठ है। चौदह पुर्वों व समस्त आगमों का सार यह मंत्र त्रिलोक पूज्य है। इस मंत्र के ५ पदों में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व संसार में भ्रमण करने वाले सव साधुओं को नमस्कार किया गया है। यह मंत्र प्राचीन है यह सव जैन सम्प्रदायों में मान्य है। जैन संस्कृति, दर्शन व धर्म का आधार है। सभी मंत्र, तंत्र व यंत्र इस नवकार मंत्र से निकले हैं। हमने इस पुस्तक में अरिहंत सिद्धों भगवान के

स्वरूप का कथन किया है। आचार्य, उपाध्याय व साधु के गुणों का वर्णन भी किया। इस मंत्र की प्राचीनता का प्रमाण कलिंग के राजा खारवेल द्वारा लिखित शिलालेख से प्राप्त होती है। जो दूसरी ई० पू० सदी का है। उस का मंगलाचरण इस के प्रथम दो पदों से किया गया है। प्राचीन भगवती सूत्र में इस मंत्र को मंगलाचरण के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। पांच पद ही सारे जैन साहित्य के विस्तार का आधार है। इस मंत्र के अराधना व ध्यान से अनेक जीव मुक्ति रहे हैं भविष्य में जाएंगे। इस पुस्तक का विमोचन ३१ मार्च १९७२ को हुआ था।

समाधि मरण प्रार्किणक - ६

जैन धर्म में समाधि मरण का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। समाधि मरण को आम भाषा में संथारा कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। १. सागार २. आगार चारों अहार के त्याग संपूर्ण संथारा है। संथारा आत्म हत्या नहीं। आत्मा हत्या के पीछे संसारिक इच्छाओं की आपूर्ति ना होना मुख्य कारण है। संथारा स्वेच्छा से बहादुरी पूर्वक उस समय स्वीकार किया जाता है जब शरीर धर्म साधना में सहायता करनी बंद कर दे। शरीर को सुख पूर्वक धर्म में लगाना ही समाधिमरण है।

प्रस्तुत प्रकीर्णक की १२ गाथाओं में इस विषय का महत्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ काफी प्राचीन है। इसका वर्णन नंदी सूत्र में उपलब्ध नहीं होता है। प्रकीर्णक ग्रंथ उत्कालिक में आते आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरी ने अपने विधि भाग “प्रपा” में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ के शुरू में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव व अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को वन्दन किया गया है।

समाधि मरण के बारे में श्लोकों में कहा गया है :

“यह अराधना समाधि मरणा संयमी लोगों के जीवन का मनोरथ होता है। जीवन अंतिम भाग में इसे स्वीकार करके, निश्चय ही संयमी पुरुषों में विजय ध्वज फहराते हैं।”

फिर कहा गया है :

“जैसे तीर्थकरों ने ध्यानों में उत्तम शुक्ल ध्यान कहा है। ज्ञानों में उत्तम केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) है। इसी प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ठ परिनिर्वाण को श्रेष्ठ बताया गया है।”

समाधि मरण में श्रेष्ठता को आगे बढ़ाते कहा गया है :

“जैसे मणियों में श्रेष्ठ वैडुरिया मणी है। सुगन्धियों में गो शीर्ष पर चन्दन श्रेष्ठ है। रत्नों में श्रेष्ठ रत्न शृंगार है। इस प्रकार संयमी पुरुषों के लिए उदास समाधि मरण मोक्ष है।”

“समाधि मरण से आत्मा परमात्मा बन जाती है। देव लोक या मनुष्य गति को प्राप्त करती है।”

महत्त्व के बाद संधारे की तैयारी का वर्णन किया गया है। जो हर श्रावक या मुनि के लिए जानने योग्य है। वह ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं संधारे के संबंध में प्रदान करता है। संधारे का फल इस प्रकार बताया गया है :

“जो समत्व, अहंकार और मोह से रहित श्रेष्ठ मुनि घास फूस के संधारे को ग्रहण करके, मुक्ति का सुख अनुभव करता है ऐसा सुख चक्रवर्ती को भी प्राप्त नहीं होता।”

“हमने उस ग्रंथ का पंजाबी अनुवाद किया जिसे प्रकाशित कर मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने ३१ मार्च को मुझे समर्पित किया।

अप्रकाशित प्राकृत साहित्य

हमारे द्वारा कुछ अन्य प्राकृत आगमों का पंजाबी भाषा में अनुवाद किया गया है। उनमें कुछ आगमों का अनुवाद शीघ्र प्रकाशित है। इन आगमों का संक्षिप्त परिचय हम दे रहे हैं :

दशर्वेकालिक सूत्र १ :

यह मूल सूत्र है। जैन श्वेताम्बर परम्परा में हर नवदीक्षित साधु साध्वी को इस का अध्ययन आवश्यक है। इस में पांच महाव्रत, पांच समिति त्रस स्थावर जीवों का वर्णन, भिक्षा के ४२ दोषों का वर्णन है। यह शास्त्र जैन धर्म में आचार शास्त्र है। शास्त्र का पहला श्लोक बहुत महत्वपूर्ण है। जिस में कहा गया है :

“धर्म श्रेष्ठ मंगल है, धर्म का आधार अहिंसा, संयम व तप है। जो ऐसे धर्म की अराधना करता है उसे स्वर्ग के देवता नमस्कार करते हैं।”

‘साधु गाय की भांति भिक्षा प्राप्त करें, जैसे गाय मैदान में घास खाती है पर घास को हानि नहीं करता, जिस भ्रमरा फूलों से रस चूसता है , उसी प्रकार साधु गृहस्थों के यहां आहार करे।”

आचार की बात करते हुए कहा गया है “ साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, महाव्रत व रात्री भोजन का त्याग करे। परिग्रह वृत्ति पाप का कारण है। चला से चलता, खाता, पीता, भिक्षु पाप कर्म का बंध नहीं करता।”

जन साधारण के लिए कहा गया है कि “क्रोध, प्रेम का नाश करता है। इस लिए क्रोध को जीतना चाहिए।”

इस शास्त्र का संकलन आचार्य शयम्भव ने पूर्व

साहित्य से किया था। उनके पुत्र मनक ने दीक्षा ग्रहण की थी। जब दीक्षा ग्रहण की तो आचार्य ने अपने ज्ञान बल से जाना कि मनक की आयु कुछ दिन शेष है। कुछ दिनों में विशाल ज्ञान पढ़ाना असंभव था। आचार्य श्री ने १४ पृष्ठों से दस अध्ययनों का यह सूत्र तैयार किया। बाल मुनि अल्पायु में इस सूत्र के माध्यम से सारे साध्याचार नियमों का पालन करने लगे। यह सूत्र इतना प्रसिद्ध हुआ कि आचार्य की इस कृति को श्री संघ ने भगवत् वाणी के रूप में मान्यता प्रदान की। इस सूत्र के विषय में यह कहा गया है “कि पंचम काल में जब सब आगम नष्ट हो जाएंगे। दुन के अंत में यह ही आगम सुरक्षित रहेगा। इस आगम पर अनेकों आचार्यों ने टीका व भाष्य व टब्बा लिखे हैं। अन्ती यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

श्रमण सूत्र २ :

२५वीं महादीर निर्वाण शताब्दी समिति के अवसर पर प्रसिद्ध गांधीवादी सर्वोदय नेता श्री विनोबा भावे जी की प्रेरणा से चारों सम्प्रदायों ने जैन धर्म का एक सारभूत ग्रंथ तैयार किया। इस ग्रंथ में श्वेताम्बर, दिगम्बर ग्रंथों से विभिन्न विषय पर श्लोकों का संकलन कर इसे सर्वमान्य जैन ग्रंथ बना दिया। हम दोनों ने इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का पंजाबी अनुवाद किया है।

निरयावालिका आदि ५ उपांग ७ :

निरयावालिका ५ उपांग : इस उपांग ५ उपांग एक जिनमें संकलित किए गए हैं इस में प्रथम उपांग में श्रेणिक परिवार वैशाली विनाश, कोणिक जन्म, रथ मुसल संग्राम का वर्णन है। श्रेणिक पुत्रों का युद्ध में मरने, उनकी रानीयों द्वारा प्रभु महादीर के पास साध्वी जीवन स्वीकार

अस्था की ओर बढ़ते कदम
करने का वर्णन उपलब्ध होता है। यह अंग भारतीय इतिहास पर महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है।

द्वितीय अंग पुफीयां, तृतीय कम्पबडिया, चतुर्थ पुफचुलिका, पांचवा वणदीसा के नाम से प्रसिद्ध है। इन उपांगों में कुछ प्राचीन श्रमणों की परम्परा, भगवान नेमिनाथ व भगवान पार्श्वनाथ के समय के भिक्षुओं का वर्णन उपलब्ध होता है। इस का विस्तृत वर्णन हिन्दी निर्यावलिका में किया जाएगा।

ज्ञाताधर्म कथांग ८ :

यह ग्रंथ प्राचीन जैन कथाओं का संग्रह है। यह मूल आगमों में सूत्र कथानकों का संग्रह है। इस में कुछ प्राचीन इतिहासक कथाएं मिलती हैं। इस में द्रोपदी का प्रकरण भगवती मल्ली नाथ का इतिहासक वर्णन व भगवान महावीर की बोध कथाएं उपलब्ध होती हैं। इस ग्रंथ से हमें पता चलता है कि प्राचीन काल से भारत का व्यापार समुद्र पार देशों से होता था। जैन श्रावकों के जीवर्न पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्राचीन धार्मिक परम्पराओं के बारे में सम्प्रदाय का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार हम दोनों ने अर्धमागधी प्राकृत से पंजाबी भाषा में अनुवाद शुरू किया जिस के माध्यम से जैन साहित्य से लोग परिचित हुए। यह युग की मांग थी जिसे पूरा करना हर धार्मिक मनुष्य के लिए जरूरी है। हमारे अनुवाद का ढंग मिशनरी है। इसका उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार प्रसार करना है।

स्वर्ण सुधा ९ :

यह दैनिक प्रयोग में आने वाले प्राकृत पाठों का पंजाबी लिपिआंतर है। इस में अनापूर्वी भी शामिल है।

आस्था की ओर बढ़ते कदम श्रावक को रोजाना पठन योग प्राकृत पाठों का लिपितर जैन साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के दिशा निर्देश में तैयार किया गया है। पंजाब के गांवों में पंजाबी माध्यम होने के कारण प्रचार के कार्य में दिक्कत आ रही थी। जंगल देश के श्रावकों के कल्याणार्थ इस गुटके का प्रकाशन हुआ। यह भी प्रथम प्रयास था जो बहुत अच्छा रहा। हमारे इस प्रयास से उत्साहित अनेकों क्षेत्रों व संस्थाओं का ऐसा आयोजन हुआ।

इस प्रकार अर्धमागधी प्राकृत भाषा में जो प्रकाशित या अप्रकाशित साहित्य है हमारे द्वारा उस की सूचना दी गई है। इन अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना बन रही है। जिसे सरलात्मा गुरूणी साध्वी श्री सुधा जी महाराज पूरी करने में संलग्न हैं।

संस्कृत साहित्य :

संस्कृत भारत की ही नहीं, विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में मानी जाती है। इसका प्रमाण ऋग्वेद है जो संसार की प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है। इस भाषा में वेदिक, बौद्ध, व जैन साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है। जैन संस्कृत साहित्य के प्राचीन विद्वानों की लम्बी परम्परा आज तक चल रही है। इन विद्वानों में आचार्य मानतुंग, आचार्य उमास्वामी, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, श्री शीलांकाचार्य, आचार्य अभयदेव सूरि, आचार्य नेमिचन्द्र, आचार्य जिनप्रभव सूरि, आचार्य हेम चन्द्र सूरि व आचार्य यशोविजय के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने जैन आगमों की विभिन्न शाखाओं पर कार्य किया है। हम ने भी कुछ प्राचीन आचार्यों की कृतियों का पंजाबी अनुवाद करके, इसे प्रकाशित किया है जिन का विवरण इस प्रकार है :-

भक्तामर स्तोत्र 9 :

यह रचना प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव को समर्पित है। यह इतना सुन्दर काव्य है कि संसार की भिन्न भिन्न भाषाओं में इन का अनुवाद हो चुका है। इस रचना का अपना एक इतिहास है।

“उज्जैनी नगरी के राजा भोज प्रसिद्ध वेदिक धर्म के उपासक व शिव भक्त थे। उन के दरबार में नव रत्न रहते थे जो उनकी हर जिज्ञासा का उत्तर देते थे।”

“एक दिन की बात है कि मयूर नाम के ब्राह्मण ने अपनी पुत्री की शादी वाण ब्राह्मण से कर दी। पर वह शादी के तत्काल ही झगड़ा होने लगा। वाण को उसकी पत्नी ने श्राप दिया। श्राप के कारण वह कुष्टी हो गया। वाण ने सौ श्लोकों की सूर्य स्तुती की रचना की, जिस के प्रभाव से उस का कष्ट दूर हो गया। फिर उस ने अपने हाथ पैर काट कर देवी को अर्पण कर दिए। देवी ने प्रसन्न हो कर उसे आशीर्वाद दिया। उस का शरीर सुन्दर व निरोग हो गया।

इन चमत्कारों के प्रभाव से वाण जैन धर्म का निन्दक हो गया। इन चमत्कारों की बात राजा भोज व आचार्य मानतुंग तक पहुंची।

एक दिन वाण ने राजा से कहा “जैन भिक्षु तो भिक्षा से शरीर यापन करने के लिए जीते हैं। इन के यहां को विद्या चमत्कार नहीं। यह अज्ञानी हैं। यह शैवों की तरह चमत्कार नहीं दिखा सकते ?”

“अगर इन के पास कोई चमत्कार हो, तो इन्हें दरबार में बुला कर कुछ चमत्कार दिखाने को कहा जाए”। जैन श्रावकों को कहा जाए कि वह दरबार में अपने गुरुओं

अस्था की ओर बढ़ते कदम
को आकर चमत्कार दिखाने को कहे” राजा ने जैन श्रावकों को बुला कर ब्राह्मणों की बात कह डाली।

श्रावकों ने ब्राह्मण की घोषणा सुनकर कहा “इस समय उज्जैनी नगरी में विराजित आचार्य मानतुंग चमत्कारी आचार्य हैं। आप उन्हें बुलावा भेज दीजिए, वह इस प्रश्न का समाधान अवश्य करेंगे।”

राजा भोज ने आचार्य मानतुंग को दरवार में आने का निमंत्रण दिया। आचार्य श्री अपने समय के प्रकाण्ड पंडित थे। आचार्य श्री ने दरवार में आना स्वीकार कर लिया। वह महल के दरवाजे तक पहुंचे। उनके सामने विद्वानों ने एक घी का कटोरा प्रस्तुत किया। आचार्य श्री ने एक सिलाई उस में घोंप दी। श्रावकों ने इस कटोरी का रहस्य जानना चाहा, जिस के उत्तर में आचार्य श्री ने कहा “भव्य जनों ! घी से भरे कटोरे का अर्थ यह है कि उज्जैनी नगरी विद्वानों से ठसा-ठसा भरी पड़ी है। आप के लिए यहां स्थान नहीं। मैंने सिलाई घोंप कर उन्हें बता दिया है कि जैसे भरे कटोरे में सिलाई स्थान बना लेती है, उसी तरह मैं भी आप के विद्वानों में स्थान बना सकता हूं।”

आचार्य श्री मानतुंग दरवार में पधारे। राजा भोज ने प्रश्न किया “अगर आप में शक्ति है तो मेरे विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन्हें हराओ।”

आचार्य श्री ने ईश्वर कृता के प्रश्न पर सब को हरा दिया और अपने प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं, वह तो मुक्त आत्मा की अवस्था का नाम है।

फिर राजा ने कहा, “आप अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाएं।” आचार्य श्री ने कहा “राजन ! आत्मा से बड़ा कोई चमत्कार नहीं। तुम्हारे विद्वान जो कार्य कर रहे हैं

वह तो इन्द्रजालियों का काम है, विद्वानों का नहीं। पर आप की इच्छा पूर्ति व जैन धर्म की प्रभावना हेतु यह कार्य मैं करूंगा। आप ऐसा कीजिए। मेरे शरीर को ४८ तालों वाली कोठड़ी में कैद कर दीजिए। मुझे ४८ हाथ कड़ीयां पहना दीजिए। फिर आप के प्रश्न का समाधान मिलेगा।”

राजा ने आचार्य श्री की परीक्षा हेतु उन्हें ४८ तालों वाली कोठड़ी में ४८ तालों वाली जंजीरों से बांध दिया। सारी उज्जैनी नगरी चमत्कार की प्रतीक्षा कर रही थी। सभी तालों के आगे सैनिक तैनात कर दिये ताकि कोई आचार्य श्री मानतुंग की सहायता न कर सके।

आचार्य श्री ने प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की स्तुति प्रारम्भ की। प्रथम श्लोक को बोलते ही प्रथम कोठड़ी का ताला व प्रथम जंजीर का एक ताला टूट गया। इस प्रकार आचार्य श्री ने भक्तों को अमर बनाने वाला स्तोत्र रच डाला। अपने भगवान को इस से सुन्दर स्तुति संस्कृत साहित्य में अन्य मुश्किल से उपलब्ध हो।

इस तरह ४८ श्लोकों की रचना के बाद सभी ताले टूट गए। आचार्य श्री बंधन मुक्त हो कर राजा भोज के सामने आए। आचार्य श्री के इस चमत्कार के प्रभाव से राजा भोज जैन धर्म का परम उपासक बन गया। उसे जैन साहित्य में जैन राजा माना गया है। यह सब भक्तामर स्तोत्र का निर्माण आचार्य मानतुंग की प्रभु भक्ति के प्रभाव से हुआ।

हमारे द्वारा इस स्तोत्र का पंजाबी भाषा में प्रथम अनुवाद करके इसे प्रकाशित किया गया। जिस का विमोचन करने का सौभाग्य मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने मुझे दिया। यह स्तोत्र महाप्रभावक फल देने वाला है। इस के हर श्लोक में मंत्र, यंत्र, तंत्र बने हैं। इस स्तोत्र में तीर्थंकर में समोसरण के अतिशयो, प्रतिहार्य का सुन्दर वर्णन है।

आचार्य श्री ने इस स्तोत्र को भयहरण स्तोत्र बताया है। आचार्य श्री ने इस स्तोत्र में स्वयं के बारे में कहा है :

“हे देव द्वारा पूजित सिंहासन पर विराजमान प्रभु ! मैं कितना निलज हूं जो स्तुती ज्ञान को न जानते हुए भी आप की स्तुती को तैयार हुआ हूं। पर इस में मेरी कोई त्रुटि नहीं, क्योंकि पानी में चन्द्रमा की छाया देख वालक उसे क्या पकड़ने का अभ्यास नहीं करते ?” १३॥

“हे महामुनि मैं शक्तिहीन आप की भक्ति को प्रस्तुत हुआ हूं। जैसे कमजोर हिरणी अपने बालक की रक्षा सिंह से करती है, ठीक मेरी स्थिति उस हिरणी जैसी है” १५॥

यह स्तुती के हर श्लोक में छन्द, रूपक व अलंकार के दर्शन होते हैं। अनेकों आचार्यों ने इस पर टीका शास्त्र रचे हैं। उस स्तोत्र का हर श्लोक हर शब्द चमत्कारी फलदायक है। इस का मंत्र शास्त्र में अपना स्थान है। जैन धर्म में यह स्तोत्र भक्ति मार्ग की पराकाष्ठा है। सब से बड़ी बात है कि इस स्तोत्र को जैन धर्म के सभी सम्प्रदाय श्रद्धा से मानते हैं। हां, इस के श्लोक संख्या को लेकर श्वेताम्बर मुनि पूजक संघ बाकी जैन समाज से कुछ मत भेद हैं। श्वेताम्बर जैन मुर्ति पूजक संघ इस की श्लोक संख्या ४५ मानता है। बाकी सभी ३ सम्प्रदाय ४८ मानते हैं।

कल्याण मंदिर स्तोत्र २ :

हमने इस स्तोत्र का पंजाबी अनुवाद किया है। यह आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर की अमर कृति है। इस की रचना भी उज्जैनी का महाकाल मन्दिर माना जाता है। जब राजा विक्रमादित्य ने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर से शिव

जास्था की ओर बढ़ते कदम

मन्दिर में जाकर शिवलिंग को नमस्कार करने को कहा। इस के उत्तर में राजा ने कहा “हम अनेकांत वादी साधु हैं हमें सनायी देव को नमस्कार करना मना है। यह भगवत् आज्ञा के विपरीत है।”

राजा अपनी जिद पर अड़ा रहा। आचार्य श्री ने कहा “चलो मैं महाकाल के मन्दिर में जाकर प्रणाम करूंगा। यह शिव लिंग मेरा प्रणाम सहन न कर सकेगा। अगर कोई हानि हुई तो मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं होगी।”

आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर ने राजाज्ञा को स्वीकार करते हुए महाकाल मंदिर में पहुंचे। भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति प्रारम्भ की। पांचवे श्लोक के उच्चारण के बाद शिवलिंग फट गया। भूमि से प्रभु पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा प्रकट हुई। यह स्तोत्र भी भक्तामर स्तोत्र की तरह छंद अलंकार से अलंकृत है। यह स्तुति भी चारों सम्प्रदायों में सर्वमान्य है। स्तोत्र अनेक मंत्र, यंत्र व तंत्र का भण्डार है। इस चमत्कारी स्तोत्र का अनुवाद भी मेरे नाम को समर्पित पत्रिका पुख्खोत्तम प्रज्ञा के अंक में प्रकाशित हुआ था। यह रचना मेरे जन्म दिन पर मेरे धर्मभ्राता की विशेष भेंट थी।

इस स्तोत्र के साथ हमने लोगस्स, नमौत्थुणं, उवसगंहर पाठ का भी पंजाबी अनुवाद प्रकाशित किया। यह सब मेरे जन्म दिन पर मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने मुझे समर्पित किया। मैं स्वयं भगवान् पार्श्वनाथ का भक्त हूं। इस स्तोत्र का पंजाबी अनुवाद करके हमने अपने इष्ट को अपनी भाषा में श्रद्धांजली भेंट भक्ति की है।

यह दोनों जैन इतिहास की प्राचीन परम्परा से संबंधित हैं। इन के स्वाध्याय से पता चला है कि प्राचीन काल से जैन आचार्य को धर्म प्रचार में किस तरह के कठिन संकट सहने पड़े। स्वयं आचार्य सिद्धसेन दिवाकर पहले

क्रियाकाण्डी ब्राह्मण थे। पर ज्ञान मद के कारण शास्त्रार्थ में हार गए। हार के पश्चात जैन श्रमण बन गए। फिर अपनी योग्यता के आधार पर आचार्य बने। आचार्य बनने के बाद विपूल मात्रा में संस्कृत साहित्य लिखा।

अथ प्रश्नोत्तर रत्न मालिका - ४, प्रश्नोत्तर रत्न मालिका ५ :

दक्षिण भारत में काफी लम्बे समय तक जैन धर्म राज धर्म रहा है। अनेकों राजाओं, रानीयों, सामन्तों, मंत्रियों व समान्य प्रजाजनों ने इस जैन धर्म का पालन किया। पर शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, मंडन मित्र, रामानुज जैसे ब्राह्मणों ने जैन धर्म का विरोध स्वयं ही नहीं किया, बल्कि राजाओं से भी करवाया। आज तामिलनाडू, बिहार में जैन मंदिर तो हैं पर जैन नहीं। इसी तरह राजा खारवेल के उड़ीसा राज्य में जैन धर्म लोप हो गया। पर जैन धर्म का प्राचीन रूप आज भी महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र में मिल जाता है। कर्नाटक प्रदेश में अनेकों पिछड़ी जातीयां जैन हैं। कर्नाटक वही प्रदेश है जहां आचार्य भद्रबाहु स्वामी अपने शिष्य मुनि चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ पधारे। उन्होंने धर्म प्रचार किया। वहां दोनों ने समाधि मरण किया। उनकी समाधि श्रवणबेलगोला में है। इसी स्थान पर गंग वंश के मंत्री व सेनापति चामुण्ड राय ने भगवान बाहुबलि की विश्व प्रसिद्ध प्रतिमा का निर्माण किया। गुजरात के बाद आज भी जैन धर्म कर्नाटक में ग्रामीण स्तर पर पनप रहा है। वहीं अनेकों दिगम्बर जैन तीर्थ हैं। इसी प्रदेश के राजा ने संयम ग्रहण किया। उन्होंने शास्त्रों का भी अध्ययन किया। बहुत कम वर्षों तक तप किया। फिर उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से इस दो लघु ग्रंथों का संस्कृत भाषा में निर्माण किया। दोनों ग्रंथ गागर में

आस्था की ओर बढ़ते कदम सागर हैं। दोनों प्रश्न उत्तर के रूप में हैं। यह प्रश्न जैन धर्म, साधु जीवन व गृहस्थ जीवन से संबंधित है।

इन प्रश्नों के उत्तर जीवन की समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत करते हैं। इन ग्रंथों को एक बार पढ़ने से ऐसा लगता है कि जीवन रूपी पुस्तक के पन्ने कोई पलट रहा हो। इन ग्रंथ के माध्यम से इस ग्रंथ के विद्वान मुनि की विद्वता का पता चलता है। प्रथम पुस्तक में प्रश्नों की गिनती ज्यादा है। जब कि दूसरी पुस्तक आकार में लघुकाया है। इन रचनाओं से आचार्य ने अपने अनुभव प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किये हैं। प्रश्न के साथ ही उसका उत्तर है।

ऐसी कृति कम देखने को मिलती है फिर ऐसी रचना, जिस का कर्ता कभी एक प्रदेश का राजा रहा हो, कम उपलब्ध है। राजाओं का जीवन भोग प्रधान होता है। भोग से त्याग का जीवन एक क्रान्ति का उद्घोष है। यही उद्घोष इन प्रश्नों के उत्तरों में झलकता है। यह ग्रंथ दक्षिण को उत्तर से जोड़ता है। दक्षिण भारत के आचार्य ने संस्कृत में बहुत कार्य किया है। इस का उत्कृष्ट उदाहरण यह सार गर्भित ग्रंथ है। इन दोनों पुस्तकों के ४५ पृष्ठ हैं। इसका विमोचन पंजाबी विश्वविद्यालय में हुआ था।

अप्रकाशित संस्कृत साहित्य

सिन्धुर प्रकरण १ :

सिन्धूर प्रकरण ग्रंथ का संस्कृत साहित्य में अपना महत्व है। यह ग्रंथ भी ऐसा है जिसे श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों मानते हैं। यह नीती परक ग्रंथ है। जैसे पंचतंत्र में व्यवहारिक ज्ञान है। इस प्रकार इस ग्रंथ में ज्ञान भरा पड़ा है। इस के लेखक अज्ञात हैं। पर इस ग्रंथ पर संस्कृत भाषा में दिगम्बर आचार्यों ने काफी कार्य किया है। यह रवी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 शताब्दी की रचना लगती है। यह रचना मेरे धर्मभ्राता श्री रविन्द्र जैन ने मुझे ३१ मार्च को समर्पित किया था। अभी तक इसका प्रकाशन नहीं हो सका।

हमारा हिन्दी से पंजाबी भाषा में

अनुवादित प्रकाशित साहित्य

जैसे मैं कई स्थानों पर लिख चुका हूँ कि पंजाव की राज्य व जन संपर्क की भाषा पंजाबी है। इस दृष्टिकोण को सामने रख कर हमने पंजाबी भाषा में लिखना शुरू किया। पंजाबी साहित्य की कमी हमें शुरू से खटकती रही है। इस का प्रमुख कारण है कि जैन धर्म के प्रति पंजाव के लोगों की अज्ञानता। इस अज्ञानता को मिटाने का प्रमुख साधन प्रचार है। प्रचार का प्रमुख साधन भाषा होता है। भाषा वह माध्यम है जो अपनी बात पहुंचाने का सरल व सुगम मार्ग है। जन संपर्क का अच्छा साधन है। धर्म प्रति फैली भ्रांतियों को समाप्त करके आस्था को जन्म देती है। इसी भावना ने हमें सरल साहित्य का पंजाबी का अनुवाद करने की प्रेरणा दी। इस का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :

इक समस्या - इक हल १ :

हम दोनों ने १९७२ के बाद लिखना शुरू किया। हमारी पहली कृति आचार्य तुलसी के शिष्य स्वः हनुमान मुनि 'हरिश' की एक लघु कृति थी। यह पुस्तक प्रश्न उत्तर के रूप में थी। इस के दो भाग थे। प्रथम हिस्सा जैन धर्म से संबंधित था। दूसरा भाग अणुव्रत की व्याख्या थी। इस के पहले भाग का अनुवाद मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने किया था। यह जैन धर्म के अनुवादित प्रथम पुस्तक थी। मैंने इस पुस्तक का प्राक्थन लिखा था, जिस में जैन धर्म की प्राचीन श्रमण परम्परा का उल्लेख था। पर इस में मेरा पूर्ण

सहयोग था। कृति ने हमारा हौसला बढ़ाया। फिर एक क्रम चल पड़ा, जो अब तक जारी है। इस क्रान्ति से हम पंजाबी भाषा में जैन साहित्य के प्रथम अनुवादक बन गए।

भगवान महावीर - सिद्धांत ते उपदेश - २ :

यह पुस्तक जैन धर्म की महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस का मूल लेखन राष्ट्र संत उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज ने किया है। यह पुस्तक गागर में सागर है। मात्र १२० पृष्ठ की इस पाकेट साइज ग्रंथ में भगवान महावीर के पूर्व कालीन स्थितियां, तीर्थंकर परम्परा, श्रमण व श्रावक परम्परा, प्रभु महावीर के जीवन की घटनाओं के मार्मिक प्रसंग, अहिंसा अनेकांतवाद आदि सिद्धांतों का सरल, सुगम भाषा में विवरण प्राप्त होता है। काफी समय से पंजाबी भाषा में कोई प्रमाणिक जीवन चरित्र उपलब्ध नहीं था। इस बात की कमी मुझे उस मीटिंग में खटकी, जिस में ज्ञानी जैल सिंह मुख्यमंत्री पंजाब सरकार ने ऐसे साहित्य की मांग की थी, जो पंजाबी भाषा में हो। परन्तु जैन समाज जो भगवान महावीर का २५०० साला निर्वाण महोत्सव मना रहा था, उस के पास ज्ञानी जी के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था।

मैंने अपने प्रिय धर्म भ्राता रविन्द्र जैन का ध्यान इस कमी की ओर दिलाया। उसे प्रेरणा देते हुए मैंने कहा, “रविन्द्र ! ज्ञानी जी द्वारा जैन समाज को जो इंगित किया गया है। इस कमी को पूरा करो। जल्दी ही किसी विद्वान द्वारा प्रमाणिक जीवन चरित्र को पंजाबी भाषा में अनुवादित करो।”

मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने मेरे इस संदेश को आदेश मानकर शिरोधार्य किया। उन्होंने एक मास में ४० से ज्यादा जीवन चरित्र पढ़ डाले। अंत में यह ग्रंथ हमें आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज की लाइब्रेरी से प्राप्त हुआ।

उत्सव की ओर बढ़ते कदम
 उनकी कृपा व आशीर्वाद से मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने इस ग्रंथ का पंजाबी अनुवाद मात्र दो मास में कर डाला। इसका सुन्दर आवरण बनाया गया। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का मैंने आशीर्वादचन लिखा। इस पुस्तक के प्रेरक भण्डारी प्रवर्तक श्री पद्म चन्द जी महाराज व उपप्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज महाराज बने। उनकी कृपा व आशीर्वाद से भगवान् महावीर चरित्र की दो हजार प्रतिमां प्रकाशित हुईं। हमारी समिति इस की प्रकाशक संस्था थी। उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज ने आशीर्वाद दिया। इस पुस्तक के माध्यम से हमारे उनसे संबंध प्रगाढ़ हुए। उन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन की आज्ञा देकर हमारी समिति पर उपकार किया। इस पुस्तक से हमारी पंजाबी लेखक, संस्था, साहित्यकार के रूप में पहचान बनी। २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी पर पंजाब सरकार ने वह कार्य भाषा विभाग को सौंपा गया था पर वह कार्य समय पर सम्पन्न नहीं हो सका। इसी कार्य को मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने चमत्कारी ढंग से सम्पन्न किया। इसका प्रकाशन श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस लुधियाना से हुआ।

इस ग्रंथ का विमोचन मानसा में एक भव्य समारोह में डी.सी. महोदय ने किया। इस अवसर पर डी. सी. साहिव ने भगवान् महावीर पार्क का उद्घाटन किया। यह पुस्तक देश विदेश के विद्वानों व लाइब्रेरीयों में पहुंची। इस की समीक्षा दिल्ली की एक पंजाबी पत्रिका में प्रकाशित हुई जिसे प्रसिद्ध कवि स. गुरुदेव सिंह मान ने लिखा। इसका अंग्रेजी अनुवाद भण्डारी श्री पद्म चन्द जी महाराज ने प्रकाशित करवाया।

यह पुस्तक मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत बनी। मैंने सोचा अब अच्छे जैन साहित्य को पंजाबी में अनुवादित

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 करने का समय आ गया है। वस यह पुस्तक हमारे प्रगाढ़ संबंधों को मजबूत करने का साधन बनी। हमें सभी सम्प्रदायों के संत, साधु-साध्वियों के आशीवाद प्राप्त होने लगे। यह प्रथम जैन पुस्तक थी जिसे किसी प्रकाशन ने विक्री हेतु, हमारी संस्था से खरीदा। हम इस के माध्यम से बहुत से अंतराष्ट्रीय स्तर के जैन विद्वानों से साक्षात्कार का अवसर मिला।

जैन धर्म अते दर्शन ३.

श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज नहान प्रभावक आचार्य थे। उन्होंने सारा जीवन जैन साहित्य को समर्पित किया था। उन्होंने ४५० से अधिक ग्रंथों का निर्माण प्रकाशन अपनी जिंदगी में किया। जिसमें जैन कथा, दर्शन, आचार, पुरातत्व, साहित्य, ज्योतिष, तर्क, कर्म, आत्मा आदि अनेकों विषयों पर उन्होंने ग्रंथ लिखे। वह सिद्धहस्त लेखक थे। हमारी उनसे प्रथम भेंट रोनिला (हरियाणा) में हुई, जब हम निरयावलिका सूत्र के लिए आशीवाद लिखवाने गए। वह इतने पद पर पहुंच कर भी बड़े सरलात्मा थे। पंजाब में उनका स्वागत अम्बाला शहर में हमारी गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की देख रेख में हुआ। उनका प्रथम चतुर्मास लुधियाना में था। चतुर्मास में हर रविवार को दर्शन करने जाते थे। एक दिन उन्होंने हमें कहा “आप हमारे साहित्य में किसी ग्रंथ का पंजाबी भाषा में अनुवाद करो, जो सब लोगों के लिए उपयोगी हो” आचार्य श्री की बात क्या कहें, ऐसा लेखक व वक्ता मैंने अपने जीवन में कम देखा है। जिस का सारा जीवन साहित्य को समर्पित हो। वह विश्व के हर धर्म के जानकार थे। वह परम अहिंसक थे। पंजाब में डेरा बस्सी में खुल रहे वुच्चडखाने की उन्होंने मुख्य मंत्री श्री वेअंत सिंह

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 जी से इस ढंग से विरोधता की कि पंजाब सरकार को
 बुच्चड़खाना जो बन चुका था, उस का लाईसैंस रद्द करना
 पड़ा। पर दूसरी पार्टी के कोर्ट में जाने के कारण उसे स्टे
 मिल गया।

ऐसे महापुरुष के बड़े-बड़े ग्रंथों में से एक
 पुस्तक चुनना मुश्किल कार्य था जो सरल भाषा में जैन धर्म
 का परिचय प्रदान करे। मुझे इस संदर्भ में यह जैन धर्म दर्शन
 पुस्तक उपयुक्त लगी। अब कम्प्यूटर का युग आ चुका था।
 हम ने दोनों इस ग्रंथ का अनुवाद अपनी रविवारीय मीटिंग
 में मात्र दो महीने में कर डाला। पंजाबी साहित्य की प्रसिद्ध
 संस्था लोक गीत प्रकाशन सरहिंद ने इस पुस्तक को
 प्रकाशित करने का जिम्मा लिया। मैं इस प्रकाशन संस्था को
 पंजाब की सर्वश्रेष्ठ संस्था मनाता हूँ। हम यह ग्रंथ टाईप
 करवा कर आचार्य श्री को समर्पित किया। आचार्य भगवान
 बोले “वेदा ! यह प्रकाशन का कार्य तुम्हें ही सम्पन्न करना
 है, हम प्रदेसी पंजाबी जानते नहीं।”

आचार्य श्री का समस्त जीवन, जैन धर्म के प्रति
 श्रद्धा, विनय व आस्था की जीती जागती मिसाल था। उनका
 गौर वर्ण, मध्य कद, शुद्ध हिन्दी उच्चारण सबके मन को
 भाता था। वह बहुत तपस्वी आत्मा थे। आचार्य आत्मा राम
 जी महाराज के वाद समाज को आप जैसा श्रुतधर आचार्य
 मिला था। वह सब जैन सम्प्रदायों की एकता में विश्वास
 रखते थे। अपने व्यक्तित्व से वह हर प्राणी को प्रभावित
 करते थे। ऐसे महापुरुष की आज्ञा को पूरा करने का हमें
 सौभाग्य मिला। यह जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इस
 बात को हर कभी नहीं भूलेंगे।

सब से बड़ी बात जो बहुत उल्लेखनीय है इस
 ग्रंथ का विमोचन अवसर था। इस समय आचार्य श्री देवेन्द्र

मुनि जी महाराज मालेरकोटला में अचानक पधारे थे। इस का प्रमुख कारण था जैन साध्वी श्री हेम कुंवर जी महाराज को १३० दिन का व्रत का पारणा महोत्सव समारोह था। आचार्य श्री का पहले कार्यक्रम और था। वह पहले जम्भू जाना चाहते थे। परन्तु साध्वी जी ने एक भीषण प्रतिज्ञा की कि “मैं अपना व्रत आचार्य श्री के सानिध्य में सम्पन्न करूंगी, नहीं तो यह व्रत चलता रहेगा। जब तक आचार्य श्री के दर्शन नहीं होंगे।” साध्वी श्री पहले भी तप करती आ रही हैं। अब भी तप करती हैं। भविष्य में भी करेंगी। पर ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने पहले कभी नहीं की थी। आखिर आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज को चतुर्मास की समाप्ति के बाद मालेरकोटला पधारना था। वह अपने करीब १० साधु साध्वीयों के साथ अहमदगढ़, कुष्प होते हुए मालेरकोटला से ३ किलोमीटर की दूरी पर रुके। उन्हें उस समय तेज बुखार था। आचार्य श्री व्हील चेयर के माध्यम से मालेरकोटला की सीमा में पहुंचे। मालेरकोटला के स्थानीय कांग्रेसी विधायक व मंत्री चौधरी अब्दुल गुफार, नगरपालिका के अध्यक्ष व दूसरी धार्मिक व समाज सेवी संस्थाओं ने अगवानी की। शहर को दुल्हन की भांति सजाया गया। मंत्री साहिव ने आचार्य श्री की व्हील चेयर को अपने हाथों से कुछ दूरी तक चलाया। सभी लोग आचार्य श्री के साथ पैदल चल रहे थे।

श्री सनातन धर्म सभा का महत्वपूर्ण सहयोग इस समारोह को मिला। आचार्य श्री के लिए विशाल पंडाल श्री हनुमान मंदिर में बनवाया गया। इस की तैयारीयां कई दिनों से चल रही थीं। उनकी शोभा यात्रा पर ५० गेट बने। स्थान-स्थान पर जल पान का प्रोग्राम संस्थाओं और दुकानदारों ने किया। पहले दिन आचार्य श्री रती राम जैन स्मारक में, आचार्य भगवान पधारे। शाम के खाने का प्रबंध लंगर कमेटी

अस्था की ओर बढ़ते कदम
 श्री हनुमान मंदिर ने किया। यह आपसी भाईचारे का प्रतीक उत्सव था। सारे नगर में आचार्य श्री को घुमाया गया। इस समारोह में हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख व ईसाई संस्थाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

समारोह स्थल में एक लाख से ज्यादा लोगों की भीड़ सारे भारत से इकट्ठी हुई। आचार्य श्री का सन्मान विभिन्न संस्थाओं ने अभिनंदन पत्र के माध्यम से किया। आचार्य श्री को एक भव्य सिंहासन पर बैठाया गया। आचार्य श्री का इतिहासक प्रवचन हुआ। वह नालेरकोटला की सांझी संस्कृति से प्रभावित थे। पंजाब सरकार की ओर से चौधरी अब्दुल गुफार मंत्री जी ने आचार्य श्री का स्वागत किया। मंत्री जी ने इस अवसर पर आचार्य देवेन्द्र मार्ग की घोषणा की।

इसी मंगलमय अवसर पर हमारे ग्रंथ का विमोचन हुआ। प्रकाशक थोड़े ही ग्रंथ तैयार कर सका। यह ग्रंथ का विमोचन चौधरी अब्दुल गुफार ने अपने कर कमलों से किया। फिर इस की प्रथम प्रति चौधरी साहिब व हम दोनों ने आचार्य श्री के कर कमलों में समर्पित की। इस भव्य समारोह की शोभा देखते ही बनती थी। इस ग्रंथ के प्रकाशन में आचार्य श्री से हमारा रिश्ता मजबूत हुआ। उन्होंने हमें मंगलमय आशीर्वाद दिया। यह हमारे जीवन का भव्य समारोह में से एक था।

यह हमारे लिए प्रथम अवसर था जब किसी आचार्य के ग्रंथ का अनुवाद करने का हमें सौभाग्य मिला। यह ग्रंथ देखने में तो पाकेट बुक है, पर ऐसा जैन धर्म का कोई विषय नहीं जिसे जो आचार्य श्री से अछुता रहा हो। जैन धर्म, संस्कृति, पुरातत्व, साहित्य व साहित्यकार सभी के बारे में विपूल मात्रा में सामग्री प्राप्त होती है। इतनी सरल

आस्था की ओर बढ़ते कदम
पुरतक, जिस में जैन दर्शन का समग्र उपलब्ध हो कम
उपलब्ध होती है। इस पुरतक का अंग्रेजी अनुवाद हो चुका
था। इस पुरतक को पढ़ने से हमारे जैन धर्म की मान्यताओं
के बारे व सम्प्रदायों के बारे में काफी जानकारी हुई।

पंजाबी अनुवादित अप्रकाशित साहित्य महावीर दे पंज सिद्धांत १ :

यह हमारी अप्रकाशित रचना है। इस की रचना बहुव्रत श्री श्रमण संघीय सलाहकार श्री ज्ञान मुनि जी महाराज ने की है। इस में भगवान महावीर के ५ सिद्धांतों का सुन्दर शास्त्रीय परम्परा के अनुसार विवेचन किया गया है। यह सिद्धांत हैं :

१. अहिंसावाद	२. अनेकांतवाद
३. ईश्वरवाद	४. अपरिग्रहवाद
५. आत्मवाद	

इन ग्रंथों में इन सिद्धांतों की तार्किक ढंग से व्याख्या की गई है। श्री ज्ञान मुनि जी महाराज आचार्य श्री आत्मा राम के प्रमुख शिष्य थे। वह अपने नाम के अनुरूप ज्ञानवान हैं। उन्होंने आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज के नाम से अनेकों संस्थाओं का निर्माण पंजाब में किया है। ५० से ज्यादा ग्रंथ प्रकाशित करवा चुके हैं। इस में प्रज्ञापना सूत्र भाग - ३, (२) अंतकृतदशा, (३) अनुयोगद्वार-२, विपाक सूत्र प्रसिद्ध हैं। आप कवि व वक्ता भी हैं। उनकी महावीर आरती जगत प्रसिद्ध है। यह उनकी रचना अभी अप्रकाशित है। अच्छी व्यवस्था होने पर यह ग्रंथ भी प्रकाशित होगा।

जम्बू दीप गाईड २ :

यह लघु काया पुस्तिका की लेखिका हरतिनापुर तीर्थ की निर्माण कर्ता माता ज्ञानमति जी महाराज हैं। वह महान विदूषी लेखिका हैं। आपकी ५० से ज्यादा ग्रंथ व पुस्तकें विभिन्न विषयों पर प्रकाशित हो चुकी हैं। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषाओं की महान विदूषी हैं। वह प्रभाविका साध्वी हैं। दिगम्बर परम्परा में, वह आचार्य देश भूषण जी

महाराज की शिष्या हैं। उनकी वहिने भी उनके संघ में दीक्षित हैं। उनके तीर्थ जीर्णद्वार के कार्य विशाल हैं। बहुत कम साध्वीयां इतना बड़ा काम कर पाती हैं। उन्होंने अयोध्या जैसे तीर्थ में विशाल निर्माण कार्य किया है। उनका लेखन कार्य, निर्माण के साथ-साथ चलता रहता है। यह पुस्तिका अभी कई कारणों से प्रकाशित नहीं हो पाई। इस पुस्तक में जम्बू दीप का आकार की व्याख्या जैन शास्त्रों अनुसार की गई है। उनके अभिनंदन ग्रंथ में हमारा लेखक पंजाबी भाषा में प्रकाशित हुआ है, जो उनके जीवन पर है।

आचार्य विजयइन्द्रदिन्न सूरि ३ :

पंजाबी की अप्रकाशित रचनाओं में हमारी यह रचना भी अप्रकाशित है। इस में आचार्य विजयइन्द्र दिन्न, सूरिश्वर जी महाराज का जीवन चारित्र श्री वीरेन्द्र विजय जी ने हिन्दी में प्रकाशित किया। उनकी प्रेरणा से हमारे द्वारा इस का पंजाबी अनुवाद हुआ। पर आचार्य श्री के गुजरात की तरफ से पधारने के कारण यह अनुवाद भी अप्रकाशित पड़ा है। इस पुस्तक में आचार्य श्री के क्रान्तिकारी जीवन की झलक प्राप्त होती है। विद्वान लेखक ने २५ पृष्ठ की पुस्तक में बहुत कुछ कह डाला है।

स्वतन्त्र पंजाबी साहित्य

अनुवाद के अतिरिक्त हम दोनों पंजाबी भाषा में जैन धर्म का ज्ञान देने वाले स्वतन्त्र ग्रंथों का निर्माण भी किया है। जो हमारी मौलिक रचनाएं हैं। यह कार्य भी हमारे द्वारा अनुवादित साहित्य के साथ-साथ चलता रहा है। इस संदर्भ में पंजाबी प्रकाशनों की एक सूची हम दे रहे हैं, जो हमारे द्वारा रचित है। इन रचनाओं का विवरण इस प्रकार है।

जैन संस्कृति और साहित्य की रूप रेखा १ :

इस लघु कथा पुस्तिका में जैन धर्म की प्राचीनता का दिक् दर्शन कराया गया है। श्रमण व ब्राह्मण संस्कृति के बीच भेद रेखा खींची है। इस पुस्तक का आधार वेद, पुराण, महाभारत, बौद्ध ग्रंथों को बनाया गया है। यह शोध पुस्तिका है। इस का विमोचन विश्व पंजाबी लेखक सम्मेलन दिल्ली के अवसर पर हुआ। वहीं इस पुस्तक का वितरण भी किया गया।

जैन साहित्य की रूप रेखा २ :

इस लघु काया ग्रंथ में १४ पूर्वो, ४५ आगमों की परम्परा, नाम व श्लोक संख्या व विषयों का वर्णन है। इस में जैन दिगम्बर साहित्य का परिचय भी दिया गया है। इसके साथ-साथ जैन आगमों की वाचना का इतिहास व पूर्वो की परम्परा के क्षय होने का वर्णन किया गया है। इस का विमोचन विश्व लेखक सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली के विज्ञान भवन में सम्पन्न हुआ।

भगवान महावीर के चोन्नवें उपदेश ३ :

इस पुस्तिका में जैन शास्त्रों से प्रभु महावीर के जीवन उपयोगी संदेश को संग्रह किया गया है। यह उपदेश

आस्था की ओर बढ़ते कदम
जीवन के रहस्य को खोलने में सक्षम हैं। यह संदेश हर काल, समय, व्यक्ति के लिए समता, ऐकता व समन्वय का संदेश देते हैं। पंजाबी भाषा में यह प्रयत्न प्रथम बार हुआ। इस का विमोचन भी विश्व पंजाबी लेखक सम्मेलन के अवसर पर देहली के विज्ञान भवन में सम्पन्न हुआ।

भगवान महावीर के समकाली इतिहासक

महापुरुष ४ :

पंजाबी भाषा में जैन इतिहास पर लिखा गया हमारा पहला कथा संग्रह है। इस में भगवान महावीर के प्रसिद्ध शिष्य राजा श्रेणिक, मंत्री अभय कुमार, अतिमुक्त कुमार, महासती चन्दन वाला, मृगावती, मेघ कुमार, आदि भव्य प्राणीयों का जीवन इतिहासक स्रोतों में लिखा गया है। संग्रह से प्रकाशित होने वाले दैनिक कौमी देन में किश्तवार प्रकाशित हुआ। यह जैन कहानीयों का किसी दैनिक समाचार पत्र का पहला प्रकाशन था। यह प्रकाशन ६० किश्तों में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का प्रकाशन स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ।

भगवान महावीर ५ :

लगभग २५०० वर्षों से भगवान महावीर का जीवन चारित्र पंजाबी भाषा में किसी ने लिखा नहीं था। मुझे प्रसन्नता है कि यह इतिहासक कार्य मैंने व मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने कर दिखाया। सैकड़ों हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू व अंग्रेजी के जीवन चारित्रों का अध्ययन किया। उनकी शैली देखी। इस चारित्र को लिखने का हमें सौभाग्य प्रथम बार प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ की समीक्षा दैनिक पंजाबी ट्रिव्यून् व अजीत ने प्रकाशित हो चुकी है। जैन पत्र-पत्रिकाओं ने इस की समीक्षा अलग प्रकाशित हुई। यह ग्रंथ था जिस

आस्था की ओर बढ़ते कदम
का विमोचन विश्व लेखक पंजाबी सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में विश्व के कोने-कोने से पंजाबी लेखक आए थे। इस का विमोचन इसी सम्मेलन में किया गया। यह ग्रंथ इंग्लैण्ड, पोलैण्ड, अमेरिका, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया, मलेशिया तक पहुंचा।

इस ग्रंथ के बारे में आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने एक घटना सुनाई। वह कहने लगे “जब मैं इंटरनैशनल महावीर जैन मिशन न्यूयार्क जैन मिशन के लिए यू०एन०ओ० में स्थान पाने के लिए प्रार्थना पत्र भेजा। मेरी भेंट एक सरदार जी से हुई। वह कहने लगे “मैं आप के धर्म को इंटरनैशनल नहीं मानता, संसार में महावीर को कौन जानता है ? जैन धर्म तो केवल भारत तक सीमित है।”

“मेरे पास उत्तर देने के लिए कुछ न था। कारण यह कि मैं पहला संत था जो विश्व के कोने-कोने में जैन धर्म के प्रचार को निकला था। मैंने कुछ सोचा, फिर मुझे आप के पंजाबी महावीर चरित्र का ध्यान आया। सौभाग्य से वह पुस्तक मेरे पास थी। मैंने वह पुस्तक सरदार जी को भेंट करते हुए कहा, “देखिए ! जैन साहित्य संसार की हर भाषा में उपलब्ध है। हर कोने-कोने में जैन आगम पढ़ने वाले हैं। यहां तक कि पंजाब की भाषा में भी यह पुस्तक आप के सामने है, और आप को क्या अंतराष्ट्रीय प्रमाण चाहिए ?”

यह पुस्तक पाकर सरदार जी प्रसन्न हुए। उन्होंने मेरे से और पंजाबी साहित्य मांगा। जो हमारे सिद्धाचलम में था। उन्होंने आप की पुस्तक पाकर ही, मेरी संस्था को यू०एन०ओ० में स्थान दिया। आज संसार का १२वां धर्म जैन धर्म है। इस का प्रचार स्थानीय भाषा में करने के बहुत आधार हैं। यह पुस्तक जैन धर्म की परम्परा से शुरू होती है। इस में प्रभु महावीर के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है।

भगवान महावीर के जन्म से पूर्व की स्थितियों, उनके जन्म दिन पर देव आगम, वचपन, दीक्षा, तपस्या, धर्म प्रचार का संक्षिप्त वर्णन है। यह ग्रंथ इतना प्रसिद्ध हुआ कि शीघ्र ही इस का द्वितीय प्रकाशन हुआ। जो गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के सुश्रावक श्री सुशील कुमार जी जैन प्रधान एस. एस. जैन सभा करोल बाग, दिल्ली वालों ने अपनी माता जी की पुनः स्मृति में प्रकाशित करवाया। इस में से भगवान महावीर के जीवन से संबंधित चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं। पहले एडीशन में चित्र कम थे। इस एडीशन में भगवान महावीर के जीवन चरित्र में प्रेस की गल्तीयों को दूर किया गया। वह सारा कार्य ६ दिसंबर १९८२ के बाद राम जन्म वावरी मस्जिद भूमि विवाद के समय प्रकाशित हुआ। इसकी जिम्मेवारी पहले की तरह मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने निभाई। यह ग्रंथ हमारी ऐसी रचना थी जिसे हम परिचय पत्र कह सकते हैं। यह पुस्तक जैन संस्थाओं में वांटी गई। यह पुस्तक पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के दी.ए. प्रथम (धर्म) में सुझाव पुस्तिका के रूप में मान्य है।

भारती साहित्य विच भगवान महावीर ६ :

भारती साहित्य की जब हम चर्चा करते हैं तो हमारा ध्यान जैन, बौद्ध, वैदिक साहित्य पर जाता है। प्रस्तुत निबंध में वैदिक परम्परा में भगवान ऋषभ देव का वर्णन वेद, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथों के आधार में किया गया है। वैदिक ग्रंथों में प्रभु महावीर का वर्णन ना आने के कारण वताए गए हैं। इस के विपरीत बौद्ध परम्परा में प्रभु महावीर से संबंधित घटनाओं का वर्णन ५४ से ज्यादा बार आया है। बौद्ध परम्परा भगवान पार्श्वनाथ की चतुर्थीय परम्परा का समर्थन करती है। इस के बाद जैन परम्परा में आगम व स्वतन्त्र साहित्य दिगम्बर व श्वेताम्बर परम्परा से मिलता है।

आस्था की ओर बढ़ते कदम

यह भारत की प्राचीन व वर्तमान भाषाओं में उपलब्ध है। हम ने सभी प्रमुख साहित्यों को एक स्थान पर इकट्ठा किया है। इस पुस्तक का समर्पण साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने अपने कर कमलों से किया।

साडा साहित ७ :

यह लघु काया पुस्तक है। इस में हमारे द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित ग्रंथों का विवरण दिया गया था। यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो चुके हैं। इस का विमोचन मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने मेरे द्वारा करवाया। इस पुस्तक में हमारे पंजाबी-हिन्दी साहित्य का विवरण है। यह पुरुषोत्तम प्रज्ञा का अंक है, जो मेरे जन्म दिन पर मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने मुझे भेंट करते हैं।

जैन आगम साहित ८ :

इस पुस्तक में सर्वप्रथम जैन धर्म के १४ पूर्वों का परिचय दिया गया है। इस के बाद अंग, उपांग, मूल सूत्र, छेद, मंत्र, प्रकिणक, टीका, चुणि, नियुक्ति पर प्रकाश डाला गया है। ४५ आगमों के नाम, उनमें वर्णित विषय, उनकी टीका सभी की व्याख्या पंजाबी भाषा में की गई है। यह प्रथम प्रयास है कि पाठक जैन आगम में वर्णित विषयों को अपनी भाषा में जान सकें। इस का विमोचन साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने किया था।

जैन धर्म दे तीर्थकर ९ :

इस पुस्तक में जैन धर्म के २४ तीर्थंकरों का परिचय व घटनाओं का वर्णन पंजाबी भाषा में दिया गया है। उनके माता-पिता का नाम, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान व मोक्ष

आस्था की ओर बढ़ते कदम
स्थान का विवरण, सरल पंजाबी भाषा में वर्णन करने की चेष्टा की गई है।

गणधरवाद १० :

हर तीर्थंकर के गणधर होते हैं, जो प्रभु की वाणी का संकलन करते हैं। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के ११ गणधर थे। इनमें प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। कई अज्ञानी इस गौतम को महात्मा बुद्ध मान लेते हैं। पर ऐसा नहीं है। यह सब ब्राह्मण थे। सभी गणधरों ने प्रभु महावीर के दरबार में अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया था। फिर इन्होंने अपने हजारों शिष्यों के साथ दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षा से पहले हर गणधर के मन में कुछ प्रश्न थे। इन प्रश्नों व उनके उत्तर की चर्चा इस पुस्तक में की गई है। गणधर वाद पर दार्शनिक चर्चा का एक मात्र जैन पंजाबी ग्रंथ है। इस में लिए जीव आत्मा, नरक-स्वर्ग, देव, कर्म, ईश्वर आदि विषय पर चर्चा की गई है।

जैन धर्म - इक संखेप जानकारी ११:

यह २५१ पृष्ठ का विशाल ग्रंथ है। यह पुस्तक बी.ए. तृतीय (धर्म) में पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला के धर्म अध्ययन विभाग द्वारा सुझाव पुस्तिका के रूप में मान्य रही है। इस ग्रंथ पर दैनिक ट्रिव्यून में डा० धर्म सिंह ने समीक्षा लिखी। विद्वानों में इस ग्रंथ की मांग बहुत रही है।

इस ग्रंथ में जैन धर्म की प्राचीनता, धर्म, दर्शन, संस्कृति व मान्यताओं को प्रकट करने वाली एक मात्र पुस्तक है। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में जैन परम्परा, संस्कृति व साहित्य को चर्चा का विषय बनाया गया है।

दूसरे भाग में नवकार मंत्र की व्याख्या है। तीसरे भाग में जैन दर्शन की चर्चा है। यह ग्रंथ में जैन धर्म की

अस्था की ओर बढ़ते कदम मान्यताओं के चारे में श्रद्धा से लिखा गया है। इस में २४ तीर्थंकरों का जीवन वृत्त, भारत व विदेशों में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का वर्णन है। इस भाग में जैन राजाओं का वर्णन भी है।

दूसरे भाग में ही साधु, साध्वी, उपाध्याय व आचार्य के गुणों का वर्णन किया गया है। इसी खण्ड में ६ तत्त्व व षट् द्रव्यों का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय भाग में अनेकांतवाद, प्रमाण, नय, निक्षेप, आत्मा, परमात्मा, गुण, स्थान लेश्या व मोक्ष संबंधी जैन मान्यताओं का वर्णन किया गया है। जैन धर्म भारत का प्राचीनतम स्वतन्त्र धर्म है। इस बात पर जोर दिया गया है। इस ग्रंथ का समर्पण आचार्य सुशील कुमार जी महाराज के एक अंतराष्ट्रीय जैन सम्मेलन के अवसर पर विज्ञान भवन में किया था। यह ग्रंथ जैन दार्शनिक परम्परा को समझने का एक मात्र साधन है। इस ग्रंथ में जैन परम्पराओं और मान्यताओं का पूर्ण ध्यान रखा गया है। इस ग्रंथ में जैन पर्वों का वर्णन भी किया गया है। इस ग्रंथ का विमोचन पंजाबी यूनिवर्सिटी के प्रांगन में हुआ था। हमारी कोशिश रही है कि जैन धर्म का कोई विषय ऐसा न रहे, जो अछूता हो। इस में अन्य बातों के साथ जैन तीर्थ का संक्षिप्त परिचय है देव, गुरु व धर्म की खुल कर व्याख्या नवकार मंत्र में आ गई है। जैन काल गणना का उल्लेख भी किया गया है। अरिहंत, सिद्ध के गुण तीर्थंकरों, अतिशयों का वर्णन भी कर दिया गया है। इस ग्रंथ की भूमिका फ्रांस की विदूषी डा० नलिनि वलवीर ने लिखी है। यह सूत्रकृतांग का भाग की भूमिका का भाग भी है इस पुस्तक को पढ़े बिना सूत्रकृतांग पढ़ना कठिन है।

बौद्ध साहित्य विच नात पुत्त (भगवान महावीर) १२ :

इस पुस्तक में हमने भगवान महावीर का जीवन बौद्ध त्रिपिटिको साहित्य से संकलित करके बताया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन है। महात्मा बुद्ध व भगवान महावीर की इतिहासकता का प्रमाण इस पुस्तक में घटित होता है। बौद्ध साहित्य में भगवान महावीर को प्रतिद्धंद्वी के रूप में दिखाया गया है। यह लेख आस्थांजली के पंजाबी भाग में प्रकाशित हुआ था। आस्थाजली एक अभिनंदन ग्रंथ है जिसका प्रकाशन आचार्य श्री विमल मुनि जी महाराज के ५०वीं दीक्षा जयंती पर किया गया था।

पुरातन पंजाब विच जैन धर्म ७ :

हर धर्म का अपना इतिहास होता है जिस धर्म जाति का इतिहास नहीं वह कौम कहलाने की हकदार नहीं है। जैन धर्म का अपना इतिहास है। परम्परा, मान्यताएं हैं। हर राज्य, हर काल में जैन किसी किसी रूप में विद्यमान था, है, भविष्य में रहेगा। पंजाब हमलावरों की भूमि रही है। इन विदेशी आक्रमणकारीयों के कारण जैन धर्म में प्राचीन इतिहास में कम सामग्री उपलब्ध होती है। पंजाब में जैन धर्म का इतिहास जैन धर्म जितना पुराणा है। क्योंकि सभी तीर्थंकरों का आगमन पंजाब में रहा है। उन्होंने यहां तपस्या की है, धर्म प्रचार किया है।

काफी समय से एक प्रश्न विद्वानों के सामने घूमता रहा है कि जैन धर्म पंजाब में कब आया ? इस प्रश्न का उत्तर इतना ही है कि पंजाब में जैन धर्म हर काल में विद्यमान रहा है। प्राचीन पंजाब का, प्राचीन पंजाब का नाम सप्त सिंधु प्रदेश था। वेदों में भी सात नदीयों की चर्चा की

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 गई है। गणतंत्र युग में पेशावर से मथुरा तक क्षेत्र का नाम उतरापथ था। इसी मार्ग से जैन तीर्थंकर भ्रमण करते रहे हैं। भगवान ऋषभदेव ने इस पावन भूमि को पवित्र किया। फिर इसी भाग में कुर्बदेश में भगवान शांतिनाथ, भगवान कथुनाथ जी, भगवान अरहनाथ का जन्म हुआ। इस धरती पर इन भगवानों के चार कल्याणक हुए। स्वयं श्रमण भगवान महावीर इस मार्ग से कई बार पधारे। अपने तपस्या काल में वह सैयविया (स्यालकोट), धूनाक सन्निवेश (कुरुक्षेत्र), हस्तिनापूर, मोका (मोगा), वीतभपत्तन (नेरा पाकिस्तान) व रोहतक नगरी में पधारने का इतिहासक प्रमाण उपलब्ध है। लाखों साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं ने इस क्षेत्र को जैन कला, पुरातत्व, व मन्दिरों से भर दिया। यहां विपूल मात्रा में साहित्य लिखा गया। श्वेताम्बर जैन पट्टादलीयों ने इस क्षेत्र में हुए जैन धर्म के प्रचार का वर्णन है। प्राचीन पंजाब की सीमाओं में सिन्धु, सोविर, जम्मू कश्मीर, हिमाचल, पूर्व व पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश का मेरठ जिला के आस पास का क्षेत्र व राजस्थान का गंगानगर जिला था।

कल्हण की राजतरंगणी इस बात की साक्षी भरती है कि अनेक सम्राटों ने जैन धर्म का प्रचार इस क्षेत्र में किया था। श्री नगर की स्थापना जैन राजा अशोक ने की थी। जो मौर्य अशोक से भिन्न था। भगवान महावीर के बाद भी जैन धर्म का प्रचार इस क्षेत्र में होता रहा। इस का कारण भगवान महावीर के निर्वाण के २४०० वर्ष तक मथुरा जैन धर्म, कला का केन्द्र था। वैसे भी सिन्धु घाटी की सभ्यता में जैन धर्म से संबंधित कई मुद्राएं उपलब्ध हैं। यह प्रान्त बहुत से जैन धर्म के प्रचारकों की जन्म भूमि, कर्म भूमि, दीक्षा भूमि है। पंजाब के राजाओं ने जैन धर्म को राजधर्म के रूप

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में अपनाया। इस बात की जानकारी जन साधारण को ना के वरावर है। वैसे भी इस विषय पर किसी ने काम नहीं किया था। हमें अपने लेखक जीवन में कई बार विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों को इस प्रश्न का अधूरा उत्तर देना पड़ता।

हम बहुत परेशान थे। इस विषय पर कोई लिखत सामग्री किसी भाषा में उपलब्ध नहीं थी। मैंने पुराणों के अंदर भगवान ऋषभदेव का वर्णन पढ़ा। वेद, पुराण महाभारत सभी ग्रंथों की जन्म भूमि प्राचीन पंजाब में यह पंचनद क्षेत्र है। वेद, पुराण, बौद्ध ग्रंथ, जैन ग्रंथ व मुस्लिम युग में जैन धर्म की स्थिति का मुझे पता चला। हम दोनों ने पंजाब के पुरातत्व स्थलों का भ्रमण किया। हमारे सामने कल्याण, जींद, नारनौल, कुरुक्षेत्र, पिंजौर, सुनाम, बटिण्डा, फरीदकोट, अस्थलदोहल, अग्रोहा, हिसार से उपलब्ध प्राचीन प्रमाण प्रतिमा के रूप में थे जो हमें आठ सदी से गुप्तकाल तक ले जाते थे। सिन्धु घाटी की कई सीलें जैन धर्म के प्रमाण को ८००० ई.पू. तक ले जाती है।

कांगडा किला में मूल नायक भगवान ऋषभदेव की जगत् प्रसिद्ध प्रतिमा है। इस के पास वैद्यनाथ पपरोला में खंडित मूर्तियों के शिलालेखों का प्रमाण मिला। कुछ प्राइतिहासक व इतिहासक घटनाओं का पता पट्टावलीयों के माध्यम से चला। समाना की प्राचीन दादावाडी, मालेरकोटला, पटियाला, फरीदकोट, अमृतसर, लाहौर, स्यालकोट, गुजरांवाला, मुल्लतान, लुधियाना, फगवाड़ा ने यतियों के डेरों से प्राचीन सामग्री ने इस ग्रंथ को संपूर्ण करने में सहायता की। यह पंजाब का जैन इतिहास खोजने के संदर्भ ग्रंथ बन गया। चारों सम्प्रदायों में कव किसका आगमन हुआ। परम्पराओं की बात चली, प्रभाविक साधु, साध्वियों, लेखकों, स्वतंत्रता सेनानीयों का परिचय दिया गया। यह ग्रंथ हमारी ५ साल की कठोर श्रम

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 का फल था। सामग्री को संकलित किया गया। विखरे प्रमाणों को इकट्ठा करना जहां कठिन कार्य था, वहां यह इतिहासकारों के समक्ष हर समय उत्तरदायित्व भरा कार्य था। पर गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के आशीर्वाद से यह कार्य संपन्न हुआ। इस में दो ग्रंथ, पट्टावली पराग, पट्टावली संग्रह बहुत काम आए। आनंद जी कल्याण जी पेढी से हमें मुगल वादशाहों के वह हुकमनामों मिले, जो जैन तीर्थ की रक्षा का शिकार रोकने हेतू जारी किए गए थे। इन में पंजाव में हिंसा वंद करने का उल्लेख था।

इस ग्रंथ के प्रारम्भ में जैन धर्म की प्राचीनता का वर्णन किया गया है। फिर जैन तीर्थंकर और पंजाव का वर्णन जैन आगमों के आधार पर किया गया है। जैन राजाओं द्वारा पंजाव में धर्म प्रचार का वर्णन किया गया है। इन राजाओं में मोर्व, कुषाण, शक, वंश प्रमुख रहे हैं। भगवान ऋषभदेव के पुत्रों में बाहुवलि की राजधानी गंधार देश की तक्षशिला थी। यहां भरत-बाहुवलि संग्राम हुआ था। इसी धरती पर बाहुवलि ने राजपाट छोड़ कर दीक्षा ग्रहण की थी। यहां उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

भगवान ऋषभदेव धर्म प्रचार हेतु यहां पधारे थे। उन्हें तपस्या के समय एक वर्ष तक भोजन नहीं मिला। हस्तिनापूर में उनके पौत्र श्रेयांस ने उन्हें आहार (भोजन) दिया। फिर शांति, कुंथु अरह प्रभु जैसे चक्रवर्ती तीर्थंकर इस धरती ने पैदा किए। रामायण में ऋषि बालमीकी का आश्रम पंजाव में है।

भगवान महावीर केवल ज्ञान के समय वर्तमान स्थानेश्वर (कुरूक्षेत्र) में पधारे थे। एक बार उन्होंने सिन्धु सोविर देश के राजा दुंदयन को दीक्षा देने उन्होंने लम्बा उग्र विहार किया था।

साहित्य जगत की इस कृति की प्रस्तावना प्रसिद्ध सिक्ख इतिहासकार स्वः शमशेर सिंह अशोक ने लिखी थी। यह उनकी अंतिम प्रस्तावना थी। मेरा धर्मभ्राता रविन्द्र जैन उनके गांव में सरकारी नौकरी करता था। श्री अशोक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इतिहासकार थे। सब से बड़ी बात है कि उनका जैन धर्म के प्रसिद्ध आचार्य आत्मा राम जी महाराज से घनिष्ठ संबंध था। वह उनकी विद्वता से बहुत प्रभावित थे। जैन मुनियों के तप त्याग का हृदय से सन्मान करते थे। उनकी विशाल लाइब्रेरी में हजारों पुस्तकें थी। जो उन्होंने अपने जीवन काल में ही पंजाबी विश्वविद्यालय को भेंट कर दी थी। वह पंजाब इतिहास के प्रतिष्ठित विद्वान थे। जब हमारे द्वारा इस पुस्तक की रूप रेखा दिखाई गई तो उन्होंने हमारी लिखत बात को अक्षरतः सत्य माना। उनका मानना था कि ब्राह्मणवाद के कारण जैन धर्म का विलय हिन्दु धर्म में होता रहा है। जैन धर्म की ही नहीं, हर धर्म पर ब्राह्मणों ने अपना प्रभाव छोड़ा है। आज सिक्ख धर्म भी ब्राह्मणों की परम्परा से बंधा है। जिन के लिए गुरु साहिबान सिक्खों को वर्जित किया था। धर्म के बारे उनके विचार स्पष्ट थे “धर्म में नैतिक, सदाचार, सभ्यता, दर्शन व इतिहास सब आ जाता है। धर्म इन मूल भूत तत्वों के मिश्रण का नाम है।” फिर ग्रंथ का प्रकाशन श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस लुधियाना से प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार यह ग्रंथ भी हमने तैयार कर अपनी गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के कर कमलों में समर्पित किया। हम इस ग्रंथ की एक प्रति लेकर भाषा विभाग में पहुंचे, जहां हमारी भेंट वर्तमान निर्देशक डा. श्री मदनलाल हरीजा से हुई। उन्होंने हमें जैन धर्म की कुछ ऐंटरी पंजाबी कोष में लिखवाने के लिए बुलाया था। ग्रंथ देख कर उन्होंने

कहा “आप का श्रम इस योग्य है कि इस ग्रंथ का विमोचन भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी करें। आप कहो तो मैं अपने साथी श्री ओ.पी. आनंद दिल्ली से मिलवाता हूँ। वह आपको राष्ट्रपति भवन ले चलेंगे।”

इस तरह यह ग्रंथ लम्बे परिश्रम के बाद राष्ट्रपति भवन में श्री ओ. पी. आनंद द्वारा पहुँचा। यह भेंट एक यादगार भेंट थी। फिर राष्ट्रपति जी से समय लेने का कार्यक्रम चला। सौभाग्य से आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज दिल्ली में विराजमान थे। मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने श्री गुरचरण सिंह ढिल्लों तत्कालीन सचिव राष्ट्रपति भवन से अच्छा संपर्क बना लिया।

बड़े लम्बे अंतराल के बाद २६ फरवरी १९८७ को इस ग्रंथ का विमोचन भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी ने राष्ट्रपति भवन में एक सादे समारोह में किया। इस अवसर पर हम दोनों को ‘श्रमणोपासक’ पद से विभूषित किया गया। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को ज्ञानी जी ने ‘जैनज्योति’ पद से विभूषित किया। इस ग्रंथ के विमोचन का समाचार सारे समाचार पत्रों में आया। दूरदर्शन जालंधर ने वज्र की खबर रोक कर इस समाचार को प्रसारित किया। यह समारोह आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज के नेत्राय में सम्पन्न हुआ। इस में साध्वी आचार्य डा० साधना जी महाराज अपने शिष्य मण्डली सहित पधारी थीं। ५० के करीब मेहमान पधारे। इन में कुछ आचार्य श्री के विदेशी शिष्य थे।

इस समारोह को सफल करने में मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन जी ने श्रम किया। यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे व मेरे धर्म भ्राता को पहली बार राष्ट्रपति भवन में सन्मानित किया गया। इस अवसर पर एक पुस्तक श्रमणोपासक

पुरुषोत्तम जैन का विमोचन और हुआ, यह पुस्तक मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखी थी। इस पुस्तक का विमोचन भी मेरे धर्मभ्राता ने ज्ञानी जी से करवाया। वह पुस्तक राष्ट्रपति भवन में मुझे भेंट की गई। यह किसी राष्ट्रपति द्वारा जैन साधु, साध्वी, व लेखकों का प्रथम अभिनन्दन था। जो हमारे जीवन की महत्वपूर्ण अनुभूति है। इस विमोचन से हमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैन इतिहासकार के रूप में मान्यता मिली। मेरे धर्मभ्राता ने इसी दिन मेरा ४०वां जन्मदिन राष्ट्रपति भवन में मनाया।

लघु पुस्तिकाएं

पुरुषोत्तम प्रज्ञा १ :

यह प्रथम जैन विज्ञप्ति है जो ३१ मार्च और १० नवंबर को पंजाबी भाषा में प्रकाशित होती है। इस में शोध निबंध भी प्रकाशित होते हैं।

आचार्य श्री तुलसी जी २ :

इस कृति की रचना आचार्य श्री तुलसी के पंजाब पधारने पर हुई थी। उनके जीवन, कृत, व महानता पर पंजाबी भाषा में यह लघु पुस्तिका है। आचार्य श्री जैन समाज के महान कवि, लेखक व वक्ता हुए हैं। आप का परिचय पीछे किया जा चुका है।

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ३ :

दिगम्बर आचार्य श्री देशभूषण के जीवन, कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली हमारी यह लघु कृति है। आचार्य श्री सैकड़ों ग्रंथों के रचयिता हैं।

माता ज्ञानमति जी ४ :

माता ज्ञानमति अभिनंदन ग्रंथ में हमारा पंजाबी भाषा में उनके जीवन से संबंधित लेख प्रकाशित हुआ था। जिसमें उनके उनका जीवनी व कृतियों का वर्णन है। साथ में उन्होंने जिन तीर्थों का जीर्णोद्धार किया अथवा नए तीर्थों का निर्माण किया है, उसका विवेचन किया गया है।

उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ५ :

गुरूणी जी के पंजाबी विश्वविद्यालय पधारने पर उनके जीवन व व्यक्तित्व पर पंजाबी में एक परिचय पुस्तक लिखी थी, जो लोगों में वांटी गई थी।

आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज ६ :

आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज भाषण माला के अंतरगत उनका परिचय हमारे द्वारा पंजाबी में प्रकाशित हुआ था, जो गुरूणी जी के पंजाबी विश्वविद्यालय पधारने पर वांटा गया था। यह पुस्तिका भाषण में आए श्रोताओं में वांटी गई।

उत्तरार्ध लोका गच्छ की जैन साध्वीयां ७ :

जैन धर्म में ८४ गच्छ श्वेताम्बर समाज के माने जाते हैं। इनमें एक क्रान्तिकारी गच्छ का नाम लोकाशाह द्वारा गठित लोकगच्छ है। इस की उत्पत्ति गुजरात में मानी जाती है। इस गच्छ की कई शाखाएं हैं। जिस गच्छ ने पंजाब में जैन धर्म का प्रचार किया, उस का नाम उत्तरार्ध लोकागच्छ है।

इस लोकागच्छ की साध्वीयों की प्राचीन परम्परा का उल्लेख इस पुस्तक के माध्यम से करने की चेष्टा की गई है। जैन साध्वी परम्परा भगवान ऋषभ देव से भगवान महावीर तक चली। प्रभु महावीर के निर्वाण के बाद साध्वी परम्परा का व्यवस्थित ढंग से इतिहास नहीं मिलता। फिर भी

ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना आदि १६ साध्वीयां जैन धर्म में पूज्य हैं। स्थूलिभद्र की सात बहिनों का जैन इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। याकिनी महत्तरा, जैसी साध्वी भी हुई, जिस ने आचार्य हरिभद्र को धर्म पर आखड़ करा, प्रायश्चित रूप में १४४४ ग्रंथों की रचना करवाई। खरतर गच्छ की कई साध्वीयों का वर्णन पंजाबी साध्वी परम्परा में मिलता है।

पंजाव के इतिहास में साध्वी ज्ञाना जी सुनाम की साध्वी थीं। आप के समय कोई भी साधु ना रहा। साध्वी श्री को इस बात की चिंता सताने लगी। उन्होंने अपने भानजे को वैरागी बना कर पढ़ाना शुरू किया। बाद में उन्हें जैन साधु दीक्षा प्रदान की। फिर शास्त्रों का स्वाध्याय करवाया। वह संत इतने प्रसिद्ध हुए कि श्री संघ ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया। साध्वी ज्ञाना जी की परम्परा में कई साध्वीयों की शाखा निकली। सब पंजाव में धर्म प्रचार करने वाली साध्वीयां थीं।

जैन धर्म में स्त्री का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। जैन धर्म में एक स्त्री तीर्थंकर भगवती मल्ली जी हुईं। जिन्होंने अनेकों राजाओं को प्रतिबोध देकर जैन धर्म में दीक्षित किया। राजुल जैसी साध्वी ने रथनेमि मुनि को धर्म से भ्रष्ट मोक्ष मुनि मार्ग पर पुनः आखड़ किया। भगवान महावीर के शाषण में अनेकों साध्वीयां हुई हैं जिनका अपना इतिहास है। आज भी जैन साध्वीयों ने साहित्य, धर्म, कला, शिक्षा, संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान डाला है।

स्वप्नों पर आधारित जैन मंदिर ८ :

विश्व की प्रसिद्ध पंजाबी लेखिका श्रीमती अमृता प्रीतम जी व्योवृद्ध होते हुए भी, हमेशा विचार से तरुण हैं। वह हर भाषा के लेखक को मिलती हैं, प्रेरणा देती हैं। ऐसी घटना हमारे साथ भी घटी। जब अमृता जी की पुस्तक 'लाल

धागे का रिश्ता' प्रकाशित हुई तो इस पुस्तक की हिन्दी अनुवाद की एक प्रति हमें भेंट की गई। यह पुस्तक श्रीमती अमृता प्रीतम जी की विश्व साहित्य को महत्वपूर्ण देन है। उनकी पुस्तक में स्वपनों पर आधारित इस पुस्तक में अमृत जी द्वारा देखे कुछ स्वप्न दर्ज हैं। जब वह यह पुस्तक भेंट कर रहीं थीं तो उन्होंने हमें कहा "आप स्वप्नों पर आधारित मन्दिरों के वारें में पंजाबी में लिखें। मैं इसे अपनी अपनी पत्रिका नागमणि में स्थान दूंगी।" ऐसी महान कवियत्री व कहानीकार लेखिका की बात सुन कर मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने उत्तर दिया "हम सभी मंदिरों के वारे में लिख नहीं सकते। हां अगर आप चाहें तो स्वप्नों पर आधारित हजारों जैन मन्दिर हैं जिनके वारे में हम सूचना दे सकते हैं।

श्रीमती अमृता प्रीतम जी ने मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन की बात स्वीकार की। इस प्रकार हमने स्वप्नों पर आधारित जैन मन्दिरों की सूची तैयार की। हमने इस संवत् में ४ किशतों में नागमणि जैसी प्रसिद्ध पंजाबी पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। यह हमारे लिए ऐसा अनुभव था कि जैन मन्दिरों की सूची तैयार करने, हमें काफी जैन तीर्थों ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ा। जिन में प्रमुख ग्रंथ थे 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थ' व 'जैन तीर्थ क्षेत्र दर्शन' प्रमुख हैं। पहले ग्रंथ के ७ भाग हैं। दूसरे के ३ भाग हैं। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर हम यह ग्रंथ संपन्न कर पाये।

इन रचनाओं के माध्यम से पंजाबी लेखकों ने हमारी पहचान और बढ़ी। हमें साहित्य क्षेत्र में अपनी मातृ भाषा व संस्कृति के प्रति कुछ करने की प्रेरणा मिली। हम भी नागमणि परिवार के सदस्य बन गए। श्रीमती अमृता प्रीतम जी से पुस्तकों की भेंट का सिलसिला १९७६ से चल रहा है जो आज भी चालू है। ये पुस्तकें हमारी पहचान कराती हैं।

अनमोल वचन १० :

हमारी गुरुणी, जिनशाषण प्रभाविका, जैन ज्योति साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज खाली प्रवचन कर या पंजाबी जैन साहित्य की प्रेरिका ही नहीं, बल्कि स्वयं संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी व पंजाबी की लेखिका थी। उन्होंने हिन्दी भाषा में जैन धर्म के प्राचीन काव्यों का संकलन किया। प्राचीन जैन हस्तलिखित भण्डारों की सूची तैयार की थी। अम्बाला में अनेकों आचार्य, मुनियों व साध्वी को उन्होंने सन्मान करने का सौभाग्य मिला। उनकी साहित्य जगत की सेवा भी कम नहीं। पर पंजाबी भाषा में उनकी एक कृति 'अनमोल वचन' मानव मात्र को जीने की कला सिखाती है। वह प्राचीन लिपि पढ़ने में सक्षम थे। उनकी लेखनी सदैव चलती रहीं। इस पुस्तक की कापीयां उन्होंने हमें गिदडवाहा चतुर्मास में प्रदान की करते हुए कहा था "हमारी छोटी सी पंजाबी किताब को देखो। अगर प्रकाशन के योग्य हो तो प्रकाशित करवा दो।"

हम ने इस की कापीयां देखीं। अनुवाद की भाषा के कुछ सम्पादन की कमी थी। हम दोनों ने सारी कापीयों को पढ़ा। इस में योग्य संशोधन किए। सब से बड़ी बात इस ग्रंथ का सम्पादन था जिन्हें हमने मात्र १८ दिनों में करके, पुस्तक, प्रकाशन करने हेतु श्री आत्म जैन प्रिंटिंग लुधियाना को भेज दी। इस पाकेट बुक का टाइटल आकर्षक है। महाराज श्री उन दिनों उप-प्रवर्तक श्री चन्दन मुनि जी महाराज से जैन शास्त्र व जैन ज्योतिष का स्वाध्याय कर रही थी। इतनी व्यवस्था में उन्होंने जैन ग्रंथों से सुन्दर सुक्त निकाल कर इस पुस्तक को तैयार किया था। इस पुस्तक की विशेषता है कि इसे कहीं से पढ़ो, नए विचार प्राप्त होते हैं। यह पुस्तक हमेशा नई रहती है। कहीं से भी पढ़ो हर पृष्ठ

प्रेरणा देने वाला व जीवन में क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है। इस ग्रंथ का विमोचन पंजाबी विश्वविद्यालय में उप-कुलपति ने किया था। यह ग्रंथ जन साधारण में खूब वांटा गया। नैतिक ग्रंथ होने के कारण यह अद्भुत शिक्षा से भरा था। यह हमारे पंजाबी साहित्य की कथा है। हम अगले अध्ययन में हिन्दी साहित्य की चर्चा होगी। मैंने इस प्रकाय में हम दोनों द्वारा रचित, अनुवादित, व साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज द्वारा संपादित साहित्य का विश्लेषण किया है। मैंने स्थान स्थान पर हर पुस्तक के पीछे छिपे उद्देश्य का उल्लेख किया। वहां इन पुस्तकों को लिखने में आई रूकावटों का वर्णन किया है। इन पुस्तकों के प्रेरिका व विमोचन कर्ता का उल्लेख किया है। कई पुस्तकों की समीक्षा दैनिक अजीत, दैनिक ट्रिव्यून्, जैन एंटीकटी, जैन जनरल, अमर भारती व गुणस्थल में विस्तृत रूप से प्रकाशित हो चुकी है। पुरातन पंजाब विच जैन धर्म व भगवान महावीर ग्रंथ की समीक्षा को पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के धर्म अध्ययन की पत्रिका में अंग्रेजी भाषा में विस्तृत रूप से प्रकाशित हुई। इसी तरह उपासक दशांत सूत्र की समीक्षा जैन ऐंटीकयुटी जैन जनरल व पंजाब सौरभ में विस्तृत रूप से प्रकाशित हुई। हमारे प्रसिद्ध समीक्षाकारों में डा० धर्म पाल सिंघल, डा० धर्म सिंह, डा० गणेश ललवाणी, प्रसिद्ध नावलकार श्री ओम प्रकाश गासो, डा० वजीर सिंह, डा० जगतार के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री सूत्रकृतांग सूत्र के कुछ अंश श्रीमती अमृता प्रीतम जी ने नागमणि के लिए संकलन कर प्रकाशित किए। श्री सूत्रकृतांग सूत्र की समीक्षा दैनिक पंजाबी ट्रिव्यून् व यूनिवर्सिटी की पत्रिका में प्रकाशित हुई।

हमें सम्मेलनों के माध्यम से जैन पंजाबी साहित्य संसार के कोने कोने तक पहुंचाने का सौभाग्य मिला है।

हमारा काम विद्वानों जैसा नहीं, हमारा प्रयास तो पंजाबी पाठकों तक जैन धर्म, दर्शन, इतिहास की परम्परा को पहुंचाना था, जो जन साधारण पंजाबी भाषा के अभाव से नहीं जानते थे। मुझे प्रसन्नता है कि हमें इस कार्य में काफी सफलता मिली है। जैन समाज साहित्य के क्षेत्र में हमेशा आगे रहा है। हर युग में हर भाषा में जैन आचार्यों व विद्वानों ने साहित्य लिखा। जैन साहित्य के मामले में पंजाबी भाषा २४०० वर्षों तक अछूती रही। इस कमी को पूरा करने का सौभाग्य हमें मिला। हमें समस्त जैन समाज के प्रबुद्ध वर्ग ने इस कार्य में सहयोग दिया। यह कार्य तीर्थंकर परम्परा के अनूकूल है क्योंकि तीर्थंकर अपना धर्म उपदेश लोक भाषा में करते हैं। अगले अध्ययन में हमारे द्वारा हिन्दी भाषा में जो साहित्य लिख गया है, उसका वर्णन करूंगा।

हमारा हिन्दी साहित्य

भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा देश है जिस में विभिन्न भाषाएं धर्म, संस्कृतियां व विचारधाराएं फली फूली हैं। इन भाषाओं में प्रमुख भाषा हिन्दी है जो हमारे देश की राष्ट्र भाषा है। अंग्रेजी के बाद इस का स्थान है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति में जैन आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन आचार्यों ने प्राकृत भाषा में साहित्य रचा है, इसी प्राकृत भाषा से अपभ्रंश के रूप में लोक भाषा की उत्पत्ति हुई। इस भाषा में जैन आचार्यों का अधिपत्य रहा है। इसी भाषा में जब सुधार आया तो हिन्दी के रूप में आया। हिन्दी में प्रथम जीवन चारित्र जैन कवि पं० बनारसी दास ने अर्ध कथानक के रूप में ३५० वर्ष पहले लिखा। हिन्दी भाषा में कवीर, सूरदास, रहीम व तुलसी कवि हुए। पर हिन्दी भाषा का प्रथम काव्य पृथ्वी राज रासो है। अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा को विकसित करने में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

जैन आचार्यों ने हजारों की संख्या में हिन्दी भाषा को ग्रंथ भेंट किए हैं। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द जी महाराज के समय हिन्दी भाषा ही उत्पत्ति हो चुकी थी। इस का विकसित रूप मुस्लिम युग में आया। इसी समय उर्दू भाषा की उत्पत्ति भारत में हुई। यह विदेशीयों के लिए संपर्क भाषा थी। स्वतन्त्रता से पहले हिन्दी अपनी जड़ें जमा चुकी थी। जैन मुनियों के बोलचाल, प्रवचन व जन संपर्क की भाषा भी यही रही है। इस भाषा के साहित्य में जैन विद्वानों को योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है।

इसी परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए और जैन समाज को अपने साहित्य से परिचित कराने के लिए हमें

हिन्दी भाषा को चुनना पडा। इस का कारण हिन्दी का अन्तराष्ट्रीय होना भी है। दूसरा कारण अधिकांश मुनियों व श्रावकों का पंजाबी भाषा से अपिरचित होना भी है। इसी कमी को दूर करने के लिए हमारे द्वारा हिन्दी भाषा में साहित्य की रचना की गई। जिस का उल्लेख आगे किया जाएगा।

१. श्रमणोपासक पुरुषोत्तम :

इस पुस्तक की रचना मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने की हृद जो मेरे कर कार्य में सहायक रहा है। प्रस्तुत पुस्तक का वर्णन पीछे राष्ट्रपति भवन के समारोह उल्लेख में किया गया है। यह पुस्तक मेरे शिष्य धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने मेरे ४०वे जन्म दिन पर हिन्दी में लिखी थी। मैं स्वयं को इस योग्य नहीं समझता, जिस तरह से उस ने मुझे प्रस्तुत किया है। मेरा शिष्य ३१ मार्च १९६६ से मेरे को समर्पित जीवन जी रहा है। वह मुझे अपना गुरु मानता है। यह पुस्तक काफी महत्वपूर्ण है। इस के शुरू में जैन श्रावक जीवन का वर्णन है, श्रावक के १२ व्रतों का वर्णन है। श्रावक कैसा होना चाहिए, इस का वर्णन किया गया है। दूसरे भाग में प्रसिद्ध जैन इतिहास के श्रावक-श्राविका के जीवन चारित्र का वर्णन किया गया है। तीसरे भाग में मेरी प्रशंसा जरूरत से ज्यादा की गई है। पर यह पुस्तक श्रद्धा समर्पण की गाथा है। विनयवान शिष्य का स्वरूप कैसा होता है ? कैसे ज्ञान पाकर, ज्ञानी अहं से दूर रहता है ? इस पुस्तक को पढ़ने से हमारे रिश्तों का आत्मिक आभास होता है। यह रिश्ता किसी पूर्व भव के कर्म के कारण घटित हुआ है। मेरा शिष्य ने स्वार्थ रहित जीवन जीया है। यह पुस्तक मुझे भेंट करने के लिए उस ने भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी को चुना। मेरे जीवन का यह अभूतपूर्व दिवस था, जब भारत के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 गणतंत्र के राष्ट्रपति ने मेरे धर्म भ्राता की पुस्तक श्रमणोपासक का विमोचन किया। ज्ञानी जी ने इसी महान पद से मुझे सन्मानित किया। आज इस पुस्तक का हर अक्षर मेरे लिए प्रेरणा है। इस पुस्तक में जितना मुझे महान प्रकट किया गया है, उतना मैं महान नहीं। मैं तो तीर्थंकर व श्रमण परम्परा के मार्ग पर चलने वाला साधारण आदमी हूँ। यह पुस्तक एक ऐसी दरतावेज है जो गुरु शिष्य के रिश्ते की व्याख्या करती है। यह पुस्तक मेरे जीवन की अमूल्य निधि है। मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन की मेरे प्रति समर्पित जीवन की इतिहासिक धरोहर है। इस पुस्तक का मूल्यांकन करना, श्रद्धा का मूल्यांकन करना है जो असंभव है। इस समारोह पर आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने हमें आशीर्वाद दिया। इस पुस्तक के विमोचन समारोह पर साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का चित्र मैंने व उनके भ्राता श्री सुरिन्द्र जैन ने राष्ट्रपति को भेंट किया।

२. जैन जगत की ज्योतिर्मय श्रमणियां :

जैन तीर्थंकरों ने स्त्रियों को पुरुष के समान समाजिक व धार्मिक समानता प्रदान की है। इसका प्रमाण है, जैन जगत में श्रमणी परम्परा। जैन जगत के २४ तीर्थंकरों के काल में श्रमणी वर्ग की संख्या पुरुषों से अधिक रही है। श्रमणी परम्परा आधुनिक काल में भी अपना गौरवमय इतिहास को जीवत रखे हुए है। आज भी जैनों के सभी सम्प्रदायों में साध्वियों की गिनती, साधुओं से ज्यादा मिलती है। हमारी इस लघु पुस्तिका में कुछ प्राचीन इतिहासक साध्वियों का जीवन सरल भाषा में वर्णन किया है। प्रभु ऋषभ देव से प्रभु महावीर तक की प्रसिद्ध साध्वियों के साथ साथ प्रभु महावीर के निर्वाण से आज तक हुई कुछ इतिहासक साध्वियों का वर्णन किया गया है। जिनका

संबंध पंजाव से किसी न किसी तरह रहा है। चाहे उनका जन्म पंजाव में हुआ हो, चाहे उनके धर्म प्रचार का क्षेत्र पंजाव हो। जैन समाज की विडम्बना रही है कि साध्वी परम्परा अधिक होते हुए भी साध्वीयों की कोई पट्टावली प्राप्त नहीं होती। इस का कारण यह रहा कि पट्टावली हमेशा आचार्यों की होती है। आचार्य पुरूष चुना जाता है, चाहे यह जैन सिद्धांत नहीं पर परम्परा है। श्वेताम्बर जैन परम्परा में तो स्त्री तीर्थंकर बन सकती है। १६वीं तीर्थंकर भगवती मल्लीनाथ का इतिहासक वर्णन ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र में मिलता है। इस पुस्तक में हम कम साध्वीयों का वर्णन कर पाए हैं। इस का कारण साध्वीयं स्वयं भी हैं तीर्थंकर परम्परा ने उन्हें बराबर स्थान दिया। पर श्रद्धा व संकोच वश उन्होंने अपना इतिहास सुरक्षित नहीं रखा। साध्वीयों के नाम हस्तलिखितों में आये हैं। अपने सुन्दर लेखन के कारण साध्वीयां शास्त्रों की प्रतिलिपियां करती थी पर साध्वीयों ने अकेली प्रतिलिपियां ही नहीं करती थीं, उन्होंने जैन इतिहास में कई नए प्रकारण जोड़े हैं। कई आचार्यों को पढ़ाने का श्रेय उन्हें प्राप्त है कई साध्वीयां अच्छी लेखिका, शास्त्रार्थ करने वाली व कवियित्री भी हुई हैं उन साध्वी ने कई बार जैन धर्म की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। प्रस्तुत पुस्तक अपने में महत्वपूर्ण है। विद्वानों ने इस की प्रशंसा की है। यह इतिहास की पुस्तक है। नई-पुरानी साध्वी परम्परा का संगम है।

महाश्रमणी ३ :

यह हमारी तृतीय हिन्दी रचना है। इस रचना का प्रकाशन पंजाबी जैन साहित्य की प्रेरका जिन शासन प्रभाविका, जैन ज्योति श्री स्वर्णकांता जी महाराज के ४०वें

दीक्षा महोत्सव पर प्रकाशित की गई। इस पुस्तक को लिख कर, हमने महासाध्वी श्री के व्यक्तित्व व कृतित्व का उल्लेख किया है। हमें इस ग्रंथ की तैयारी में भी काफी श्रम करना पड़ा। महासाध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज अपने वारे में स्वयं कुछ नहीं बताती थी। उनके शिष्य परिवार से, जो हमें अवगत हुआ वह अपर्याप्त था। इंटरनैशनल पावर्ती जैन अवार्ड देने की घोषणा श्रीमती कैय्या को हुई थी। उस संबंध में एक समारोह का आयोजन उपप्रवर्तनी डा० (साध्वी) श्री सरिता जी महाराज ने दिल्ली वाराह टुटी जैन स्थानक में रखा था। हम एक दिन पहले आयोजन हेतु दिल्ली पहुंचे थे। हम वार नगर जैन कालोनी में महाराज श्री के बड़े संसारिक भ्राता स्व० श्री जगदीश चन्द्र जी जैन के यहां ठहरे थे। उन्हें अपनी पुस्तक और सामग्री की समस्या के बारे में बताया। उन्होंने हमें महाराज श्री के बारे में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी दी। उन्होंने महाराज श्री के वचन, महाराज श्री के माता पिता, महाराज श्री की घर से प्रवज्या हेतु पालिताना पलायन करना, पाकिस्तान बनना, और उनके साध्वी बनने तक का विवरण बता दिया। उनके साध्वी जीवन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी हमें साध्वी श्री की शिष्य सरलात्मा, साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज से प्राप्त हुई। साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज उनकी प्रथम शिष्या थीं। महाराज श्री की गुरुणी परम्परा के बारे में हमें अन्य साध्वियों ने बताया। महासाध्वी में यह गुण था कि वह लोकएषणा से दूर रहती थी। उन्हें पद की भूख नहीं थी। साहित्य में वह अपना चित्र तक प्रकाशित करने को मना करती थी। एक दिन मैंने महाराज के नाम के साथ उनका पद उपप्रवर्तनी लिख दिया। उन्होंने कहा “आप हमें पदों में मत उलझाओ, हमने घर साधना के लिए छोड़ा है। मेरा पद साध्वी है जो प्रभु महावीर की

अस्था की ओर बढ़ते कदम
 परम्परा ने मुझे प्रदान किया है। मुझे तो परम समाधि को पाना है। ज्ञान-दर्शन चारित्र तप की अराधना में डूबे रहने के ईलावा मुझे संसार से कुछ लेना नहीं। आप बार बार पुस्तकों में मेरा उल्लेख क्यों करते हो ? उल्लेख तो महान आत्माओं का होना चाहिए, जो संयम, तप, ज्ञान में मेरे से महान हैं।”

परन्तु हमारा फैसला था कि महाराज श्री का एक प्रमाणिक जीवन चरित्र हिन्दी में लिखना है। हम ने साधु साध्वियों की सहायता से ग्रंथ का लेखन कार्य शुरू किया। हमें प्रसन्नता है कि इस ग्रंथ की भूमिका भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी ने स्वयं लिखी थी, जिसमें उन्होंने प्राचीन जैन परम्परा में भगवान महावीर के योगदान प्राचीन जैन साध्वीयां, हमारे चारित्र नायिका द्वारा किए पंजाबी जैन साहित्य के कार्य का उल्लेख किया था। इस भूमिका के लिए मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने बहुत प्रयत्न किया। क्योंकि राष्ट्रपति भवन में किसी पुस्तक के लिए दो शब्द लिखने के लिए पुस्तक को लम्बी वैधानिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया में ज्ञानी जी के सचिव श्री गुरचरण सिंह पंछी का अच्छा मैत्रीपूर्ण सहयोग रहा।

यह पुस्तक प्रकाशित हुई। इस का विमोचन अम्बाला शहर में सम्पन्न हुआ। इस समारोह में स्व. प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्म चन्द्र जी महाराज अपने शिष्य उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी के साथ विराजमान थे। इस पुस्तक का विमोचन श्री आत्मा राम जैन एडवोकेट हनुमानगढ़ ने किया। यह पुस्तक का प्रकाशन मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने जालंधर से करवाया। इस का प्रमुख कारण पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करना था। क्योंकि दीक्षा जयंती दिन करीब आ रहा था। लुधियाना की आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस से यह कार्य

आस्था की ओर बढ़ते कदम
समय पर होना असंभव था। यह हमारे लिए परम-सुखद अनुभव था। इस माध्यम से हम अपनी गुरुणी का पहला परिचय उन्हें समर्पित कर सके।

इस अवसर पर ज्ञानी जी द्वारा प्रदत्त चादर भी वैड-वाजे सहित श्री संघ लेकर आया। जिसे श्री संघ की साक्षी से पहले उन्हें समर्पित किया गया। फिर वहां विराजित सभी साधु साध्वीयों ने चादर को स्पर्श कर जैन ज्योति पद को अनुमोदित किया। इस तरह इस पुस्तक का समारोह रंगारंग रहा। हमारा सन्मान भी श्री संघ अम्बाला ने किया। इस अवसर पर पंजाबी विश्वविद्यालय के धर्म अध्ययन विभाग के अध्यक्ष डा० एच०एस. कोहली सपरिवार पधारे। श्री संघ ने उनका व हमारा शाल द्वारा सन्मान किया। इस अवसर पर साध्वी श्री ने हमारे कार्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने सारा श्रेय हमें दिया। हालांकि उनके आशीर्वाद के बिना सब असंभव था।

प्राचीन काल में जैन धर्म ४ :

प्राचीनकाल से पंजाब के विभिन्न भागों में जैन धर्म का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इस स्थान का पंजाब का इतिहास लिखने वालों ने कभी ध्यान नहीं दिया। हमारी एक पुस्तक पुरातन पंजाब विच जैन धर्म लिखने के बाद इस का महत्व बहुत बढ गया है। क्योंकि यह पुस्तक पंजाबी भाषा में थी हिन्दी भाषा के जानकार हमारे दृष्टिकोण से अनिभिज्ञ रहते थे। इस कमी को पूरा करने के लिए एक शोध निबंध इस विषय पर लिखा। इस प्रकाशन जैन धर्म की शोध पत्रिका 'अर्हत वचन' में हुआ। जिसे कुन्दकुद जैन ज्ञानपीठ इन्दौर प्रकाशित करती है। इस त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक डा० अनुपम जैन हैं। यह १२ पृष्ठ का निबंध था

अस्था की ओर बढ़ते कदम

जो बाद में लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ।

गुण स्थान ५ :

आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया का नाम गुण स्थान है। जैन धर्म में गुण स्थान की अपनी परिभाषा है। गुणस्थान १४ होते हैं। यह दार्शनिक शब्द है। इस की व्याख्या करने से जैन दर्शन से गुजरना पड़ता है। आचार्य श्री विमल मुनि जी की पत्रिका का नाम भी गुण स्थान है। उन्हीं की पत्रिका में लगभग ५ किशतों में यह लेख हिन्दी में प्रकाशित हुआ। यह लघु काया पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित हुआ।

श्रावक शिरोमणि सेठ नाथ राम जी जैन कुनरा ६ :

सेठ नाथ राम जी जैन कुनरा मेरे दादा थे। उनके धर्मिक जीवन का मेरे पर बहुत प्रभाव है। जिन शासन प्रभाविका, जैन ज्योति उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की प्रेरणा से हमारे परिवार ने एक अहिंसा अवार्ड की घोषणा की थी। जिसका नाम इंटरनैशनल महावीर जैन शाकाहार अवार्ड है। उनके व्यक्तित्व का हिन्दी भाषा में परिचय मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने लिखा। यह पुस्तिका लघु काया है। मेरे लिए मेरे बाबा जी का जीवन आदर्श रहा है। उनके दिए संस्कार, हमारे परिवार के लिए आदर्श हैं। उनका जीवन स्वावलम्बी जीवन की उत्कृष्ट उदाहरण है। घर परिवार में रहते हुए उन्होंने धर्म का आदर्श स्थापित किया। वह अहिंसा व शाकाहार के महान पक्षधर थे। जीवन भर उन्होंने सारे गांव को इसका संदेश दिया।

सचित्र भगवान महावीर जीवन चारित्र ७ :

वर्ष २००१-२००२ भगवान महावीर के जन्म

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 कल्याणक का २६००वां वर्ष है। इसी वर्ष मैं आस्था की ओर बढ़ते कदम लिख रहा हूँ। यह अहिंसा वर्ष है, जो समस्त विश्व में मनाया जा रहा है। सरकारी व निजी स्तर पर यह पूरे साल चलने वाला आयोजन है। भारत सरकार १०० करोड़ रूपए इन आयोजनों पर खर्च कर रही है। हमारे द्वारा २६वीं महावीर जन्म कल्याणक शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब का गठन हो चुका है। अभी राज्य स्तरीय समिति बन चुकी है। हमारी समिति काफी समय से कार्यरत है। इस लिए विभिन्न आयोजन करने का निर्णय लिया है जिसे जन सहयोग से पूरा किया जाएगा।

इन्हीं आयोजनों से हमारी समिति ने उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की शिष्या सरलात्मा साध्वी श्री सुधा जी की प्रेरणा से हिन्दी भाषा में श्रमण भगवान महावीर का सचित्र परोपकारी जीवन लिखने का निर्णय किया गया। यह जीवन चारित्र्य विस्तृत शोध पर आधारित है। प्रभु महावीर के जीवन पर प्रकाश डालने वाले, सुन्दर रंगदार चित्र इस ग्रंथ का संपादन साध्वी डा० स्मृति जी महाराज एम.ए. ने किया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन आगरा से हुआ है। विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों, मुनियों, साध्वियों, श्रावक व श्राविकाओं ने इस ग्रंथ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस ग्रंथ का विशलेषण करना जरूरी है। यह ग्रंथ श्रद्धा व परम्परा को सामने रख कर लिखा गया है।

सर्व प्रथम इस ग्रंथ के लेखन में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, साहित्य का प्रयोग किया गया है। दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों जैन परम्परा का ध्यान रखा गया है।

इस ग्रंथ में प्रसिद्ध विद्वानों के आशीवाद हमें प्राप्त हुए, जिसका प्रकाशन किया गया है। शुरू में विस्तृत प्रस्तावना दी गई है। इस प्रस्तावना में भगवान महावीर का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 उल्लेख जिन ग्रंथों में आया है उनका वर्णन है। श्वेताम्बर दिगम्बर परम्परा के मान्यता भेद दिए गए हैं। साथ में इतिहास में जैन धर्म का वर्णन दूसरे ग्रंथों में किस प्रकार किया है उसका वर्णन है। जैन धर्म व वेदिक धर्म के अंतर का उल्लेख किया गया है। दक्षिण भारत में हुए जैन पर अत्याचारों का इतिहासक उल्लेख किया गया है। प्रस्तावना जैन धर्म का स्वतन्त्र सत्ता की ओर इंगित करती है। इस ग्रंथ के ५ खण्ड हैं।

खण्ड - १

इस खण्ड में ५ प्रकरण हैं। प्रथम अध्याय का नाम है “श्रमण संस्कृति की रूप रेखा। इस खण्ड में श्रमण संस्कृति की प्राचीनता दिखाई गई है। वैदिक व श्रमण संस्कृति का अंतर बताया गया है। इस बात को सिद्ध करने के लिए वैदिक व बौद्ध ग्रंथों को आधार बनाया गया है।

दूसरे पाठ का नाम “जैन मान्यताओं के आरोह का संक्षिप्त वर्णन’ में जैन परम्परा अनुसार सृष्टि विकास की कहानी बताई गई है। उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालों का वर्णन सरल भाषा में किया गया है, जो जैन धर्म की अपनी आधारभूत शास्त्रीय मान्यता है।

तीसरे पाठ में ‘जैन तीर्थंकर परम्परा’ का सरल भाषा में वर्णन किया गया है। इस में तीर्थंकर गोत्र के कारण २० बोल (कारण), १४ स्वप्न, ३४ अतिशय, तीर्थंकर का बल, उनकी भाषा के ३५ गुण, तीर्थंकर १८ दोषों का वर्णन है, जिन से तीर्थंकर भगवान मुक्त होते हैं। इस में यह भी स्पष्ट किया गया है कि जैन तीर्थंकर अवतार नहीं होते, जिस प्रकार वेदिक मान्यता में वर्णन मिलता है, ऐसी मान्यता का जैन धर्म में कोई स्थान नहीं है। हमारी यह कोशिश रही

अस्थ की ओर बढ़ते कदम
 है कि तीर्थंकर और अवतारावाद में भेद रेखा खींची जाए। इस के बाद हमने कुछ तीर्थंकरों का जीवन चारित्र दिया है, जिनका इतिहास जैन परम्परा में विस्तार से मिलता है, ये तीर्थंकर हैं प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, दूसरे तीर्थंकर भगवान अजीतनाथ, १६वें तीर्थंकर भगवती भल्लीनाथ, २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ व भगवान पार्श्वनाथ का चारित्र का संक्षिप्त में वर्णन किया गया है। शेष तीर्थंकरों का वर्णन परिशिष्ट में दिया गया है।

खण्ड - २

यह खण्ड प्रभु महावीर के जीवन चारित्र से प्रारम्भ होता है। प्रथम अध्ययन में भगवान महावीर के पूर्व २८ भवों का वर्णन किया है। यह खण्ड दिलचस्प है। प्रभु महावीर को महावीर बनने से पहले कितनी बार नरक, स्वर्ग, पशु व मनुष्य योनि में जन्म लेकर कर्मफल भोगना पड़ा इसका वर्णन विस्तार से किया गया है। इस बात से सिद्ध होता है कि तीर्थंकर का जीव मानव जन्म की चरमोत्कर्ष अवस्था है।

द्वितीय अध्ययन में भगवान महावीर के जन्म के समय समाजिक, राजनेतिक, धर्मिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। भगवान महावीर का युग दास प्रथा का युग था। स्त्री व शुद्रों की अवस्था बहुत दयनीय थी। समाज में प्राचीन श्रमण परम्परा (भगवान पार्श्वनाथ) कमजोर हो गई थी। वेद, ब्राह्मण, वलि प्रथा धर्म का अंग बन गए। इन्हीं परिस्थितियों का वर्णन हमारे द्वारा प्राचीन साहित्य के आधार पर किया गया है।

तृतीय अध्ययन में प्रभु महावीर के जन्म का वर्णन है। देवता द्वारा उनके द्वितीय जन्म कल्याणक पर ६४

इन्द्रों का सपरिवार देव देवीयों के आने का वर्णन है। फिर उनके वचपन की अलोकिक लीलाओं का वर्णन किया गया है। प्रभु महावीर के विवाह, माता पिता के स्वर्ग सिधारने पर दीक्षा के संकल्प का वर्णन किया गया है। साथ में दिगम्बर परम्परा का वर्णन करके प्रभु महावीर के जीवन की मान्यता को तुलनात्मक पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्ययन में नौ लोकांतिक देवों की प्रेरणा से प्रभु महावीर द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है। देवता द्वारा प्रभु महावीर की चन्द्रप्रभा पालकी उठाने का वर्णन है। प्रभु महावीर द्वारा क्षत्रियकुण्ड के बाहर दीक्षा ग्रहण करने का विवेचन किया गया है। दीक्षा लेते ही उन्हें चतुर्थ मन पर्यव ज्ञान हो गया। प्रभु ने केशलोच किया साथ में इन्द्र द्वारा देवदुष्य वस्त्र देने का वर्णन है।

खण्ड - ३

इस खण्ड में प्रभु महावीर की साढ़े बारह वर्ष की साधना का वर्णन है। प्रभु महावीर इन वर्षों में कहां कहां पधारे, क्या क्या प्रमुख घटनाएं हुईं। उन्हें मनुष्यों, पशु व देवों ने किस तरह के कष्ट दिए, कैसे कैसे कष्ट उन्हांने अपने सुकुमार शरीर पर झेले। इन सब का वर्णन इस खण्ड के प्रथम अध्ययन में किया गया है। इस में ही आजीवक धर्म के मंगलि पुत्र गोशालक का वर्णन है। इसी खण्ड में राजकुमारी से दासी बनी साध्वी चन्दनवाला का वर्णन है। प्रभु महावीर के २१ गुणों का वर्णन है। जो कल्प सूत्र पर आधारित है जो अलंकारिक भाषा में है।

दूसरे अध्ययन में प्रभु महावीर को हुए केवल्य ज्ञान का वर्णन है। केवल्य ज्ञान ऋजुवालिका नदी के किनारे हुआ था। केवल्य ज्ञान प्रभु महावीर समारोह देवताओं ने

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 धूमधाम से मनाया। इस के बाद देवताओं ने समोसरण की रचना की। प्रभु महावीर का पहला उपदेश देवताओं ने सुना। इस घटना को जैन धर्म में अंछेरा (अचम्भा) माना गया। कभी किसी तीर्थंकर की देशना वेकार नहीं जाती। यहां से चल कर प्रभु महावीर पावा पूरी आए, ऐसा श्वेताम्बर मान्यता है। दिगम्बर परंपरा के अनुसार भगवान महावीर का प्रथम उपदेश राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत पर हुआ था।

खण्ड - ४

प्रथम अध्ययन में केवल्यज्ञान महोत्सव समोसरण रचना का विस्तार में शास्त्रों के अनुसार वर्णन किया है। द्वितीय अध्ययन में प्रभु महावीर के ११ गणधर का इतिहासक उल्लेख है। यह क्रिया कण्डी ब्राह्मण थे। सभी के साथ शिष्यों का विशाल परिवार था। सभी के मन कुछ संशय थे। जिसका समाधान प्रभु महावीर ने अपनी प्रथम देशना पावपुरी में किया। इन ब्राह्मण गणधरों के नाम हैं १. इन्द्र भूति गौतम २. अग्निभूति ३. वायुभूति ४. व्यक्त ५. सुधर्मा, ६. मण्डित ७. मोर्यपुत्र, ८ अंकपित, ९. अचलभ्राता १०. मेतार्य ११. प्रभास

इन में सब से बड़े इन्द्रभूति गौतम थे। वह महात्मा बुद्ध से भिन्न हैं। इनके गणधरों के शिष्यों की गिनती ४४४० थी। जो सब गणधर के साथ दीक्षित हुए थे। इस दिन श्री संघ की स्थापना हुई। प्रभु महावीर ने प्रथम उपदेश दिया।

गणधरों के प्रश्न :

१. आत्मा २. कर्म ३. आत्मा व शरीर ४. मन और पांच भूत ५. इहलोक-परलोक ६. बंध और मोक्ष

अस्था की ओर बढ़ते कदम
 ७. देव का आस्तित्व ८. नरक ९. पुण्य-पाप १०. परलोक
 ११. मोक्ष

प्रभु महावीर का यह ब्राह्मण शिष्य बन गए। प्रभु महावीर की क्रान्ति का विगुल वज्र चुका था। फिर जो प्रभु की शरण में आया वह प्रभु महावीर के शिष्य बन गया, उस का कल्याण होता गया। प्रभु महावीर ने इन लोगों से प्रश्नों का उत्तर, वेदिक ग्रंथों के आधार पर दे कर अनेकांतवाद के सिद्धांत को भी स्थापित किया। इस अध्ययन में चन्दनवाला के दीक्षा का भी उल्लेख है। इस प्रकार महावीर ने चतुर्विधि श्री संघ की स्थापना की। अगले अध्ययन का नाम तीर्थ स्थापना है। प्रभु महावीर व दो प्रकार का धर्म वर्णन किया। १. श्रमण धर्म २. श्रावक धर्म। प्रभु महावीर द्वारा बताए धर्म की व्याख्या का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। प्रभु महावीर ने नव तत्व, षट् द्रव्य, पांच महाव्रत, समिति, गुप्ति, अणुव्रत, विषयों का संक्षिप्त वर्णन किया है उसका उल्लेख है।

खण्ड - ५

इस में एक ही अध्ययन है, वह है प्रभु महावीर द्वारा अपने धर्म का प्रचार। प्रभु महावीर ने ४२ वर्ष तक राजा के महलों से गरीब की झोंपड़ी तक अपना पवित्र संदेश पहुंचाया। इस खण्ड में आंकलन वर्ष वार व्योरे द्वारा किया गया है। प्रभु महावीर के दरबार में राजा रंक एक बराबर थे। प्रभु महावीर के यह देश, काल, जाति, लिंग रंग व नस्ल का भेद नहीं था। प्रभु के उपासक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, किसान, कुम्हार, चण्डाल तक स्त्री, पुरुष सभी बराबरी के साथ प्रभु उपदेश सुनने के अधिकारी थे। अर्जुन माली जैसे साधु बन गए। अनेकों विदेशी साधक भी उनके धर्म संघ

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में समिलित हुए। यह सभी इतिहास का महत्वपूर्ण भाग हैं।
 हमारा प्रयत्न रहा है कि महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन जैन
 शास्त्रों के अनुसार कर दिया जाए। यह ग्रंथ हमारे धर्म
 जीवन की महत्वपूर्ण निधि है।

प्रभु महावीर ने अपने जीवन में सब से महत्वपूर्ण
 स्थान स्त्री जाति को दिया है। बौद्ध संघ में महात्मा बुद्ध ने
 स्त्रियों को बड़े विवाद के बाद स्थान दिया। परन्तु तीर्थंकर
 महावीर जिस परम्परा की कड़ी थे वहां साध्वी परम्परा प्रथम
 तीर्थंकर ऋषभदेव से चल रही थी। परन्तु भगवान महावीर
 को शुद्र स्त्रियों को धर्म वरावरी के लिए ब्राह्मणों के तीव्र
 विरोध का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणों की मान्यता थी कि
 स्त्री, पशु व शुद्र एक श्रेणी के जीव हैं। इन से कठोरता से
 व्यवहार होना चाहिए। यह स्त्री व शुद्र किसी तरह की
 स्वतन्त्रता के योग्य नहीं। प्रभु महावीर इन मान्यताओं के
 खण्डन कर उन्हें मोक्ष का अधिकारी बनाया। प्रभु महावीर ने
 जीवात्मा को ही परमात्मा माना। सृष्टि, आत्मा, परमात्मा के
 बारे में उन्होंने स्वतन्त्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यही दृष्टिकोण
 जैन धर्म को दूसरे धर्मों से सिद्धांतिक रूप से अलग करता
 है। उन्होंने आत्मा की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार किया। हिन्दी
 भाषा में यह ग्रंथ हमारी परम उपलब्ध है। इस की समीक्षा
 दैनिक ट्रिव्यून्, अजीत व पंजाब केसरी व गुणस्थान में
 प्रकाशित हुई।

समर्पित जीवन ८ :

यह एक गुरु द्वारा अपने शिष्य का परिचय देने
 की सामान्य चेष्टा है। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अपने धर्मभ्राता
 श्री रविन्द्र जैन का परिचय दिया है। यह एक गुरु की शिष्य
 को अनुपम भेंट है। इस व्यक्ति के माध्यम से मुझे देव, गुरु
 व धर्म की सेवा करने का सुअवसर मिला है। यह पुस्तक मैंने

उस के ४०वें जन्म दिन पर भेंट की थी। इस का विमोचन भी मैंने ही किया है।

अनजाने रिश्ते ६ :

यह पुस्तक मेरी अनुभूतियों को प्रकट करने वाली पुस्तक है। पुस्तक में जैन धर्म में आत्मा परमात्मा, कर्म, पुनर्जन्म, नवतत्व आदि सिद्धांतों का विवेचन दार्शनिक ग्रंथों के आधार पर किया गया है। इस के बाद मैंने स्वप्न के आधार पर अपनी आत्मा अनुसार विवेचन किया है। जैन धर्म में स्वप्नों का कितना महत्व है, इसी बात को आधार मान कर मैंने देखे स्वप्नों का वर्णन किया है। यह अद्भुत पुस्तक है। इस पुस्तक की समीक्षा पंजाब के प्रसिद्ध दैनिक पंजाब केसरी में प्रकाशित हुई थी। इस की प्रेरणा मुझे श्रीमती अमृता प्रीतम की पुस्तक “लाल धागे का रिश्ता” से मिली थी। मैंने जो स्वप्न देखे उनका विवेचन करने के पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि स्वप्न भविष्य की घटनाओं की पूर्व सूचनाएं देते हैं। इन में से एक स्वप्न नाग मणि पत्रिका पंजाबी में प्रकाशित हुआ। यह दोनों पुस्तक का लेखन कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न किया गया। इस पुस्तक के सम्पादन का दायित्व मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने निभाया। इस पुस्तक का समर्पण जयपुर में महावीर इंटरनैशनल जयपुर के समारोह में सम्पन्न हुआ। पुस्तक का विमोचन इस पुस्तक की प्रेरिका प्रसिद्ध विदूषी श्रीमती अमृता प्रीतम ने दिल्ली में अपने निवास स्थान पर किया। इस पुस्तक में मेरी कई विषयों पर अनुभूतियां दर्ज हैं। द्वितीय भाग में पुनर्जन्म से संबंधित घटनाएं दर्ज हैं जिनका संबंध जैन इतिहास से है। तीसरे भाग में तीर्थंकरों की माता द्वारा देखे गए स्वप्न हैं। श्रमण भगवान महावीर को आए स्वप्न व सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को आए स्वप्नों का वर्णन है। अंतिम खण्ड में मेरे

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 द्वारा देखे स्वप्नों का वर्णन व विवेचन है। यह पुस्तक अपने ढंग की एक पुस्तक है जिस में स्वप्नों का अध्यात्म से मिलान किया गया है। इस पुस्तक के आधार पर मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मुनष्य के जीवन में स्वप्नों का कितना महत्व है। इन से हमारा कैसा रिश्ता है ? कैसे यह हमारी मनोदशा को प्रभावित करते हैं। सब का विवेचन दिया गया है।

हमारे द्वारा सम्पादित साहित्य

हम दोनों ने पंजाबी हिन्दी भाषा के लेखन कार्य के साथ साथ सन्पादन कार्य भी किया है। हमारे द्वारा सम्पादित ग्रंथों में कुछ इस प्रकार हैं जिन ग्रंथों का संपादन करने का हमें सौभाग्य मिला है।

आस्थांजली 9 :

वर्तमान प्रभावक जैन आचार्यों में विश्व केसरी, जैन धर्म दिवाकर, विद्या प्रभावक श्री विमल मुनि जी महाराज का अपना स्थान है। आप से हमारा परिचय ३० वर्ष से भी ज्यादा पुराना है। आज आप व्योवृद्ध अवस्था में भी जैन धर्म का प्रचार प्रसार हेतु लगे रहते हैं। आप एक निर्भीक श्रमण हैं जो प्रभु महावीर के अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकांतवाद सिद्धांतों को समर्पित हैं। परोपकार, शिक्षा, सेवा, साधना व साहित्य आपकी जैन धर्म को प्रमुख देन है। वह क्रान्तिकारी भिक्षु है, वह संसार का कई बार भ्रमण कर चुके हैं। वह किसी प्रकार भी सन्मान की भावना से दूर रहते हैं। लाखों नए लोगों को उन्होंने जैन धर्म में दीक्षित किया है। उनका जन्म कुष्प कलां में आज से ६६ वर्ष पहले पंडित देवराज व माता गंगादेवी के यहां ब्राह्मण कुल में हुआ। यह परिवार जैन परम्परा से घृणा करता था। आप को दीक्षा ग्रहण करने में

अस्था की ओर बढ़ते कदम
लाखों रुकावटों, कष्टों व परिषहों को सहना पड़ा। आप ने सभी कष्टों को हंस कर सहन किया। १९४० में आप जी जगदीश मुनि जी के शिष्य बने।

आप की दीक्षा के जब ५० वर्ष पूरे हुए, तो हमारे मन में उन्हें अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने की भावना हुई। हमारी दृष्टि में उन्हें भेंट करने के लिए इस समर्पण ग्रंथ के इलावा कोई सुन्दर वस्तु नहीं थी। महाराज श्री इस प्रकार के बाह्य आडम्बरों का विरोध करते रहे हैं। आप का मानना है कि श्रावक का धन परोपकार में लगना चाहिए। झूटे आडम्बरों से लाभ समाज को कुछ प्राप्त नहीं होता। हम लोगों ने महाराज जी के भक्तों की एक मीटिंग बुलाई। इस मीटिंग में अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने का निर्णय किया गया। भक्तों ने हमारे कार्य में तन मन से सहयोग करने का विश्वास दिलाया। यह सारे पंजाब में प्रथम अभिनंदन ग्रंथ था जो किसी जैन मुनि को अर्पित किया गया। फिर हम आचार्य श्री के पास पहुंचे। उन्हें प्रार्थना की श्री संघ के ५०वें दीक्षा दिवस पर आप का अभिनंदन करना चाहता है। इस अवसर पर आप का आचार्य पद महोत्सव भी मनाना है जो संघीय दृष्टि से जरूरी है। इसी चादर महोत्सव पर आप को अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने का हमारा निर्णय है।”

आचार्य श्री ने कहा “मैं तो एक जैन साधू हूं। मुझे इन बंधनों में क्यों उलझाते हो।”

हमारे द्वारा बार बार आग्रह करने के बाद वह मान गए। फिर हमने जैन आचार्य श्री विमल अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशन समिति का निर्माण किया। इस की संयोजिका साध्वी डा० जैन भारती (वर्तमान में साध्वी)। हम दोनों को प्रधान सम्पादक बनाया गया। सम्पादक मण्डल में श्रीमती मोहनी कौल, डा० डी.सी. जैन कुरुक्षेत्र, डा० धर्म सिंह को लिया

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 गया। फिर हमें जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों के आचार्यों, साधु, साध्वी, श्रावकों से पत्र व्यवहार करना पड़ा। राजनेता व समाज सेवकों से संदेश सम्मरण, व लेख लिखने की प्रार्थना की गई। भारत के कोने कोने से महान विद्वानों के लेख, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी भाषा में प्राप्त हुए। यह लेख जैन धर्म, संस्कृति, इतिहास दर्शन, कला, व पुरातत्व व साहित्य गणित आदि के संदर्भ में थे। यह हिन्दी पंजाबी व अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होने वाला प्रमाणिक धर्म ग्रंथ था। शायद ही ऐसा कोई विषय वचा हो, जिस पर इस ग्रंथ में विद्वानों के लेख प्रकाशित न हुए हों। ग्रंथ के प्रारम्भ में आचार्य श्री के जीवन पर लेख, कविता व संदेश थे। ज्यादा हिरसा शोध निबंधों से भरपूर था। उनके प्रवचनों के अंश प्रकाशित करने का निर्णय हुआ। यह कार्य श्रीमती मोहनी कौल ने किया। उन दिनों कम्प्यूटर नए आए थे। महाराज श्री का ५०वां दीक्षा दिवस करीब था। ग्रंथ प्रैस में नहीं छप रहा था। ग्रंथ का कुछ भाग कम्प्यूटर द्वारा छापा गया। सारा कार्य जालंधर श्री संघ के हाथों सम्पन्न हुआ।

ग्रंथ विमोचन व आचार्य पद महोत्सव

इस ग्रंथ का विमोचन जालंधर श्री महावीर जैन भवन कपूरथला रोड में सम्पन्न हुआ। यह दो दिन का भव्य समारोह था। पहला दिन समारोह शाम को रंगारंग प्रोग्राम था, जिस में एक महाराष्ट्र को नृत्यक ने इन्द्र की सभा व महावीर जन्म कल्याणक का नृत्य दिखाया। इस बूढ़े कलाकार की कला ने हमें बहुत प्रभावित किया। पूछने पर पता चला कि यह तो विदेशों में भी कार्यक्रम दिख चुका है। वैसे पुरानी फिल्मों में नृत्य का कार्यक्रम आयोजित कर चुका है।

दूसरे दिन भव्य समारोह जैन भवन में भूतपूर्व

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 सेशन जज श्री हरिचन्द्र मोदी की अध्यक्षता में हुआ। आचार्य श्री को भव्य आसन पर बैठाया गया। सैंकड़ों चादरें उनके आचार्य पद के अनुमोदन हेतु श्री संघ ने उन्हें भेंट की।

इस अवसर पर आचार्य श्री विमल मुनि अभिनंदन ग्रंथ का विमोचन श्री मोदी ने किया। उन्होंने ग्रंथ को सिर पर धारण कर, महाराज श्री को भेंट किया। इस ग्रंथ की प्रशंसा विद्वत् जगत में बहुत हुई। यह ग्रंथ देश विदेश में पहुंचा। यह ग्रंथ हमारे लिए प्रथम अनुभव था। इस ग्रंथ के सम्पादन से हमें जैन धर्म पर नई बातों का पता चला। हमारा विद्वानों से परिचय बना। यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी। महाराज श्री का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

निरयावलिका सूत्र आदि पांच उपांग ६:

निरयावलिका सूत्र का हमारे द्वारा किया पंजाबी अनुवाद अभी अप्रकाशित है। जब हम निरयावलिका सूत्र की बात करते हैं तो इस के साथ ४ अन्य उपांग हैं। इस तरह निरयावलिका प्राचीन उपांगों का संग्रह है। नदी सूत्र के अनुसार कभी यह विशाल उपांग थे। वर्तमान में निरयावलिका बहुत ही लघु काय ग्रंथों का संग्रह है। हमारे अतिरिक्त इस शास्त्र का अनुवाद बहुत विद्वानों ने हिन्दी, गुजराती, जर्मन व अंग्रेजी भाषाओं में किया है। पर सब बड़ी हिन्दी टीका श्रमण संघ के प्रथम जैन आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने १९४८ में सम्पन्न की थी। ३० जनवरी १९६२ के उनके स्वर्गवास के बाद यह शास्त्र प्रकाशित न हो सका।

एक दिन हम स्व. साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के चरणों में बैठे थे। उन्होंने हमें अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए आदेश दिया कि “वर्षों से मेरे मन में एक इच्छा है कि आचार्य श्री के किसी अप्रकाशित आगम का

शास्त्र की ओर बढ़ते कदम
 संपादन करके प्रकाशित कराउं। मैंने सुना है कि आचार्य श्री के कुछ आगम अप्रकाशित हैं। आप पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज के पास जा कर पता करो कि कौन कौन सा शास्त्र अप्रकाशित है। हम उसके प्रकाशन की व्यवस्था श्रावक संघ से करवा देंगे। उसके संपादन में मेरी सभी श्रमणीयां सहयोग देंगी। आप को मैं एक पत्र पूज्य रत्न मुनि जी महाराज के नाम देती हूं, आप लुधियाना जाओ, उनको हमारा संदेश दो, वह बहुत कृपालु मुनि हैं, वह हमारी इच्छा जरूर पूरी करेंगे।”

हम साध्वी श्री को इनकार कैसे कर सकते थे, पर शास्त्रों की भाषा प्राकृत संस्कृत होने के कारण हमें किसी सहायक की जरूरत थी। जैसे ही लुधियाना में पूज्य श्री रत्न मुनि जी को साध्वी श्री का पत्र दिया, उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हमें ६ कापीयां, जो आचार्य श्री ने लिखवाई थी, हमें प्रदान कर दी। साथ में उन्होंने कहा “आप साध्वी श्री से कहें कि किसी अच्छे विद्वान से भाषा का सम्पादन करवा के इसे प्रकाशित करवा दें।”

यह कापीयां लेकर साध्वी श्री के पास आए। साध्वी श्री उन कापीयों को पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने कहा “भैया ! घबराना नहीं। शास्त्र का सम्पादन हम करेंगे। एक बार आप आचार्य श्री की कापीयां पढ़ लो, फिर संपादन करना। बाद में प्रकाशन की व्यवस्था हो जाएगी। हमारे जितने ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, सब से अधिक समय, इस ग्रंथ ने लिया। इस के दो कारण थे। एक आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस की अव्यवस्था थी व दूसरा पंजाब में व्याप्त आतंकवाद था। इस शास्त्र की प्रधान सम्पादिका हमारी गुरुणी जिन शासन प्रभाविका जैन ज्योति श्री स्वर्णकांता जी महाराज नहीं हुईं। सम्पादन मण्डल में हम दोनों के अतिरिक्त सरलात्मा साध्वी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
सुधा जी महाराज की शिष्या साध्वी डा० स्मृति जी व श्री
तिलकधर शास्त्री शामिल हुए।

सम्पादक मंडल हर सप्ताह अम्बाला में मिलता।
पाठ संशोधन का कार्य काफी कठिन था। आचार्य श्री ने यह
कार्य वर्षों पहले सम्पन्न किया था। उस समय की हिन्दी
वर्तमान हिन्दी में काफी अंतर था। कई स्थान पर तो मूल
पाठ प्रमादवश छुट गए थे। परन्तु आचार्य श्री ने अपनी
प्रस्तावना में उपयोग में आये ग्रंथ व टीका का नाम लिखे था
यह उपयोगी ग्रंथ हमें पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज ने
भण्डार से निकाल कर दिये। इन ग्रंथों से हमें पाठ संशोधन
में बड़ी सहायता मिली। आचार्य श्री द्वारा लिखित मूल प्राकृत
पाठ व छाया पूज्य आचार्य श्री घासी लाल जी महाराज से
मिलती जुलती थी। आचार्य श्री घासी लाल जी महाराज उन
महान आचार्यों में एक हुए हैं जिन्होंने ३२ आगमों का
अनुवाद हिन्दी, गुजराती में साथ साथ किया है। साथ में
संस्कृत भाषा में उन्होंने टीका स्वयं लिखा है। यह ग्रंथ और
अन्य प्रकाशित अनुवाद हमारे लिए बहुत उपयोगी रहे। २
वर्ष के लम्बे परिश्रम के बाद एक प्रारूप सामने आया। इस
का प्रकाशन आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस लुधियाना में ६ वर्ष तक
होता रहा। इस कार्य में आत्म रश्मि के संपादक प०
तिलकधर शास्त्री जी का सहयोग हमें प्राप्त हुआ। वह
१९७३ से हमारे परिचित सज्जन थे। जब वह २५००वां
महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब के सलाहकार
नियुक्त हुए थे।

इस शास्त्र के लिए आशीवाद वचन स्व० आचार्य
श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने रोनिला (हरियाणा) में लिखा।
अम्बाला में आप के भव्य प्रवेश पर १०० से ज्यादा साधु
साध्वी इकट्ठे हुए। हमारी गुरुणी ने उसी शाम को हुए

आस्था की ओर बढ़ते कदम
सम्मेलन में यह शास्त्र की प्रथम प्रति आचार्य श्री को समर्पित की। शास्त्र विभिन्न साधु साध्वियों को आचार्य श्री ने स्वयं वितरित किए। यह समारोह रेडक्रास भवन अम्बाला में हुआ। इस ग्रंथ की प्रस्तावना साध्वी डा. श्री मुक्ति प्रभा जी महाराज ने लिखी। फ्रांस की प्रसिद्ध जैन विदूषी डा० नलिनी बलवीर ने शास्त्र के बारे विद्वता पूर्ण विचार प्रकट किए।

इस शास्त्र का समर्पण समारोह दिल्ली के विवेक विहार में हुआ। जहां इस की प्रति साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को भेंट की गई। इस भव्य दीक्षा दिवस पर स्व० भण्डारी श्री पदम चन्द जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित विराजमान थे। यह हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण शास्त्र का कार्य था। आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज की अंतिम कृति का प्रकाशन उनकी दीक्षा शताब्दी पर हुआ। आचार्य श्री बहुत महान साहित्यकार भी थे। उनकी कृति हमारे लिए उनके जीवन का महत्व बताने के कारण थी। शास्त्र में मूल के पाठ के अतिरिक्त संस्कृत छाया, शब्दार्थ, मूलार्थ, व्याख्या व टीका थी। यह कार्य बहुत विशाल था। इस ग्रंथ की भूमिका हम दोनों ने लिखी। इस ग्रंथ का राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सन्मान हुआ।

इस ग्रंथ का विमोचन बहुत ही भव्य था। हमारे पूज्य जैन आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज का अंतिम सम्मेलन था। यह विश्व धर्म सम्मेलन था जो कृपाल वाग दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस शास्त्र का विमोचन कृपाल वाग में रूहानी सतसंग मिशन के प्रमुख संत राजेन्द्र सिंह जी महाराज ने अपने कर कमलों से किया। स्व० आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने प्रवचन में हम दोनों की बहुत प्रशंसा की थी। यह सम्मेलन तीन दिन तक चला। संसार के कोने कोने से देशी विदेशी लोग हर धर्म को मानने

वाले पधारे थे।

आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज से यह हमारी अंतिम मुलाकात थी। वह काफी अस्वस्थ होते हुए भी इस सम्मेलन में पधारे थे। वह हमारे बहुत पूज्य थे। वह अंतराष्ट्रीय स्तर के संत थे। जिन्होंने हमें अंतराष्ट्रीय सम्मेलनों में आमंत्रित कर, सौभाग्य प्रदान किया था। हम सारा जीवन उनके उपकार कभी नहीं भूला सकते। साध्वी श्री को इस विमोचन से अथाह प्रसन्नता हुई। उन्होंने हमें आत्मा से आशीर्वाद दिया जो उनका स्वभाव था।

महाश्रमणी अभिनंदन ग्रंथ २ :

महाश्रमणी उपवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का ४०वां दीक्षा महोत्सव १९८६ में मनाया गया। ठीक दस वर्ष बाद उनकी दीक्षा स्वर्ण जयंती आने वाली थी। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन के मन में साध्वी श्री का अभिनंदन समारोह उत्सव मनाने हेतु उनकी शिष्याओं को तैयार किया। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज की प्रेरणा हमें मिली। कुछ समय हम कई कारणों से चुप हो गए। परन्तु उनकी शिष्या साध्वी सुधा जी महाराज ने अचानक हमें देहली बुलाया। इस ग्रंथ पर कार्य करने की प्रेरणा दी। हमें आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने प्रकाशन कार्य में हर तरह के सहयोग का आश्वासन दिया। इस कार्य को लेकर एक भव्य योजना बनी। साध्वी स्वर्णा अभिनंदन ग्रंथ समिति का निर्माण हुआ। इस का मुख्यालय मालेरकोटला व अम्बाला रखे गए। ग्रंथ की रूप रेखा इस तरह बनाई गई।

टिप्पणी : इस महाश्रमणी ग्रंथ की तैयारी व रूप रेखा का विवरण अलौकिक समारोह शीर्ष के अन्तर्गत विस्तृत रूप में आगे दिया गया है।

१. राष्ट्रीय नेताओं के संदेश २. सस्मरण ३.

कविताएं ४. आस्थांजली ५. जीवन का विस्तार परिचय यह प्रथम खण्ड में आया। द्वितीय खण्ड में साध्वी परिवार के विस्तृत लेख व हमारे लेख थे। जो साध्वी जी के जीवन पर थे। तृतीय खण्ड जैन दर्शन, साहित्य, कला, मंत्र, तंत्र, पुरातत्व, तीर्थ स्थल, देव देवीयों संबंधी मान्यताओं पर आधारित शोध निबंधों का था। ५०० पृष्ठ का यह विस्तृत ग्रंथ आगरा से दिवाकर प्रकाशन द्वारा श्री श्रीब्रह्म सुराणा की देख रेख में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ की प्रेरिका साध्वी श्री राजकुमारी जी व साध्वी श्री सुधा जी महाराज थे। इस के प्रधान सम्पादक थे साध्वी डा० स्मृति जी महाराज, श्री रविन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन, धर्म सिंह थे। यह ग्रंथ सारा कम्प्यूटर पर प्रकाशित हुआ। साध्वी जी के जीवन के संबंध में ढेर सारे चित्र प्रकाशित हुए। प्रवर्तनी साध्वी श्री पार्वती जी महाराज से अब तक सभी साध्वीयों की परम्परा का उल्लेख दिया गया। हमारे तीन खण्डों में तीन लेख प्रकाशित हुए। एक वर्ष के कठोर श्रम के बाद यह ग्रंथ तैयार हो गया। ग्रंथ का वजन काफी था। इस ग्रंथ का विमोचन रंगारंग समारोह में हुआ। जिसकी तैयारीयां हम वर्षों से कर रहे थे। इस ग्रंथ में आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज व उनसे संबंधित विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस ग्रंथ में हमें अनेकों विद्वान आचार्यों, उपाध्याय, साधु, साध्वीयों, श्रावकों, श्राविकाओं के लेख प्राप्त हुए। यह साधु व श्रावक जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के थे। अनेकों बुद्धिजीवीयों ने इस ग्रंथ में अपने विचार लेखों के माध्यम से रखे। इनमें डा० तेज सिंह गोढ़ उज्जैन का सहयोग महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ के लेखों के लिए परिपत्र समस्त भारत में प्रेषित किया गया। जिसका प्रारूप श्री जितेन्द्र जैन वाडमेर ने तैयार किया था।

आखिर समारोह का दिन आ गया। इस समारोह में आचार्य श्री नित्यानंद जी महाराज विशेष रूप से पधारे थे। सारे उत्तर भारत से ७० साधु साध्वीयां पधारे थे। हजारों की संख्या में श्रावक, श्राविकाएं समस्त भारत से पधारे थे। यह समारोह काशी राम जैन स्कूल के विशाल प्रांगण में मनाया गया। इस में साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को उनकी दीक्षा जयंती पर अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। एक मंच पर विशिष्ट अतिथियों के लिए लगाया गया। अभिनंदन पत्र का वाचन डा० मदन लाल हसीजा निर्देशक भाषा विभाग पंजाब ने किया। इस अभिनंदन ग्रंथ का विमोचन हरियाणा अरसैवली के स्पीकर श्री फकीर चंद अग्रवाल ने अपने कर कमलों से किया समस्त सम्पादक मण्डल की और से हमारे द्वारा यह ग्रंथ साध्वी श्री को समर्पित किया गया।

इसी दिन साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज द्वारा लिखित नंद मणिकार वाल चित्र कथा का विमोचन उनके संसारिक भतिजे श्री कीमत राम जैन देहली ने किया। ग्रंथ की प्रतियां विद्वानों व मेहमानों को दी गई। इस अवसर पर इंटरनैशनल पार्वती जैन अवार्ड डा० किरण जैन को भेंट किया गया। महाश्रमण नाम पुस्तक का विमोचन भी हुआ। साध्वी श्री ने अपने शिष्य परिवार के साथ पधारे मुनियों का सम्मान शाल भेंट करके किया।

हमें विशिष्ट अतिथि रत्न पद से अलंकृत किया गया। यह ग्रंथ साध्वी श्री के क्रान्तिकारी जीवन के उल्लेख से भरा पड़ा है। वह जीवन भर महान तप अराधिका धर्म प्रसारिका, साहित्य प्रेरिका रहीं। स्वयं उन्होंने जैन धर्म के परम्परागत ग्रंथों का संकलन किया। इस अवसर पर सम्पादक मण्डल के जैन विद्वानों का सन्मान भी श्री संघ ने किया।

यह समारोह हमारे जीवन के महत्वपूर्ण समारोह

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में से था। इस संमारोह के माध्यम से हमें हमारी साहित्य प्रेरिका संधारा साध्वी श्री स्वर्णकांता जी का अभिनंदन अभिनंदन ग्रंथ के माध्यम से करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जैन धर्म के प्रसिद्ध विद्वानों को करीब से देखने, उनसे बातें करने का सौभाग्य मिला।

इस समारोह में महासाध्वी उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के शिष्य परिवार का हर प्रकार का सहयोग रहा। अम्बाला श्री संघ, स्थानीय संस्थाओं द्वारा उन्हें अभिनंदन पत्र प्रस्तुत किए गए। हमारी संस्था व श्री संघ ने साध्वीयों को शाल ओढ़ाए गए।

इसके एक वर्ष बाद हमारी गुरुणी बीमार पड़ गई। यह बीमारी उनके देवलोक का कारण बनी। वह लगभग २ साल मृत्यु से लड़ती रहीं। अंतिम ११ दिन का संधारा उन्हें आया। उनके जीवन के साथ हमारा जीवन भर नाता रहा। वह सरलात्मा, घोर तपस्वनी, पर उपकारी साध्वी थीं। जिन शाषण का श्रृंगार थी। सपष्ट वक्ता, निर्भिक श्रमणी थी। उन्होंने असत्य से कभी समझौता नहीं किया था। उनके गुणगान का वर्णन किसी शब्दों का मोहताज नहीं। उनका स्मारक, उनके साहित्य कार्य हैं। अंतिम समय भी हम दोनों ने भगवान महावीर का सचित्र जीवन चारित्र लिख कर प्रकाशित किया। यह ग्रंथ उन्हें ही समर्पित था। इस ग्रंथ के अतिरिक्त उनकी शिष्याओं ने हमें प्रेरणा देकर एक महत्वपूर्ण संस्था का निर्माण साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज व साध्वी श्री सुधा जी महाराज ने सन्मति नगर कुष्प में आदिश्वर धाम के प्रांगण में किया। दोनों साध्वीयों ने अपने कीमती ग्रंथ साध्वी स्वर्णा जैन इस पुस्तकालय को भेंट स्वरूप दिए।

हमारे साहित्य के अंतर्गत हमने हमारे द्वारा

आस्था की ओर बढ़ते कदम

प्रकाशित हर छोटी बड़ी पुस्तिका का संक्षिप्त वर्णन किया है। उनमें से कुछ पुस्तकें अभी किसी कारण अप्रकाशित हैं। उनका वर्णन भी कर दिया है। यह हमारे साहित्य की यात्रा कथा है। यह साहित्य यात्रा ही हमारी आस्था की यात्रा है। साहित्य के माध्यम से मुझे अपने धर्म व अन्य धर्मों के स्वाध्याय का सौभाग्य मिला। इस यात्रा के कारण हमें बहुत सारे मुनियों व साध्वियों का आशीर्वाद मिला। बहुत से मुनियों व साध्वियों के माध्यम से हमें अपनी ज्ञान जिज्ञासा शांत करने का बल मिला। साहित्य हमारी पहचान है, जीवन है, देव, गुरु व धर्म के प्रति श्रद्धा व आस्था का प्रतीक हमारा साहित्य है। हमारा समस्त साहित्य परम्परा व श्रद्धा व मान्यता पर आधारित तुलनात्मक साहित्य है। हमारी यह कोशिश रही है कि हमारे धर्मों का सन्मान हो। किसी भी कार्य से दूसरे धर्म को ठेस न पहुंचे। सब धर्मों का सन्मान हो।

अभिनंदन ग्रंथ की रूप रेखा

आशीर्वाद	:	आचार्य देवेन्द्र मुनि जी महाराज युवाचार्य श्री शिव मुनि जी महाराज
सद-प्रेरिका	:	उपप्रवर्तनी जैन ज्योति, जिन शाषण भाविका श्री स्वर्णकांता जी महाराज की ज्योष्ट शिष्य साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज, साध्वी श्री सुधा जी महाराज
सम्पादक मण्डल	:	साध्वी किरणा जी, साध्वी संतोष जी, साध्वी श्री श्रुति जी एम.ए., डा० धर्म चन्द जैन कुरुक्षेत्र, श्री चन्द खुराणा,

प्रकाशन विभाग :

खण्ड - १

१. राष्ट्र नेताओं के संदेश व भक्तों की शुभकामनाएं।
२. गद्य एवं पद्य रूप में

खण्ड - २

१. साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की गुरुणी परम्परा
२. साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के जीवन पर मुख्य सम्कादिकों के लेख
३. साध्वी मण्डल के लेख
४. साध्वी श्री के जीवन के सस्मरण (साधु-साध्वियों के) द्वारा
५. साध्वी जी के सस्मरण (श्रावक व श्राविकाओं) के द्वारा

खण्ड - ३

१. प्रवचन के अंश

खण्ड - ४

१. अध्ययन, दर्शन एवं साहित्य

खण्ड - ५

१. इतिहास, कला-संस्कृति पर शोध निबंध

प्रकाशक :

१. उपप्रवर्तनी साध्वी स्वर्णकांता अभिनंदन ग्रंथ समारोह समिति अम्बाला शहर।
२. २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी

संयोजिका समिति, पुराना वस स्टैंड,
मालेरकोटला - १४८ ०२३ पंजाब।

दोनों पते पत्र व्यवहार के लिए रखे गए। ग्रंथ का प्रकाशन दिवाकर प्रकाशन आगरा से श्री श्री चन्द सुराणा के निर्देशन में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया।

अभिनंदन ग्रंथ की तैयारीयां होना

अभिनंदन ग्रंथ के बारे में हमें साध्वी श्री सुधा जी महाराज का आदेश प्राप्त हो चुका था। अब इस आदेश को क्रियान्वित करने की जिम्मेवारी हम दोनों की थी। हम दोनों इस ग्रंथ के मुख्य सम्पादक थे। प्रकाशक भी थे। हर प्रकार के प्रकाशन की व्यवस्था की जिम्मेवारी हम दोनों पर थी। हमें इस कार्य के करने में प्रसन्नता अनुभव हो रही थी। हमें इस कार्य में श्रमण संघ के तृतीय आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज व चतुर्थ आचार्य श्री शिव मुनि जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त था। उत्तर भारत प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्म चन्द्र जी महाराज की कृपा हमें हर समय प्राप्त हो रही थी।

हम ने साध्वी श्री सुधा जी महाराज की प्रेरणा से महारासाध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का परिचय तैयार किया। इस में अभिनंदन ग्रंथ में प्रतिपादित विषयों का उल्लेख भी किया गया था। जिस पर आधारित लेखों का संकलन करना था। मुख्य संपादक होने के नाते यह काम काफी कठिन था। इस ग्रंथ के प्रकाशन में दोनों साध्वीयों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। समस्त साध्वी परिवार को साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के बारे में सम्मरण लिखने की प्रार्थना की गई। इस के अतिरिक्त समस्त विद्वानों को एक परिपत्र लिखने का हम ने मन बनाया। यह कार्य के लिए श्री

जितेन्द्र जैन वाडमेर का अनुपम सहयोग हमें मिला। उन्होंने परिपत्र की भाषा बनाई। यह परिपत्र हम दोनों की ओर से समस्त राजनेतिक नेताओं, जैन धर्म के विद्वानों व श्री संघों को जारी किया गया। इस अंग्रेजी परिपत्र के साथ साध्वी श्री स्वर्ण अभिनंदन ग्रंथ का परिचय लगाया गया। इस परिचय में उनका संक्षिप्त जीवन, दीक्षा प्रसंग, साहित्य कार्य, समाज सुधार के कार्य का परिचय लिखा गया था। इस परिपत्र के बहुत अच्छा परिणाम निकला। हमें देश के विभिन्न नेताओं के संदेश प्राप्त होने लगे। साधू-साध्वियों के सस्मरण लेख आने लगे।

इस ग्रंथ में शोध निबंधों के लिए आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज का सहयोग हम नहीं भूला सकते। उन्होंने अपने संपर्क के लेखकों का अभूतपूर्व सहयोग दिलवाया। हमारा संपर्क कुछ भारतीय व विदेशी लेखकों से था। उन सब के शोध निबंध हमें प्राप्त होने लगे।

हमें भी अपनी ओर से एक शोध निबंध लिखना था। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज पर हमने अलग से लिखना था। जो कि सस्मरण की तरह थे। अब हमारे मालेरकोटला घर पर रोजाना डाक आने लगी। कुछ निबंध अम्बाला में भी आने लगे, क्योंकि परिपत्र पर वहां का पता भी था।

अभिनंदन ग्रंथ का कार्य तेजी से चलने लगा। एक तरफ अर्थ व्यवस्था का प्रबंध हो रहा था दूसरी ओर जैन जगत के विद्वानों के लेखों का प्रबंध करने में हम जुट गए। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने डा० तेज सिंह गौड़ से इन के माध्यम से हमें मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश, दिल्ली के लेखकों ने शोध निबंध प्राप्त होने लगा। यह निबंध हर विषय पर थे। इसी समय अर्हत वचन के

सम्पादक डा० उनुपम जैन से परिचय हुआ।

लेखों के लिए मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने पंजाब, दिल्ली व राजस्थान का दौरा किया था। श्री महावीर जी जैन शोध संस्थान से संपर्क किया। श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यापीठ वाराणसी के प्रमुख डा० सागर मल जी जैन का हमें अच्छा सहयोग मिला। जैन विश्वभारती लाडनु से भी संपर्क किया। श्री देवकुमार जैन शोध संस्थान आगरा से संपर्क किया। इसी प्रकार एल. डी. शोध संस्थान अहमदाबाद से संपर्क किया। सब ओर से अच्छा सहयोग प्राप्त होने लगा।

अब लेखों की व्यवस्थित करने का कठोर कार्य था। हम ने इस कार्य को बांट लिया। साध्वी संतोष जी को साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के प्रवचनों का संकलन करने को कहा गया। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का शिष्य परिवार वर्षों से प्रवचन लिखता आ रहा है। इन प्रवचनों में जो जैन धर्म से संबंधित प्रवचन थे, उनका संकलन साध्वी श्री संतोष जी ने एक महीने में पूरा कर दिया। साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज की परम्परा के बारे में लिखने का कार्य मुख्य संपादिका साध्वी डा० स्मृति जी महाराज को संभाला गया।

संस्मरण इकट्ठे करने का कार्य साध्वी किरणा जी व साध्वी श्री चन्द्र प्रभा जी महाराज ने किया। इसका कारण यह था कि पहले तो विशाल साध्वी मंडल अपने अपने अनुभव लिखेगा। दूसरा अनेकों श्रावक इन्हें अपने अनुभव बताते रहते हैं। तीसरे सभी साध्वीयों ने गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को नजदीक से देखा है। उन्हें सुना है, उनकी आज्ञा का हर प्रकार से पालन किया है। उनकी सेवा की है। इन बातों को ध्यान में रख कर इन खण्डों का

कार्य साध्वी मण्डल को सौंपा गया।

शोध लेखों को सर्व प्रथम हम ने देखा। उनके पश्चात इन लेखों का डा० धर्म सिंह, डा० धर्म चन्द जैन व श्री श्री चन्द सुराणा ने पुर्ननिरिक्षण किया। इस ग्रंथ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व श्री राजेश सुराणा के जिम्मे था। हम ने यह कार्य आगरा से शुरू करवाया। श्री सुराणा ने हमारे शर्त रखी कि “सारा मैटर इकट्ठा प्रकाशित होगा” यह चेलेन्ज हमारे लिए कठिन था। क्योंकि आगरा हनारे लिए ७०० किलोमीटर की दूरी पर था। ८ महीनों में कफी मैटर इकट्ठा हो गया। यह मैटर ४०० पन्नों का था। श्री राजेश सुराणा को अम्बाला साध्वी श्री सुधा जी महाराज के समक्ष बुलाया गया। श्री राजेश सुराणा अपने पिता श्री श्री चन्द सुराणा के साथ आए। श्री राजेश सुराणा ने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के प्रथम दर्शन किए थे। प्रथम भेंट में उनकी पुत्रवधू ने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को गुरु धारण कर लिया। उस दिन से सुराणा परिवार से साध्वी परिवार के अच्छे संबंध बन गए जो भविष्य में काफी सहायक सिद्ध हुए।

पहली मीटिंग में अभिनंदन ग्रंथ की रूप रेखा तैयार हुई। यह तय हुआ कि ऐसा कोई लेख प्रकाशित नहीं होगा जो सम्प्रदायिक तनाव का कारण बने। सारा मैटर प्रकाशन योग्य आगरा सुपुर्द कर दिया गया। ग्रंथ प्रकाशन होना शुरू हो गया। इस की व्यवस्था बहुत सुन्दर थी। प्रैस में ५ वार प्रुफ पढ़े जाते। अंतिम वार प्रुफ पास करने के लिए हमारे पास आते। हम प्रुफ चैक कर के कोरियर द्वारा आगरा भेज देते। फिर फाईनल पेज छप कर हमारे पास आ जाते। इस प्रकार इस अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन दो रंगों में हुआ।

यह कार्य ३ महीने चलता रहा। उस के बाद साध्वी श्री के जीवन से संबंधित चित्रों का प्रकाशन शुरू हुआ। चित्र प्रकाशन में मेरी भावना थी कि उपप्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के क्रान्तिकारी जीवन पर, चित्रों द्वारा प्रकाश डाला जाए। ऐसे आठ चित्र बनाने का निर्णय लिया गया। यह चित्र महासाध्वी के जीवन से संबंधित घटनाओं पर आधारित थे। इन चित्रों का निर्माण आगरा के प्रसिद्ध चित्रकार श्री पुरुषोत्तम सिंह ने किया। समस्त ग्रंथ प्रकाशन नवम्बर में करने का वायदा किया गया। अक्तूबर में दीक्षा महोत्सव आना था। पर तब तक ग्रंथ प्रकाशित नहीं हो सका। यह ग्रंथ जनवरी के पहले सप्ताह में पूर्ण हुआ। हमारा सौभाग्य था कि प्रेरिका साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज व साध्वी श्री सुधा जी महाराज ने हमें इस योग्य समझा कि हम ऐसी दिव्य विभूति को अभिनंदन ग्रंथ के माध्यम से श्रद्धा के पुष्प अर्पण कर सकें। यह काम करने का अपना मजा था। हमें अपनी गुरुणी के आशीर्वाद का फल मिल रहा था।

एक बात मैं और बता दूं कि स्वयं साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज अभिनंदन ग्रंथ के आयोजन के विरुद्ध थे। पर जब आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने हमारी हां में हां मिलानी शुरू किया फिर आप का विरोध शांत हो गया। उन्होंने हमारी श्रद्धा को स्वीकार कर लिया। अब गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का आशीर्वाद हमें निरंतर मिल रहा था। इस अवसर पर उन्होंने अपनी एक पुस्तक नन्दन मणियार भी प्रकाशित करवाई। साध्वी किरणा जी ने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित करवाया। इस अभिनंदन ग्रंथ में श्रावक वर्ग का अभूतपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ। यह सहयोग साध्वी श्री सुधा जी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
महाराज की प्रेरणा का फल था। इस महान साध्वी ने यह कार्य अपनी गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त किया।

इस प्रकाशन के बीच एक बार गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की तबीयत खराब हो गई। पर शाषण देव की कृपा से वह पुनः स्वास्थ्य हो गई। लगभग एक वर्ष से ज्यादा समय में यह अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित हो गया। हमें दो बार आगरा प्रूफ देखने व कुछ चित्रों के मामले में इस ग्रंथ को संपूर्ण कराने के लिए जाना पड़ा।

इस अवसर पर एक पुस्तक महाश्रमण भी प्रकाशित हुई। इस ग्रंथ के कर्ता श्री मेजर मुनि जी महाराज हैं। इस ग्रंथ में उपप्रवर्तक श्री सुदर्शन मुनि जी महाराज का परिचय था। जो उस समय समारोह में मौजूद थे।

समारोह की तैयारीयां

इस प्रकार इस अवसर पर ४ ग्रंथ तैयार हो चुके थे। अब समारोह के लिए प्रोग्राम बनाने का कार्य शुरू किया गया। समारोह कैसे करना है ? किस किस को बुलाना है ? कहां करना है ? यह सब प्रश्न हमारे सामने थे। समारोह के मामले में स्थानीय श्री संघ का सहयोग प्राप्त हुआ। अभिनंदन ग्रंथ समारक समिति के सुपुर्द यह काम सौंपा गया। फिर भी प्रोग्राम की रूप रेखा हम दोनों ने तय की। प्रोग्राम २ दिन चलना था। पहले दिन तपस्या का कार्यक्रम था, दूसरे दिन समारोह होना था। यह तय हुआ कि समारोह में विशिष्ट विद्वानों, साध्वियों, सम्पादक मण्डल का सम्मान किया जाए।

इस समारोह में हम ने अपने विशिष्ट मेहमानों को आमंत्रित करने का निर्णय किया। इस में जज, पोलिस

अफसर व मंत्रीयों को बुलाना शामिल था। आखिर वह दिन भी करीब आ गया जो निश्चित था। इस समारोह की शोभा बढ़ाने के लिए साधु, साध्वीयों को निमंत्रण दिया गया। कुछ ही दिनों में मेहमानों से संपर्क किया गया। साध्वी श्री का पुण्य प्रताप था कि सभी अतिथियों ने हां कर दी। निमन्त्रण पत्र प्रकाशित करने का कार्य भी आगरा में सम्पन्न हुआ। ५० अभिनन्दन ग्रंथ मंगवाए गए। बाकी पुस्तकें भी आ गई थी। जिस में साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की कृति नन्दन मणियार भी थी जो वच्चों के लिए उनकी प्रथम कृति थी।

प्रकरण - ११

हमारे जीवन के कुछ
महत्वपूर्ण समारोह

१. आलौकिक समारोह :

जीवन में कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो पहली बार ही होती हैं। वैसे तो साध्वी श्री स्वर्णकांत जी महाराज की प्रेरणा से जो कार्य किया, वह सब पहली बार था। परन्तु अभिनन्दन ग्रंथ का चिंतन आलौकिक था। समारोह तो हमारी श्रद्धा व आस्था का प्रतीक था। मैंने अभिनन्दन ग्रंथ के संदर्भ में लिखा है कि एक वर्ष तैयारी करते रहे। उपप्रवर्तनी जिनशाषण प्रभाविका, जैन ज्योति श्री स्वर्णकांत जी महाराज का दीक्षा का ५०वां वर्ष ७ अक्तूबर १९६७ को पूरा हुआ, तब तक अभिनन्दन ग्रंथ तैयार नहीं हुआ था। वह दिन तपस्या के रूप में मनाया गया। फिर हमने तय किया कि अभिनन्दन ग्रंथ २६ जनवरी १९६८ को उनके जन्म दिन पर समर्पित किया जाए। दिसंबर १९६७ में अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित हो गया।

आखिर २५, २६ जनवरी १९६८ समारोह के लिए तिथि निश्चित हुई। इस दिन के लिए एक अभिनन्दन पत्र भी समस्त जैन संस्थाओं की ओर से तैयार किया गया। एक बात में यहां और निवेदन करना चाहता हूं कि हमारा प्रकाशन का कार्य कम्प्यूटरपर हुआ था। इस प्रकाशन में सवच्छता व सुन्दरता का ध्यान रखा गया। इस ग्रंथ के प्रकाशन में साध्वी श्री सुधा जी महाराज के आशीर्वाद व मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन का श्रम, एक इतिहासक कान

ग्रन्थ की ओर बढ़ते कदम
 था। सरकारी नौकरी की जिम्मेवारी निभाते हुए इतना बड़ा गुरुत्तर कार्य सम्पन्न किया था। सरदार (डा०) धर्म सिंह व डा० धर्म चन्द जैन ने स्थानीय विद्वानों से शोध निबंध लिखवाए। सभी विद्वानों को संस्था की ओर से सम्मानित किया गया। यह अभिनन्दन ग्रंथ का समारोह था। जिस के माध्यम से हमें अधिकांश विद्वानों से मिलने का सौभाग्य मिला। सारे भारत में निमंत्रण पत्र बांटे गए।

शहर में काफी साधु साध्वियों का आगमन हो चुका था। श्वेताम्बर तथा गच्छ के आचार्य श्री नित्यानंद जी महाराज विशेष रूप से पधारे थे। हमें अम्वाला में लगातार जाना पड़ रहा था। हम जो भी प्रोग्राम दिमाग में रखते, वहीं साध्वी श्री सुधा जी महाराज व साध्वी श्री स्मृति जी महाराज को बता देते। साध्वी जी हमारी बात पर पूरा ध्यान देतीं।

आखिर वह शुभ दिन आ गया जब हमें अपनी गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के ५० दीक्षा महोत्सव मनाने का अवसरा मिला था। दो दिन से अतिथियों का तांता अम्वाला में लगा हुआ था। मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हिमाचल, दिल्ली, चण्डीगढ़, के श्रद्धालु अपने अपने वाहनों से आ रहे थे। स्थानीय श्री संघ ने यात्रीयों के लिए समुचित व्यवस्था की थी। होटल, धर्मशाला में यात्रीयों के लिए बूक करवा रखी थीं। बाहर से आने वाले श्रावक श्राविकाओं के लिए खाने की समुचित व्यवस्था जैन भवन में थी। २५ जनवरी को तपस्या के साथ साथ अखण्ड जाप भी चल रहा था। जिस में बाहर से आए श्रावक श्राविकाओं ने भाग लिया। इस कारण स्थानक में बहुत भीड़ थी। बहुत सारे पुस्तक बेचने वालों ने पुस्तकें व अन्य प्रचार सामग्री के स्टाल लगा रखे थे। दिवाकर प्रकाशन का अपनी पुस्तकों का स्टाल था। जिस में उन्होंने उस दिन विशेष छूट से ग्रंथ बेचने

जस्थ की ओर बढ़ते कदम
का प्रबंध किया था।

शाम तक काफी मेहमान व विद्वान आ चुके थे। हर शहरों से एक दिन पहले आने शुरू हो चुके थे। श्रमण श्रमणियों को वन्दन कर धर्म लाभ ले रहे थे। यह अनुपम व अभूतपूर्व अवसर था।

२६ जनवरी १९६८ :

२६ जनवरी जहां भारत का गणतन्त्र दिवस है वहां गुरुणी जी का जन्म दिन भी है। उन का जन्म लाहौर में २६ जनवरी १९२५ को हुआ था। यह महज इतिफाक है कि गुरुणी का जन्म लाहौर में इसी दिन हुआ जब पंडित जवाहर लाल नेहरू ने रावी नदी के किनारे पूर्ण स्वराज्य का नाअरा दिया। जब वह दीक्षा के लिए गुरुणी राजमति के चरणों में प्रस्तुत हुई तो हिन्दु मुस्लिम दंगे बंद हो गए।

सुबह करीब ५० के करीब साधु साध्वीयां पूज्य कांशी राम जैन स्कूल के विशाल प्रांगण में पधारे। यहीं सारा प्रबंध था। खाना पीना व समारोह इसी स्थल पर हो रहा था। इस समारोह में हमारे कुछ घनिष्ठ मित्र शामिल हुए। जिनके नाम का उल्लेख करना जरूरी है। यह थे श्री सुभाष गोयल सी.जे.एम. अम्बाला (आज कल एडीशनल सेशन जज फरीदाबाद) श्री जितेन्द्र जैन एस.एस.पी. जलंधर, श्री मदनलाल हसीजा निर्देशक भाषा विभाग पंजाब, डा. धर्म चन्द जैन कुरुक्षेत्र, डा० किरणकला जैन कुरुक्षेत्र, डा० धर्म सिंह पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

आखिर भारतीय श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन प्रतिनिधि भी पधारे थे। इस सभा की अध्यक्षता श्री फकीर चन्द्र अग्रवाल उपसभापति हरियाणा विधान सभा ने की थी। वह साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के गुणों से पूर्व परिचय

आस्था की ओर बढ़ते कदम
थे। इस वर्णन उन्होंने अपने भाषण में किया।

समारोह का मंगलाचरण :

साध्वी मण्डल ने मंगलाचरण किया। तत्पश्चात् जैन धर्म का पंचरंगा ध्वजा श्री अग्रवाल ने फहराया। फिर स्थानीय संघों के प्रधानों, विद्वानों व सम्पादक मण्डल का समस्त अम्बाला श्री संघ ने बहुमान किया। सभी को विशेष मंच पर बिठाया गया। सभी का परिचय स्थानीय मंत्री जी को दिया गया।

सर्व प्रथम आचार्य नित्यानंद जी महाराज के प्रवचन हुआ। उसके बाद श्री मेजर मुनि जी महाराज ने साध्वी श्री स्वर्णकांता का गुणगान अपने प्रवचनों में किया। साध्वीयों में क्रमशः साध्वी श्री किरणा जी व साध्वी श्री स्मृति जी के प्रवचन हुए। प्रोग्राम की सूची बहुत लम्बी थी। रंगारंग कार्यक्रम के आयोजन अलग था। स्कूल के बच्चों ने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के जीवन पर एक नाटक दिखाया। जो उनके जीवन की सच्ची झलक प्रस्तुत करता था। फिर सभा के मंत्री ने सभी आगन्तुकों का धन्यवाद किया। अब शुरू हुआ समारोह का मुख्य आकर्षण।

सर्व प्रथम डा० मदन लाल हसीजा निर्देशक भाषा विभाग पंजाब ने अभिनंदन पत्र पढ़ा। अभिनंदन पत्र बहुत से श्री संघ भी लेकर आए थे। सारे अभिनंदन पत्र पढ़ना मुश्किल था। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की दीक्षा स्वर्ण जयंती पर श्री समस्त श्री संघ समर्पित करने के लिए चादरें लाए थे। चादरों के साथ ही अभिनंदन पत्र उन्हें समर्पित किए गए। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने अस्वस्थ होते हुए भी सारे श्री संघ का धन्यवाद किया।

फिर आया अभिनन्दन ग्रंथ समर्पण का अवसर। सभी सम्पादकों का परिचय मंत्री ने दिया। उनके द्वारा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
अभिनंदन ग्रंथ में पाए योगदान की प्रशंसा की गई। फिर सम्पादक मण्डल ने साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को एक बहिन के माध्यम से अभिनंदन ग्रंथ समर्पित किया। यह भव्य समारोह बहुत विशाल था। शायद उत्तर भारत का विशाल समारोह, जिस में वसों, कारों आये जन समूह की भरमार थी, ऐसा भव्य समारोह शायद ही मैंने पहले देखा हो।

फिर हमारे द्वारा साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को चादर समर्पित की गई। सचित्र कथा का विमोचन गुरुणी के सांसारिक भतीजे श्री कीमती लाल जैन दिल्ली ने किया।

इस अवसर पर हमारा दो दो अलंकरणों से सम्मान किया गया। इस में पहला था श्रावक शिरोमणी, दूसरा विशिष्ट अतिथि का सम्मान था। हमें दो शाल, दो मोमैंटो श्री संघ ने भेंट किए।

इस समारोह में सभी संपादकों शालें भेंट करके किया गया। यह समारोह हमारी साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज के प्रति आस्था का फल था। इस समारोह हमारे द्वारा एक भव्य आयोजन था।

इस निबंध में डा० किरण कला जैन कुरुक्षेत्र को उनके शोध निबंध स्याद्धादमंजरी पर किए शोध कार्य के लिए इंटरनैशनल पावर्ती जैन अवार्ड से सम्मानित किया गया। आप के पति जैन जगत के प्रसिद्ध विद्वान डा० धर्म चन्द जैन हैं। यह अवार्ड काफी समय पहले हमारे द्वारा घोषित हुआ था। आज हमें प्रदान करने का सौभाग्य मिल रहा था। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि श्री जितेन्द्र जैन, श्री सुभाष गोयल के अतिरिक्त सेशन जज, श्री फकीर चन्द अग्रवाल, डा० तेज सिंह गौड़, व डा० मदन लाल हसीजा का श्री संघ ने सम्मान किया।

इस प्रकार यह समारोह हमारे जीवन का बहुत महत्वपूर्ण समारोह था। वैसे देखा जाए तो यह समारोह गुरुणी जी के चरणों में अंतिम समारोह था। उस के बाद के वर्ष में गुरुणी जी अस्वस्थ होने के कारण संथारा ग्रहण कर स्वर्ग सिधार गए।

यह समारोह हमारे सारे समारोहों से इस कारण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यापक स्तर पर मनाया गया। सब से बड़ी बात यह है कि यह समारोह गुरुणी को समर्पित था। उनका इस समारोह में ही अभिनंदन ग्रंथ समर्पित किया गया सभी पधारे श्री संघ के प्रधानों का सम्मान हुआ। विपूल मात्रा में दान इकट्ठा हुआ। उनकी अपनी पुस्तक (चित्रकथा) का विमोचन हुआ। उनके चरणों में चादरों का ढेर लग गया। प्रत्येक चादर उनके प्रति श्री संघ की श्रद्धा व आस्था का प्रतीक थी।

यह समारोह मेरे जीवन में अलौकिक समारोह है। एक प्रकार से यह हमारे साहित्य के २५ वर्ष पूर्ण होने पर हो रहा था। इस समारोह ने मुझे आस्था के नए आयाम प्रदान किए। जैन धर्म व संस्कृति की सेवा के लिए मूझे नया बल, शक्ति, व स्फूर्ति मिली। सभी साध्वियों की योग्यता का प्रमाण अभिनंदन ग्रंथ द्वारा प्राप्त हुआ। यह समारोह हम दोनों के जीवन में अलौकिक है।

२. अंतराष्ट्रीय संस्था यूनेस्को द्वारा हमारा सम्मान

संयुक्त राष्ट्र संघ का दफतर न्यूयार्क में है। इस संस्था के कई विभाग हैं। संसार के सभी प्रमुख राष्ट्र इस संस्था का सदस्य हैं। इसी का एक विभाग है यूनेस्को। यह संस्था सांस्कृतिक गतिविधियों की विश्व स्तर पर गतिमान है। सन २००० कई वर्षों से महत्वपूर्ण था। एक तो इस सन के वाद नई सदी शुरू होनी थी। दूसरा इसी वर्ष में भगवान महावीर का २६०० साला जन्म महोत्सव मनाने की तैयारी चल रही थी। इस शताब्दी पर युनेस्को ने विद्या, साहित्य व संस्कृति के धरोहर पर काफी कार्य किए। इन कार्यक्रमों समारोह में हिन्दी भाषा की साहित्यिक सेवा करने वालों का सम्मान भी शामिल था।

नई दिल्ली में एक १० दिन का अंतराष्ट्रीय हिन्दी सहस्त्रावदी सम्मेलन का आयोजन रखा गया। हर दिन कुछ लेखकों का सम्मान भी इस कार्यक्रम का अंग था। यह समारोह भारत सरकार की विभिन्न हिन्दी सेवी संस्थाओं व यूनेस्को के सहयोग से शुरू हुआ। इस समारोह में १० दिनों में हिन्दी के विकास पर विभिन्न प्रोग्राम व गोष्ठीयां रखी गईं।

इस समारोह पर मुझे व मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन को निमंत्रण मिला। हमारा समारोह एक ही दिन होना था। यह समारोह दीनदयाल उपाध्याय मार्ग के पास अणुव्रत भवन के पास ही आयोजित था। अणुव्रत भवन में हमारा आना जाना रहता है क्योंकि यह स्थल श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ का मुख्यालय है।

इस समारोह में विश्व भर से विद्वान, कवि सम्मिलित होने आए थे। करीबन ८००० लोग इस आयोजन

में दस दिनों में शामिल हुए थे। अधिकांश विद्वान् उत्तरप्रदेश, विहार, मध्यप्रदेश के थे। पर देहली, हरियाणा, चण्डीगढ़ से काफी विद्वान् शामिल हुए। पर पंजाब से बहुत कम विद्वान् आए हुए थे। जिन्हें सम्मान सहारोह के लिए बुलाया गया था। शायद पंजाब से ५-७ विद्वानों को ही निमंत्रण मिला था।

हमें निमंत्रण तो मिल गया, पर शारीरिक व्यवस्था यहां आने की आज्ञा नहीं देती थी। मैंने अपने धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन को एक दिन पहले भेज दिया, ताकि वह स्थान व प्रोग्राम की सूचना प्राप्त कर सके।

मुझे मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने सारे समारोह के आयोजन के बारे में फोन से अवगत करवाया। मैंने सोचा यह कार्यक्रम मात्र एक दिन का है। इसी दृष्टि से मैं सुबह ४:०० बजे मंडी गोविन्दगढ़ से रवाना हुआ। मैंने अपने धर्म भ्राता रविन्द्र जैन से फोन पर कहा आप सभा स्थल के बाहर के गेट पर खड़े रहें। जब मैं घर से चला तो मन में एक अनुपम खुशी थी, कि चलो अब समाज के साथ साथ अंतराष्ट्रीय समुदाय भी हमारे साहित्य को सम्मान की दृष्टि से देखने लगा है। इस स्थल पर हमारी नई हिन्दी कृति सचित्र भगवान महावीर जीवन चरित्र अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित करना चाहिए। इस दृष्टि कोन को सामने रख कर मैंने यह ग्रंथ की ५ कापीयां तैयार करवाईं। अभी इस ग्रंथ का विमोचन होना बाकी था। मैंने यह ग्रंथ समर्पित करने का मन बनाया था। इस ग्रंथ में अभी कुछ चित्र लगाने बाकी थे। जिल्द भी विशेष रूप से तैयार करवाई थी। जल्दी ही ग्रंथ पहुंच गए थे। इस अवसर पर ग्रंथ का महत्व बढ़ गया था। मैंने यह ग्रंथ अपने धर्म भ्राता रविन्द्र जैन के साथ मिलकर हिन्दी में लिखा था। इस ग्रंथ में प्रभु महावीर के ७२ वर्ष का

अस्था की ओर बढ़ते ठण्डे वर्ष वार व्योरा इतिहासक दृष्टि से लिखा था। जिस का वर्णन मैं पीछे कर चुका हूँ।

मैं दिन के करीब १०२३० वजे दिल्ली पहुंच गया। टिकाना मुझे पता था। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से मेरा इंतजार कर रहे थे। मैं उसकी श्रद्धा के ३० वर्ष से ज्यादा समय से जानता हूँ। वह मुझे जब मिला, तो मुझे २७ फरवरी १९८७ का दिन याद आ गया। जब इसी दिल्ली में मेरा इत्त. ने एक दिन इंतजार किया था। यह समय राष्ट्रपति भवन में हमारी पुस्तक विमोचन का था। इसी कारण यह इंतजार कर रहा था। मुझे आज वही वेसवरी व इंतजार का ध्यान आ गया। यह इंतजार श्रद्धा का प्रतीक था। यह सुदह से खड़ा मेरा इंतजार कर रहा था। मैंने फिर स्थल में प्रवेश किया। स्टेज से संपर्क किया। मंत्री को मुख्य मेहमान को सचित्र महावीर जीवन चारित्र ग्रंथ भेंट करने का कार्यक्रम बताया।

मंच संचालक बहुत ही सज्जन थे। उन्होंने कहा आप का ग्रंथ इस शताब्दी का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। हिन्दी जगत इस का सर्वत्र स्वागत करेगा। यह समारोह अंतराष्ट्रीय स्तर पर हमारे साहित्य का मुल्यांकन का अच्छा अवसर था। बहुत सारे विद्वानों से मिलने का सौभाग्य मिला।

हम चेयर पर बैठ गए। समारोह शुरू हुआ। अंतराष्ट्रीय समारोह जैसा वातावरण था। पहले सन्देशित विषय पर लैक्चर हुआ। फिर लोगों ने वक्ता से प्रश्न पूछे। फिर ऐसा क्रम बना कि बीच बीच में जिन का सम्मान करना था उस का नाम बोला जाता। समारोह के मध्य में हनारा नाम घोषित किया गया।

यूनेस्को ने एक बड़ा सर्टीफिकेट हमारे नान से तैयार किया था। वह हम दोनों को अलग अलग भेंट किया

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 गया। हमारे गले में यूनेस्को का गोल्ड मैडल डाला गया। यह सम्मान हमारा नहीं था, यह सम्मान हमारी साहित्य प्रेरिका साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज व साध्वी श्री सुधा जी महाराज का था। जिन की प्रेरणा से पंजाबी जैन साहित्य का नया आयाम खुला। कुछ हिन्दी पुस्तकें तैयार करने का सौभाग्य मिला, जिनका परिचय मैं पुस्तकों के परिचय में दे चुका हूँ।

हमारे सम्मान के बाद मंच की ओर से हमारे लिखित ग्रंथ सचित्र भगवान महावीर का गुणगान किया गया। हमारे द्वारा मंच पर मुख्य अतिथियों को यह ग्रंथ भेंट किए गए। इस प्रकार उस दिन जहां हमारा सम्मान हुआ वहां हमें प्रभु महावीर के जीवन चरित्र को प्रथम बार भेंट करने का सौभाग्य मिला। यह समारोह ३ बजे तक चला। फिर खाना खाकर वापस आने का मन बनाया। पर मैं देहली में आचार्य श्री सुशील कुमार जैन आश्रम डिफेंस कालोनी में विराजित आचार्य डा० साधना जी महाराज के दर्शन करना चाहता था। साध्वी साधना जैन जंगत की प्रथम पी.एच.डी. साध्वी हैं। अभी अभी उन्होंने अपने गुरुदेव आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज पर डी. लिट. भी की है। आचार्य श्री के देवलोक के वाद उन्होंने आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज को अपने कार्य द्वारा अमर बनाया है। उन्होंने दिल्ली में एक गोसदन, चौक व मार्ग का नामकरण आचार्य श्री सुशील मुनि जी महाराज के नाम से किया। डिफेंस कालोनी में स्थापित अहिंसा साधना मंदिर का निर्माण तेज गति से चल रहा है। इस आश्रम में २४ तीर्थंकरों को समर्पित भगवान ऋषभदेव का मंदिर, आचार्य सुशील मुनि को समर्पित संग्रहालय व समाधि का निर्माण कर रही हैं। प्रतिमाओं का निर्माण चल रहा है।

आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज के भारत

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में सभी केन्द्रों की आप देख रेख कर रही हैं। आचार्य श्री की वरसी हर साल मनाई जाती है। आप की विद्वता से प्रसन्न होकर आप को इंटरनैशनल पावर्ती जैन अवार्ड से सम्मानित किया जा चुका है। आप महान विभूति हैं। सरलात्मा हैं। जैन शाषण की प्रभाविका साध्वी हैं। आप का आशीवाद हमें १९७४ से प्राप्त हो रहा है। आप कर्मठ साध्वी हैं। जब भी मैं दिल्ली जाता हूं, आप के दर्शन करना अपना परम कर्तव्य समझता हूं। साध्वी श्री साधना जी महाराज हम दोनों के परिवार की सदस्य साध्वी हैं। वह व्यवहार कुशल साध्वी हैं। आप महान विदूषी वक्ता लेखिका हैं। आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज की हर गतिविधियों से आप जुड़ी रहती हैं। उनके स्वर्गारोहण के बाद उनकी परम्परा को आप ने संभाला है। आप महान हैं अपनी वजुरग गुरुणी की सेवा करना अपना कर्तव्य समझती हैं। आश्रम के विकास के लिए सदैव तत्पर रहती हैं। दिल्ली के राजनेतिक जगत में उनकी अपनी पहचान है। धर्म नेता, भारत सरकार व राज्य सरकारों के धर्मगुरु व राजनेता आश्रम में आकर आप से विचार विमर्श करते रहते हैं। आप का सारा जीवन देव गुरु धर्म को समर्पित है।

वह विदेशों में धर्म प्रचार करने के लिए जाती रहती हैं। वह गुरुदेव श्री सुशील कुमार जी महाराज के मिशन को आगे बढ़ा रही हैं। वह हर कार्यक्रम में हमें सहभागी बनाती हैं। जीव दया के कार्यों में उनका जीवन समर्पित है। उनकी शिष्या गुरुछाया भी ध्यान व समाधि में प्रवीण समर्पित साध्वी हैं। उनके परिवार से उपाचार्य साध्वी सरलात्मा व नवदीक्षित एक साध्वी और हैं। सभी साध्वीयों में परस्पर प्रेम अविस्तरणीय है।

इस बार भी आश्रम में उनके दर्शन करने गए।

उनका आशीर्वाद प्राप्त कर वापस घर आ गए।

भाषा विभाग द्वारा सम्मान समारोह :

पिछले प्रकरणों में मैंने अपने जीवन में घटित आस्था के विभिन्न आयामों का वर्णन किया है। यह वर्णन मेरी श्रद्धा व भक्ति का प्रतीक है। जीवन में हर पल हर क्षण कुछ ऐसा घटित होता है। जिसे जीवन भर भुलाना असंभव रहता है। कुछ ऐसी घटनाएं घटित होती हैं तो जीवन का अभिन्न अंग बन जाती हैं। ऐसी घटनाएं होती हैं जो जीवन पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। ऐसी ही घटनाओं में एक घटना है भारत सरकार की साहित्य अकादमी से हमारे संबंध बनना।

एक दिन अंग्रेजी के अखबार 'द ट्रिब्यून' में एक विज्ञापन देखा। उस में लिखा था कि "अगर आप लेखक हैं तो अपना वायोडाटा और अपने प्रकाशन की दो प्रतियां भेजीए। हमारा प्रकाशन Who's & Who प्रकाशित हो रहा है। उस में हम आप का नाम दर्ज करेंगे।"

मैंने इस विज्ञापन को ध्यान से देखा फिर सोचा अगर हम अपना स्व-परिचय भिजवा दें, तो कोई नुकसान नहीं। मैंने इस संदर्भ में अपने धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन से बात की। उस ने हामी भर दी। फिर अंग्रेजी भाषा में हम ने अपना स्व-परिचय इस ग्रंथ को भेजा।

हमें इस के लाभ का बाद में पता चला। कुछ ही समय के बाद हमारा भेजा परिचय प्रकाशित हो गया। चाहे इसे प्रकाशित होने में काफी समय लगा। हमें इस के प्रूफ प्राप्त हो गए। दो खण्डों में प्रकाशित इस महाकाया ग्रंथ में भारत के ८००० से ज्यादा विभिन्न भाषाओं के लेखकों का परिचय व पता दिया हुआ है। इस के प्रकाशन में ३ वर्ष से ज्यादा समय लगा। पर यह एक अच्छा उपक्रम था। इस के

आस्था की ओर बढ़ते कटम माध्यम से भारत सरकार को प्राकृत भाषा से पंजाबी में अनुवाद ग्रंथों का परिचय मिला। वही नहीं, विभिन्न धार्मिक व समाजिक संस्थाओं ने हमारे कार्यों को देख कर हमारा सम्मान किया। सम्मानों का क्रम बहुत लम्बा है। मैं सब से बड़ा सम्मान राष्ट्रपति ज्ञानी जैन सिंह द्वारा राष्ट्रपति भवन में पुरातन पंजाब विच जैन धर्म के विमोचन को समझता हूँ। एक राष्ट्र प्रमुख मेरे जैसे जैन धर्म के सेवक का सम्मान जैन धर्म के प्रति की सेवाओं के लिए करे, यह बात छोटी नहीं। पर सम्मानों का सिलसिला तब शुरू हुआ था, जो निरंतर जारी है। कई लेखक सभाएं व समाजिक संस्थाएं मेरा व मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन का सम्मान कर चुकी हैं। इस सब के पीछे साहित्य अकैडमी के इस ग्रंथ का बहुत बड़ा हाथ है। मेरे अगले अध्ययन में कुछ विशेष समारोहों का वर्णन करूंगा, जो हमारी आस्था का फल कहे जा सकते हैं।

जीवन में कुछ घटनाएं सहज ही घटित हो जाती हैं। ऐसी ही घटना है भाषा विभाग पंजाब द्वारा हमारा सम्मान। भाषा विभाग से हमारे परिचय उस समय हुआ, जब यहां से हमें पंजाब विश्वकोष में जैन प्रविष्टियां लिखने को कहा गया। हमारा परिचय सहायक निर्देशक डा० मदन लाल हसीजा से हुआ। श्री हसीजा मृदुल स्वभाव के सज्जन हैं। एक दो भेंट के बाद लगा कि वह विद्वानों का बहुत सम्मान करते हैं। हम करीबन ४ साल इस कोष के लिए ऐंटरी लिखते रहे। यह कोष अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। इस में पंजाब से संबंधित महापुरुषों, स्थानों, स्मारकों का परिचय है। वैसे हमें पंजाबी विश्वकोष में जैन धर्म और आचार्य श्री सुशील कुमार जी ऐंटरी लिखने को कहा गया था। जिसे हमने लिखा। पर किसी कारण अभी तक यह ऐंटरी प्रकाशित नहीं हुई। इसी विभाग के एक सज्जन श्री ओ.पी. आनंद

अस्था की ओर बढ़ते कदम
दिल्ली से हमारा परिचय श्री हसीजा ने करवाया था। हमारे सूत्रकृतांग के लिए उनका संदेश उनके स्नेह का प्रतीक है। साध्वी श्री स्वर्णकांत जी महाराज व आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज के प्रति उनके मन में गहरा सम्मान है।

श्री हसीजा लम्बे अंतराल के बाद भाषा विभाग के निर्देशक बने। वह हमेशा इच्छा रखते थे कि पंजाब सरकार की ओर से जैन विद्वानों का सन्मान किया जाए। पर उनके मन में जब भी कार्यक्रम बनता तो कोई न कोई रुकावट आ जाती थी। हमारे लेखन के २५ वर्ष पूरे हो चुके थे। श्री हसीजा डायरेक्टर पद पर सुशोभित हो चुके थे। उन्होंने हमारे सम्मान करने का केस पंजाब सरकार के समक्ष रखा। यह सम्मान पंजाबी जैन साहित्य के २५ वर्ष पूर्ण होने पर था। श्री हसीजा एक ऐसा अवसर देख रहे थे जहां महान जन समूह हो। उन्हें ऐसा मौका मिल गया। फतिहगढ़ साहिब शहीदों की धरती है। जहां दशमेश पित्त श्री गुरु गोविन्द सिंह जी के दो सपुत्रों को मुगलों ने दीवारों में चिनवाया दिया था। उस स्थान को श्री टोडर मल जैन ने मोहरें बिछा कर खरीदा था। इस कारण सिक्ख धर्म का जैन धर्म से काफी करीबी संबंध हो गया था। पटना साहिब की जिस हवेली में गुरु जी का जन्म हुआ था वह भी एक जैन श्रावक की थी। आज भी एक ही परिसर में प्राचीन जैन मंदिर व गुरुद्वारा स्थित हैं। आज उसी धरती पर गुरुद्वारा साहिब स्थित हैं। गुरुद्वारे में विशाल टोडर मल जैन हाल है जो भव्य पुरुष की भव्य स्मृति है।

सरहिंद एक प्राचीन नगर :

सरहिंद शहर वर्तमान में फतिहगढ़ साहिब जिला

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में आता है। फतिहगढ़ साहिब गुरुद्वारे का नाम है जो दशमेश पिता के पुत्र फतिहसिंह व जोरावर सिंह को समर्पित है। वैसे सरहिंद का इतिहास बहुत प्राचीन है। इस नगर का इतिहास संघोल के आस-पास के जैन व बौद्ध काल से संबंधित बहुत स्थल हैं। इस नगर का नाम मुस्लिम इतिहास में कई बार आया है। सरहिंद मुगल काल में एक प्रमुख सूबा था। बाबर से पहले भी यह नगर बहुत आलीशान माना जाता था। गुरु गोविन्द सिंह जब गुरुपुरी पधारे तो बंदा बहादुर को दक्षिण से पंजाब भेजा। उसने जितने मुस्लिमों के शहर थे सब को खण्डहरों में बदल दिया। इस का प्रमाण सुनाम, समाना, सुढोरा व सरहिंद है।

फिर सिक्ख राज आया, तब गुरुओं से संबंधित स्मारकों को संभालने का मामला सामने आया। यह क्षेत्र पटियाला राज्य में पड़ता था। जो सिक्ख नरेश था। पटियाला नरेश महाराजा भूपेन्द्र सिंह ने यहां के प्रसिद्ध गुरुद्वारा का निर्माण करवाया। आज भी सरहिंद में छोटी छोटी ईंटों के मकान मिलते हैं।

सरहिन्द में हिन्दू मंदिर के साथ साथ जैन धर्म का एक महान तीर्थ चक्रेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मंदिर व अमृत कुण्ड इन गुरुद्वारों के पास हैं। माता चक्रेश्वरी देवी भगवान ऋषभदेव की यक्षिणी देवी हैं। कहा जाता है जब महाराजा करम सिंह पटियाला बच्चों की शहादत का स्थान ढूँढ रहे थे तो माता चक्रेश्वरी देवी ने उन्हें वह स्वप्न में दर्शन देकर यह स्थान बताया जहां उनका संस्कार हुआ था। माता चक्रेश्वरी देवी का मंदिर पृथ्वीराज चौहान के समय बना। जब मध्यप्रदेश के कुछ खण्डेलवाल परिवार कांगडा तीर्थ की यात्रा करते इस स्थान पर पहुंचे। वह माता की प्रतिमा साथ लाए थे। उन्हें स्वप्न में माता ने आदेश दिया “तुम यहां वस

आस्था की ओर बढ़ते
जाओ। मेरी पिंडी यहां स्थापित कर दो।” भक्तों ने आदेश का पालन करते हुए मंदिर स्थापित कर दिया। वंदा वहादुर के हमले के पश्चात् यह लोग सुनाम आ गए।

पास ही मुसलमानों का तीर्थ रोजा शरीफ है। जहां मेला लगा रहता है। देश विदेश से यात्री आते हैं। इस क्षेत्र में उच्चा पिंड संघोल, बौद्ध धर्म, का प्रमुख केन्द्र है। जहां ५वीं सदी से पहले की कला, सिक्के, प्रमिमाएं मिलती हैं। एक स्तूप भी महाराजा अशोक द्वारा निर्मित है। सरहिंद के इस गुरुद्वारे में सारे भारत वर्ष व विश्व के अन्य देशों से श्रद्धालु तीन दिन के भव्य मेले में आते हैं। भयंकर सर्दी में लाखों लोग इस स्थान पर पहुंच कर इतिहासक गुरुद्वारों के दर्शन करते हैं। श्री हसीजा ने इस समारोह को हमारे सम्मान के लिए चुना। इस की विधिवत् सूचना हमें दे दी गई।

समारोह :

फतिहगढ़ साहिब की धरती जिस का कण-कण शहीदों के खून से पवित्र है। वहां एक भव्य समारोह का आयोजन भाषा विभाग ने सानिध्य में किया गया। यहां एक पुस्तक 'प्रदर्शनी विभाग ने लगाई। लोक संपर्क विभाग व विभिन्न विभागों ने अपने विभागों की प्रदर्शनीयां लगाई थी। स्टेज पर एक कवि दरवार व ढाडी दरवार का आयोजन किया गया। ढाडी पंजाब की लोक परम्परा है जिस में प्राचीन साजों द्वारा धार्मिक व लोक संगीत प्रस्तुत किया जाता है। यह कथा वाचकों की पंजाबी किस्म है जो वीर रस की कविताओं का गान करते हैं। कई बार बिना साज के भी यह भजन गाते हैं। प्राचीन भारत में जो काम भाट लोग करते थे उसी तरह की एक परम्परा है। प्राचीन काल में युद्ध क्षेत्रों में सैनिकों को उत्साहित करने के लिए यह लोग काम करते थे।

आस्था की ओर बढ़ते ठग इसी परम्परा का निर्वाह आज भी होता है। इसे पंजाब के लोक गीत का भाग भी माना जाता है।

यह मेला दिसंबर में आता है। भयंकर सर्द में लोग अपने शहीदों को नहीं भूलते। सच्च भी यही है कि वही कौमें जिंदा रहती हैं जो अपने शहीदों को याद रखती हैं। इसी स्मृति में यह भव्य आयोजन होते हैं। जिस में राजनैतिक, धार्मिक व समाजिक संस्थाएं बड़ चढ़ कर भाग लेती हैं। हमारा सम्मान समारोह आयोजन का भाग था। भाषा विभाग के सभी अधिकारी, कर्मचारी इस आयोजन में लगे थे। इस भव्य समारोह में भाषा विभाग पंजाब ने हमारे सम्मान किया।

समारोह आयोजक ने सर्व प्रथम यह बताया गया कि भाषा विभाग पंजाब आज पंजाब के इन दो जैन विद्वानों को प्रस्तुत करने जा रहा है जिन्होंने गत २५ वर्षों से जैन ग्रंथों को पंजाबी भाषा में २५०० वर्ष का इतिहास में पहली बार ५० पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह प्रयत्न संसार के इतिहास में पहली बार हुआ है।

इन दो विद्वानों ने जीवन का एक भाग पंजाबी जैन साहित्य को समर्पित किया है। हम पंजाब सरकार व भाषा विभाग पंजाब की ओर से इनका सम्मान करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। इस समारोह के सभापति प्रसिद्ध उद्योगपति व पनसप के चेयरमैन स० कृपाल सिंह लिवड़ा थे। उन्होंने मेले के प्रथम दिन मेले में स्थापित सभी प्रदर्शनीयों का उद्घाटन किया। उन प्रदर्शनीयों को देखा। फिर मंच पर विराजित हुए। समय कुछ समय के लिए रुक गया। हमारे नाम मंच पर आने के लिए श्री हर्सीजा ने पुकारा। हम मंच पर आये तो डायरेक्टर साहब व मुख्य अतिथि ने हमारा सम्मान किया। हमें विशिष्ट अतिथि के साथ बिठाया गया।

फिर श्री मदन लाल हसीजा जी निर्देशक भाषा विभाग ने हमारा परिचय व हमारी साहित्यिक यात्रा का वर्णन अपने शब्दों में किया। इस के पश्चात् एक भाई ने भाषा विभाग पंजाब की ओर से तैयार अभिनंदन पत्र हमारे सम्मान में पढ़ा। इस को प्रकाशित कर लोगों में बांटा गया। फिर मुख्य मेहमान सरदार कृपाल सिंह लिबड़ा मंच पर खड़े हुए। उन्होंने सर्व प्रथम हमें अभिनंदन पत्र प्रस्तुत किया। इस के पश्चात् उन्होंने भाषा विभाग पंजाब की ओर से दोनों को एक एक शाल ओढ़ाया। इन शालों पर पंजाब का मान चित्र प्रकाशित था, जो भाषा विभाग का चिन्ह है।

फिर स० लिबड़ा ने हमारे सम्मान में कुछ शब्द कहे। उन्होंने हमें मुवारिकवाद देते हुए, भाषा विभाग पंजाब की सभी प्रशंसा की जो पंजाबी भाषा के विद्वानों को ढूंढ कर सम्मानित करता रहता है।

हमारी ओर से धन्यवाद के रूप में विशिष्ट अतिथियों को हमारे प्रसिद्ध प्रकाशनों के सेट भेंट किए गए। यह समारोह छोटा था या बड़ा यह मेरे चिंतन का विषय नहीं। पंजाब सरकार ने हमारे साहित्य व जैन धर्म का सम्मान किया था। इस लिए हमारे लिए यह समारोह महत्वपूर्ण था कि दो पंजाबी जैन साहित्य के विद्वानों को उनके अपने राज्य में सम्मानित किया जा रहा था। मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने हम दोनों की ओर से पंजाब सरकार के भाषा विभाग का धन्यवाद करते हुए कहा गया “यह हमारा सम्मान नहीं, बल्कि प्रभु महावीर व जैन धर्म के सिद्धांतों का सम्मान है। जो हर युग में शाश्वत है।”

अभी २ अप्रैल २००३ को गोविन्दगढ़ के पत्रकार ने हमारा पंजाबी साहित्य ओमान में स्थित इंडियन सोशल कलचर सोसाईटी नृस्कट को भेंट किया। सोसाईटी के अध्यक्ष

आस्था की ओर बढ़ते कदम
श्री कें. एम. सिन्हां ने इस साहित्य का गर्म-जोशी से स्वागत
किया। हमें सोसाईटी का मोमेंटों भी भेजा। वह भी एक
यादगारी स्मृति है।

२

पूज्यनीय महाश्रमणी, जैन ज्योति, जिन शाषण प्रभाविका साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की परम्परा व उनका शिष्य परिवार

महाश्रमणी, उपप्रवर्तनी श्री स्वर्णकांता जी महाराज जैन श्रमणी परम्परा में विशिष्ट स्थान रखती थीं। आप का संबंध प्रवर्तनी श्री पावती जी महाराज से संबंधित था। स्व० अगर चन्द नाहटा की दृष्टि में साध्वी पावती जी महाराज हिन्दी की प्रथम जैन महिला लेखिका थीं। उनका विशाल शिष्य परिवार था। वह महान धर्म प्रचारिका थीं। उन्होंने अपने समय के सभी धर्म प्रचारकों से धर्म चर्चा की थी। उन्होंने महाराज नाभा के प्रश्नों के उत्तर दिए थे। महाराजा नाभा जैन साधू साध्वीयों से व्यर्थ में ही नफरत करता था। आप ने बड़ी हिम्मत से नाभा पहुंच कर देवी मंदिर दयाल चौक में प्रवचन शुरू किया। इस की खबर महाराजा को पहुंची। महाराजा ने अपने राजपुरोहित के हाथ कुछ प्रश्न लिख कर भिजवाए। उनका उत्तर आप ने विद्वता पूर्ण ढंग से दिया। आप का महाराजा ने सम्मान किया। फिर पूज्य अमरसिंह महाराज पधारे। इसी प्रकार श्वेताम्बर मूर्ति पूजक आचार्य विजयवल्लभ भी यहां पहुंचे थे। साध्वी जी ने ४० से ज्यादा हिन्दी जैन ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों को पढ़ कर उनकी विद्वता का पता चलता है। आप बहुभाषा विध थीं। आगमों व दूसरे धर्मों के साहित्य पर आप का पूर्ण अधिकार था।

आप की शिष्या राजमति जी महाराज थीं। जिन्होंने राजमति जैसा उदाहरण प्रस्तुत किया। आप की शादी आप की मर्जी के विरुद्ध कर दी। आप ने अपने वैराग्य को शादी के बाद जारी रखा। आखिर ससुर व पीहर दोनों पक्षों को झुकना पड़ा। आप साध्वी बनीं। प्रवर्तनी श्री पावती से दीक्षा ग्रहण कर आगमों का सूक्ष्म अध्ययन किया। आप की शिष्या साध्वी श्री ईश्वरा देवी थीं। साध्वी श्री ईश्वरा देवी जी महाराज ने साध्वी पार्श्ववती को दीक्षित किया। साध्वी पार्श्ववती को हमारी गुरुणी को दीक्षित करने का सौभाग्य मिला। इनकी शिष्या गुरुणी प्रवर्तनी राजमति जी के निर्देशन में हुई। आप ने विभिन्न धर्मों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। अनेक बार तप किया। अनेकों जीवों को मोक्ष मार्ग पर लगाया।

साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का जीवन क्रान्तिकारी रहा। आप का जन्म प्राचीन पंजाब की राजधानी लाहौर के सूश्रावक सेठ खजानचन्द्र व माता दुर्गा देवी के यहां २६ जनवरी १९२६ को हुआ। आप को नाम दिया गया लज्जा। जिस दिन आप का जन्म हुआ उस दिन पंडित जवाहर लाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य का नारा लगाया था। आप के पिता उस दिन एक लम्बा मुकद्मा जीते थे। उनकी लाज बच गई थी। यह नाम उसका प्रतीक था। घर का वातावरण धार्मिक था। इस का प्रभाव बालिका लज्जा पर भी पड़ा। आठ वर्ष की आयु में उनके एक फोडा निकल आया। यह फोडा समाप्ति का नाम नहीं लेता था। आखिर एक दिन लज्जा ने सोचा कि अगर यह फोडे की तकलीफ दूर हो जाए तो मैं साध्वी बन जाऊं। यह संयम के बीज थे जो फूटने शुरू हो गए। आपने प्रतिज्ञा लेने के कुछ समय बाद फोडा समाप्त हो गया। आप पढाई में बहुत होशियार थीं। घर में रह कर

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 आप ने आठवीं तक पढ़ाई सम्पन्न की। माता पिता दीक्षा लेने के लिए मान रहे थे। पहले आप को कहा गया कि बालिंग हो जाओ, फिर संयम ग्रहण कर लेना। पर आप के बालिंग होने के पश्चात भी आप के पिता ने आप को आज्ञा प्रदान नहीं की। जैन धर्म का यह नियम है कि किसी भी स्त्री पुरुष को उनके अभिभावक की आज्ञा के बिना साधु नहीं बनाया जा सकता। आखिर १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतन्त्र हो गया। तबत पाक वंटवारे में हिन्दू मुस्लिम फसाद शुरू हो चुके थे। लज्जा ने सोचा “माता पिता किसी कीमत पर संयम ग्रहण करने की आज्ञा नहीं देंगे। पर मुझे अपने आत्म कल्याण करना है। संसार में नहीं फंसना।” वैराग्य दृढ़ होता गया। आप घर से पलायन कर बम्बई पहुंच गईं। घर में तूफान खड़ा हो गया। आप बम्बई से पालीताना तीर्थ पर पहुंचीं। जहां पंजाबी धर्मशास्त्र में आचार्य समुद्र विजय वैराजमान थे। यहां आप को भेंट अपनी संसारिक वुआ साध्वी दक्ष देव श्री से हुई। आप के माता पिता पंजाब में आप की तलाश कर रहे थे। वह जालंधर पहुंचे। वहां उन्हें पता चला कि लज्जा पालिताना तीर्थ में सकुशल है अगर दीक्षा की आज्ञा देंगे तभी वहां वह पंजाब आ जाएगी। आखिर माता पिता को अपनी संतान के आगे झुकना पड़ा। वह पालिताना पहुंचे। कुछ दिन तीर्थ यात्रा सम्पन्न कर लज्जा को वापस ले कर पंजाब में आ गए।

दीक्षा :

२७ अक्टूबर १९४७ को लज्जा का संयम का नेप मिला। यह कार्य साध्वी राजमति की नेत्राय में जालंधर छावनी में हुआ। साध्वी बनते ही आप ने जप-तप-स्वाध्याय तीनों का क्रम को जीवन का अंग बना लिया। यह जप तप जीवन में ५४ साल तक चला। बड़ी से बड़ी मुखित में आप

आस्था की ओर बढ़ते कदम
समता रखना जानती थीं। आप के साहित्यिक देन, संस्थाओं के निर्माण के परिचय मैं पीछे दे आया हूँ। आप ने वी.ए. पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़ से पास की थी।

आप का विशाल शिष्य परिवार में २४ से ज्यादा साध्वीयां हैं। आप के शिष्य परिवार में दो साध्वीयां आप की शिष्या हैं। बाकी साध्वीयां आप के शिष्य परिवार की शिष्याएं हैं। आप की दो प्रमुख साध्वीयां में सबसे बड़ी साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज व दूसरी साध्वी श्री सुधा जी महाराज हैं। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज कई मामलों में प्रथम थीं। हमारी सभी संस्थाओं व प्रकाशनों में उनकी बलवती प्रेरणा रही है। भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी ने आप को जैन ज्योति पद से अलंकृत किया।

साध्वी श्री स्वर्णकांता जी गुणों की पुंज थीं। अनेकों जीवों पर उन्होंने उपकार किये। अनेकों आत्माओं को सदमार्ग दिखाया। वह संधारा साधिका थी। उनका जीवन अध्यात्म से भरपूर था। मुझे अध्यात्म का अमृत प्रदान करने वाली आप ही थीं। जीवन में स्वाध्याय करते कई बार शास्त्रीय प्रश्नों को समझने होते तो आप की शरण ग्रहण करते। उनका तप-संयम-जप महान था। वह स्पष्ट वादी थीं। बड़े गुरुओं का ध्यान रखना अपना फर्ज समझती थीं।

प्रथम भेंट :

मेरी आप से प्रथम भेंट अम्बाला में जैन स्थानक में २५०० साला महावीर निर्वाण शताब्दी से कुछ वर्ष पहले हुई। आप से पंजाबी साहित्य की चर्चा हुई। आप ने इसकी उपयोगिता को मानते हुए स्वयं सहयोग देने की इच्छा व्यक्त की थी। उन्हीं की इच्छा के अनुरूप हम ने यह साहित्य का सृजन किया। जो उनकी देख रेख में समिति द्वारा प्रकाशित हुआ। सारा पंजाबी साहित्य उनके आशीर्वाद का फल है। जो

आस्था की ओर बढ़ते कदम
२५०० वर्ष में प्रथम बार लिखा गया।

आप का जीवन प्रेरणाओं से भरपूर जीवन है। आप श्री के चरणों में वन्दना दर्शन का लाभ हमें पिछले ३२ वर्षों से प्राप्त होता रहा। हर साल दीक्षा के आयोजन होते। आचार्य श्री आनंद ऋषि व आचार्य देवेन्द्र मुनि जी महाराज का पंजाब में स्वागत करने का उन्हें अवसर मिला। आप की ४०वीं दीक्षा जयंती पर हम ने महाश्रमणी पुस्तक निकाली जिस की भूमिका भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी ने लिखी थी। आचार्य देवेन्द्र मुनि स्वयं उनके अनुशासन व संयम के प्रशंसक थे।

आप का शिष्य परिवार बहुत सेवाभावी समर्पित है। ३ साल बीमार अवस्था में सेवा कर उन्होंने सेवा की उदाहरण स्थापित की है। सभी कार्यक्रम चले हैं। गुरुणी के सेवा भी लगातार हुई है। सभी साध्वीयां सम्पन्न परिवार से संबंधित हैं। पढी लिखी हैं। प्रवचन कर्ता हैं। अच्छी धन प्रचारिन तत्त्ववेत्त व तपस्विनी हैं।

सभी साध्वीयां हर समय स्वाध्यायरत रहती हैं। सभी अपनी गुरुणी के प्रति समर्पित रही हैं। सारी साध्वीयां अनुशासित हैं। इन साध्वीयों में तीन साध्वीयों का परिचय देना इस लिए जरूरी है कि वह अपनी गुरुणी के अधूरे कार्य को पूरा करने में सदैव तत्पर रही हैं। इन में प्रमुख हैं साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज, साध्वी श्री स्मृति जी महाराज व साध्वी श्री सुधा जी महाराज।

साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज :

आप साध्वी स्वर्णकांता की प्रमुख तपस्विनी शिष्या हैं। आप तपस्या के साथ स्वाध्याय करना नहीं भूलती। सदैव गुरु चरणों में समर्पण व सरलता का प्रतीक राजकुमारी जी

आस्था की ओर बढ़ते कट्य
महाराज का जन्म १९३१ में गुजरावाला पाकिस्तान में हुआ। आप के पिता सेठ विलायती राम व माता श्री दुर्गा देवी जैन थे। आप का धर्म निष्ठ परिवार था। बचपन से ही आप का मन संसार के भोग विलासों से दूर था। आप को वह काम भोग आसार लगते थे। आप का भरापूरा परिवार है। विभाजन के पश्चात आप का संसारिक परिवार जालंधर में आ गया।

१९४८ में प्रवर्तनी श्री राजमति का चतुर्मास जालंधर में था। वह गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का प्रथम चतुर्मास था। साध्वी जी के प्रवचन सुनने आप अपनी माता जी के साथ हर रोज जाती थीं। आप पर वैराग्य का रंग चढ़ने लगा। इस वैराग्य को सुदृढ़ करने में जालंधर शहर के ही एक सुश्रावक श्री हंस राज जैन ने महत्वपूर्ण योगदान किया। वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। आप इस चर्चा में रस लेने लगीं। आखिर वह सौभाग्य भरा दिन आया जब आप ने स्वयं को गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के चरणों में समर्पित कर दिया। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने उन्हें साध्वी जीवन के कष्टों के बारे में आप को अवगत कराया। दो वर्ष आप के परिवार वाले आप को समझाते रहे, पर आप पर संसार की वासना अपना असर ने छोड़ सकी।

१९५० में आपने जालंधर शहर में प्रवर्तनी श्री राजमति जी महाराज के हाथों दीक्षित हुईं। प्रवर्तनी श्री ने आप को साध्वी श्री स्वर्णकांता की शिष्या घोषित कर दिया। आप ने प्रवर्तनी श्री के कठोर अनुशासन व वात्सल्य को देखा है। आप आर्कषित व्यक्तित्व की धनी हैं। सारा जीवन गुरुणी की आज्ञा पर पहरा दिया है। सौभाग्य से आप के शिष्या परिवार भी आप के अनुरूप ही ज्ञान वान है। आप की एक प्रशिष्या श्री चन्दना साध्वी जी ने पंजाबी विश्वविद्यालय

आस्था की ओर बढ़ते कदम पटियाला से संस्कृत एम.ए. में सारी यूनिवर्सिटी से प्रथम आई है। इस विषय पर आपकी शिष्या को गोलड मैडल जैन स्थानक में स्वयं उप-कुलपति रजिस्ट्रार ने समर्पित किया। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी की संसारिक भतीजी वीरकांता जी आप की शिष्या हैं।

आप का जीवन सहजता, सरलता व विनम्रता का त्रिवैणी संगम है। महातपस्वी हैं। महान प्रवचन देने में प्रमुख हैं। आप ने स्व० गुरुणी की बहुत सेवा की। आप के जीवन से मुझे आस्था का सबक मिला। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के स्वर्गवास के बाद, आचार्य संसार डा० शिवमुनि जी महाराज ने आप को उपप्रवर्तनी पद से सुशोभित किया। वह समारोह पंचकुला श्री संघ ने सम्पन्न किया गया। सरलात्मा साध्वी श्री सुधा जी महाराज :

सरलात्मा साध्वी श्री सुधा जी महाराज साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज की द्वितीय शिष्या हैं। सांसारिक दृष्टि ने उनकी भानजी हैं। गुरुणी श्री सुधा जी महाराज का जीवन रत्नत्रयी की आराधना का जीता जागता प्रमाण हैं। आप जैन धर्म की प्रभावना करने में हर समय तत्पर रहती हैं। उन्होंने नरे जीवन को बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने अपनी गुरुणी का कठोर अनुशासनात्मक जीवन झेला है। उनका ज्ञान अनुपम है। वह साधना की जीती जागती ज्योति हैं। वह सेवा, साधना व स्वाध्याय में हर समय लीन रहती हैं। स्वाध्याय के अतिरिक्त वह लम्बे समय तप करती रहती हैं। दूसरे लोगों को तप करने की प्रेरणा देती हैं। वह श्रमण संस्कृति की सेवा में हर पल गुजारती हैं। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के हर कार्यक्रम के आयोजन के पीछे आप का प्रमुख योगदान रहा है। अब अपनी गुरुणी के यश को आगे बढ़ाने में आप का दिमाग काम करता है। इतना बड़ा साध्वी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
परिवार, सभी का मातृ भाव से ध्यान रखना आप को आता है। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज ने अपनी शिष्या को हर परिस्थितियों के अनूकूल बनाया। आप ने अपनी गुरुणी को जिस ढंग से वर्षों तक सेवा की है उस का उदाहरण मिलना अन्यत्र दुर्लभ है। संयममूर्ति साध्वी सुधा का जन्म १ अगस्त १९४३ को पट्टी के सेठ त्रिलोक चन्द्र जैन व माता कौशल्या देवी के यहां हुआ। भगवान महावीर के जैन धर्म के प्रति श्रद्धा आप को विरासत में मिली थी। आप को वचपन से ही संसार के काम भोग आसार लगने लगे थे। आप ने घर में रह कर दसवीं की परीक्षा पास की। आत्मा में अंकुरित संयम के बीज आप को गुरु चरणों में ले आए। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का त्यागमय जीवन आप के संयम का उदाहरण बना।

घर वालों से दीक्षा की आज्ञा मांगी। वह दीक्षा की आज्ञा इतनी सरलता से कहां मिलती है। परिजनों ने आप को संसार की भौतिकता का लालच दिया और साध्वी बनने से रोका पर आप ने भी अपनी मौसी का अनुकरण किया। आखिर घर वालों को अपनी प्रिय बेटी सुधा को दीक्षा की आज्ञा देनी पड़ी। आप ने वैराग्य से पहले घर वालों की विपरीत परिस्थितियों को सहन किया।

१४ फरवरी १९६५ को वह मंगलमय बेला आ गई, जब आप की मनोकामना पूरी होने वाली थी। इस मंगलमय महोत्सव पर राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज के शिष्य पं० हेम चन्द जी महाराज व पं० श्री प्रेम चन्द विराजमान थे। इन श्रमणों ने आप को दीक्षा पाठ पढ़ाया। आप साध्वी श्री स्वर्णकांता जी की शिष्या घोषित हुईं। साध्वी बनते ही आप ने शास्त्रों का सूक्ष्म अध्ययन शुरू कर दिया। कई शास्त्र कंठस्थ किए। कई विद्वानों से व

अस्था की ओर बढ़ते कदम अपनी गुरुणी से शास्त्रों का स्वाध्याय किया। शास्त्र अध्ययन के साथ साथ आप ने दूसरे धर्मों के ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन किया। आप की संसार के सभी धर्मों की झलक आप के प्रवचन में मिलती है।

साध्वी श्री का आभा मण्डल हर व्यक्ति पर अपनी छाप छोड़ जाता है। आप का जैन ज्योतिष, मंत्र शास्त्र पर अच्छा अधिकार है। आप गुप्ततपसविनी, सरलात्मा हैं। आप के दिशा निर्देश में हम दोनों को बहुत से कार्य सम्पन्न करने का सुअवसर मिला है। आप बहुत ही करुणामय आत्मा हैं। आप ने धर्म के ज्ञान के साथ-साथ बहुत सी भाषाओं का अभ्यास किया है। आप ने पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. तक की शिक्षा अर्जित की है। हमारे सारे कार्यक्रम आप के आशीर्वाद व प्रेरणा से सम्पन्न होते हैं। आप जैसा विनयवान सरलात्मा विरला ही मिलता है। भगवान महावीर का कथन है “सरल आत्मा में धर्म टहरता है।” आप पर पूर्ण घटित होती है। आप सहजता, सरलता व करुणा की प्रतिमा हैं। आप भव्य आत्मा हैं। आप का जीवन उस फूल की भाँत है जिस में सुन्दरता भी है सुगंधि भी है। आप का जीवन लाखों जीवों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना है। हम भाग्यशाली हैं कि हमें आप के निर्देशन में अनेकों सेवा के कार्य करने की बलवती प्रेरणा मिलती है। आप की दिशा निर्देशन में जहाँ दीक्षा समारोह होते हैं वहाँ पंजाबी ग्रंथों का प्रकाशन, अवाडों की स्थापना व संस्थाओं का निर्माण आप की प्रेरणा प्रमुख है।

आप की देख रेख में कई समारोह अम्बाला में सम्पन्न हुए हैं। स्व० गुरुणी स्वर्णकांता जी महाराज की आप सलाहकार शिष्या हैं। उन्होंने हर मामले में आप की राय पूरी। अगर इतनी महान साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज

आस्था की ओर बढ़ते दृष्टि आप सुधा जी से सलाह लेती तो इस में कोई ना कोई बात जखर है। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन पर आप का दण्ड हाथ है। आप साक्षात् सरस्वती है। जैन समाज को आप से बहुत आशाएं हैं। आप जैन धर्म की प्रभाविका व क्रान्तिकारी साध्वी है। आप नवीन और प्राचीन संस्कृति का जीता जागता प्रमाण हैं। आप महान प्रेरिका हैं। लाखों लोगों को दान की प्रेरणा देती रहती हैं। आप की प्रेरणा कभी खाली नहीं जाती। हमारे परिवार पर आप का महान आशीर्वाद सदैव बना रहता है।

आप महान भाग्यशाली साध्वी हैं। आप की शिष्याएं भी आप के जीवन से प्रेरणा लेती रहती हैं। आप सदैव श्री संघ की प्रभावना के लिए काम करती हैं। उन्होंने कई बार अभिग्रह पूर्वक तप किया है। आप अपनी स्व० गुरुणी स्वर्णा की प्रतिमूर्ति हैं। जहां तक मुझे याद है ऐसा कोई अवसर नहीं आया, जब आप ने हमें कुछ न कुछ कर्म की प्रेरणा न दी हो, आप जहां भी चतुर्मास करती हैं लोगों को साधना करने की प्रेरणा देती रहती हैं। हर प्रकार की धर्म शिक्षा वाल-वृद्ध को प्रदान करती हैं। स्वाध्याय के प्रति रूची बने, इस के लिए बच्चों को धर्म शिक्षा प्रदान करती हैं। माला आदि धर्म उपकरण अपने आशीर्वाद के रूप में हर धर्म, वर्ण का ध्यान रख कर भेंट करती हैं। आप महान साध्वी हैं। आप का जीवन अप्रमाद का उदाहरण है। आप की प्रेरणा से कुष्प में साध्वी स्वर्णाकांता जैन पुस्तकालय निर्माण आदिश्वर धाम में हो चुका है। आप की प्रेरणा से अनेकों चारित्रात्मों ने संयम ग्रहण कर स्व पर का कल्याण किया है। आप श्रावक श्राविका को बहुत बहुमान देती है। आप सदैव कहती हैं “भगवान महावीर साधु व श्रावक दोनों का जोड़ा हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक

आस्था की ओर बढ़ते कदम हैं। धर्म साधना में जहां श्रावक, साधु को आहार पानी बहरा कर धर्म लाभ प्राप्त करता है वहां साधु साध्वी भी अपनी आशीर्वाद श्रावक को प्रवचन के रूप में प्रदान करते हैं। साधु श्रावक को ध्यान साधना की विधि बतलाते हैं। धर्म उपदेश देकर दान-शील-तप-भावना दृढ़ करते हैं।”

गुरुणी सुधा प्राचीन श्रमणी के अनुरूप जीवन को तप द्वारा अनुशासित करती हैं। वह श्रावक को ‘अम्मापिवा’ समझ कर उन्हें सदमार्ग पर लाती हैं। हम दोनों को उन्हें बहुत करीब से देखने को मौका मिला है। अनेकों कष्टों में वह घबराती नहीं। वह स्वयं तपस्या करती हैं और अपनी शिष्याओं को तपस्या व स्वाध्याय करने की सतत प्रेरणा देती रहती हैं। धर्म के प्रति वह वच्चों में आकर्षण पैदा करती हैं। इस के लिए बाल गोष्ठियों का आयोजन होता है। नवयुवकों को वह सप्तकुव्यसनों का त्याग करवाती हैं। उनकी सेवा का उदाहरण हमें अनेकों बार देखने को मिला। कभी भी कोई साध्वी विमार पड़े, तो उसी समय अपना सारा ध्यान उसके उपचार की ओर देती हैं। अपनी गुरुणी की बीमारी का जब आप को पता चला, तो आप गंगानगर में थीं। एक दिन में ६० किलोमीटर लम्बा नीमा मात्र कुछ दिनों में अम्बाला पहुंचे। अपने पांव की बीमारी पर कोई ध्यान नहीं रखा। वह जैन एकता की प्रतीक हैं। सभी लोग उन्हें अपना मानते हैं।

लगभग ३ साल गुरुणी जी बीमार रहे। अपनी गुरुणी स्वर्णकांता की दिन रात जाग कर आपने सेवा की। इस संघ की हर छोटी बड़ी साध्वी ने वैसे तो साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज की तन मन से सेवा की। पर साध्वी राजकुमारी जी महाराज व साध्वी श्री सुधा जी महाराज का नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा। अपनी शिष्या परिवार के स्वारथ्य शिक्षा का आप को सदैव ध्यान रहता है। हमारी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
हर रचना में उनका विमर्श, दिशा निर्देश हमें मिलता रहा है। जीवन के हर मोड़ पर हमें हर मामले में आप का दिशा निर्देश मिला है। आप की सद्प्रेरणा से महाश्रमणी अभिनन्दन ग्रंथ व सचित्र भगवान महावीर जीवन चरित्र लिखने का सौभाग्य हमें मिला।

आप का दार्शन मांगलिक है। आप में पूज्य गुरुणी स्वर्णकाता का तप तेज झलकता है। बड़े बड़े से मामले में आप अपनी सहजता सरलता से काम लेती हैं। आप का जीवन क्षमा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्षमा आप का जीवन है। आप का श्रृंगार है। हर बात में दया झलकती है। सब से बड़ी बात है कि आप सब जैनों को भाई मान कर जैन एकता को मजबूत करती हैं। आप के चरणों में जैन के सभी सम्प्रदायों के लागू सुख शांति महसूस करते हैं। आप का पुण्य चहुतरफा देखा जा सकता है। आप जहां विराजते हैं उस श्री संघ को चार चांद लग जाते हैं। आप में सहधर्मी वात्सलय का भाव कूट कूट कर भरा हुआ है। आप गरीबों व सहधर्मी का बहुत ध्यान रखती है। आप समाज को गरीब, यतीमों वेसहारा वहिन भाईयों के उत्थान की प्रेरणा देती रहती हैं। आप ने कई ऐसी संस्थाओं का निर्माण स्थानिय स्तर पर किया है जो स्थानिय संघ की मदद से उन पिछड़े लोगों की सहायता करते हैं। आप ने गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के देवलोक के वाद अम्बाला में एक कम्प्यूटर सेंटर खुलने जा रहा है।

आप के दर्शन का लाभ किसी खुशनसीब को होता है। आपका जीवन सुहृदता व प्रेम का संदेश है। हम भी उन भाग्यशाली लोगों में से हैं जिन्हें आप की प्रेरणा व दिशा निर्देश में कार्य करने का अवसर मिला है। गुरुणी जी के स्वर्गवास के बाद आप ने उनके कार्य रूपी मिशाल को हाथों

अस्था की ओर बढ़ते कदम
में धामा है। आप ने शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थीयों को विना भेदभाव से सहायता की है।

साध्वी (डा०) स्मृति जी महाराज :

साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज की शिष्याओं में सभी साध्वीयां शैक्षिक योग्यताओं की धनी हैं। इन में एक तरुण साध्वी डा. स्मृति जी हैं। जिन्हें स्वयं गुरुणी स्वर्णकांता जी महाराज अपनी शिष्याओं में कोहेनूर हीरा कहती थीं। साध्वी स्मृति जी, साध्वी सुधा जी की शिष्या हैं। आप जन्म अम्बाला के सुश्रावक सेठ तरसेम कुमार जैन व माता शशिकांता जैन के यहां १७ मई १९६९ को हुआ। माता पिता के धार्मिक संस्कार आप के जीवन में सहायक बने। आप को अल्पायु में गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। फिर छोटी अवस्था में वैराग्य के बीज पनपने लगे।

आप ने दसवीं की परीक्षा पूज्य कांशी राम जैन सीनीयर सैकण्डरी स्कूल से उत्तीर्ण की। फिर गुरु चरणों में रह कर स्वाध्याय करना शुरू किया। माता पिता की आप लाडली संतान थीं। घर वाले नहीं चाहते थे कि आप साध्वी जीवन का कठोर मार्ग ग्रहण करें। माता पिता ने आप को बहुत समझाया। साधु जीवन के परिषहों के बारे में समझाया। पर आप पर संयम का मजीठी रंग चढ़ चुका था। आप अपने ईरादे पर दृढ़ रहीं। संसार का वास्तविक स्वरूप आप को समझ आ चुका था। जन्म मरण की लम्बी परम्परा को काटने का निदान संयम है। आप की इच्छा बलवती होती रही। आप ने स्थानीय जैन कालेज से बी.ए. किया। फिर गुरुचरणों में आ गईं।

मैंने आप को पानीपत में वैरागन अवस्था में स्व. भण्डारी पद्म चन्द जी महाराज के चतुर्मास में देखा

आस्था की ओर बढ़ते कट्टर
 था। उसके बाद आप ने हिन्दी भाषा में एम.ए. की परीक्षा
 संपूर्ण की। अब घर में मन नहीं लगता था। माता पिता के
 सारे प्रलोभन आप को संयम मार्ग पर बढ़ने से रोक न सके।
 आप की दीक्षा १६ फरवरी १९६१ को सफीदोंमण्डी में
 सम्पन्न हुई। आप के साथ साध्वी श्रुति की दीक्षा सम्पन्न
 हुई।

साध्वी बनने के पश्चात् आप ने पुनः शिक्षा
 ग्रहण करना शुरू कर दिया। आप ने संस्कृत में एम.ए. की
 परीक्षा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से सम्पन्न की। आप समस्त
 कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में सब से ज्यादा अंक लेने वाले
 प्रमुख साध्वी बन गईं। आप ने अपनी गुरुणी सुधा जी
 महाराज व बड़ी साध्वी स्वर्णा जी महाराज के निर्देश व
 शास्त्रों का स्वध्याय किया। आप ने कई बार वरसी तप किया
 है। आज कल भी आप ध्यान व तप में लीन रहती हैं। आप
 ने डा० धर्मचन्द जैन के निर्देशन में पी.एच.डी की परीक्षा
 पास की है। इस शोध कार्य की प्रेरणा हम दोनों ने साध्वी श्री
 को दी थी। इस से पहले हम ऐसी प्रेरणा (डा०) मुनि शिव
 कुमार जी महाराज को दे चुके थे। हमें प्रसन्नता है कि मुनि
 शिव कुमार जी महाराज को बाद में श्रमण संघ ने अपना
 चतुर्थ पट्ठर बनाया है। आप श्री की तरह, साध्वी श्री को
 हमारी सतत प्रेरणा रही कि आप श्रावकाचार के ग्रंथ
 उपासक दशांग सूत्र पर कार्य करें। साध्वी श्री ने एम.ए. के
 पश्चात् पी.एच.डी. के लिए तैयार नहीं थी। परन्तु हम ने
 बड़े महाराज साध्वी श्री स्वर्णकांता जी को प्रार्थना कर इस
 की आज्ञा दिला दी। साध्वी श्री को उपासक दशांग सूत्र से
 संबंधित काफी साहित्य प्राप्त नहीं होता था। मेरे धर्म भ्राता
 रविन्द्र जैन ने साध्वी श्री स्मृति को जैन श्रावकाचार साहित्य
 उपलब्ध करवा दिया। डा० धर्म चन्द जी जैन के कुशल दिशा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
निर्देशन से पहले आप ने संस्कृत की परीक्षा में विश्वविद्यालय का रिकार्ड तोड़ा था। अब उनके निर्देशन में पी.एच.डी. का कार्य सम्पन्न किया। आप के धीसस को बहुत ही सराहा गया है।

आप अपनी गुरुणी के अनुरूप सरलता, सादगी का जीता जागता प्रमाण हैं। आप अपनी गुरुणी जी के हर कार्य में सहयोगी रही है। आप अच्छी लेखिका हैं। आप ने अल्प समय में शास्त्रों का स्वाध्याय गुरुणी से किया है। आप ने कई भव्य जीवों को संयम प्रदान किया है।

आप ने आचार्य श्री आत्मा राम जी के अप्रकाशित आगम निरवावलिका सूत्र (१-५) के सम्पादक मण्डल के सदस्य के रूप में कार्य किया। फिर गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी की दीक्षा के ५०वें साल में आप ने अभिनन्दन ग्रंथ के मुख्य सम्पादिका के रूप में कार्य किया है। इस अभिनन्दन ग्रंथ में आप ने अपनी गुरुणी परम्परा का अच्छा शोधात्मक परिचय दिया है।

भगवान महावीर के २६०० साला महोत्सव पर सचित्र भगवान महावीर के सम्पादिका के रूप में कार्य किया है। आप की प्रेरणा से साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का ५०वां जन्म जयंती महोत्सव भव्य ढंग से मनाया गया। इस समारोह व अभिनन्दन ग्रंथ की तैयारी के विषय में अगले प्रकरण में उल्लेख करूंगा। इन साध्वी की कृपा से इतने बड़े लम्बे कार्य सम्पन्न हुए, जो जैन इतिहास का अंग बन गए। आप के कार्य जैन इतिहास व संस्कृति के सुनहरे पृष्ठ पर अंकित हैं।

इन साध्वीयों में से सभी साध्वीयां ज्ञान-दर्शन चारित्र्य में तालिन रह कर संयम की आराधना करती हैं। मुझे साध्वी स्मृति को करीब से पहचानने का अवसर मिला।

उनके जीवन में 'विनय मूल धर्म' का सिद्धांत पूर्ण रूपेण घटित होता है। अब तो वह स्वयं ही गुरुणी पद पर आसीन हैं, पर वह हर समय अपने गुरुजनों की सेवा में अपनी गुरुणी सुधा जी की तरह तत्पर रहती हैं। हमने इन दोनों गुरुणी व शिष्या को जो भी सुझाव दिया, उन्होंने हमारी बात के अनुरूप इस का पालन किया। अपने स्वाध्याय का अमृत वह स्वयं वच्चों व अपने शिष्याओं को वांटती रही हैं। वह वच्चों को धार्मिक संस्कार के लिए हर तरह से तैयार करती हैं। वच्चों के धर्म शिक्षा के साथ साथ स्वयं भी कुछ न कुछ लिखने पढ़ने में तालीन रहती हैं। एक बार जो उनके चरणों में आता है वह उनसे कुछ न कुछ प्राप्त करता है। गुण ग्राहिता उनका प्रथम गुण है। पर निंदों से वह दूर रहती हैं। अपनी गुरुणी सुधा जी महाराज की तरह वह संसार में प्रशंसा की इच्छा नहीं रखती।

दरअसल साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज के समस्त परिवार में इतना सामूहिक प्रेम है कि ऐसा अन्यत्र देखने में नहीं आता। प्रथम दृष्टि में तो वह पता ही नहीं चलता कि कौन साध्वी दीक्षा में छोटी है कौन सी बड़ी। सभी का नहत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी साध्वीयां ध्यान, तप, साधना व लेखन कार्य में तालीन रहती हैं। हर समय नए साहित्य को पढ़ना इन सभी साध्वीयों के जीवन का अंग है। सभी साध्वीयों का परिचय संसारिक लोगों से न के बराबर है। सभी साध्वीयां अपनी अपनी गुरुणी के प्रति समर्पित हैं। ऐसे पुण्यशाली साध्वी परिवार जैन संसार में कम दिखते हैं। इन सभी साध्वी मंडल की प्रत्येक साध्वी का हमारे पर उपकार धा, है और रहेगा। आज हम जो कुछ भी हैं। इन चारित्रात्माओं के आशीर्वाद के कारण हैं।

साध्वी स्वर्णकांता परिवार :

साध्वी स्वर्णकांता जी महाराज का सारा साध्वी परिवार एक अनुशासन संघ है। साध्वी राजकुमारी जी, साध्वी सुधा जी, साध्वी स्मृति जी के साथ-साथ सभी साध्वीयां देव, गुरु व धर्म के प्रति समर्पित हैं। हर समय स्वाध्याय, तपस्या व ध्यान में लीन रहती हैं। सभी शिक्षित व सम्पन्न परिवार से संबंधित हैं। सभी का जीवन जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रचार व प्रसार को समर्पित है। कुछ साध्वीयां कवियित्री भी हैं। प्रवचन कुशल तो प्रत्येक साध्वी है। इन साध्वीयों का मंगलमय आशीर्वाद व विमर्श हमें मिलता रहता है। सभी साध्वीयों के पवित्र व वन्दनीय नाम इस प्रकार हैं :-

१. साध्वी श्री राजकुमारी जी
२. साध्वी सुधा जी
३. साध्वी श्रीवीर कांता जी
४. साध्वी श्री कमलेश जी (आप का स्वर्गवास हो चुका है।)
५. साध्वी श्री विजय जी
६. साध्वी श्री चन्द्र प्रभा जी
७. साध्वी श्री संतोष जी
८. साध्वी श्री किरण जी
९. साध्वी श्री श्रेष्ठा जी
१०. साध्वी श्री वीणा जी
११. साध्वी श्री समता जी
१२. साध्वी श्री सुदेश जी
१३. साध्वी श्री रक्षा जी
१४. साध्वी श्री सुयशा जी
१५. साध्वी श्री सुव्रता जी
१६. साध्वी श्री प्रीती जी

१७. साध्वी श्री कमला जी
१८. साध्वी श्री श्रुति जी
१९. साध्वी डा० श्री स्मृति जी
२०. साध्वी श्री प्रवीण जी
२१. साध्वी श्री चन्दना जी
२२. साध्वी श्री स्वाति जी
२३. साध्वी श्री तारामणी जी
२४. साध्वी श्री पूजा जी
२५. साध्वी श्री आरती जी

सभी साध्वीयों का जीवन साधना की दृष्टि से उत्कृष्ट रहा है। सभी साध्वीयां अपने बड़ों के प्रति कर्तव्य को पहचानती हैं। सेवा के मामले में तो वे एक दूसरे से बढ़कर हैं। कोई साध्वी किसी पर क्रोध या आवेश नहीं करती। स्व० साध्वी श्री स्वर्णकांता जी का परिवार स्व० आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी की दृष्टि में अनुशासित साध्वी परिवार है। साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज को अध्ययन का बहुत शौक था। अगर कोई जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो तो महाराज श्री तत्काल इस की ५ प्रतियां मंगवाने के लिए श्रावकों को कहते। वह वर्षों तक स्वयं स्वाध्याय करती रहीं। गुरु की प्रेरणा शिष्या में स्वयंमेव आ जाती है। जीवन का कोई पल ऐसा नहीं जब इन साध्वीयों को कभी प्रमाद में देखा हो। सभी साध्वीयां हर समय धर्म क्रिया में लीन रहती हैं। लोगों को सद् कर्म करने का उपदेश देती हैं। नया ज्ञान अर्जित करने में तत्पर रहती हैं। अपने बड़ों की सेवा जिस ढंग से इन साध्वीयों ने की उस का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। ३ वर्ष दिन रात जाग कर अपनी गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की समर्पण भाव से सेवा की। २ - २ घंटे नींद ली। अंतिम संधारा के दिनों में तो सभी साध्वीयों ने गुरुणी को पाठ

आस्था की ओर बढ़ते कदम
सुनाया था। इस ढंग से उन्होंने गुरुणी श्री स्वर्णकांता जी
महाराज की अंतिम इच्छा पूरी की, वहीं श्री संघ ने उनकी
सेवा से दंग रह गया। सभी साध्वीयां पुण्यवान हैं। अपने
महाव्रतों की साधना में लगी रहती हैं।

प्रकरण १२

मेरी जैन तीर्थ यात्राएं

जीवन भ्रमण का प्रमुख स्थान है । भ्रमण हर प्रकार से ज्ञानवर्धक है । जब हम इतिहास स्थलों का भ्रमण करते हैं तो हम आस्था और श्रद्धा से भरे होते हैं । जो यात्राएं आस्था से की जाती हैं, वो आस्था के नए आयामों को जन्म देती हैं । इस दृष्टि में तीर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है । जैन धर्म में दो प्रकार के तीर्थ माने गये हैं :-

क) स्थावर

ख) जंगम

स्थायर तीर्थ :

स्थायर तीर्थ उस तीर्थ को कहते हैं जहां कोई प्रतिमा भूमि से प्राप्त होती है अथवा जिन स्थानों के तीर्थंकरों के कल्याणक हुए वह सभी क्षेत्र 'स्थायर तीर्थ' कहलाते हैं । भारत में हर राज्यों में तीर्थों की स्थापना है । इन तीर्थों में श्री महावीर जी, नाकोड़ा पार्श्वनाथ आदि तीर्थ आते हैं इतिहासिक तीर्थों में २४ तीर्थंकरों के वह क्षेत्र आते हैं, जहां तीर्थंकरों के पांच कल्याणक हुए, उनसे सम्बन्धित कोई इतिहासिक घटना हुई । इन तीर्थों में अयोध्या, राजगिरि, पावापुरी, हस्तिनापुर, प्रयागराज, वाराणसी, गिरनार समेत शिखर, पालिताना प्रमुख हैं । कई तीर्थ अपनी कला के कारण प्रसिद्ध हैं जिनमें राणकपुर, देवगढ़, आवु, अचलगढ़, केशरीया, कांगड़ा, हरिद्वार व श्रवण वेलगोला के नाम से प्रसिद्ध हैं । मैंने जो तीर्थ यात्राएं की हैं, उनके पीछे इतिहास व श्रद्धा दोनों छिपे हैं । यह तीर्थ मेरी आस्था का केन्द्र हैं । यहां आकर मानव को वीतरागता के दर्शन होते हैं । प्रभु

आस्था का और बढ़त कदम
 की छवि देखकर हमें आत्मिक शांति मिलती है । इसी आत्मिक शांति के लिये तीर्थ स्थानों की यात्रा के लिये जाते हैं । इन यात्राओं से हमारा ज्ञान बढ़ता है ।

जंगम तीर्थ

दूसरे तीर्थ हमारे आचार्य, उपध्याय, साधु व साध्वी हैं जो हमें धर्म-उपदेश से मुक्ति का रास्ता बताते हैं । तीर्थ चाहे स्थावर या जंगम, सभी तीर्थ हमारे लिये वन्दनीय, पूजनीय व हमारी आस्था के प्रतीक हैं । जैन धर्म में एक मान्यता है कि वर्ष में एक बार तीर्थ यात्रा करने से आत्मा शुद्ध और धर्म की ओर अग्रसर होती है । मन व आत्मा शुभ भावों को प्राप्त करते हैं, इस कारण तीर्थ यात्रा कर्म निर्जरा का कारण है । दोनों तरह के तीर्थ हमें अपनी इतिहासिक परम्परा की साहित्यिक जानकारी देते हैं । यह तीर्थ भारतीय संस्कृति का अनूठा संगम है, जहां विभिन्न प्रदेशों के लोग व संस्कृति के दर्शन होते हैं । विभिन्न प्रदेशों की परम्परा व मान्यताओं से हम अवगत होते हैं । विभिन्न भाषाओं, रीति-रिवाजों, वेश-भूषा से हम इस क्षेत्र की सांस्कृतिक एकता के दर्शन करते हैं । मेरी तीर्थ यात्रा दो प्रकार से सम्पन्न हुई । मेने प्रथम तीर्थ यात्रा १९८८ में अपने धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन, मालेरकोटला के साथ शुरू की । इसका कारण यह था कि हमारी काफी समय से इच्छा थी कि हम इकट्ठे जैन संस्कृति के प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करें । दूसरी यात्रा मैंने अपने परिवार के परिजनों के साथ की । इसमें मुनि दर्शनों के साथ तीर्थ यात्रा भी सम्पन्न की थी ।

मेरी प्रथम तीर्थ यात्रा :

तीर्थ का अर्थ है किनारा । जो हमें संसार सागर के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 पार किनारे पन लगाये वह तीर्थ है । इस प्रकार की तीर्थ यात्रा मैंने जीवन के कुछ पल निकालकर अपने प्रिय शिष्य धर्म भ्राता रवीन्द्र जैन मालेरकोटला के साथ की थी । उन दिनों मैं मंडी गेविन्दगढ़ आ चुका था, अपना काम भी शुरू कर चुका था । अपने पूज्य माता-पिता की आज्ञा लेकर मैंने यह कार्यक्रम बनाया । मेरी भावना थी कि मैं अपने धर्मभ्राता मालेरकोटला के साथ तीर्थों की इतिहासिक यात्रा करूँ । वैसे मेरा धर्मभ्राता मेरी आज्ञा से १९८० में इन तीर्थों की यात्रा कर चुका था । तीसरा कारण था राष्ट्र संत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० की व्यवृद्ध अवस्था थी । मैं उनसे पहली बार धर्मभ्राता के साथ आगरा में १९७२ में मिला था । अब मेरे भ्राता रवीन्द्र जैन का कहना था कि तीर्थ क्षेत्र के साथ महाराज श्री अमरमुनि म० के दर्शन लेंगे । वह व्यवृद्ध अवस्था में हैं, यह कुछ कारण थे जिन्होंने मुझे यह यात्रा करने की प्रेरणा दी थी । मेरे धर्म भ्राता रवीन्द्र जैन मुझे इन तीर्थों की महानता बताते रहते थे । मेरे मन में उनकी हर बात का एक ही उत्तर होता “जब भगवान बुलावेंगे, हम अवश्य जायेंगे ।” जब उनका बुलावा आया तो भला कौन रोक सकता है ? परिस्थितियाँ अपने आप ठीक होने लगती हैं । हमारे परिवार के लोग मेरी तीर्थयात्रा से बहुत प्रसन्न थे । यह मेरे जीवन की सबसे लम्बी तीर्थयात्रा थी जिसमें लगभग १० दिन का समय व्यतीत हुआ । शायद दो सप्ताह को छोड़कर हम लगभग जागते ही रहे । यात्रा दिन र जारी रहती, क्योंकि इतनी लम्बी यात्रा मेरे विचार से ऐसे ही सम्पन्न हो सकती है । इस यात्रा में मुझे बहुत आध्यात्मिक लाभ हुआ । यह यात्राएं मेरे लिये बहुत ही ज्ञानवर्धक रहीं । मुझे गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त था ।

यात्रा की तैयारियां व यात्रा आरम्भ :

हम यात्रा की तैयारियों में लग गये, मैंने अपने धर्मभ्राता श्री रवीन्द्र जैन से कहा, “तुम १० दिन दस की छुट्टी ले लो, हम किसी भी दिन निकल सकते हैं, स्वयं को तैयार रखना ।” एक आज्ञाकारी शिष्य की तरह उसने मेरे आगे अपना शीश झुका दिया । अब सीट बुक करवाने का काम था, सीट की बुकिंग लुधियाना से होनी थी। सो यह कार्य मेरे धर्मभ्राता श्री रवीन्द्र जैन ने किया । मगध एक्सप्रेस ट्रेन हमारे लिये ठीक थी, वह ट्रेन देहली रात्रि ८.३० वजे चलकर, प्रातः ११ वजे पटना पहुंचती थी । बुकिंग हो गई थी, किन्तु सीट की सूचना अभी नहीं मिली थी । एक दिन किसी कार्यवश हम दोनों देहली गये । वहां से बुकिंग के बारे में पता किया, पहली बार कम्प्यूटर पर बुकिंग देखी, हमारे नाम व सीट नंबर नजर आये तो दिल को शांति मिली । इधर सीट कन्फर्म हुई, उधर मेरे धर्मभ्राता की छुट्टी भी मंजूर हो गई। दोनों कार्य आवश्यक थे । सो वह शुभ घड़ी आ पहुंची जब हम दोनों के माता-पिता के आशीर्वाद व आज्ञा से प्रस्थान किया । मेरे धर्मभ्राता पहले मंडी गोविन्दगढ़ पहुंचे।

मंडी गोविन्दगढ़ से देहली की ओर प्रस्थान किया । हम कार द्वारा अम्वाला गये, वहां से देहली के लिये ट्रेन मिलनी थी । दोपहर को हम दिल्ली पहुंचे, वहां कुछ छोटे-बड़े काम थे । यात्रा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना जरूरी था। मैंने इसलिये देहली के प्राचीन दिगम्बर जैन लाल मन्दिर जाना मुनासिब समझा। वहां पहले हमने प्रभु के दर्शन किये । यात्रा की सफलता व शुभ कामना के लिये प्रार्थना मांगी। प्रभु पार्श्वनाथ व माता पद्मावती से आशीर्वाद प्राप्त किया । इस मन्दिर की दुकान से हमने जैनतीर्थ गाईड व नक्शे खरीदे जो यात्रा के लिये अनिवार्य थे ।

जैसे मैंने पहले उल्लेख किया है कि यह ट्रेन रात्रि ८:३० वजे चलनी थी । शाम का भोजन करने के पश्चात् हम ट्रेन की ओर रवाना हुए । जब हमने ट्रेन की सीट ग्रहण की तो वहां का नजारा देखने योग्य था । लोग रात्रि के कारण अपनी सीटों पर सोने को तैयार थे । वह बरसात के दिन थे । मैंने नवकार मंत्र की एक माला मन में फेरी । रात्रि अपनी चरम सीमा पर थी । यात्री धीरे-धीरे सोने लगे, पर सारे डिव्वे में एक आवाज हर पल गूंजती रही, वह थी खाने-पीने का सामान बेचने वाले हाकरों की । इनके कदमों की चहल-पहल व आवाजें हमें सारे सफर में सुनाई देती रहीं । यह विचित्र अनुभव था जिस रात्रि में भी दिन का नजारा अनुभव हुआ ।

हमारी सीटें चाहे दो थीं, परन्तु हमारा मन सारी रात बातें करने का था । मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन इसे सत्संग का नाम देते हैं, वह मुझे हमेशा 'साहिब' संज्ञा से पुकारते से आये है । जिसकी परिभाषा उन्होंने श्रमणोपासक पुस्तक में श्रद्धा से की है । ट्रेन अपनी तीव्र गति से चल रही थी । दिल्ली से सारी ट्रेने उन दिनों पंजाब में डीजल व कोयले से चलती थीं । ट्रेन अपनी गति से आगे बढ़ रही थी, वह ट्रेन बहुत खास स्टेशनों पर रुकती थी । पहले आया कृष्ण जन्म भूमि का तीर्थ मथुरा, जो संसार में प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसकी यात्रा १९७२ में पहले कर चुके थे । फिर स्टेशन आगरा आया, जो मुगल काल के समय राजधानी थी । मुगल स्मारकों में ताज महल, किला, सिकन्दरीया, दयालवाग, फतेहपुर सीकरी के लिये प्रसिद्ध है । फिर आया भारत का औद्योगिक नगर कानपुर, जो बड़े उद्योगों व चमड़े के उद्योग का मुख्य केन्द्र है । यह शहर उत्तर प्रदेश की अर्थ-व्यवस्था का केन्द्र है । कानपुर में देखने को बहुत कुछ था । कानपुर

अस्था की ओर बढ़ते कदम
 से आगे ट्रेन स्वः प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी की संसदीय सीट राय वरेली पहुंची, उसके बाद आया इतिहासिक तीर्थ ईलाहाबाद, जो त्रिवेणी संगम के नाम से प्रसिद्ध है । इस संगम के किनारे किले में प्रथम तीर्थंकर भगवान श्रवणभदेव का वह वृक्ष है, जिसके नीचे इन्हें केवल्य का ज्ञान प्राप्त हुआ था ।

फिर आया तीर्थ वाराणसी या बनारस । यह तीर्थ हिन्दू, जैन व बौद्ध परम्परा का इतिहासिक व धार्मिक स्थान है । इसे काशी के नाम से जाना जाता है । यहां बड़ा स्टेशन मुगल सराय है, जो कोयले की अच्छी मंडी है । यहां से कोयला ट्रकों में भरकर पूरे भारतवर्ष में पहुंचता है ।

मुगल सराय में ट्रेन सबसे अधिक समय रुकी । यह तीर्थ हनारी यात्रा में था लेकिन हमें सर्वप्रथम पटना पहुंचना था । वाराणसी पहुंचते-पहुंचते दिन निकल आया । यहां सबसे बड़ी जरूरत स्नान की थी । यह व्यवस्था ट्रेन में नहीं थी । अब सूर्य के दर्शन हो चुके थे । ६ बजे के करीब ट्रेन आरा पहुंची । यह स्टेशन श्री देव कुमार जैन शोध संस्थान के लिये काफी प्रसिद्ध है । यहां से जैन कम्यूनिटी नामक शोध पत्रिका प्रकाशित होती है । इस संस्था ने बहुत से जैन विद्वानों को जन्म दिया है । यहां पर विशाल पुस्तकालय व हस्तलिखित लेखों के भण्डार हैं, जिसके दर्शन करने के लिये विदेशों से लोग यहां आते रहते हैं ।

ट्रेन के आरा से गुजरते ही बिहार की राजधानी पटना में पहुंचे । स्टेशन पर उतरकर स्नान किया । फिर नाश्ता आदि किया । अब हम पटना शहर देखने में व्यस्त हो गये । हमें कार्यक्रम अनुसार शहर को देखना था । यह पटना शहर पुरातन जैन शहर है । इसका निर्माण राजा श्रेणिक के पोत्र ने राजा उदयन ने गंगा किनारे करवाया । राजा उदयन

ने करवाया यहां पाटल वृक्षों की भरमार थी, इस कारण इसका नाम पाटलीपुत्र पड़ा । यहां घना जंगल था तथा पाटल वृक्ष की भरमार थी । इसी कारण श्रेणिक की नई राजधानी का नाम पाटलीपुत्र पड़ा । मौर्य काल तक यह नगरी अपने विकास की चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी ।

पाटलीपुत्र का नाम धीरे-धीरे पटना पड़ गया । इसका प्राचीन नाम पाटलीपुत्र है । यह नाम जैन ग्रंथों में उपलब्ध होता है । जैन आगमों की एक वाचना यही पर सम्पन्न हुई । यहीं आचार्य स्थूलिभद्र का जन्म हुआ । कौशवेश्या के यहां लम्बा समय बिताया । मुनि बनने के बाद इसी वेश्या को धर्म उपदेश देकर साध्वी बनाया । नंद वंश के राज्य में स्थूलिभद्र के पिता, भाई मन्त्री रहे थे । उनके भाई साधु बने । सात बहिनों ने दीक्षा ली । यहीं महावीर के श्रावक सुदर्शन का स्थान है, उनसे सम्बन्धित कुंआं गुलजार बाग में स्थित है । सभी धर्मों के लिये यह पवित्र स्थान है । गंगा नदी पर विशाल पुल गांधी त्रिज के नाम से संसार में प्रसिद्ध है । अंग्रेजों ने इस शहर के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । सिक्खों के दसवें गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह का जन्म स्थान भी पटना है ।

राजगृह से श्रेणिक कुछ समय तक चम्पा में रहा । फिर उसने राजधानी बनाया । जैसे पहले बताया गया है मौर्य वंश के शासनकाल में यह राजधानी इतने विकास पर थी कि चीनी व यूनानी यात्रियों ने इस नगर की प्रशंसा की है । यह नगर इतिहासिक व पुरातत्व की धरोहर है ।

यह नगर सभी धर्मों व परम्पराओं से संबंधित प्राचीन नगर है । यहां बिहारी भाषा में लोग बातचीत करते हैं । यहां के लोगों में जैन धर्म के बारे में जानकारी न के बराबर है । असल में मारवाड़ी और राजस्थानी व्यापारी तीर्थक्षेत्र की

आस्था की ओर बढ़ते कदम

देखरेख करते हैं । लोग बहुत पछड़े हुए हैं, लोगों का खानपान भी शुद्ध नहीं, पर तीर्थ कमेटियों की व्यवस्था से यात्रियों को कोई दिक्कत नहीं आती । वैसे भी हर तीर्थ पर बहुत सारी धर्मशाला व भोजनशालाएं यात्रियों में कठिनाईयों को दूर करती हैं । इस सदीयों में जैन एकता के कारण हम पटना शहर में संख्या निरन्तर बढ़ रही है । मैंने वर्तमान पटना शहर की स्थिति का एक यात्री के नाते विवेचन किया है । हम अब स्टेशन से बाहर आ चुके थे । यह नगर वैसा ही था जैसा बिहार का आम शहर । मुझे यह पता चला कि बिहार में दो श्रेणी के लोग मिलते हैं धनवान या गरीब । मध्यम श्रेणी यहां नहीं है, खेती न के बराबर है । बिहार में कोयला, तांबा, जिस्त, अभ्रक भरपूर मात्रा में निकलता है । बिहार के मूल निवासी अभी भी छुआछूत में विश्वास करते हैं । देखा जाये तो बिहार में दो धर्म हैं—वैदिक और मुस्लिम : कुछ पिछड़ी श्रेणी के लोग ईसाई व बौद्ध हैं । पर जैन धर्म का प्रचार हजारों वर्षों से न होने कारण बिहार के मूल निवासी जैन कम मिलते हैं । वहां एक जाति सराक है जो जैन हैं यह जाति बिहार, बंगाल, उड़ीसा में मिलती है । इसे जैन धर्म का वचा-खुचा रूप कहा जा सकता है । यह लोग शाकाहारी हैं, प्रभु पार्श्वनाथ के उपासक हैं, खेती से आजीविका चलाते हैं, कई मुनि इस जाति के विकास में लगे हैं ।

पटना की यात्रा :

पटना शहर के प्राचीन नगरों में कुसुमपुर, पुष्पपुर भी उपलब्ध होते हैं । हम नगर में घूम रहे थे और सोच रहे थे कि यात्रा कहां से शुरू की जाए ? कभी यह वैभवपूर्ण नगर था । हमने सर्वप्रथम एक आटोरिक्षा लिया, उसे पटना के इतिहास स्थल दिखाने को कहा । सबसे पहले पटना स्थिति

प्राचीन जैन मन्दिर में गये । दोमंजिले इस मन्दिर में विभिन्न तीर्थंकरों की भव्य व विशाल श्याम वर्णीय प्रतिमाएं हैं । उस समय मन्दिर में आरती चल रही थी । यह श्वेताम्बर परम्परा का काफी प्राचीन मन्दिर है । यहां प्रतिमाएं भव्य, विशाल व काले पत्थर की हैं । यह जैन मन्दिर जैनधर्म का इतिहासिक मन्दिर है । इसी के भव्य परिसर में १६६६ को सिक्खों के दशम् गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह का जन्म हुआ था । यह घटना जैनों व सिक्खों के रिश्तों पर प्रकाश डालती है । यह मन्दिर सेठ की हवेली का भाग था । अब उस हवेली के मध्य में दीवार बना दी गई है । इस मन्दिर के जिस भाग में ६वें गुरु श्री तेग बहादुर जी सपरिवार टहरे थे, वहीं गुरु गोविन्द सिंह जी का जन्म स्थान है । १६८० तक इस मन्दिर व गुरुद्वारे का रास्ता तक एक था । अब दीवार चाहे बन गई है, पर मन में कोई दीवार नहीं । मन्दिर व गुरुद्वारा आपसी प्रेम की उदाहरण है । कुछ सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर इसका निर्माण किया गया है । हर धर्म को अपनी अलग पहचान रखनी पड़ती है, इस दृष्टि से गुरुद्वारा व मन्दिर एक परिसर होते हुए एक भेद रेखा खींची गई है ।

हम लोगों ने प्रतिमाओं को श्रद्धा से निहारा, फिर प्रभु की पूजा विधि व श्रद्धा सहित की । इस प्रकार की भव्य प्रतिमाओं वाला परिसर कम ही दिखाई देता है । मन्दिर के बाद हम गुरुद्वारे के विभिन्न परिसरों के दर्शन किये । वहां के एक पंजाबी युवक ने हमें पंजाब का जानकर बहुत सम्मान दिया । उन्होंने गुरुद्वारे की प्राचीनता बताते हुए कहा है कि गुरु तेग बहादुर जब धर्म प्रचार हेतू, विहार, बंगाल व आसाम हेतू जा रहे थे तो गुरु पत्नी गर्भवती थी । उन्होंने इसी धर्मशाला में सेठ जी की देखरेख सानिध्य में माता को

रखा । सेठ जी ने गुरुपत्नी का हर प्रकार से ध्यान रखा, फिर गुरु गोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ । इस महल में गुरुजी की वाल-लीलाएं हुई । गुरुजी का कुंआ बहुत प्रसिद्ध स्थान है । इसके बाद एक अन्य गुरुद्वारे के दर्शन किये, जो ऐतिहासिक था । हम ऐतिहासिक स्थल वैशाली जाना चाहते थे जिसके बारे में विद्वानों का मानना है कि यह प्रभु महावीर की जन्म स्थली है । जैन इतिहास में प्रभु महावीर के ननिहाल इसी वैशाली में थे । सारे गुरुद्वारे संगमरमर से बनाये गये हैं, बड़ा यात्री निवास व लंगर की व्यवस्था अति सुन्दर है ।

हमने पटना शहर के कई इतिहासिक स्थानों का भ्रमण किया । इन सबमें से महत्वपूर्ण था पटना म्यूजियम । यह अजायबघर अंग्रेजों ने १५० वर्ष पूर्व स्थापित किया था । इसमें प्राचीन मुर्तियों के अवशेष हैं, जिनका संबंध जैन, बौद्ध व हिन्दू परम्परा से है । इस अजायबघर में दो महत्वपूर्ण वस्तुएं अभी तक मुझे ध्यान में हैं । एक है मौर्य कालीन तीर्थंकर प्रतिमा, जो भारत की सब प्राचीन प्रतिमा मानी जाती है । यह प्रतिमा हड़प्पा से मिली कायोत्सर्ग की प्रतिमा से मिलती जुलती है । इस म्यूजियम में कुषाण, मौर्य, गुप्तकाल के बहुत नमूने हैं । विदेशों के अजायबघरों से मिली बहुत सारी वस्तुएं इस भव्य म्यूजियम में प्रदर्शित की गई हैं । इस अजायबघर में सबसे नई वस्तुओं में से एक हैं करोड़ों वर्ष पुराना वृक्ष - जो अब पत्थर का रूप धारण कर चुका है । यह एक प्राकृतिक घटना है जो इस म्यूजियम की शान है । यह म्यूजियम पुरातत्व प्रेमियों के लिये तीर्थ से कम नहीं है । वैसे भी पटना में कई निजी पुस्तकालय, संग्रहालय आदि हैं, इन में खुदावख्श लाइब्रेरी, पटना विश्वविद्यालय, गांधी मैदान, विहार की राजधानी की शान है । यहां प्राचीन

आस्था की ओर बढ़ते कदम

पाटलीपुत्र के खण्डहर भी मिलते हैं । पटना शहर में मारवाड़ी व गुजराती समाज के घर हैं जो यहां लोहे व अन्य धातुओं के व्यापार करते हैं । पटना शहर में गरीबी के दर्शन होते हैं, औरतें साड़ी पहनती हैं । अधिकांश हिन्दू जाति में यादव हैं, दूसरे मुस्लिमान हैं, यहां की औरतें गरीबी के शोषण का शिकार भी रहती हैं । विहार में नक्सलवाड़ी लहर व्यापक स्तर पर सावधान रहना पड़ता है विहार के बारे में एक कहावत मशहूर है कि अगर यहां किसी गांव को आग लग जाये, पानी नहीं उठाते, हथियार लेकर भागते हैं । विहार शिक्षा के मामले में पिछड़ा राज्य है । इसी अज्ञानता के कारण राजनैतिक दल विभिन्न प्रकार से लोगों को भटकाते हैं, रोजाना कत्ल होते हैं, गांव को आग लगा दी जाती है, सामूहिक बलात्कार की घटनाएं होती हैं । बुद्ध और महावीर की भूमि पर यह कलंकित घटनाएं अच्युत शर्मनाक हैं, पर यह लोग बुद्ध और महावीर को भूल चुके हैं । यह लोग आज से २६०० वर्ष पहले के युग में जी रहे हैं, इनकी सोच बहुत ही छोटी है, पर जैनों के कारण इस धरती का कणकण पूजनीय व वन्दनीय है । यहां हनारे तीर्थंकरों के कल्याणक हुए हैं । इस क्रम में हम पटना शहर दोपहर तक घूमे । फिर शाम को प्रभु महावीर से संबंधित वैशाली पहुंचे ।

वैशाली :

मैंने वैशाली का वर्णन किया है । वैशाली प्रभु महावीर के नाना व श्रावक राजा चेटक की राजधानी थी, वैशाली गणतन्त्र की जिसमें ७७०७ राजा थे, सभी प्रभुता सम्पन्न थे । यह राजा रथ मुशल संग्राम में राजा चेटक की सहायताार्थ आये थे। इसमें काशी, कौशल आदि के १८ राजा प्रमुख थे

। राजा कोणिक के साथ इनका संग्राम वैशाली में हुआ था । वैशाली का वर्णन वाल्मीक रामायण में भी आया है । बुद्ध ग्रंथों में वैशाली की भव्यता का वर्णन है, वैशाली के लोगों ने महात्मा बुद्ध को धरती के देव कहा है । वैशाली के राजा सामूहिक फैसलों के लिये आपस में जुड़ते थे । उनके निर्णय वर्तमान गणतन्त्र के लिये उदाहरण हैं । जैन व बौद्ध धर्म के संघ के निर्माण में इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है ।। यहां की रानी चेलना थी, जो भगवान महावीर की समर्पित उपासिका थी । राजा चेटक किसी अजैन की कन्या नहीं लेता था, पर वह विवाह प्रेम विवाह था । इसलिये राजा श्रेणिक एक राजगृह से वैशाली तक एक सुरंग का निर्माण कराया था । चेलना व उसकी वहिन दोनों श्रेणिक को चाहती थीं । चेलना पहले पहुंच गई, राजा श्रेणिक चेलना को भगाकर ले गया । उसी की वहिन लज्जावश घर नहीं गई, वह प्रभु महावीर की श्रमणी बन गई । बाकी सभी राजा जैन थे, रानी चेलना पटरानी बनी । राजा श्रेणिक बौद्ध था ।। रानी चेलना अपने पति से प्रभु महावीर का भक्त बनाना चाहती थी, पर धर्म श्रद्धा आत्मा का विषय है, बनने से कोई धार्मिक नहीं बनता, पर जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे होते हैं कि वह जीवन धारा को मोड़ कर रख देते हैं । ऐसी ही घटना का विवेचन हम आगे करेंगे, जिस घटना ने राजा श्रेणिक को प्रभु महावीर का परम भक्त बना दिया ।

पर यहां तो हम वैशाली की बात कर रहे हैं, दोपहर को हमने वैशाली की ओर प्रस्थान किया, इसके लिये छोटा रास्ता गांधी पुल से जाता था । पुराना रास्ता गांधी पुल से जाता था । पुराना रास्ता किशती का भी है । यह गंगा का पार है । इस नदी को प्रभु महावीर ने वैशाली से राजगृह जाने के लिये प्रयोग किया था । उनके जीवन की अनेक

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 घटनाओं की साक्षी यह गंगा है । हमने बस द्वारा रास्ता तय करने का निश्चय किया क्योंकि पुल के कारण वैशाली का रास्ता कम हो गया था । यह पुल भारत की प्रकृति का प्रतीक है । वैशाली अब तो जिला बन चुका है । उन दिनों मुजफ्फरपुर जिले में यह नगर पड़ता था । हम भव्य पुल के माध्यम से गंगा नदी पार कर रहे थे । हमें गंगा की विशालता देखने का प्रथम अवसर था । यही गंगा नदी थी जिसे नाव द्वारा पार करते समय प्रभु महावीर को एक देव ने कष्ट पहुंचाया था । तब मल्लाह ने कहा था कि इस महापुरुष के कारण गंगा का तूफान हमारा कुछ नहीं विगाड़ सकेगा । प्रभु महावीर की कृपा से सभी यात्री कुशलतापूर्वक किनारे पर लग गये थे ।

पुल पार करते ही हाजीपुर थाना आता है । इससे कुछ किलोमीटर ही वैशाली की भव्यता के दर्शन होते हैं । हमारा सामान भी हमारे साथ था । अभी तय नहीं था कि हम कहाँ रुकेंगे । हम अब वैशाली में थे, सबसे पहले हम इतिहासकारों द्वारा मान्य कुण्डग्राम में वह स्थल पर पहुंचे जिसे भारत सरकार प्रभु महावीर की जन्म भूमि घोषित कर चुकी है । कहते हैं इस स्थान को लोगों ने संभाल कर रखा है । इस भूमि पर कभी हल नहीं चलाया । यह खोज ७० वर्ष की है । वैसे श्वेताम्बर व दिगम्बर अपना-अपना जन्म स्थान अलग मानते हैं । इसी कारण यहां एक दिगम्बर मन्दिर है । जिसमें पोखर से निकली प्रभु महावीर की काले रंग की प्रतिमा विराजमान है । यही भारत सरकार स्थापित अहिंसा प्राकृत जैनशोध संस्थान है । जैन देश-विदेश में विद्वान करते हैं । सुन्दर परिसर है, हमने अपना पंजाबी साहित्य यहां के पुस्तकालय को भेंट किया, छोटा सा बाजार है जहां सब्जी बेचने वाले बैठे थे ।

वैशाली में अशोक का स्तूप लाल पत्थर का बना हुआ है, जिसे देखने हजारों सालों से लोग आते हैं । जैन धर्म से सम्बन्धित एक स्तूप जन्म स्थान पर स्थित है, जहां कमलाकार में चरण बने हैं, हम वहां गये । प्रभु महावीर के जन्म स्थल को प्रणाम किया, क्योंकि यह विद्वानों द्वारा मान्य है । वहां के चित्र हमने खींचे, फिर यही चित्र हम पहले म्यूजियम के ले चुके थे । फिर वैशाली जैन शोध संस्थान के चित्र भी लिये । फिर हम उस स्थान पर गए, उसके कण-कण का निरीक्षण किया जहां प्रभु महावीर का छोटा सा मन्दिर है । यह क्षेत्र हरा भरा है । यहां केला खूब होता है, ताड़ के वृक्ष बहुत हैं ।

वैशाली का कण-कण खण्डहरों से भरा पड़ा है । हर कण-कण की अपनी कहानी है । यह उस दिशाल विनाश का दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जिसका वर्णन भगवती सूत्र व निरयावालिका सूत्र में वर्णन किया गया है । बौद्ध ग्रन्थों में इस विनाश का वर्णन है । बौद्ध ग्रन्थों में कोणिक को अज्ञातशत्रु कहा गया है जो उनका विशेषण है । मात्र एक हाथी और नौलखा हार के लिये उसने अपने दस भाईयों समेत अपने नाना चेटक को मार डाला । असंख्य सैनिक घोड़े, हाथी इस रथ इस युद्ध में काम आए । आठ किलोमीटर के घेरे में एक मैदान साफ किया गया । दोनों ओर की सेनाएं लड़ीं, वैशाली का विनाश हो गया । यही कहानी वैशाली के कंकर-पत्थर कहते हैं ।

हम आगे बढ़ रहे थे, शाम होने जा रही थी, गर्मी में सूर्य देर से अस्त होता है, इसी कारण हम शाम तक वैशाली घूमे । फिर यहां की नगरवधु आम्रपाली के उद्यान में घूमे । वैशाली की नगरवधु भगवान बुद्ध के दर्शन करने यहां आई थी, उसने भगवान बुद्ध से प्रार्थना की कि प्रभु आप मुझ

आस्था की ओर बढ़ते कदम
जैसी औरत के घर पधारे, मुझे आपने सम्मान दिया, मैं आपको कुछ देना चाहती हूँ ।

महात्मा बुद्ध ने कहा, “देवानुप्रिया ! जो देना है, संघ को दो, संघ को दिया दान मुझे स्वयं मिल जाता है ।

आम्रपाली बोली, “मैं अपना उद्यान संघ को उपहार स्वरूप देना चाहती हूँ, मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार करें ।” बुद्ध ने यह भेंट स्वीकार की । अब जब भी महात्मा बुद्ध पधारते तो इसी उद्यान में ठहरते थे । यह उद्यान के खण्डहर बहुत विशाल भूखण्ड में फैले हुए हैं । इसमें से कुछ स्थान पर इसकी खुदाई की जिसमें महल के खण्डहर भी मिले हैं ।

बौद्ध भिक्षुओं के रहने के प्रचीन विहार के खण्डहर भी देखे । यहां सारी सम्पदा लाल पत्थर की बनी हुई है । इन सब को कैमरे ने कैद किया । इस सारे सफर में मेरा धर्म भ्राता रवीन्द्र जैन मेरे साथ साथे की तरह रहा । मेरा धर्म भ्राता मेरी हर आशा पूरी करने में तत्पर रहता है । जहां समर्पण है, वहां धर्म है । धर्म का सहज रास्ता सहज समर्पण है ।

शाम हो चुकी थी, बस का समय नहीं था, हम घूम चुके थे । वैशाली के इतिहासक स्थल पर हमें शीश झुकाने का सुअवसर मिला । जन्म स्थान का उद्घाटन भारत के प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजिन्द्र प्रसाद जी ने किया था । प्राकृत हिन्दी, अंग्रेजी भाषा में एक शिलालेख लगा है, इस स्थल के पास बनिया गांव है, जो प्राचीन वाणिज्य गांव कहलाता था । इस नाम के कई गांव जैन इतिहास में मिलते हैं । हमने एक जीप ली, यहां जीप की व्यवस्था और ढंग की है, यहां ड्राइवर के साथ अंगरक्षक भी हथियार सहित चलते हैं । गाड़ीयां भरकर चलती हैं । हम पटना लौटे, हमें पटना में आकर पता चला के वैशाली में इतनी देर से आना जान

आस्था की ओर बढ़ते कदम
जोखिम में डालना है, पर हमें तो प्रभु महावीर का आशीर्वाद प्राप्त था । हमें किसका भय हो सकता था । भय तो हिंसा का लक्षण है, अहिंसा तो अभय प्रदान करती है ।

हम पटना में होटल की तलाश में घूम रहे थे । रात्रि के ११ बजे हमें होटल राजस्थान मिला । आधी रात्रि में हमें खाना मिला, जैसे-तैसे खाना खाया, पर रात्रि की थकावट के बाद सो नहीं सके क्योंकि आगे का कार्यक्रम तय करते रहे । विहार में गर्मी भी अधिक पड़ती है और ठंड भी अधिक पड़ती है । होटलों वाले से विहार में हमारा पहला अनुभव था फिर भी होटलों की सेवा अच्छी थी । शुद्ध शाकाहारी भोजन प्राप्त हो गया था ।

जैसे-तैसे करते रात्रि गुजरी, सवेरे को तैयार हुए, अब अगले मुकाम की तैयारी थी, पहले नाश्ता किया, फिर बस स्टैंड पर पहुंचे । हम राजगृह जाना चाहते थे । इसके लिये बस तैयार खड़ी थी । हमें यह भी पता चला कि कई टूरिस्ट बसें पटना, विहार शरीफ, राजगिरी (राजगृह) पावापुरी की यात्रा करवा शाम को पटना वापस हो जाती थीं । पर हम तीर्थ यात्री थे । तीर्थ यात्रा के जो नियम होते हैं । उनका पालन यथासंभव हमें करना था, पर रात्रि भोजन का नियम नहीं चल सका, यह हमारी कमजोरी है कि इस नियम का पालन नहीं कर सके । एक और बात बताने की है कि वैशाली की स्थापना इक्ष्वाकु और अलम्बुषा के पुत्र विशाल ने की थी, कई भागों को मिलाकर इसे विशाल रूप दिया गया, इसी कारण इसका नाम वैशाली पड़ा । यहां ठहरने के लिये एक जैन धर्मशाला व विहार सरकार पर्यटन विभाग का सूचना केन्द्र है । दोनों स्थानों के अतिरिक्त टूरिस्ट गैस्ट हाऊस में ठहरने की व्यवस्था है । परन्तु इस व्यवस्था का पता हमें काफी समय के बाद चला । हाजीपुर से वैशाली की

आस्था की ओर बढ़ते कदम
दूरी ३६ कि.मी. है । पटना से ५४ कि.मी. दूर है ।

बिहार शरीफ

हम राजगिरि के लिये रवाना हुए, वह प्राचीन राजगिरि जहां भगवान महावीर सैकड़ों बार टहरते थे, जिसका आगमों के स्थान पर सबसे ज्यादा वर्णन है । राजगिरि के रास्ते में इतिहासिक सूफी संत का स्थान पड़ता है । जिसे बिहार के शरीफ के नाम से पुकारा जाता है । हम लोग बिहार के मध्य में जा रहे थे, दो घण्टे के लम्बे सफर के बाद हम बिहार शरीफ उतरे । सारे बिहार में इस मुस्लिम फकीर की पूजा होती है । लोग इसकर मजार के पास मानता का धागा बांधते हैं । पूरा होने पर धागा खोल जाते हैं, पर जनसाधारण की आस्था का केन्द्र है । सूफी सन्तों का मनवता के प्रति प्रेम संसार को नये मार्ग का संदेश देता रहा है ।

हम इस शहर में उतरे मजार के पास आये, चारों तरफ सूफी संतों के स्मारक थे, हरे कपड़े के ध्वज लहरा रहे थे, चिराग जल रहे थे, प्रशाद की दुकानें थीं, फूलों व कपड़ों की चादरें चढ़ाने की दुकानें थीं । हमने भी उस फकीर की मजार पर हाजिरी दी । हमें जन-साधारण से सम्पर्क करने का अच्छा माध्यम मिला । पता नहीं यह लोग जैन यात्रियों की इतनी इज्जत क्यों करते हैं । जन साधारण में जैन यात्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है ।

यह शहर इतना बड़ा नहीं । पर्यटन स्थल के रूप में इसकी मान्यता बिहार में ही नहीं समस्त विश्व भर में है । हम यहां के बाजारों में घूमे । यहां बिहार के पिछड़ेपन के दर्शन हुए, गरीबी रेखा के नीचे रहते लोगों को करीब से देखने का अवसर मिला । यहां अविद्या के कारण अज्ञानता

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 के हर कदम पर दर्शन होते हैं । इस अविद्या का कारण सरकार की अव्यवस्था है । आजादी के ५० वर्ष बीत जाने पर भी यहां लोग हजारों साल पुरानी परम्परा से बाहर नहीं निकल पाये । गरीबी के साथ-साथ यह अस्पृश्यता, पशुबलि, जात-पात का पालन बड़े जोर शोर से होता है । दोपहर हो चुकी थी, यहां एक जैन मन्दिर होने की सूचना मिली, पर समय कम होने कारण हमने आगे जाने का फैसला किया । विहार शरीफ की यात्रा के बाद हमने अगले स्टेशन की बस पकड़ी । विहार शरीफ से दो रास्ते दो तीर्थों को जाते हैं । पहला है पावापुरी, नालन्दा, राजगिरि । दूसरा सीधा राजगिरि । हमने दूसरा रास्ता चुना क्योंकि वहां से राजगिरि नजदीक पड़ता था । दूसरा हम वहां कुछ दिन रुकना चाहते थे । हम बस में सवार हुए तो हमें छोटी सी रेलवे लाईन दिखाई दी । कहते हैं कि कभी अंग्रेजों ने यह लाईन बिछाई थी, पर आज यह मार्ग वन्द है ।

इतिहास :

जैन शास्त्रों में यह वर्णित है कि जब अजातशत्रु कोणिक ने राज्य के लिये अपने पिता को काराग्रह में डाल दिया, फिर उसने अपने नाना चेटक के साथ वैशाली का रथ मुशल संग्राम किया । कोणिक के पिता विम्बसार श्रेणिक थे । सारा परिवार महावीर प्रभु का भक्त था । वैशाली की राजकुमारी महारानी चेलना राजा श्रेणिक की पत्नी थी । यही कोणिक की माता थी । राजा कोणिक मगध का सम्राट और प्रभु महावीर का परम भक्त था । वह बौद्ध धर्म का सम्मान करता था, वह वह जीवन आगम्य से वह बौद्ध धर्म को मानता था । एक दिन कोणिक अपनी माता को प्रणाम करने के लिये महल में आया तो रानी चेलना ने कोणिक का प्रणाम

अस्वीकार कर दिया । राजा ने इसका कारण पूछा तो रानी चेलना ने उसे एक घटना सुनाई जिसका इस शहर से बहुत सम्बन्ध है । रानी चेलना ने कहा मैं तुम्हें राजा कैसे जान लूं ? तू तो दुष्ट है, जब तू मेरे गर्भ में था तब मेरे मन में राजा श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा हुई थी । मैं दुःखी रहने लगी । तेरे पिता से मेरा दुःख देखा न गया । उन्होंने अभयकुमार की समझ से मेरी यह इच्छा पूरी कर दी । मुझे तुम्हारे भविष्य का भी पता चल गया कि तू अपने पिता के लिये कष्टकारी है । मैंने अपना गर्भ गिराने की चेष्टा की, पर मैं असफल रही । फिर तेरा जन्म हुआ तो मैंने तुझे खड़ी पर फिंकवा दिया । अचानक राजा श्रेणिक अरुढ़ी के पास आये, वह तुम्हें गंदगी के ढेर से उठा लाये । तुम्हारी अंगुली को मुर्गे ने खा लिया था । तुम्हारे शरीर में पीक पड़ चुकी थी । उन्होंने उस पीक को अपने मूंह से चूसा, तुम्हारा हर प्रकार से ध्यान रखा । मुझे मेरे इस कार्य के लिये उपालम्ब दिया । मैं शर्मसार थी । अब तूने अपने भाइयों को मारा, मेरे पिता को मार पीटकर, अपने पिता को तूने कारागृह में डाल दिया है । इस घोर पाप के बाद तू राजा बनकर मेरे को मूंह दिखाने आया है । तुझे अपने कृत्य पर शर्म आनी चाहिये । मैंने तुझे जन्म देकर अपनी कोख को कलंकित किया है, तू दुष्ट है, मेरी नजर से दूर हो जा, मुझे अपने पति की शरण चाहिये तू हम लोगों को मौत दे दे ।”

रानी चेलना की फिटकार का श्रेणिक पर गहरा असर हुआ । वह हथौड़ा लेकर कारागृह में पहुंचा, वहां राजा श्रेणिक वेड़ियों से जकड़े जीवन की अंतिम घड़ियां गिन रहे थे । ज्यों ही उन्होंने श्रेणिक को हथौड़ा लेकर आते देखा, तो श्रेणिक सोचने लगे, पहले तो वह मुझे हंटरों से पीटता था ।

अब हथौड़ा लेकर आया है, ऐसी मौत से तो मेरा मरना अच्छा है ।” राजा श्रेणिक के पास एक अंगूठी थी जिसके अंदर जहर भरा हुआ था, ज्यों ही श्रेणिक राजा के करीब पहुंचा तो श्रेणिक ने अंगूठी से हाथ पर जहर डाला और अपनी जीवन की इहलीला समाप्त कर ली ।”

राजा की मृत्यु से कोणिक को बहुत गहरा आघात पहुंचा । अब उसका मन राजगृह नगरी से उच्चाट हो गया । वैशाली का वह पहले विनाश कर चुका था । उसने एक नया नगर चम्पा बसाने की योजना बनाई । पर उसके पुत्र राजा उदयन ने पाटलीपुत्र बसाया ।

जैन दृष्टि में राजगिरि ही सिद्धक्षेत्र तीर्थ है । इतिहास व संस्कृति का संगम है । राजगिरि को जैन व बौद्ध ग्रन्थों में राजगृह के नाम से जाना जाता है । इसके वर्णन से सारे आगम भरे पड़े हैं । अनेकों तीर्थकरों ने धर्म प्रचार के लिये इस शहर को चुना । इस शहर में प्रभु महावीर के १४ चतुर्मास हुए । यहां का राजा विम्बसार श्रेणिक प्रभु महावीर का परम भक्त था । उसकी रानी चेलना वैशाली की राजकुमारी थी । दिगम्बर परम्परा के अनुसार प्रभु महावीर ने अपना प्रथम उपदेश यही दिया था । श्वेताम्बर परम्परा की अनेकों इतिहासिक घटनाओं का वर्णन से राजगृह जुड़ा हुआ है । हर जैन आगम इस सुवाक्य से प्रसन्न होता है । “तेणं कालेणं, तेणं समणे रायगिहा नाम नयर होथा ।”

उस काल में राजगृह नाम का नगर था । इस नगर में धन्ना शालिभद्र सेठ पैदा हुए, जिनकी दीक्षा का वर्णन अनुपम है । शालिभद्र की माता इतनी सम्पन्न थी कि उसने नेपाल देश के व्यापारियों से समस्त कम्बल खरीद लिये थे । शालिभद्र उसकी इकलौती संतान थी । फिर ३२ पत्नियों के भोग में दिन रात डूबा रहता । फिर ऐसा प्रसंग आया उसके

आस्था की ओर बढ़ते कदम
समस्त परिवार ने धन सम्पदा छोड़ प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा ली ।

यही अभयकुमार मंत्री था जिसकी बुद्धि का सिक्का सारा संसार मानता था, फिर यहां चोरों का उत्पात हुआ । रोहिणी चोर ५०० चोरों का राजा था, भी यहां रहता था । जैन इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएं अर्जुन माली व सेठ सुदर्शन यही के रहने वाले थे । यहां रहने वाले श्रेणिक ने किसी कारण बौद्ध धर्मावलम्बी बन गया था । परन्तु एक घटना ने उसका जीवन ही बदल कर रख दिया । उस घटना का वर्णन किये बिना राजगृह का महत्व अधूरा ही रहता है । यह विवरण उत्तराध्ययन सूत्र में उपलब्ध है । यह प्रेरक प्रसंग है जिसने राजा श्रेणिक की जीवनधारा को बदलकर रख दिया ।

राजा श्रेणिक व अनाथिमुनि :

एक बार राजगृही नगरी का राजा श्रेणिक वन विहार के लिए निकला । वरसात का मौसम था । फल-फूलों में उपवन लहरा रहे थे । उस वन का नाम मण्डीकुक्षी चैत्य था । राजा सपरिवार वन विहार को निकला था । उसने वन में एक मुनि को ध्यानस्थ अवस्था में देखा । वह मुनि नवयुवक था । रूप व लावण्य उसका परिचय दे रहे थे । रूप लावण्य में वह धरती पर उतरा देवता लगता था । इतना सुन्दर नवयुवक मुनि क्यों बना ? यह प्रश्न श्रेणिक के मन में अंगड़ाईयां ले रहा था । आखिर राजा श्रेणिक ने पूछा, “हे नवयुवक ! तुम्हारे खाने-पीने के दिन हैं, तुम मुनि क्यों बन गए ? कृप्या मुझे कारण बताएं !” यह प्रश्न सांसारिक आत्माओं के मन में उभरता रहता है । अकसर संसार के लोग सोचते हैं कि मुनि जो वनता है किसी मजबूरी के

अस्थि की ओर बढ़ते कदम
कारण बनता है । लोगों ने तो कहावत बना रखी है :-

“नार मुई, सब सम्पति नासी, मुंड मुंडाये, भये सन्यासी !”

स्त्री मर गई, सम्पति का नाश हो गया । दोनों तरफ से चोट पड़ी फिर सिर मुंडाया और सन्यासी बन गये । लोगों की सोच मुनि जीवन के बारे में इतनी निम्न स्तर की है ।

मुनि ने कहा, “राजन् ! मैं अनाथ था, इसलिये साधु बन गया ।” राजा ने सोचा इसको मेरी बात ठीक ढंग से समझ नहीं आ रही है । इसे शायद यह पता नहीं कि मैं कितना बड़ा सम्राट हूँ, कितने राजा मेरे अधीन हैं, कितनी विशाल मेरी सेना है, कितना बड़ा कोष है । हर प्रकार से मैं सम्पन्न हूँ, मैं क्यों न इस मुनि का नाथ बनूँ ?

राजा श्रेणिक ने प्रत्यक्ष रूप से कहा, “मुनि ! अगर तुम्हारा कोई नाथ नहीं तो कोई बात नहीं, मैं तुम्हारा नाथ बनता हूँ ।”

राजा श्रेणिक की बात सुनकर मुनि को राजा की अज्ञानता पर तरस आया, पर उन्होंने स्पष्ट कहा, “राजन् ! तू तो स्वयं अनाथ है, तू मेरा नाथ कैसे बनेगा?” सामने राजा श्रेणिक है, जानते भी हैं, राजा सामने खड़ा है ऐसी स्थिति को जानकर राजा को अनाथ कहना मुनि के अभयता का प्रतीक है ।

इतनी बात सुनकर राजा अवाक रह गया । उसने पहले कभी ऐसा नहीं सुना था । इतिहास के ये बोल ऐसे हैं कि जो अपने आप में महत्व रखते हैं । कभी किसी राजा को कोई भिक्षु कहे कि तू स्वयं अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ? यह मुनि की स्पष्ट भाषा है ये घोष के माध्यम से मुनि ने राजा को सच्ची बात बता दी ।

राजा श्रेणिक ने सोचा कि यह मुनि अभी भी मेरी बात

ठीक तरह से नहीं समझ रहा मैं इसे स्पष्ट रूप से बताता हूँ, “हे मुनि ! मैं मगध देश का सम्राट श्रेणिक हूँ, यह महल, हाथी, घोड़े, कोष, सेना सब मेरा है । मैं तुम्हें निमन्त्रण देता हूँ कि इस मुनि वेष को छोड़कर मेरे महलों में राजकुमार सा जीवन व्यतीत करो, तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, मैं तुम्हारा नाथ हूँ, तुम्हारे खाने-पीने व भोग-विलास के दिन हैं । संसार के भोग भोगने के बाद साधु बन जाना ।”

अनाथी मुनि का उत्तर

राजा श्रेणिक की बात सुनकर अनाथी मुनि ने कहा, “राजन् ! जिसे तुम नाथ बनना कहते हो, यह तुम्हारी भूल है । इस प्रकार की विभूति तो मेरे पास भी थी, पर इसमें तुम्हारा क्या है ? वास्तव में यह भौतिक सोच ही तुम्हें अनाथ बना रही है । राजन् मैं तुम्हें अपनी कथा सुनाता हूँ, इसे ध्यान से सुनो । कोशाम्बी नगरी के सेट का मैं पुत्र था । मेरे पास अथाह सम्पदा थी । शायद किसी राजा ने बढ़कर मेरी धन-सम्पदा थी, मैं उनका इकलौता पुत्र होने के कारण उस सम्पत्ति का स्वामी था । मेरे माता-पिता मुझे बहुत चाहते थे, वह मेरे पर हर चीज लुटाते थे । मेरी पत्नी सुन्दर थी, जो मेरे प्रति पूरी तरह समर्पित थी । मेरी जीवन यात्रा संसार के भोग भोगते हुए चल रही थी । मुझे किसी प्रकार का भय नहीं था । मैं स्मृद्धिशाली जीवन जी रहा था । मेरी प्रतिष्ठा नगर में चारों ओर थी । मैं गरीबों के संरक्षक के रूप में जाना जाता था । एक बार अशुभ कर्मोदय से मेरी आंखों में भयंकर रोग उत्पन्न हो गया । यंत्र, मंत्र, तंत्र तथा औषधि से हर प्रकार से मेरा इलाज करवाया गया । पर ज्यों-ज्यों मेरा उपचार होता गया, मेरा रोग बढ़ता गया । सब लोग मेरा ध्यान रखते । मेरी माता दिन रात मेरा ध्यान रखती । मेरे पिता ने अपना धन पानी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 की तरह बहा रहे थे, परन्तु मुझे कहीं से भी आराम नहीं मिल रहा था । मेरी पत्नी हर समय मेरा ध्यान रखती थी । सारी रात जागकर मेरी सेवा करती, पर माता, पिता, पत्नी धन-सम्पदा में से कोई भी मेरा दुःख काम न कर सका, इन सबमें मेरा कोई भी नाथ न बन सका, मैं अनाथ रहा ।”

एक रात्री मैंने सोचा, सब उपचार कर लिए, अब धर्म रूपी औषधि से उपचार करना चाहिए । मैंने सोचा अगर मैं सुबह रोग मुक्त हो गया, तो रोग मुक्त होते ही दीक्षा ग्रहण कर लूंगा ।”

मैं सुबह उठा, मेरा रोग जा चुका था । मैंने अपनी प्रतिज्ञा अनुसार प्रभु महावीर से दीक्षा ग्रहण की । मैंने उन सब कारणों से त्यागा, जो मुझे अनाथ बनाते थे । मुनि बनते ही मैं अपनी आत्मा का नाथ रूप बन गया हूँ । यह मेरी नाथ की परिभाषा है । संसार से के भोग-विलास किसी का सहारा नहीं बनते । मुझे नाथ-अनाथ की परिभाषा समझ में आ गई है ।

राजा श्रेणिक ने मुनि की त्याग भरी बात सुनी, वह भी सपरिवार प्रभु महावीर का सेवक बन गया । इस घटना ने राजा श्रेणिक को जैन धर्म का भावी तीर्थंकर बना डाला । यह राजा श्रेणिक था जो सारा जीवन प्रभु महावीर की भक्ति करता रहा, उसका पुत्र कोणिक भी प्रभु महावीर का भक्त था ।

इसी नगरी में पुणिया जैसा श्रावक पैदा हुआ, जिसके दरवाजे पर राजा श्रेणिक एक समायिक का फल मांगने गया था । मात्र भगवती सूत्र में हजारों बार इस नगर का नाम आया है ।

बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रत के चार कल्याणक यहां हुए, उनमें जीवन से संबंधित अनेकों प्राचीन स्थान हैं ।

इसके अतिरिक्त अनेक उतार-चढ़ाव इस नगर ने देखे हैं । यह नगर पांच पहाड़ों के मध्य बसा हुआ है, पर प्राचीन काल में इस का विस्तार नालन्दा तक था । सूत्रकृतांग सूत्र में नालन्दा को इस का मुहल्ला माना गया है । श्रेणिक से पहले यह नगर सुरक्षित नहीं था । उसने इसका पुर्ननिर्वाण कराया । एक भव्य किले के चार-दीवारी आज भी शहर के बाहर देखी जा सकती है । यह चार दीवारी अब खण्डहर के रूप में विहार में है ।

जैन तीर्थ के इलावा महात्मा बुद्ध का यहां काफी आगमन रहा । महात्मा बुद्ध से संबंधितकारी स्मारक यहां देखे जा सकते हैं । संसार भर के बौद्ध, जैन पांचों पहाड़ियों की यात्रा करते हैं । बौद्धों की एक संगीती यहां के एक पहाड़ पर हुई थी । इस पहाड़ पर इतिहास गर्म पानी के भी कुंड हैं, जिनका वर्णन भगवान महावीर ने भगवती सूत्र में किया है । जमीन पथरीली है, इसी कुंड के ऊपर मन्दिर है । इस सदी के प्राचीन मन्दिरों ने खण्डहर व शिव मन्दिर हैं । गर्मकुण्ड पर हिन्दु मन्दिर हैं । यहां मुस्लिम धर्म का मुकदस कुण्ड हैं ।

इस शहर में गुरु नानक देव जी पधारे थे । उनकी स्मृति में यहां एक गुरुद्वारा है । यहां ठण्डे पानी का एक कुण्ड है । इस तरह से यह नगर हर धर्म में संबंधित अंतराष्ट्रीय शहर है । इस शहर का मात्र श्रेणिक से ही संबंध नहीं, यह श्रेणिक परिवारों के अनेकों राजकुमार व राजकुमारियां पोत्र-पोत्रियां ने यहां महावीर से साधु जीवन ग्रहण किया । यहां मेघकुमार को प्रतिवोध हुआ था । अनेकों लोगों की जीवनधारा का बदलाव लाने वाले नगर की ओर हम अग्रसर हो रहे थे । यह परम पावन भूमि थी । जिसका कण-कण पवित्र था । हम वन्दनीय, पूजनीय भूमि पर हमारे

कदम बढ़ रहे थे । राजगिरि में शांत पहाड़ों के नाम इस प्रकार हैं विपुलांचल, रत्नगिरि, उदयगिरि, स्वर्णगिरि, वैभारगिरि । वैसे तो पांचों पहाड़ महत्वपूर्ण हैं यहां तीर्थंकरों के समोसरण आए थे । इन पर्वतों की चोटियों पर अनेक जैन मन्दिर हैं । उदयगिरि पर्वत पर बौद्धों का शांति स्तूप है । यहां जरासंध का किला है । इस के अतिरिक्त यहां स्वर्ण भण्डार मणिकार मठ, वैभवगिरि पर ११ गणधरों के चरण हैं । मैंने पहले लिखा है कि राजगृह का हर पत्थर जीवत इतिहास है । इस नगर के प्राचीन नाम चरणपुर, ऋषभपुर, कुसुमपुर, भूमति, गिरिधर, क्षतिफल, पचदैभव राजगृह रहे हैं । वर्तमान में यह नगर राजगिरि कहलाते हैं । शान को हम बस द्वारा राजगिरि बस स्टैंड पर उतरे, वहां बस अड्डे से यहां के दार्शनीय स्थलों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी थी । बस स्टैंड पर ही श्वेताम्बर एवं दिगम्बर जैन मन्दिरों के सूचना केन्द्र थे । इतने लम्बे सफर के बाद हमने चाय पीकर थकान दूर की । राजगिरि में संसार के कोने-कोने से बौद्ध आते हैं । यहां बौद्ध मन्दिर हैं । वहां हर प्रकार की सुविधा वाले होटल भी हैं । हम सर्वप्रथम दिगम्बर जैन मन्दिर गए । यहां प्राचीन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के दर्शन किए । यह मन्दिर काफी प्राचीन है । इस मन्दिर में यात्री के ठहरने की सुविधा तथा भोजनालय व सूचनाकेन्द्र हैं । इसके अतिरिक्त मन्दिर के परिसर में उन प्रतिमाओं का प्रदर्शन किया गया है जो राजगिरि के वैभवगिरि पर्वत से प्राप्त हुई थी । सभी प्रतिमाएं आठवीं सदी के करीब की हैं । अधिकतर लाल पत्थर और काले पत्थर की हैं । मन्दिर भव्य है, यात्रीओं से भरा रहता है । इसमें सटा श्वेताम्बर जैन मन्दिर का परिसर है । यहां धर्मशाला, भोजनालय व सूचनाकेन्द्र हैं । धर्मशाला प्राचीन है । दोनों परसरो में पर्वत चढ़ने के लिये डोली वालों

की भी अच्छी सुविधा है । श्वेताम्बर मन्दिर भूचाल का शिकार हो गया था । अभी इस मन्दिर का समान एक भव्य परिसर में रखा है । इसे नौलक्खा मन्दिर कहते हैं । इस पत्थर की इमारत पर उस जमाने के नौ लाख रुपये खर्च आये थे । यहां प्राचीन मन्दिर की समस्त प्रतिमाएं विराजमान हैं । यह एक प्राचीन शिलालेख मन्दिर में लगा हुआ है । इसकी भाषाएं संस्कृत हैं । यह मन्दिर लाल पत्थर का बना हुआ है । यहां मूल नायक भगवान् मुनि सुव्रत स्वामी की भव्य श्यामवर्ण की प्रतिमाएं हैं । यहां सीमंधर स्वामी की प्रतिमा भी है । मन्दिर के अन्दर छत पर लाल कमल काफ़ी वजन का है । हम अभी बस स्टैंड पर ही घूम रहे थे । अब हम तीर्थदर्शन करके वीरायतन पहुंचे पर रास्ते में विचार आया कि अभी दिन काफ़ी पड़े हैं, क्यों न राजगिर की इमारतों के दर्शन करें । हमने गर्म पानी के कुंड देखे, वहां से टांगा लिया, टांगे वाला एक छोटी उम्र का लड़का था, उसने पूछा साहब कहां जाना है ? मैंने कहा, “जो यहां देखने योग्य इमारतें हैं, वहां घुमाकर वीरायतन छोड़ दो । टांगे वाला १६-१७ साल का बच्चा था । वह इस क्षेत्र का काफ़ी जानकार था । टांगे वाला बड़ा दिलचस्प था । उसने हमें बताया कि मैं वीरायतन में साध्वी मां चन्दना के यहां से ५ जमात तक पड़ा हूं । उन्होंने हमें नवकार मंत्र, त्रिखतो का पाठ व २४ तीर्थंकरों के नाम सिखाये हैं । मुझे मांस अण्डे का त्याग करवाया है । मुझे मेरे हर कार्य में हर प्रकार से सहायता की है । हर दोपहर को मैं अपने गुरु को वन्दना करने जाता हूं ।” फिर उसने हमें नवकार मंत्र सुनाया । उस बालक को देखकर साध्वी चन्दना के काम का अंदाजा लगा लिया ।

जब वीरायतन का यह स्थान खरीदा गया तो ५ बीघे

अस्थि की ओर बढ़ते कदम
 में कुछ झोंपड़ियां डाली गई । चोर, डाकू का आतंक हर
 समय रहता था, पर साधु बन्दना ने कुछ ही समय से
 आसपास के गांव के लोगों को अपना लिया । अब वह
 उनकी धर्म की माता है । तांगा गर्म पानी के झुंडों से आगे
 बढ़ रहा था । रास्ते में गुरुद्वारा साहिब के दर्शन किये, फिर
 हम सोनभंडार गुफा की ओर बढ़ने लगे ।

सोन भंडार :

सोन भंडार गुफा एक जंगल में पड़ती है । इस गुफा
 के आगे का हिस्सा गिर चुका है । अन्दर के हिस्से में २४
 तीर्थकरों की प्रतिमाएं अंकित हैं । सबसे बड़ी बात यह है
 कि इस गुफा के पास ही एक और गुफा जैन मन्दिर है, जो
 मात्र खण्डहर है, वहां पहुंचने का स्थान लम्बा है । यह चौथे
 पहाड़ की तलहटी में है । इस गुफा का इतिहास बहुत
 महत्वपूर्ण है । किंवदन्ती है कि जब राजा कोणिक ने अपने
 पिता श्रेणिक को कैद कर लिया, तब कोणिक की माता
 चेलना ने अपना खजाना इस गुफा में छिपाकर रखा, उसे
 विशाल पत्थर से बंद कर दिया और ऊपर गुप्त लिपि में एक
 शिलालेख लिखवा दिया । एक शिलालेख उस पत्थर पर है
 जिसकी लिपि पढ़ी नहीं गई है । इस गुफा का सम्बन्ध
 गणधर गौतम से बताया जाता है । तब तक इस गुफा में
 अनेकों मूर्तियों का निर्माण किया था । लोगों का मानना है
 कि इस गुफा में रानी चेलना ने सोना छिपाकर रखा है ।

सोनभंडार गुफा देखने के बाद हम बाहर सड़क पर
 आये । वर्षा का वेग अचानक आया । उस समय हमें इस
 गुफा में शरण लेनी पड़ी । वापसी पर हमने एक और
 इतिहासिक इमारत का अवलोकन किया । उस इमारत का
 नाम था मणिकार मठ । अब यहां एक स्तम्भ ही है जिसे
 छप्पर से सुरक्षित किया गया है । यहां विशाल खण्डहर हैं ।

कहते हैं कभी यहां शालिभद्र का भव्य महल था । दोनों इमारतों के बाहर पुरातत्व विभाग के सूचना पाटिका लगी है । जिसमें यह ज्ञात होता है ।

शाम अंधेरे का रूप ले रही थी । हम दिन का आनन्द लेना चाहते थे । इतनी लम्बी यात्रा की थकावट हो चुकी थी । हम आगे बढ़े । जहां मण्डीकुर्सी के चैत्य के पास बौद्ध विहार के खण्डहर थे । बौद्ध लोग इस स्थल पर विपुल यात्रा में घूम रहे थे । श्रीलंका में भिक्षु हमें पहले दिन मिल चुके थे । यह भिक्षु जापान के थे । यह अच्छी अंग्रेजी बोल लेते थे । बौद्ध भिक्षु गुजारे के लिये कुछ पैसा रख सकते हैं । पर त्याग-वैराग्य ज्ञान में वह सम्पन्न हैं ।

हमारी उनसे जैन व बौद्ध धर्म के सम्बन्धों के बारे में चर्चा हुई । यह वदकिस्मती है कि संसार में लोग जैन धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते । इसका कारण हमारी प्राचीन परम्पराएं हैं । आज इन परम्पराओं का पूर्व मूल्यांकन करने की जरूरत है । आज प्रचार की जरूरत है । अब हमारा समाज इस बात की आवश्यकता समझने लगा है । इसी कारण आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज भारत से बाहर विदेश में घूमे और उन्होंने विदेशों में अनेकों मन्दिर व आश्रमों की स्थापना की । थकावट से हम चूर हो चुके थे । हम वीरायतन में वापस आए । वीरायतन की स्थापना भगवान महावीर का निर्वाण ई० २५०० महोत्सव पर भारतीय संस्कृति के दार्शनिक श्रमण राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० की कल्पना अनुसार साध्वी आचार्य चन्दना जी दिशानिर्देश में हुई । हमें रास्ते में एक बौद्ध भिक्षुणी भी मिले । जो गर्मकुण्ड क्षेत्र में यात्रा कर रही थी, वह अंग्रेज थी । उसने हमें बताया कि उसका मठ श्रीलंका में है । कुछ समय के बाद हम वीरायतन के द्वार पर थे । वीरायतन अपने

आपें में एक ऐसी संस्था है जो कला, सांस्कृति, इतिहास, साधना, सेवा व साहित्य का संगम है । यहां हम रात्रि के ८ वजे पहुंचे । सर्वप्रथम गुरुदेव श्री अमरमुनि जी म० के दर्शन किये । रात्रि काफी हो चुकी थी, हमने उन्हें अपने आने की सूचना दी । उनके एक शिष्य ने हमें कविश्री के साहित्य भण्डार के दर्शन करवाये । हमने उनके कुछ प्रकाशन खरीदे ।

मुझे यहां एक घटना का संस्मरण आता है जब मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने कहा, “गुरुदेव मैं मालेरकोटला से आया हूं ।” गुरुदेव ने अन्दर से फुरमाया, “क्या साथ में पुरुषोत्तम है तो अच्छी बात है ।” मैंने हामी भरी । मैंने उन्हें बताया कि मैं आपके दर्शनों के लिये विशेष रूप से आया हूं । गुरुदेव ने कहा-“भैया रात्रि हो चुकी है, कल मिलेंगे, खूब बातें करेंगे, अभी तुम सो जाओ ।” हमने गुरुदेव को पुनः वन्दन किया और अपने रहने की व्यवस्था के स्थान पर चले गये ।

वीरायतन में रहने, घूमने व भोजन की सुन्दर व्यवस्था है । राजगृही हर प्रकार से इतिहासिक स्थल है । यह मात्र जैनों का नहीं, हर धर्मावलम्बी यह ठहर सकता है । मुनियों के प्रवचन सुन सकता है । वैभारगिरी आदि पर्वतों की यात्रा कर सकता है । यही सप्तपर्णी गुफा है, जहां रोहणी चोर रहता था । यही १६६२ में उपाध्याय श्री अमरमुनि जी ने अपना चातुर्मास ध्यान अवस्था में बिताया । तभी उन्हें प्रेरणा मिली । जिसक परिणाम वीरायतन के रूप में आया ।

१६७५ को महावीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर यह कार्य शुरु हुआ, यह निर्माण का कार्य है जो अब भी चालू है । १०० एकड़ भूमि पर भव्य परिसर में बहुत इमारतें बन चुकी हैं । भविष्य में अन्य योजनाओं पर काम जारी

है । असल में वीरायतन राजगिर की जान है । आज इसी वीरायतन की ब्रांच पूना, अहमदनगर, में स्थापित हो चुकी है । अब विदेशों में इंग्लैंड, अमेरिका, अफ्रीका में इसकी ब्रांचें कायम हो चुकी हैं । गुजरात के भूचाल में इस संस्था ने महत्वपूर्ण कार्य भूचाल पीड़ितों की सहायता के लिये किया है । यह कार्य आचार्य चन्दना जी के नेतृत्व में हो रहा है । यहां ३०० विस्तरों का आंखों का हस्पताल है । अभी-अभी इसकी एक ब्रांच प्रभु महावीर के जन्म स्थान लछुवाड़ (क्षत्रिय कुण्डग्राम) में खुल चुकी है । इस परिसर में बैंक, पुलिस स्टेशन, तीन प्रवचन कक्ष, २०० से ज्यादा यात्रियों के रहने के लिये धर्मशाला, हस्पताल, ब्राह्मी कला मन्दिर, पुस्तकालय व शिक्षा निकेतन, उल्लेखनीय हैं । अब उपध्याय श्री अमरमुनि जी का देवलोक हो चुका है उनकी समाधि भी यहां निर्मित की गई है । हम अपने कमरे में ठहरे । सुन्दर हवादार कमरे में हर प्रकार की व्यवस्था थी । हमें रात्रि को भोजन खाना पड़ा ।

मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने इतनी थकावट के बाद रात्रि को अपने वस्त्र साफ किये । गर्मी के कारण वस्त्र रोजाना गन्दे हो जाते थे । उसके बाद फिर कपड़े वीरायतन मार्केट के धोबी को दिये । हम सारी रात अगले दिन का कार्यक्रम बनाते रहे । गर्मी के बाद पर्वत की चोटीयों से मन्द हवा आ रही थी । दूसरे दिन हमारा कार्यक्रम बहुत व्यापक था ।

दूसरा दिन :

दूसरे दिन हम सुबह उठे । बाहर दुकान से चाय पी, फिर गर्म पानी के कुण्डों में स्नान किया । यह स्थल हिन्दूओं का भी तीर्थ है । यहां अनेकों हिन्दू मन्दिर हैं, हजारों यात्री

आस्था की ओर बढ़ते कदम
स्नान करते हैं । मुस्लमान व इसाई तक आते हैं । यह प्रकृति का चमत्कार है । स्नान के बाद गुरुदेव राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के दर्शन किये । उन्हें अपना कार्यक्रम बताया । उपाध्याय श्री जी से हम १९७२ से परिचित थे । उनसे पत्र-व्यवहार बना हुआ था । उनकी पत्रिका श्री अमर भारती से हम जुड़े हुए थे । वीरायतन तें विश्व भर के लोग आते हैं, कविजी वृद्ध अवस्था में भी शास्त्रों का स्वाध्याय कराते रहे ।

उपाध्याय श्री के शिष्यों ने हमें यात्रा में भरपूर सहयोग दिया । उनके प्रवचन नहीं सुन सके क्योंकि सुबह ही हम पहले पहाड़ वैभारगिरि की यात्रा को चल पड़े ।
वैभारगिरि :

इस पहाड़ के शुरु में ही दौलद संगीती चवूतरा है, जहां इस वारे में सूचना पटिका लगी है । इस पहाड़ की ५३१ सीढ़ियां हैं । यह सीढ़ियां बहुत थकान वाली हैं । यहां पर पांच मन्दिर हैं जिनमें भगवान नहावीर स्वामी, भगवान मुनि सुव्रत स्वामी, श्री धन्ना शालिभद्र तथा गणधर गौतम स्वामी की प्रतिमायें व चरण हैं । इसी पर्वत पर ८वीं सदी के प्राचीनतम जैन मन्दिर की प्रतिमाएं हैं । मन्दिर की इनारत गिर चुकी है । सप्तपर्णी गुफा इसी पर्वत पर है, जहां १९६२ में उपाध्यायश्री अमरमुनि जी ने चतुर्मास किया था । वैभारगिरि पर्वत हरा-भरा पहाड़ है, भूमि पथरीली है । पशु चरने के लिये इन पहाड़ों पर उगी हुई घास से अपना पेट भरते हैं । इस पर्वत की दो चढ़ाईयां हैं, पहली चढ़ाई चढ़ने के बाद पहले श्वेताम्बर मन्दिरों के दर्शन होते हैं । मन्दिर तो बाद का बना हुआ है, परन्तु इसमें विराजमान प्रतिमाएं बहुत प्राचीन हैं । वहीं मन्दिर के पुजारी ने हमें पूजा का लाभ प्रदान किया । फिर हम दिगम्बर जैन मन्दिरों की ओर

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 बढ़े । वहां पूजा की । यहां अधिकांश तीर्थंकरों के चरण हैं । फिर इसी पहाड़ के ऊपर १ किलोमीटर सीधी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है । वहां एक वृक्ष के पीछे ११ गणधरों के चरण चिन्ह हैं । यह माना जाता है कि इस पहाड़ पर गणधरों का निर्वाण हुआ था ।

फिर हम वापसी उतरे । पहाड़ में एक मार्ग अलग आता है उस मार्ग के रास्ते में एक द्वाँ सदी के मन्दिर के खण्डहर देखे । इसमें २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं पर यह मन्दिर सरकारी स्मारक है । यह कभी प्राचीन तीर्थस्थल का मुख्य केन्द्र रहा होगा । इसके आगे इसी काल का शिव मन्दिर भी इतना प्राचीन ही है । यह मन्दिर सुरक्षित है । वहां रात्रि दर्शन व पूजा करते हैं । मैं भी वहां दर्शनार्थ गया । इस स्थान के विल्कुल सामने चोटी पर धन्ना शालिभद्र का मन्दिर है । यह भारतवर्ष का अपने ढंग का अकेला मन्दिर है । धन्ना शालिभद्र की कहानी में हम बता चुके हैं कि शालिभद्र कितना वैभव सम्पन्न था कि राजा श्रेणिक तक नहीं जानता था । जब श्रेणिक की रानी खेलना ने रत्न कम्बल की जिद्द की तो पहले अपना दाम सुनकर वह चुप हो गया, पर रानी के त्रिया हट के आगे झुकना पड़ा । व्यापारियों की तलाश की, व्यापारीयों का दल मिला । उन व्यापारियों ने कहा, “महाराज ! आपके शहर की एक ही महिला ने हमारे सारे कम्बल खरीद लिये हैं । उसने हमें यह भी कहा है कि मेरी ३२ बहुएं हैं पर कम्बल १६ हैं । उसने तो इन कम्बलों को पैर पोंछने के लिये अपनी पुत्रवधु को दे दिया है ।”

राजा श्रेणिक शालिभद्र की सम्पन्नता से हैरान हो गया । वह शालिभद्र की माता भद्रा सेटानी को मिलने आया । सात मंजिला महल था । शालिभद्र की माता सारा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कार्यभार देखती थी । उसका नाम भद्र था । भद्र सेठानी ने राजा का घर पर सम्मान किया, फिर अपने पुत्र को पुकारा, “वेटे ! नीचे आओ, श्रेणिक आये हैं ।”

पुत्र ने उत्तर दिया, “माता जी ! आज मेरी क्या जखूरत है, श्रेणिक आया है तो उसे किसी भण्डार में रखवा दो ।”

माता शालिभद्र की अज्ञानता से दुःखी हो गई । उसने कहा, “महाराज ! मेरा लड़का दुनिया से वेखवर है, वह अपनी ३२ पत्नीयों के साथ कामभोग में डूबा रहता है, उसका अपराध क्षमा करें ।”

माता ने पुनः शालिभद्र को पुकारा, “वेटा ! हमारे स्वामी महाराज श्रेणिक आए हैं, तुम उन्हें आकर प्रणाम करो ।”

माता की बात सुनो तो शालिभद्र को एक चोट लगी । उन्होंने सोचा क्या मेरा भी कोई स्वामी है ?

सेठ शालिभद्र नीचे आये । राजा श्रेणिक के चरण छुए । राजा को भोजन करवाया, उपहारों से राजा को सम्मानित किया ।

फिर किसी समय श्रमण भगवान् महावीर धर्मप्रचार करते राजगृह के गुणशील चैत्य में पधारे । राजा श्रेणिक ने घोषणा करवाई । राजा श्रेणिक सपरिवार प्रवचन सुनने आया । इस प्रवचन में शालिभद्र, उसकी पत्नीयां व माता पधारे । शालिभद्र ने प्रवचन सुना । उस पर वैराग्य का रंग चढ़ आया । उसने प्रभु महावीर के सामने प्रतिज्ञा की-आज से मैं रोजाना एक-एक स्त्री को छोड़ूंगा । इस बात की सूचना शालिभद्र की बहिन व बहनोई को लगी । बहिन दुःखी रहने लगी । एक दिन वह पति के केश संवार रही थी कि उसकी बहिन की आंखों में आंसू आ गये । पति ने

आस्था की ओर बढ़ते कदम

आंसूओं का कारण पूछा। पत्नी ने कहा, मेरा अकेला भाई साधु बनने जा रहा है, वह एक-एक पत्नी रोजाना छोड़ रहा है।”

धन्ना ने कहा, “सेटानी ! तुम्हारा भाई वुजदिल है, वह कोई त्याग है ? यह तो त्याग का मजाक है, अगर छोड़ना है तो सारी पत्नियों को एक साथ क्यों नहीं छोड़ देता ?”

सेटानी ने कहा, “पतिदेव ! कहना सरल है, पर संयम व त्याग पर चलना कठिन है । अगर आप एक पत्नी को त्याग नहीं सकते तो जिसकी ३२ पत्नियां हैं वह कैसे त्यागेगा ?”

पत्नी की बात सुनकर धन्ना का आत्मदेव जागा, उसने वलपूर्वक कहा, “आज से मैं आप सभी का त्याग करता हूँ ।” इतना कहकर वह घर से अपने ससुराल घर में आया । शालिभद्र को ललकारते हुए कहा, “तू कायरों की भांति एक-एक पत्नी को छोड़ने का दम्भ क्यों भरता है, छोड़ना है तो सबको एक साथ छोड़ो जैसे मैंने छोड़ा है।

शालिभद्र की आत्मा जागृत हुई । शालिभद्र व उसकी माता व ३२ पत्नियों ने गृह-त्याग संयम का मार्ग ग्रहण किया । धन्ना ने सपरिवार दीक्षा ग्रहण की । उनकी स्मृति को समर्पित यह जैन मन्दिर है । जो इस पर्वत पर शान से खड़ा है। यह मन्दिर मणिकार मठ के पास है । भारत में ऐसा अकेला जैन मन्दिर है जहां दोनों जीजा-साला की गृहरथ अवस्था में प्रतिमाएं हैं । वापिस उतरते ही हमने वह स्थान भी देखा जहां उपाध्याय श्री अमरमुनि जी ने प्रवास किया था, सप्तवर्णी गुफा देखी, जहां कभी रोहिणी चोर ने लोगों को आतंकित किया था, इस चोर को मंत्री अभयकुमार ने अपनी चतुराई से पकड़ा था । पहाड़ के नीचे उतरे हमें यह बताया गया कि यह गुफा अन्दर से काफी लम्बी है ।

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 यह गया के पहाड़ों तक जाती है । इस के गीलेपन को मैंने भी देखा । यह सम्पदा आज भी भारतीय इतिहास की अनेकों गाथाएं छुपाये हुए हैं । हम पहाड़ से नीचे उतरे । तीथा वीरायतन कवि जी महाराज के दर्शन किये । उन्होंने मेरे सन्मार्थ प्रोग्राम बना रखा था, जिसका समय ३ वजे दोपहर था, हमारे पास खुला समय था । हमने यहां भोजन किया । भोजन राजस्थानी था । तब श्री फिरोदीया जी इस संस्था की देखरेख करते थे । आचार्य चन्दना विदेश गई हुई थी । हमें जानकर प्रसन्नता हुई कि कवि जी महाराज का तारा साहित्य प्रकाशित होने लगा है । इस क्षेत्र की प्रगति बहुत महत्वपूर्ण है ।

ब्राह्मी कला मन्दिर :

यह कला व इतिहास की एक प्रदर्शनी है । विभिन्न पैनलों द्वारा भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक का सारा जैन इतिहास प्लास्टिक आफ पैरिस से जीवित किया गया है । सारे संसार में ऐसा कोई संग्रहालय नहीं । यह साध्वी चन्दना जी की अपनी देन है । अब तो इंग्लैंड, अमरीका में ऐसे जैन म्यूजियम स्थापित हो चुके हैं । साधारण टिकट से यहां प्रवेश किया जा सकता है । इसमें मात्र तीर्थंकर तक का वर्णन नहीं बल्कि भगवान महावीर के बाद हुए प्रभाविक आचार्यों की जीवन गाथा का वर्णन इस मन्दिर में देखने को मिलता है । यहां तक उपाध्याय श्री अमरमुनि जी के जीवन से सम्बन्धित अनेकों पैनल यहां बने हैं । इसी परिसर में एक समोसरण की रचना की गई है । असल में वीरायतन जो प्राचीन वैभवगिरि पर्वत की तलहटी में स्थापित है । यह गुणशील चैत्य की भूमि है । इस चैत्य का विस्तार बड़ा था । गुणशील व राजगृह, श्रेणिक राजा इन

आस्था की ओर बढ़ते कदम

तीनों के उल्लेख में आगम भरे पड़े हैं । वीरायतन के शांत परिसर में ब्राह्मी कला मन्दिर है । एक वार तो हम इन पैनलों को देखकर जैन श्राविकों, राजाओं और तीर्थंकरों के जीवन से परिचय होते हैं । इनके माध्यम से हम इतिहास की गलियों में मस्त होकर घूम सकते हैं ।

यह कला मन्दिर प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की सुपुत्री ब्राह्मी सुन्दरी को समर्पित है । यह ब्राह्मी साध्वी जिसने प्रभु ऋषभदेव से ब्राह्मी लिपि सीखी थी । उसे प्रभु ऋषभ की प्रथम साध्वी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उनकी एक बहिन सुन्दरी थी जो गणित की जन्मदाता थी । दोनों बहिनों ने अपने पिता ऋषभदेव से साध्वी जीवन ग्रहण किया था । इन साध्वियों ने बाहुवली प्रतिबोध दिया था । ऐसी साध्वी को समर्पित यह ब्राह्मी कला मन्दिर, जैन कला व इतिहास का संजीव चित्रण है । खाना खाकर कुछ विश्राम किया । यह स्थल पर मन खूब लगता है । थकान का नाम नहीं रहता । एक बात और उल्लेखनीय है कि विहार के पशु दूध के मामले में कमजोर है । विहार में गरीबी बहुत है । साधारण विहारी खाली रहता है । गले में ट्रांजिस्टर, हाथ में छतरी लिये विहारी हर स्थान पर घूमते हैं । स्त्रियां खूब काम करती हैं । हम राजगिर के बाजार में घूमने निकले रास्ते में हमें स्थान-स्थान पर बौद्ध भिक्षुओं से भेंट होती रही । हमें एक बौद्ध भिक्षुणी श्रीलंका की मिली । जिससे मेरे भ्राता रवीन्द्र जैन ने धर्म चर्चा की ।

राजगिर में अजातशत्रु का दुर्ग भी है । यहां ब्रह्मा, जापानी बौद्धों के मन्दिर दर्शनीय हैं, जापान के बौद्धों ने रत्नगिरि पहाड़ की चोटी पर शांति स्तूप की स्थापना की है । हम इन सब स्थानों को देखना चाहते थे पर समयाभाव के कारण उन्हीं स्थानों को देखा जो वीरायतन के करीब

आस्था की ओर बढ़ते कदम पड़ते थे । दोपहर के २.३५ के करीब हमने इस पहाड़ पर चढ़ने की योजना बनाई क्योंकि समारोह ३ बजे के बाद था ।

विपुलाचल पर्वत :

यह पहाड़ दिगम्बर परम्परा में बहुत महानता रखता है । दिगम्बर परम्परा यह मानती है कि प्रभु महावीर ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था । इस पर्वत की ५५५ सीढ़ियां हैं, सीधी चढ़ाई है । आधे रास्ते में एक प्राचीन चरणपादुका मन्दिर है । कुछ दूर चढ़ाई पर पहाड़ के ऊपर की तलहटी आती है । यहां भी एक चाय की दुकान मिली, पांव जवाब दे चुके थे, फिर भी प्रभु ममत्व के कारण आगे बढ़ रहे थे । इस पर्वत पर मुनि सुव्रत स्वामी का मन्दिर व अन्य जिनालय हैं । इनमें प्रभु महावीर, चन्दाप्रभु तथा ऋषभदेव की चरण पादुकाएं उल्लेखनीय हैं । यह पर्वत पर विराजित चरण बहुत प्राचीन हैं । प्रतिमाएं किसी मन्दिर से लाकर स्थापित की गई हैं ।

यहां सबसे उल्लेखनीय मन्दिर समोसरण मन्दिर है । जो दिगम्बर जैन समाज ने शांति स्तूप की तरह बनाया है । इस मन्दिर का निर्माण भगवान महावीर से २५००वें निर्वाण महोत्सव पर हुआ था । मन्दिर के अन्दर कोई प्रतिमा नहीं । मन्दिर का आकार समोसरण का है । समोसरण में प्रभु का मुख चारों ओर दिखाई देता है । यहां की प्रतिमाएं शांति स्तूप की भांति सुनहरी हैं । पर्वत से नीचे उतरे । तीन बजे हमारा वीरायतन में प्रोग्राम था । वीरायतन में ठहरे समस्त यात्री उस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए ।

श्रावक शिरोमणि पद अलंकरण

वीरायतन में रोजाना समारोह होते रहते हैं । यहां

देश-विदेश के श्रद्धालु आते हैं, सेवा साधना करते हैं, कवि जी का प्रवचन सुनते हैं । ज्यादा राजगिरि ठहरने वाले यात्रियों के लिये वीरायतन ठहरना सरल है । यात्रा सुगम हो जाती है । समारोह के लिये योग्य भीड़ जुट रही थी । हमें पता नहीं था कि यह समारोह क्यों हो रहा है । कविजी महाराज के आश्रम में यह सम्मेलन हो रहा था ।

श्री फिरोदीया जी की प्रधानगी में यह समारोह शुरू हुआ । श्री फिरोदीया वीरायतन के प्रधान थे । वह लूना ग्रुप स्कूटर के मालिक थे । सभी पारिवारिक बंधनों को त्याग कविश्री की सेवा में रह रहे थे । उनके कारण वीरायतन ने अच्छी तरक्की की है । इस समारोह का प्रारम्भ कविश्री के मंगलाचरण से हुआ । फिर एक कवि ने उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज की सेवा में एक कविता प्रस्तुत की । फिर मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० की सेवा में एक अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया । उन्हें “जैन धर्म दिवाकर” पद से हमारी संस्था ने अलंकृत किया । अभिनन्दन पत्र रात्रि को तैयार किया गया । २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका सनिति पंजाब की ओर से अभिनन्दन पत्र के साथ शाल अर्पण किया गया, साथ में पंजाबी जैन साहित्य भेंट किया गया ।

इस अलंकरण के उत्तर में उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० ने फुरमाया कि रवीन्द्र व पुरुषोत्तम दोनों का जीवन जैन धर्म को समर्पित आस्थापूर्ण जीवन है, यह दोनों एक दूसरे के प्रतीक हैं । एक-दूसरे के विचारों से समर्पित हैं । इन्होंने एक भिक्षु का सम्मान किया । इस सम्मान से मुझे संघ की सेवा करने का बल मिला है । मैं इन दोनों धर्मभ्राताओं द्वारा की जिन शासन के प्रति सेवाओं का अनुमोदन करता हूँ । इन्होंने पंजाबी भाषा में सबसे पहले शास्त्रों का अनुवाद

आस्था की ओर बढ़ते कदम किया । १९७२ से इन्होंने मेरे आगरा में दर्शन किये थे । इतने अंतराल के बाद अब इन्होंने काफी विकास किया है । इनकी गुरुणी प्रेरिका उपप्रवर्तिनी साध्वी स्वर्णकान्ता जी म० को मैं मुबारकवाद देता हूँ, इन्हें आशीर्वाद देता हूँ, मैं अपनी ओर से भाई पुरुषोत्तम जैन को श्रावक शिरोमणि पद से विभूषित करता हूँ । यह सम्मान उन्हें पंजाबी जैन साहित्य के प्रति सेवाओं के लिये है ।

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० ने मुझे अलंकरण का प्रतीक शाल ओढ़ाया । यह समारोह सादा व पारिवारिक था । कविजी के बहुत थोड़े से इशारे पर यह प्रोग्राम हुआ । उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट अतिथियों को पंजाबी साहित्य भेंट किया गया, पर इस समारोह में कोई पंजाबी न था । पर इन लोगों के मन में पंजाबी भाषा में प्रकाशित जैन साहित्य को देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई । इनके एक अधिकारी ने सुझाव रखा क्यों न गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के सारे साहित्य का पंजाबी अनुवाद किया जाए, इसके लिये दोनों विद्वानों की सहायता ली जाये ।

इसके उत्तर में मैंने कहा कि हमें गुरुदेव के साहित्य का पंजाबी अनुवाद करने का कोई इतराज नहीं, हमारे लिये यह गौरव का विषय है कि हम भगवान महावीर की भूमि पर, प्रभु महावीर के एक भिक्षु की रचना का पंजाबी अनुवाद करेंगे । यह तो हमारा सौभाग्य होगा, पर इसके प्रकाशन की व्यवस्था वीरायतन को करनी होगी । हम कोई परिश्रमक नहीं लेंगे । आप कोई भी पुस्तक बताएं, जिसका पंजाबी अनुवाद जनसाधारण के लिये उपयोगी हो ।”

हमें इस समारोह कई लाभ हुए । एक तो तीर्थदर्शन, दूसरा सौ पुस्तकों के लेखक उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म०

के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसी इतिहासिक भूमि पर मेरा सम्मान हुआ । मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता क्योंकि मेरे धर्मभ्राता के श्री रवीन्द्र जैन के बिना यह सम्मान अधूरा है । पर सभी लोग हम दोनों में कोई अन्तर नहीं समझते । मुझे बड़ा व गुरु मानकर सम्मानित करते हैं । इससे हम दोनों को कोई अन्तर नहीं पड़ता । इस वहाने समाज हमारे धार्मिक काम का मूल्यांकन करता है । इन सम्मानों यही लाभ है ।

वीरायतन के प्रांगण में एक दिन और रुके । इसका प्रमुख कारण राजगिर में वाकी वचे ३ पहाड़ों की यात्रा थी । शाम को प्रतिक्रमण के बाद उपाध्याय श्री अमरमुनि जी से साक्षात्कार करने का अवसर मिला, बहुत ही मधुर मिलन था । इनसे हमारी अंतिम भेंट थी । इतनी वृद्धावस्था में भी उनकी प्रवचन शैली कमाल की थी । वह कवि भी थे, वह पहले मुनि थे, जिन्होंने जैनधर्म के प्रचार के लिये वाहन प्रयोग का समर्थन किया । जैन समाज में वाहनधारी मुनि श्री सुशील कुमार जी म० व सन्मति संघ आचार्य मुनि श्री विमल कुमार जी म० को सन्मति संघ का आचार्य पद प्रदान किया । जैन समाज में साध्वी को आचार्य पद देने की प्रथा नहीं थी । इस महान क्रांतिकारी चिन्तक ने साध्वी चन्दना को आचार्य पद देकर स्त्री जाति को सम्मानित किया । उपाध्याय श्री का कथन है “जब स्त्री तीर्थकर बन की लोगों को प्रतिबोध दे सकती है, तो आचार्य पद ग्रहण क्यों नहीं करा सकती । यह सब भगवान महावीर के बाद हुए आचार्यों की व्यवस्था है, भगवान तीर्थकर परम्परा में स्त्री पुरुष में कोई अंतर नहीं रखा है, स्त्री मोक्ष प्राप्त कर सकती है तो आचार्य-उपाध्याय क्यों नहीं ?” इस रात्रि को कुछ थकावट नहीं हुई । हम सोये, फिर स्वभाव के कारण शीघ्र उठे । फिर

आस्था की ओर बढ़ते कदम
अगले दिन पर्वत की तैयारी करने लगे । यह पर्वत धारत्नगिरि ।

रत्नगिरि :

इस पर्वत पर जाने का मार्ग खतरनाक है । लोग समूहों में गुजरते हैं । उतरने का मार्ग अलग है । इस मार्ग पर चलने के लिये १२७७ सीढ़ियों से गुजरना पड़ता है । इस पर्वत पर तीर्थंकर चन्द्रप्रभु जी व भगवान् शांतिनाथ की सुन्दर प्रतिमाएं मन्दिरों में विराजमान हैं । पर्वतों की हरियाली मन से मोह लेती है । इस पर्वत पर भगवान् नेमिनाथ, भगवान् शांतिनाथ, भगवान् पार्श्वनाथ और अभिनन्दन स्वामी के चरण चिन्ह हैं । यह पवित्र चरण पादुकाएं व प्रतिमाएं भक्तजनों की थकावट को दूर करती है । ऐसे लगता है कि हम निर्मित किसी देवभूमि का विहार कर रहे हों । इस पर्वत पर जापान सरकार द्वारा शांति स्तूप स्थापित है । जिस पर रोप-वे द्वारा जाया जाता है । जिस समय हम वापिस नीचे उतरे तो रास्ते में अनेकों बौद्ध स्मारकों के चिन्ह देखने को मिले । इस शांति स्तूप से हम रोप-वे के रास्ते से गये । यहां जूते नीचे ही उतारने पड़ते हैं । यहां जापान की सरकार ने एक जरनेटर भेंट किया है । रोप-वे भी जापान सरकार की भेंट हैं । इस शांति स्तूप को संसार भर से दर्शनार्थी देखने को आते हैं । शांति स्तूप की प्रतिमाएं भी जापान सरकार की भेंट हैं ।

हम जब रोप-वे से पहुंचे तो यह अद्भुत लगा, ऊपर से यह पहाड़ डरावने लग रहे थे । चारों तरफ पहाड़ दिखाई दे रहे थे । शांति स्तूप के चारों ओर भगवान् बुद्ध की सोने की पालिशयुक्त प्रतिमाएं हैं । अन्दर की प्रतिमाएं भव्य-विशाल

मन्दिर के रूप में स्थापित हैं । मन्दिर में जापानी भिक्षु नगाड़े बजाते रहते हैं । जपानी, सिंगली भिक्षु विपुल मात्रा में एक मट में यहां रहते हैं । मन्दिर में घी के दीपक जल रहे थे, प्रतिमाएं स्वर्णिम थीं ।

इस पहाड़ी के नीचे के एक भवन में श्री उत्तराध्ययन सूत्र में बताया कि मंडीकुक्षी चैत्य था, जहां अनाथीमुनि व सम्राट श्रेणिक की भेंट हुई थी । यह बात हमें कवि जी ने बताई थी । हम कुछ जल्दी में थे, हमारी यात्रा बहुत लम्बी थी । फिर अभी राजगिर के बाकी पहाड़ों का वन्दन करना शेष था, यहीं पहाड़ों पर अनेकों मुनियों ने तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया था ।

उदयगिरि :

इस पर्वत की ७८२ सीढ़ियां हैं । यहां सांवलिया भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है । यहां वही एक मात्र मन्दिर है, पर यहां बहुत से यात्री वन्दन करने को आते हैं । मूलनायक की प्रतिमा नीचे तलहटी में गांव के मन्दिर में विराजमान है । पहाड़ तो पहाड़ है वह यात्रा थकाने वाले थी । यह पहाड़ अपनी इतिहासिक महानता लिये हुए हैं ।

स्वर्णगिरि :

इसे जनभाषा में सोनगिरि कहते हैं । इस पहाड़ का यात्रा की दृष्टि से बहुत गहरा महत्व है । इस पर्वत पर चढ़ने के लिये १०६४ सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं । इतनी सीढ़ियां चढ़ने के बाद २ मन्दिरों का परिसर आता है । जहां हमें प्रथम तीर्थंकर परमात्मा ऋषभदेव व अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के चरणों को वन्दन करने का अवसर मिला ।

राजगिरि को अलविदा :

तीन पर्वतों की चढ़ाई में हमारे पांव जवाब दे चुके थे, फिर शाम हो चुकी थी। बिहार का इलाका था। हम उसी दिन पावापुरी से रवाना होने का मन बनाया। गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के दर्शन किये। आगामी यात्रा के लिये आशीर्वाद लिया, मंगल पाठ सुना। फिर वीरायतन और पांचों पहाड़ों को प्रणाम किया। यह भूमि प्रभु महावीर की भूमि है, यहां कोई जीवन भर भी रहता रहे, कभी उकता नहीं सकता। पर जीवन का नाम ही यात्रा है, सो गुरुदेव की आज्ञा लेकर प्रस्थान किया।

वीरायतन से तांगा लिया। बस स्टैंड पर बस का ठीक समय नहीं था, अब दो विकल्प बचे थे। एक तो हम राजगिरि के मन्दिरों में रहते, दूसरा टैक्सी लेकर पावापुरी पहुंचे। हमने पुनः दोनों मन्दिरों में तीर्थकर प्रभु को प्रणाम किया। कुछ खरीदने योग्य वस्तुएं खरीदीं। वहां की मिट्टी को मस्तक पर लगाया, वैशाली, पटना, राजगिरि के पत्थरों को इकट्ठा कर लिया, यही हमारी यात्रा की निशानियां थीं, कुछ पुस्तकें, चित्र व मूर्तियां खरीदीं, कुछ ऑडियो कैसेट भी खरीदे, उन दिनों वीडियो का रिवाज नहीं था, ऑडियो का रिवाज था। यह सब सरलता से आती थी। हमने टैक्सी से आगे की यात्रा जारी रखने का निश्चय किया।

नालंदा में :

वहां से टैक्सी में बैठकर हम नालंदा पहुंचे। नालंदा की भारतीय साहित्य में अपनी पहचान है। इसकी प्रसिद्धि नालंदा विश्वविद्यालय के खण्डहरों के कारण है। इस विश्वविद्यालय के खण्डहर काफी इलाके में बिखरे पड़े हैं। कई प्रतिमाएं तो जैन तीर्थकरों की लगती हैं, क्योंकि वह

दिगम्बर हैं । हमें एक स्थान दिखाया गया जहां अकलंक व निष्कलंक नाम के दिगम्बर जैन मुनियों को वौद्धों ने गिरा दिया था । इस घटना के फलस्वरूप अकलंक मुनि मारा गया । दूसरे निष्कलंक मुनि वच गये । इसे मारने का कारण इन मुनियों द्वारा वौद्ध भेष धारण कर, वौद्ध साहित्य का ज्ञान अर्जित करना था । यह भव्य विश्वविद्यालय था । जहां १०,००० से ज्यादा विद्यार्थी संसार के कोने कोने से ज्ञान अर्जित करने आते थे । यहां उनके होस्टलों (कमरों) के खण्डहर थे, यहां रसोई घर थे । एक भव्य पुस्तकालय था, जिसे वहलोल लोधी ने जला दिया था, वहलोल लोधी ने बहुत से भिक्षुओं को मार दिया, प्रतिमाएं तोड़ डालीं, अभी तो चार कि.मी. में विश्वविद्यालय के खण्डहर दिखाई देते हैं पर अभी यहां खुदाई होनी बाकी है, यह खुदाई अंग्रेजों ने की थी, यह कार्य आगे नहीं बढ़ा ।

यह वौद्ध साहित्य के अध्ययन के लिये पालीशोध संस्थान भारत सरकार द्वारा स्थापित है । इस स्थान से प्राप्त महात्मा बुद्ध की प्रतिमाएं सुरक्षित की रखी गई हैं, इसके प्रांगण में कुछ जैन प्रतिमाएं भी हैं । पर यह प्रतिमाएं कहां से मिली हैं, इसका उल्लेख नहीं । वौद्ध ग्रन्थों का विशाल भंडार है । ताड़पत्र व हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है । देश-विदेश से जिज्ञासु यहां ज्ञान अर्जित करने आते हैं । देश-विदेश के यात्री नालंदा विश्वविद्यालय की यात्रा पर भारतीय प्राचीन संस्कृति से अवगत होते हैं । विद्यालय के बाहर एक विशाल वौद्ध प्रतिमा स्थापित है । जिसे स्थानीय लोग पूजते हैं । इस विशाल विद्यालय को देखने के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है । यह कुछ घंटों का काम नहीं, पर जब समयाभाव हो, और यात्रा कई दिन की हो तो रास्ते में रुकना मुश्किल होता है ।

हमें नालंदा की यात्रा सम्पन्न की और आगे बढ़े ।

गौतम स्वामी की जन्मभूमि गोबरग्राम कुण्डलपुर

नालंदा भगवान महावीर व भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यों की मिलना स्थली रहा है । यहां चतुर्दश व पांच महाव्रतों के उपासकों की एक चर्चा हुई थी । नालंदा में शाम हो गई थी । कुछ ही दूरी पर भगवान महावीर के तीन गणधरों की इन्द्रभूति वायुभूति, अग्निभूति की जन्मभूमि थीं । यह तीनों सगे भाई थे । वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे । उनका गोत्र गौतम था, सैकड़ों शिष्य इनसे विद्या अर्जित करते थे । एक मुहल्ले में हमारी गाड़ी रुकी । पीले रंग की एक भव्य इमारत थी । पता चला इसी साल ज्ञान इमारत का जीर्णद्वार हो रहा था ।

यहां के पण्डितों ने बताया कि इस गांव के ब्राह्मण गणधर गौतम के वंशज हैं । गणधर गौतम प्रभु महावीर से आठ वर्ष बड़े थे । वह चार ज्ञान के धारक थे । वह चौदह हजार शिष्यों में प्रमुख थे । जैन समाज में भगवान महावीर के बाद गणधर गौतम को नांगलिक माना जाता है । हर जैन कहता है :-

मंगलं भगवान दीरो, मंगलं गौतम गणी

मंगलं स्थूल भद्रदायो श्री जैन धर्मस्तु मंगलं

इसी तरह जैन दिगम्बर परम्परा में कहा जाता है

मंगलं भगवान दीरो, मंगलं गौतम गुरु

मंगलं कुन्दकुन्दायो, श्री जैन धर्मस्तु मंगलं

श्वेताम्बर परम्परा में और कहा जाता है

अंगूठे अमृत वस्ते, लब्धि तणां भण्डार

श्री गुरु गौतम सिमरिये मन वांछे फल दातार ।

गणधर गौतम जैन परम्परा में पूजनीय है । उन जैसा ज्ञानवान विनयी संसार में ढूँढ़ने से नहीं मिलता । इतने बड़े

जास्या की ओर बढ़ते कदम
 पद पर, पहुँचकर अहंकार उन्हें छू नहीं पाया था । उन्होंने मामूली सी भूल होने पर, वह श्रावक आनन्द से प्रायश्चित्त करने उनके घर गये । उनकी प्रेरणा से वच्चे से बूढ़े तक भिक्षु बनकर केवल ज्ञान प्राप्त किया, मोक्ष पाया । पर गणधर गौतम को महावीर के प्रति असीम मोह के कारण केवलज्ञान नहीं हो रहा था । एक बार भगवतीसूत्र में प्रभु महावीर ने गणधर गौतम के सराग प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहा कि “हम और तुम अनेकों जन्मों तक रहते चले आ रहे हैं, हमारा स्नेह जन्म जन्म का है । तुम घबराओ मत, हम दोनों मोक्ष प्राप्त करेंगे । तुम धर्म कार्य में प्रभाव मत करो ।”

प्रभु महावीर के कई बार समझाने पर भी गणधर गौतम का प्रभु महावीर के प्रति स्नेह बढ़ता गया । आखिर प्रभु महावीर का निर्वाण समय करीब आया । तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य गौतम को प्रतिबोध देने हेतू दूसरे गांव भेजा । पीछे प्रभु महावीर का निर्वाण हो गया । यही निर्वाण दिवस गणधर गौतम के केवलज्ञान का दिवस बना, वह दीवाली का दिन था । ऐसा शिष्य विश्व के मानचित्र पर कहां मिलता है जो अपने गुरु के प्रति समर्पित होकर धन्य हो गया । प्रभु महावीर इस नगर में अनेकों बार पधारे, ऐसी मान्यता है । यहां मूल नायक भगवान ऋषभदेव का मन्दिर है ।

कुण्डलपुर :

दिगम्बर जैन परम्परा इसी स्थान को प्रभु महावीर की जन्मभूमि मानती है । कई विद्वान गोवर व कुण्डलपुर को एक ही मानते हैं । कई लोगों की मान्यता है कि प्रभु महावीर ने इस ग्राम की परिक्रमा की थी । परिक्रमा के समय अनेक

आस्था की ओर बढ़ते कदम
कुण्ड पाए गए । इस कारण इस तीर्थ का नाम कुण्डलपुर
रखा गया ।

जैसा मैंने वैशाली के संदर्भ में लिखा था कि प्रभु
महावीर के तीन जन्म स्थान माने जाते हैं, प्रथम वैशाली के
करीब कुण्डलपुर, दूसरा यह स्थान नालन्दा के पास है,
तीसरा लक्ष्मुवाड़ है जिसे श्वेताम्बर परम्परा मानती है ।

संवत् १६६४ नें यह छोटे-छोटे जैन मन्दिर थे, परन्तु
अब तो मात्र दो मन्दिर बचे हैं, एक पुराना मन्दिर, दूसरा
नया मन्दिर । नया मन्दिर आनन्द जी कल्याणजी पेड़ी ने
बनाया है । यह शास्त्रीय विधि से पीले पत्थरों से बना है ।
यह मन्दिर कला का श्रेष्ठतम नमूना है । इस नये मन्दिर में
भगवान ऋषभदेव की २००० वर्ष पुरानी प्रतिमा स्थापित की
गई है । इस प्रतिमा के माथे पर भगवान ऋषभदेव के की
माता मरुदेवी विराजित है । इसके साथ प्रभु की जटा
प्रदर्शित की गई है । जैन तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान
ऋषभदेव के कंधे पर जटा प्रदर्शित की जाती है । यह प्रतिमा
भारत में एकमात्र प्रतिमा है । यह प्रतिमा भव्य, सरस एवं
चमत्कारी है । यहां पहुंचने वाला हर यात्री इस प्रतिमा को
देखकर धन्य हो जाता है । इस मन्दिर में भगवान ऋषभदेव,
श्री शान्तिनाथ जी, श्री पार्श्वनाथ, श्री अजीतनाथ प्रभु की
भव्य प्रतिमाएं विराजित हैं । यह प्रतिमाएं मन्दिर की शान
को चार चांद लगा रही हैं । इन प्रतिमा की भव्यता व
दिव्यता से यात्री मंत्रमुग्ध हो जाते हैं ।

पुराना मन्दिर :

यह गणधर गौतम स्वामी का घर माना जाता है । यहां
अनेक प्राचीन चरण स्थापित हैं । यह चरण गुरु गौतम के
२००० वर्ष पुराने माने जाते हैं । इस पुराने मन्दिर में

दादागुरु के चरणों के दर्शन भी होते हैं । इसके इलावा यहां ११ गणधरों के चरण प्रतिविम्बित हैं । यह गणधर गौतम का जन्म स्थान है । इस तीर्थ की यात्रा भाग्यशाली ही कर पाते हैं । यहां गुरु गौतम स्वामी की विशेष अनुकम्पा है जो इस तीर्थ की यात्रा सच्चे मन से करता है । वह यहां से कोई खाली नहीं जाता । उसकी समस्त मनोकामनाएं ऋषभदेव की कृपा से पूरी होती हैं । हमने दोनों स्थानों के दर्शन कुछ तीव्रता से किये क्योंकि यहां आरती का समय ७ बजे का था, उसी हिसाब से पहुंचे, आरती हो रही थी । इस तीर्थ का वातावरण इस जगह को चार चांद लगाता है । अभी तक हम जहां जहां भी पहुंचे वह सभी तीर्थक्षेत्र थे । वैशाली, राजगृह नालन्दा, गोवरग्राम सभी सिद्ध भूमियां हैं । इनमें सबसे ज्यादा भव्य जीव तो राजगृह से मोक्ष पधारे, राजगृही मुनि सुव्रत भगवान की जन्मभूमि है । दिगम्बर परम्परा अंतिम केवली जम्बुस्वामी की निर्वाणभूमि मथुरा मानती है । श्वेताम्बर परम्परा उनका स्थान राजगिरि ही मानती है । आचार्य जम्बू स्वामी अंतिम केवली थे जिनकी कृपा से समस्त आगम हमें उपलब्ध होते हैं । वह श्रेष्ठी परिवार के कुलदीपक थे । भर यौवन में वैराग्य जागृत हुआ । परिवार वालों ने शर्त रखी, तुम्हारी शादी आठ कन्याओं से होगी । अगर तुम उनको जीत सको तो हम तुम्हें साधु बनने की आज्ञा दे देंगे । आचार्य जम्बू स्वामी ने माता पिता की आज्ञा से रम्भा के समान, आठ कन्याओं से शादी करवाई । हर पत्नी आठ करोड़ का दहेज लेकर आई । रात्रि को आठों पत्नीयों के साथ उनकी धर्मचर्चा होने लगी । बाहर चोर प्रभव ५०० साथियों के साथ चोरी कर रहा था, उसने सारे दहेज की गटड़ियां बांध लीं, जब चलने लगे तो जमीन पर पांव जम गये, समझ में कुछ न आया । भीतर देखा कि श्री

आस्था की ओर बढ़ते कदम
जम्बू स्वामी आठ पत्नीयों से दीक्षा की आज्ञा मांग रहे थे । प्रभव चोर ने स्वयं को धिक्कारा । सुबह हुई प्रभव चोर व उसके ५०० साथी जम्बू कुमार की आठ पत्नीयों से दीक्षा के लिये गणधर सुधर्मा के पास पहुंचे । ऐसे कुलरत्न राजगृही ने पैदा किये । सूत्रकृतांग सूत्र में नालन्दा को राजगृही का मुहल्ला बताया गया है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन राजगृही विस्तृत क्षेत्र में फैली थी, जिसमें गोवरग्राम, कुण्डलपुर आदि क्षेत्र पड़ते थे ।

कुण्डलपुर में हमने प्रभु दर्शन किया । पूजा अर्चना में भाग लिया । फिर अपनी गाड़ी में सवार हो गये । अब हम ऐसी भूमि पर पहुंचने वाले थे, जिसका सीधा सम्बन्ध प्रभु महावीर से था । इसकी भव्यता, इतिहास, कला हमारे दिमाग में घूम रहा था । असल में यात्रा और पर्यटन में जमीन आसमान का अन्तर है । यात्रा में श्रद्धा ही प्रधान रहती है । पर्यटन में हर वस्तु भौतिक सुख की दृष्टि से होती है । मेरे विचार से धर्मतीर्थ कभी पर्यटन स्थल नहीं बन सकते, न ही उन्हें बनना चाहिये, नहीं तो तीर्थ अश्रद्धा का केन्द्र हो जायेगा । आध्यात्मिकता समाप्त हो जायेगी । तीर्थों की मान्यता समाप्त हो जायेगी ।

पावा सिद्ध क्षेत्र में :

जैन इतिहास में पावापुरी महत्वपूर्ण स्थान है । शास्त्रों का कथन है कि प्रभु महावीर की प्रथम व अंतिम देशना यहां हुई थी । प्रभु महावीर को केवलज्ञान तो ऋजुवालिका नदी के किनारे शालवृक्ष के नीचे शाम किसान के खेत में हुआ । तब प्रभु महावीर को तपस्या करते साढ़े बारह वर्ष से अधिक समय बीत चुका था । प्रभु महावीर गो दुहीका के आसन में विराजमान थे । तभी उनकी आत्मा को कर्मबंधन से मुक्त

करने वाला, परमात्म अवस्था प्रदान करने वाला, केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । प्रभु सर्वक्ष व सर्वदर्शी व अहंत व जिन वन गये । जैन मान्यता है कि तीर्थ का अपनी प्रथम सभा में तीर्थ सभी तीर्थ की स्थापना करते हैं, जिसमें देव व मनुष्य शामिल होते हैं । इस उपदेश में सभी देव उपस्थित हुए हैं । परन्तु यह अचम्भा था कि प्रभु महावीर का प्रथम उपदेश वेकार गया । किसी ने भी साधु धर्म या गृहस्थ धर्म के व्रत को अंगीकार न किया । प्रभु महावीर ने यहां से विहार किया । ६६ दिन तक मौन रहे । श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार उन्होंने धर्मरूपी तीर्थ की स्थापना पावापुरी नगर में की, परन्तु दिगम्बर परम्परा यहां से कुछ दूरी पर राजगृह की ही तीर्थ स्थापना का स्थान मानती है । जैन मान्यता के अनुसार तीर्थंकर नामकरण के उदय से तीर्थंकर साधु साध्वी, श्राविक व श्राविका रूपी तीर्थ की स्थापना करते हैं । तीर्थंकर आठ प्रतिहार्य युक्त होते हैं । इनके उपदेश स्थान को समोसरण कहते हैं, जिसका निर्माण देवता करते हैं । स्वर्ग के ६४ इन्द्र अपने देव परिवारजनों सहित, प्रभु की सेवा में उपस्थित रहते हैं । प्रभु के ३४ अतिशय होते हैं । ३५ वाणी के अतिशय होते हैं । तीर्थंकरों की माता गर्भ में १४ या १६ स्वप्न देखती है । तीर्थंकर गर्भ में भी तीन ज्ञान के धारक होते हैं । इन अतिशयों के कारण तीर्थंकर प्रभु त्रिलोक पूज्य होते हैं । तीर्थंकर परमात्मा अशोकवृक्ष के नीचे विराजते हैं । उनके सिर पर तीन छत्र झूलते हैं । वह रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजते हैं । उनके सिर के पीछे आभामंडल रहता है । दो चामरधारी उन्हें चामर दुलाते हैं । धर्मचक्र हर समय साथ रहता है । पुष्पवर्षा हर समय होती रहती है, स्वर्ग के देव दुंदुभियां वज्राते हैं । समोसरण के आकार का विस्तृत वर्णन जैन आगमों से मिलता है ।

इसी प्रकार के समोसरण से सुसज्जित प्रभु महावीर पावापुरी में पधारे । इस नगरी को मध्य पावा भी कहते हैं । इसके इलावा दो पावा और थी एक थी मल्लों की पावा, दूसरी भंगी देश की पावा । यह पावा इन दोनों के बीच पड़ती हैं । श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों परम्परा प्रभु महावीर का निर्वाण स्थान मानती हैं । यहां ही प्रभु महावीर ने अपनी प्रथम देशना दी थी ।

गौतम इन्द्रभूमि व अन्य गणधरों की धर्म चर्चा :

श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार जिस समय श्रमण भगवान महावीर इस नगरी में पधारे तो आसमान देव विमानों से भर गया । उस समय वहां एक सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था, उसने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें उस समय के प्रसिद्ध १९ ब्राह्मण अपने हजारों शिष्य सहित यज्ञ कर रहे थे । यह यज्ञ महीनों से चल रहा था, इसमें देवों का आह्वान किया था, पशु बलि दी जाती । इस यज्ञ को सम्पूर्ण करने की जिम्मेदारी प्रसिद्ध विद्वान गौतम इन्द्रभूति के कन्धों पर थी । इन्द्रभूति वेद, वेदांग, ज्योतिष, इतिहास, कोष, व्याकरण व पुराण का प्रसिद्ध विद्वान थे ।

भगवान महावीर का समोसरण लगा । देव, मनुष्य व पशु-पक्षी प्रभु महावीर की वाणी सुनने आने लगे । सारी धरती पर मंगल छा गया । देवताओं के विमान यज्ञ भूमि की ओर बढ़ रहे थे । इन्द्रभूति को यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्नता हुई । उसने अपने साथियों से कहा, “देखो ! मेरे यज्ञ के प्रभाव से खींचे देव धरती पर आने को मजबूर हो रहे हैं ।”

पर यह बात हो ही रही थी कि देवविमान यज्ञ वेदी से ऊपर से होकर आगे चले गये । इन्द्रभूति परेशान हो गया । इन्द्रभूति को हैरानी थी कि देवता यज्ञभूमि छोड़ आगे कहां जा रहे हैं, पता करना चाहिये, गौतम स्वामी ने पता किया तो उन्हें पता चला कि एक क्षत्रिय महावीर की धर्म सभा में जा रहे हैं, देव ऐसा क्यों कर रहे हैं ? यह तो वेद का सरासर अपमान है । ऐसा कौन इन्द्रजालीया है जो देवों को अपने जाल में फंसा रहा है ?” इन्द्रभूति को देवताओं का यज्ञ मंडप से जाना द्राक्ष्य व वेद का अपमान लगा। उसने कहा कि “मैं अभी जाकर उस इन्द्रजालिये के दम्भ को समाप्त करता हूं । इस घोषणा के बाद वह अपने शिष्य पत्निकार के साथ प्रभु महावीर के समोसरण की ओर बढ़े ।

प्रभु महावीर का आकर्षण अद्भुत था । इन्द्रभूति ने सोचा कि मैं अभी जाकर उस व्यक्ति के पाखंड का भांडा चौराहे में तोड़ूंगा । लोगों को गुमराह करने वाले प्रचार से सावधान करूंगा । पर अगर मैं ऐसा न कर सका तो घर वापस नहीं आऊंगा । उनका शिष्य बनकर जीवन गुजारूंगा ।

अहं से भरे गौतम के कदम समोसरण की ओर बढ़ रहे थे । वह जब यज्ञभूमि से चला था तो अपने अहंकार में डूबा था । पर ज्यों-ज्यों समोसरण के नजदीक आता गया समोसरण के प्रभाव से उसका क्रोध शांत हो गया । तीर्थंकर प्रभु के अतिशय ने उसे प्रभावित किया, वह प्रभु महावीर के सामने आया । प्रभु महावीर ने कहा, “गौतम ! आ गये !”

अपना नाम सुनकर उसका अहंकार और टूट हो गया । उसने सोचा “यह इन्द्रजालिया तो मेरा नाम भी जानता है, यह तो इसके लिये सहज है आज के युग में कोई भी मेरे नाम से अपरिचित नहीं । अगर यह भी जानता है

तो कौन सी बड़ी बात है ?”

कुछ पल के बाद प्रभु महावीर ने कहा, “इन्द्रभूति ! तुम्हारे मन में आत्मा के बारे में संशय है ।” प्रभु महावीर की वाणी सुनकर इन्द्रभूति परेशान हो गया, क्योंकि अपनी कमजोरी को वह अकेला ही जानता था । उसने कभी नहीं सोचा था कि कोई मेरे मन की बात को भरी महफिल में रख देगा ।

प्रभु महावीर ने कहा, “इन्द्रभूति ! वेदों के अध्ययन करते समय तुम्हारे मन में यह संशय उत्पन्न हुआ । पर तूने इसका कभी निराकरण करने की चेष्टा नहीं की ।” फिर प्रभु महावीर ने गौतम की समस्त संशय का निराकरण किया । अपनी प्रतिज्ञा अनुसार इन्द्रभूति प्रभु महावीर का प्रथम शिष्य बन गया । इन्द्रभूति के शिष्य बनते ही ब्राह्मण समाज गढ़ ही ढह गया । वेद आधारित यज्ञ संस्कृति का स्तम्भ गिर गया । यज्ञशाला में भूचाल सा आ गया । प्रभु महावीर के प्रथम उपदेश में इन्द्रभूति के इलावा पावा में सम्मिलित प्रमुख विद्वानों ने वारी-वारी अपनी शंका का निवारण किया । यहां चन्दनवाला ने भी दीक्षा ग्रहण की । यह वहीं इन्द्रभूति गौतम थे जो चौदह हजार साधुसंघ के प्रमुख थे, आर्यचन्दना छत्तीस हजार साधवियों की प्रमुख थी । युद्ध में उनके पिता मारे गये थे । माता ने शील की रखा के लिये आत्म हत्या कर ली । पहले वैश्या ने खरीदा, फिर श्रेष्ठी धन्ना पुत्री बनाकर घर रखा, उसकी दीक्षा भी समोसरण में हुई थी ।

गौतम स्वामी व उनके साधियों को ६ गणों में बांटा गया । अकेले गौतम स्वामी व सुधर्मा ही प्रभु महावीर के पश्चात् जीवित रहे । गणधर गौतम महान आत्मा थे । वह सूर्य की किरण पकड़कर अष्टापद तीर्थ पर चढ़े । वहां १५०० तापस भूखे प्यासे जीवन कठोर तपस्या कर रहे हैं ।

अस्थ की ओर बढ़ते कट्य
 यह अष्टापद हिमालय का कैलाश क्षेत्र है। गौतम स्वामी ने १५०० तापसों को प्रतिबोध कर दीक्षित किया। प्रभु महावीर के दर्शनों से पहले इन्हें खर से पारणा करवाया, जब वह लोग भगवान महावीर के पास दर्शन को आ रहे थे तो इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। गणधर गौतम ज्ञान से खली रहे। एक बालक अतिमुक्त की जंगली पकड़कर उसे मोक्ष का मार्ग दिखा दिया।

इसी प्रकार चन्दना बाला के साथ उसकी मौसी साध्वी मृगावती ने संयम ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया। वह प्रभु महावीर की प्रचारक शिष्या थी। गणधर गौतम ने लाखों लोगों के जीवन को बदल डाला। पावा का वर्णन आते ही गणधर गौतम व चन्दनबाला का वर्णन आना सहज है। इन उसी पुण्य भूमि की ओर आगे बढ़ रहे थे।

पावापुरी दर्शन :

नालन्दा में काफी समय लग गया। रात्रि के आठ बजे रहे थे। हम जलमंदिर की आरती देखना चाहते थे। गाड़ी सड़क पर आगे बढ़ रही थी। कुछ समय के पश्चात् पावापुरी तीर्थकर महावीर इन्टर कालेज का बोर्ड दिखाई दिया। तीर्थक्षेत्र को वन्दन किया। विहार में हम जहां भी गये, अधिक पहाड़ी क्षेत्र थे, मात्र यही मैदानी क्षेत्र था। यहां हर अरहर की फसल खूब होती है। इस क्षेत्र का वर्णन प्रासिद्ध ग्रन्थ विविध तीर्थकल्प में, आचार्य जिनप्रभव सूरि ने विस्तृत ढंग से किया है। यह विवरण ८०० वर्ष पुराना है। राजगिरि से ३१ कि.मी. की दूरी पर है। यह क्षेत्र २५०० वर्ष पुराना है। भगवान महावीर चम्पा होते यहां पधारे थे। यहां का राजा हस्तिपाल था। उस समय यह राजा की चुन्ती थी, प्रभु महावीर यहां पधारे।

जहां प्रभु महावीर ने अंतिम उपदेश दिया था, वहां एक चरण स्थापित है जो भगवान के बड़े भ्राता नन्दीवर्धन ने स्थापित किए थे । जलमंदिर के सामने एक चबूतरा है, उस स्थान पर प्रभु महावीर का अग्नि संस्कार हुआ था, तब दीपावली का दिन था । उस दिन नवमल्ल, नव लिच्छवी आदि गणतन्त्रों के राजा भगवान की धर्मदेशना सुनने को आये थे । भगवान महावीर अंतिम उपदेश उत्तराध्ययन सूत्र के रूप में दिया । इसका वर्णन कल्पसूत्र में विस्तृत रूप में मिलता है । यह ग्रन्थ दो हजार वर्ष पुराना है । यहां महावीर के रूप में जलमंदिर विश्व प्रसिद्ध है । सारा मंदिर एक तालाब के मध्य स्थित है । इस तालाब में लाल कमल खिले रहते हैं । इस मन्दिर का निर्माण भगवान के बड़े भ्राता राजा नन्दीवर्धन ने किया था । यहां प्रभु महावीर के चरण के साथ-साथ सुधर्मा स्वामी व गौतम स्वामी के चरण भी स्थापित हैं । इसका मंदिर का जीर्णद्वार होता रहा है । यह मन्दिर समुद्र के मध्य द्वीप की तरह सुशोभित है । यहां ११ गणधर, १६ सतियां तथा ४ दादाओं के चरण भी स्थापित हैं । इस मन्दिर पर कोई शिलालेख नहीं । यहां दो श्वेताम्बर मन्दिर हैं । पुराना समोसरण मन्दिर भव्य है । यहां प्रथम समोसरण हुआ था । प्रभु महावीर की भव्य प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकर भगवान भी विराजमान हैं । जलमंदिर एक विशाल पुल से जुड़ा है । यहां महताव बीबी का मन्दिर है, जहां चरण हैं । दीवाली को यहां विशाल मेला लगता है । जलमंदिर में लड्डू चढ़ाया जाता है ।

नया समोसरण मन्दिर :

कहा जाता है प्रभु महावीर ने अपना अंतिम उपदेश यहां दिया था । यह एक स्तूप है जो प्राचीन है । उसके पास

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 एक कुंआं है, इस कुएं को चमत्कारी माना जाता है । इसके जल के बारे में आचार्य जिनप्रभव का कथन है कि इसके जल से दीपावली को दीपक जलाए जाते थे । यह स्थान पावा से १ कि.मी. की दूरी पर जंगल में है । कुंआ और स्तूप सुरक्षित हैं । यहां गुजराती समाज ने भव्य समोसरण मंदिर का निर्माण किया है । इस मन्दिर की गणना भारत के संगमरमर के प्रसिद्ध मन्दिरों में की जाती है । इस मन्दिर के तोरण व संरचना जैन वास्तु विधि के आधार पर की गई है । श्वेताम्बर मन्दिर में धर्मशाला है । जहां खाने की बहुत अच्छी व्यवस्था है । जलमंदिर के दूसरी ओर दिगम्बर जैन मंदिर व धर्मशाला है । पावापुरी वैसे गांव है, यहां के लोग खेतोबाड़ी से अपना गुजारा करते हैं । गांव में दुकानें नामात्र ही हैं । यात्रियों की व्यवस्था मन्दिर के जिम्मे है ।

जिस समय हम पावापुरी पहुंचे, बिजली गुल थी । अंधेरे में हम जलमंदिर में गये । हमारा सौभाग्य था कि आरती का समय था । कोई यात्री और नहीं था । हमें सर्वप्रथम जलमंदिर में आरती करने का सौभाग्य मिला । फिर श्वेताम्बर मंदिर में आरती के लिये पुजारी को मिले । विधि अनुसार पुजारी ने आरती करवाई । रात्रि में ही हम वापस श्वेताम्बर मंदिर में लौटे । हमें यहां कमरा मिल गया । यहां रात्रि को हम दोनों ठहरे । मंदिर की भव्यता देखने को बनती है । यहां भोजन किया, कर्मचारियों ने पूरा सहयोग किया । रात्रि को मेरे धर्मभ्राता को थोड़ा सा बुखार आया, जो औषधि से ठीक कर लिया गया । सबकुछ प्रभु महावीर की लीला थी, फिर कभी मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन को तकलीफ नहीं हुई । इसका कारण पावापुरी में मच्छरों का आतंक था । सुबह हुई, मन्दिर में पूजा की, मंदिर को दिल खोलकर देखा, जीर्णोद्धार का कार्य कई वर्षों से चल रहा था,

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 प्राचीन शिलालेख लगाये गये थे । जो इसी मन्दिर में जीर्णोद्धार की सूचना देते थे । अब यहां जैसलमेर के पीले पत्थर की तीर्थकरों की प्रतिमा परिक्रमा लग रही थी । यह सारा देखने के पश्चात् हम जलमन्दिर की ओर बढ़े । लाल कमल खिले हुए थे । धरती पर देवविमान जैसा यह मन्दिर था । फिर सामने महताव वीवी का मन्दिर देखा । इसके साथ प्राचीन मन्दिरों का समूह था, फिर हम तांगे द्वारा नया समोसरण मन्दिर देखने गये, उस कुएं को देखा, जिसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूं । प्राचीन स्तूप देखा जो इस स्थान की प्राचीनता का प्रतीक है । रही समोसरण की बात, यह तो अंगूठी का नगीना है । समोसरण से समझाना हो तो इस मंदिर को जरूर देखना चाहिये, इस मंदिर के साथ धर्मशाला भी है ।

यहीं दिगम्बर मन्दिर देखा, जहां प्राचीन प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है । यहां आचार्य रघु सागर के दर्शन किये, उन्हें पंजाबी साहित्य भेंट किया, उन्होंने अपना साहित्य भेंट किया । यह भेंट बहुत अच्छी रही । एक दिगम्बर संत ने हमारे जैन साहित्य की दिल खोलकर प्रशंसा की ।

पावापुरी के नजारे देखते दोपहर हो चुकी थी, चारों तरफ वातावरण था । दिगम्बर जैन मुनि के संघ दर्शन किए । उनका मधुर स्वभाव मन को मोहने वाला था । उन्होंने हमें यहां मन्दिर में विराजित जैन मूर्तियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी । यह मुनि महाराज अच्छे लेखक थे । उन्होंने अपने हस्ताक्षर युक्त अपना एक सुन्दर ग्रंथ प्रदान किया । यह ग्रन्थ पावापुरी की अनुपम भेंट थी । यहां की धर्मशाला में हमने मन्दिर के चित्र प्राप्त किए जो भारत सरकार के पर्यटन विभाग से प्रकाशित हुए थे । यह चित्र जलमन्दिर व नए समोसरण मन्दिर के थे । हमने धर्मशाला से दोपहर को

भोजन किया और फिर तीर्थ पावापुरी को वन्दना कर नवादा की ओर बढ़ने लगे।

नवादा :

नवादा जिला है जो पावापुरी से २५ कि.मी. की दूरी पर है। नवादा से मात्र २ कि.मी. दूरी पर गुणाया तीर्थ है, यहां गुणशील चैत्य है। यह कभी राजगृह का भाग रहा था। गुणाया, गुणशील का अपभ्रंश है। इसी क्षेत्र में अनेकों वार श्रमण भगवान महावीर पधारे थे। यह स्थान गणधर गौतम स्वामी की केवलज्ञान भूमि के रूप में पुज्य है। यही स्थान है जहां गणधर गौतम प्रभु महावीर की आज्ञा से देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोधित करने आये थे। भगवान महावीर के निर्वाण का समाचार सुन गणधर गौतम वच्चों की तरह रोने लगे। फिर अचानक की संसार की सच्चाई का ज्ञान होते ही केवलज्ञानी बन गये। यहां एक भव्य तालाब है, जिसके नध्य में एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। इस जल मंदिर का निर्माण पावापुरी जल मंदिर की तरह है, इसके सामने एक तोरण है, जिसकी कला दर्शनीय है।

यहां एक श्वेताम्बर मन्दिर भी है। यह स्थान नवादा स्टेशन से २ कि.मी. दूरी पर है। यहां से २०० मी. पर जलसरोवर है। यहां का वातावरण शांत है। यह मंदिर प्राचीन शैली का तालाब है। यह तालाब का जल खुशक हो चुका है। यहां यात्रियों के ठहरने के लिये श्वेताम्बर व दिगम्बर धर्मशालाएं हैं, जहां भोजनशाला, ठहरने की सुन्दर व्यवस्था है।

इस मन्दिर के दर्शन किये, बहुत हरा-भरा वातावरण है। यहां नवादा का बस स्टैंड सभी तीर्थों को जाने का केन्द्र बिन्दू है। यहां से लछवाड़ जाया जा सकता है। यहां से ही

समेदशिखर के लिये सीधी बसें मिलती हैं । हमारा अगला गणतन्त्र स्थान श्री समेदशिखर तीर्थ था । समेदशिखर को बढ़ने के लिये हम बस स्टैंड पहुंचे थे । वहां से बस का इंतजार करने लगे । हमें कुछ समय के बाद शिखर जी के लिये बस मिल गई । वहां से दो रास्ते समेदशिखर के लिये जाते हैं । एक कुडरमा-झुमरीतलैया की, जहां बहुत सी अन्नक खानें कई किलोमीटर तक फैली है, इसका कंट्रोल फौज के जिम्मे है । दूसरा रास्ता जम्पूर्ई वाला है । यह रास्ता पहाड़ी है । रास्ता हरियावल व नदियों से भरा पड़ा है, जंगली जीवों से यह जंगल भरे पड़े हैं । जम्पूर्ई ही प्रचीन गांव है, यह बस का रास्ता हमने इसी मार्ग से तय किया । यह सफर हमारे जीवन का महत्वपूर्ण सफर था । जैनधर्म में दो तीर्थ बहुत महान माने जाते हैं । पहला तीर्थ समेदशिखर है, दूसरा तीर्थ गुजरात का शत्रुंजय (पालिताना) तीर्थ महान माना जाता है । हर जैन नुवह उटकर जब मन्दिर में आता है तो प्रार्थना में यह दोहा बोलता है :-

“समेदशिखर तीर्थ बढ़ो, जहां बीसे जिन राय”

या कहा जाता है

“एक बार जो वन्दन कर ले, नरक पशु गति न पावे”

समेदशिखर महिमा :

समेदशिखर जैनधर्म को शान है । जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों में से २० तीर्थंकरों का निर्वाण स्थल समेद शिखर है । सभी तीर्थंकर अनन्त काल से इस पहाड़ पर पधारते रहे हैं, तपस्या की है । रेलवे स्टेशन का नाम पारसनाथ है । समेदशिखर का दूसरा नाम पार्श्वनाथ हिल्ज है । यहां आदिवासी रहते हैं । यहां प्राचीन जैन सराक जाति रहती है, जो भगवान पार्श्वनाथ को अपना कुलदेवता मानते हैं ।

आस्था की ओर बढ़ते कदम स्टेशन पर श्वेताम्बर व दिगम्बर जैन धर्मशालाएं हैं । दोनों परम्परा के विशाल व सुन्दर मन्दिर हैं जो श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों परम्परा से संबंधित हैं ।

यहां से २२ कि.मी. दूर मधुवन है, जो शिखरजी पहाड़ की तलहटी है । मधुवन के आगे शिखर के पहाड़ शुरु होते हैं । यहां का कणकण पवित्र है, पूजनीय है । इसी मधुवन में धर्मशालाएं, मन्दिर, गुरुकुल हैं । ऊपर पहाड़ ३१ मन्दिर हैं । मात्र एक मन्दिर में सांवलीया पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा है, बाकी मन्दिरों में विभिन्न तीर्थंकरों के चरण चिन्ह हैं । यह मन्दिर पहाड़ की चोटियों पर स्थित है । यह पहाड़ प्रकृति सौन्दर्यता, जंगली जड़ी-बूटियों से भरे पड़े हैं । इस पहाड़ के बारे में दिगम्बर मान्यता है कि जो व्यक्ति जीवन में एक बार इस तीर्थ की वन्दना करता है, उसको नरक, पशु योनि प्राप्त नहीं होती । दोनों परम्परा के श्रावक-श्राविका, साधु व साध्वी यहां यात्रा करते हैं । यह तीर्थ जैन का पूजनीय है । यहां की यात्रा महान पुण्य का कारण है । मधुवन-मधुवन है, यह धरती देवताओं की भूमि है । यहां पर आने की कल्पना ही हृदय को रोमांचित करती है । मैं पहले इस तीर्थ के दर्शन कर चुका था । परन्तु पर्वत की यात्रा कारणवश नहीं कर सका । इस तीर्थ का वर्णन ज्ञाताधर्मा कथांगसुत्र में मल्लिजिन के संदर्भ में आया है, वहां तीर्थंकर मल्लिनाथ के निर्वाण का वर्णन करते हुए दो शब्द आए हैं :- ‘सम्मेय पल्लव और सम्मेव सेलसिहिर’ कल्पसूत्र में प्रभु पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र में समेतशिखर के लिये सम्मेह सेल सिहरमि शब्द आया है । मध्यकालीन साहित्य समिधिगिरि या समाधिगिरि नाम भी प्राप्त होता है । जनसाधारण इसे पारसनाथ हिल्ज से संवोधित करते हैं । श्वेताम्बर परम्परा में इसे समेदशिखर कहते हैं । दिगम्बर

परम्परा में इस पर्वत राज को समेतशिखर कहते हैं ।

इस तीर्थ के जीर्णोद्धार का लम्बा इतिहास है । नवीं सदी में आचार्य श्री यशोदेय सूरि जी के परम शिष्य श्री प्रद्युम्नसूरि ने लम्बा समय यहां पर विहार किया था । अनेकों श्रीसंघ समेतशिखर पर यात्रा के लिये आए थे, फिर यह तीर्थ धर्माराधना का शिखर होना शुरू हो गया । इस सदी के अंत में इन मंदिरों का जीर्णोद्धार हुआ ।

सम्राट अकबर ने सन् १५६२ में आचार्य हीरा विजयसूरि से प्रभावित हो यह तीर्थ उन्हें भेंट में दे दिया । आगरा के श्री कुनारपाल सोनपाल लोहा ने सन् १६७० में यहां के जिनालय का जीर्णोद्धार किया ।

सन् १७५२ में दिल्ली के बादशाह अलीखान बहादुर से मुर्शिदाबाद के सेठ महतावराय को जगत सेठ की उपाधि से विभूषित किया । उन्हें मधुवन कोठी, जयपारनाला, जलहरि कुण्ड, पारसनाथ तलहटी पहाड़ उन्हें भेंट स्वरूप दे दिया । सं० १८०६ में इसी सेठ को बादशाह अहमदशाह ने उन्हें ३०१ बीघा जमीन भेंट में दी ।

सं० १८१२ में बादशाह अब्दु अली खान ने पवित्र पहाड़ को कर मुक्त कर दिया । श्री महतावराय इस पहाड़ का जीर्णोद्धार करना चाहते थे, पर उन्हें मौत ने आ घेरा । उनके पुत्र सेठ खुशहालचंद ने इस कार्य को सम्पन्न किया । उन्होंने दैवी संकेतों से २० टुकों का निर्वाण किया । इन टोंकों की प्रतिष्ठित सन् १८२५ माघ शुक्ला तृतीय को आचार्य धर्मगिरि के कमलों से हुई । इसी जीर्णोद्धार के अंतरगत जलमंदिर, मधुवन में सात मन्दिरों, धर्मशाला, पहाड़ पर श्री भोमिया निर्माण हुआ ।

सं० १८२५ से १८३३ तक इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार के अन्तर्गत ही भगवान आदिनाथ भगवान वासुपूज्य, नेमिनाथ,

आस्था की ओर बढ़ते कर्म
महावीर तथा शाश्वत जिनश्री ऋषभानन्द, चंद्रानन, वारिषेण,
वर्धमान आदि की नई टोकों का निर्माण हुआ ।

कालचक्र के प्रवाह से इस पर्वत पर एक और संकट
आया । पालगंज के राजा ने पहाड़ बेचने की सार्वजनिक
घोषणा की । सूचना पाकर कलकत्ता के रायवहादुर श्री
वद्रीदास जौहरी एवं मुर्शिदाबाद के श्री वहादुर सिंह दुग्गड़,
अतिरिक्त भारतीय श्वेताम्बर संस्था आनन्द जी कल्याण जी
पेढी को यह पहाड़ खरीद करने का संकेत किया । दोनों
महान आत्मा के सक्रिय सहयोग से इस पेढी ने यह पहाड़
₹.३.१६१८ को २४२२००० रुपये में क्रय किया, तबसे इस
पहाड़ का प्रबंध से यह पेढी करती है ।

साध्वी श्री सुषमाजी के अनधिक प्रयासों से संवत्
२०१२ में इस तीर्थ का पुनः जीर्णोद्धार हुआ जो संवत्
२०१७ में पूर्ण हुआ । यह २३वां जीर्णोद्धार था । आज इस
तीर्थ पर जो हन देख रहे हैं, सब इस जीर्णोद्धार का फल है,
इसका विस्तार है ।

इस पावन तीर्थ की यात्रा संकटहारी, पुण्यकारी और
जन्म जन्म के पाप विनाश करती है । लगभग ५ कि.मी. की
चढ़ाई पर गंधर्वशाला है । यहां यात्री विश्राम करते हैं, यहां
भाताघर (नाश्ता) है । यात्रियों को नाश्ता मिलता है । यहां
से २ कि.मी. दूरी पर ५०० सीढ़ियां चढ़ने के बाद समतल
भूमि आती है । इसके आगे यात्रा शुरू होता है । यहां
पार्श्वनाथ स्टेशन से समाज की बस मुफ्त चलती है । वैसे
सब यात्री पैदल चलने में पुण्य मानते हैं । वैसे यहां डोली
का इंतजाम दोनों धर्मशालाओं में है । यहां बीसपंथी, तेरापंथी
कोठी धर्मशालाएं हैं । श्वेताम्बर कोठी धर्मशाला काफी
प्राचीन है । इस तीर्थ का संचालन सेठ आनन्द जी कल्याण
जी पेढी अहमदाबाद के जिम्मे है । पहाड़ की सारी सम्पत्ति

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 श्वेताम्बर समाज के नाम है । इस तीर्थ को यहां के महाराजा से पेढी ने खरीदा था । वैसे मुगल काल में अनेकों बादशाहों ने इस तीर्थ पर शिकार पर पाबन्दी लगाई थी, अब इस क्षेत्र में पूर्ण शिकार पर प्रतिबंध है ।

तीर्थदर्शन :

मधुवन में आठ श्वेताम्बर मन्दिर हैं, दादावाड़ियां हैं । एक भोमिया जी का मन्दिर सर्वमान्य है । उन्हें तीर्थरक्षक माना जाता है । दिगम्बर धर्मशाला में भी मन्दिरों का भी भव्य समूह है । यहां अनेकों चौबीसी के तीर्थंकर आए, यह उनकी याद दिलाती है । यहां १७ जिनालय हैं, एक पार्श्वनाथ कल्याण केन्द्र है, एक जैन म्युजियम है जो जैन मंदिर की संस्कृति का प्रहरी है । यहां मधुवन की रौनक देखते ही बनती है । समस्त विश्व के जैन यात्री यहां बिना भेदभाव से आते हैं, अपनी-अपनी विधि अनुसार पूर्जा अर्चना करते हैं । यह गुजराती जैन समाज का भव्य व कलात्मक मंदिर है ।

पहाड़ के ऊपर की यात्रा दिगम्बर भाई रात्रि के दो बजे आरम्भ करते हैं, श्वेताम्बर ४ बजे करते हैं । ऐसा यहां की पूजा व्यवस्था कोर्ट ने तय कर रखी है । यात्रीगण भक्ति भाव से पूजा करके जीवन सफल करते हैं । पहाड़ों की ऊंची उग्र सघन वनों से गुजरती है । अंतिम तीन कि.मी. की चढ़ाई कठिन है । ६ कि.मी. चढ़ाई है । ६ कि.मी. मंदिरों टोकों का परिसर है, ६ कि.मी. उतराई है । इस प्रकार पर्वत पर कुल २७ कि.मी. चढ़ाई उतराई है ।

पार्श्वनाथ स्टेशन पर हर ट्रेन रुकती है, यहां धर्मशाला में वसों के रुकने की सुन्दर व्यवस्था है । यहां का हर कण-कण पूज्नीय है । कम से कम एक हजार यात्री

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 धर्मशाला में ठहरते हैं । इस स्थान पर जैन परम्परा का पुर्ननिर्वाह किया जाता है । हर प्रदेश के यात्रियों का यह अच्छा मिलन स्थल है । यात्रा करने वाले तीर्थ यात्रियों को सर्वप्रथम भोमियां जी की पूजा करनी होती है । फिर उनकी आज्ञा से पूजा शुरू होती है । यात्रा सम्पन्न होने पर भी भोमियां जी का प्रशान्त चढ़ाना जरूरी है । यह तीर्थ की नान्यता है । पर्वत की चढ़ाई में व्यवस्था व सुरक्षा के लिये सिपाही साथ भेजे जाते हैं । यह यात्रियों की जंगली जानवरों से सुरक्षा करते हैं । सिपाही नीचे रुकते हैं । हर यात्री को अपनी धर्मशाला में यात्री की सूचना देना जरूरी है । ऊपर घना जंगल, चोटियां व प्रकृति के सुन्दर दृश्य बिखरे पड़े हैं । कलकत्ता वालों के लिये तो यह हिल स्टेशन की तरह है, पर यहां यात्री के लिये निश्चय बनाया जाता है कि मांस, शराब या उससे बना पदार्थ पहाड़ पर न ले जाया जाये । सारी व्यवस्था श्वेताम्बर कोठी की गुजराती समाज के जिम्मे है ।

समेदशिखर दर्शन :

पर्वत के ऊपर चढ़ते सब से पहले सीतानाला आता है । यहां सिपाही रुक जाते हैं और वापसी तक इंतजार करते हैं । यहां से सीधी चढ़ाई शुरू हो जाती है । आगे गंधर्व नाला आता है, जिसका जल सुन्दर व स्वच्छ है । यहां पूजा की सामग्री शुद्ध की जाती है, फिर आती है पहली टोक जो गणधर गौतम स्वामी की है, यहां एक कमरे की धर्मशाला है, जहां मुनिराज ही ठहर सकते हैं । गृहस्थी को हर हालत में नीचे आना होता है ।

दूसरी टोक आठवें तीर्थकर श्री कुन्धुनाथ की है । तीसरी टोक शाश्वत तीर्थकर ऋषभानन की है चौथी टोक श्री

चंद्रानन शाश्वत तीर्थंकर की है, पांचवीं २१वें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान की है, छठी टोंक अटाहरवें तीर्थंकर अरहनाथ की है । सातवीं टोंक १६वें तीर्थंकर श्री मल्लिनार्थ भगवान की है । आठवीं टोंक ११वें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ की है, ९वीं टोंक तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ जी की है । दसवीं टोंक छठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभु जी की है । ११वीं टोंक २०वें तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रत स्वामी की है । १२वीं टोंक तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की है । यह टोंक एक स्वतंत्र पहाड़ी पर है, सीधी चढ़ाई है । कई लोग इस टोंक को भाव-वन्दन ही कर पते हैं, यहां से चढ़ाई कठिन हो जाती है । यहां वन्दरों की भरमार है । १३वीं टोंक प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जी की है, १४वीं टोंक श्री अनंतनाथ भगवान की है, १५वीं टोंक श्री शीतलनाथ भगवान की है । १६वीं टोंक तीसरे तीर्थंकर भगवान सम्भव नाथ की है । १७वीं टोंक १२वें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य की है, १८वीं टोंक चौथे तीर्थंकर श्री अभिनन्दन स्वामी की है । यहां से जलमंदिर की दूरी कम रह जाती है । यह स्थान तीनों तरफ से जलकुण्डों से घिरा हुआ है ।

१९वीं शिखर पर भगवान पार्श्वनाथ का जलमंदिर है, यहां धर्मशाला व पूजा के लिये अच्छी व्यवस्था है । यह यात्रा का मध्य है, यहां यात्री स्नान करके पूजा करते हैं । यहां कुछ आराम भी करते हैं । यहां से हम स्वयं को पर्वत की चोटियों से घिरा रहता है । २०वें शिखर पर गणधर गोत्तम स्वामी के चरण हैं, २१वें शिखर पर १५वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ की टोंकें हैं । २२वीं टोंक शाश्वत तीर्थंकर वारिष्ण की है, २३वीं टोंक शाश्वत तीर्थंकर वर्धमान की है, २४वीं टोंक श्री सुमति नाथ की है, २५वीं टोंक १६वें तीर्थंकर श्री भगवान शान्तिनाथ की है । २६वीं टोंक श्री महावीर स्वामी की टोंक है जो २४वें तीर्थंकर थे । २७वीं टोंक श्री

सुपाश्वनाथ की है, २८वीं टोंक व २८वां शिखर द्वितीय तीर्थंकर भगवान अजीत नाथ का है, जहां उनकी टोंक स्थापित है । ३०वीं शिखर पर २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ मोक्ष गये थे ।

३१वीं टोंक २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की है, जो सबसे ऊर्ची टोंक है । यह प्रभु पार्श्वनाथ की समाधि भी है, यह टोंक दोमंजिल की है । यहां से खड़े होकर मधुवन का नजारा देखने योग्य है, पहाड़ से नीचे निहारते हैं तो सारे मंदिरों की निर्माण शैली व कला अत्यन्त मनोरम लगती है, सारे मन्दिरके कलश ऐसे लगते हैं, जैसे धरती पर देवदिनाम उतर आये हों, यहां यात्रा सम्पूर्ण होती है । यहां एक डाक-वंगला है । मधुवन के ऊपर समेदशिखर पहाड़ मुकुट के आकार का प्रतीत होता है । पहाड़ी परिवेश, सघन वन, नैसर्गिक सौन्दर्य आत्मा को शांति प्रदान करता है ।

मधुवन पर बहुत से मुनियों सन्नाधि मरण ग्रहण कर पंडित मरण प्राप्त किया है, यहां पर अनेकों मुनियों, श्रद्धालुओं की समाधियां भी हैं । यहां मधुवन में निर्माण कार्य चलता रहता है । कभी पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार हो रहा है, कहीं नये मन्दिर व धर्मशालाएं बन रही हैं, अनेकों आचार्य, साधु, साध्वी भारत के कोने-कोने से इस तीर्थ की यात्रा के लिये आते हैं । यहां एक दर्जन से अधिक धर्मशालाएं हैं । यहां १५०० यात्री आराम से ठहर सकते हैं । यहां होली के पर्व पर मेला लगता है, जिस पर यात्री व यहां के लोग उत्साह से भाग लेते हैं ।

इन धर्मशाला में पर्याप्त मात्रा में प्रचार सामग्री प्राप्त होती है, इसमें साहित्य, प्रतिमा, माला व ऑडियो कैसेट पर्याप्त मात्रा में मिलती है, यहां अच्छा वातावरण, बैंक की सुविधा है, यहां स्थानिक वासी मुनि श्री नवीन चंद्र जी म० ने

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 श्री पार्श्वनाथ कल्याण केन्द्र की स्थापना की है । इस मन्दिर की ऊपरी मंजिल पर महाप्रभावक आचार्य श्री शांति विजय जी म० की प्रतिमा है । जिसके कारण बहुत सारे यात्री इस स्थान पर ठहरना पसन्द करते हैं ।

हमारी शिखर जी की यात्रा

नवादा से दोपहर को हम बस द्वारा चलकर गिरडिह पहुंचे । यहां से एक छोटा सा रास्ता मधुवन को जाता है, इस रास्ते का हमें ज्ञान नहीं था, परन्तु बस में बैठे कुछ यात्रियों ने हमारा मार्ग दर्शन किया । उन्होंने बताया कि आप लोगों को कोण्डरमा पार्श्वनाथ जाने की आवश्यकता नहीं, जब तक आप कोण्डरमा पहुंचोगे तब तक आप मधुवन पहुंच जाओगे । अगर आप टैक्सी से जाओ तो आप यह रास्ता शीघ्र तय कर लोगे । हम गिरडिह उतरे, बस स्टैंड से टैक्सी ली, उस समय शाम पड़ चुकी थी, रात्रि का सन्ध आ गया था । टैक्सी के माध्यम से आधे घण्टे में पवित्र मधुवन के दर्शन कर रहे थे । मधुवन पहुंचते ही हमारी सारी थकावट दूर हो गई । हम श्री श्वेताम्बर जैन कोटी मधुवन पहुंचे, वहां धर्मशाला का विशाल परिसर है । धर्मशाला में मन्दिर का भव्य परिसर है, इसमें अनेकों नवीन व प्राचीन मन्दिर थे । इस धर्मशाला के बाहर भोमिया जी तीर्थ रक्षक की भव्य प्रतिमा थी । अन्दर के मन्दिर तीर्थंकरों की प्रतिमाओं से भरे पड़े थे । यह ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेनिनाथ व महावीर को छोड़ सभी तीर्थंकरों का निर्वाण हुआ था । वैसे सभी तीर्थंकर यहां पधारे थे ।

दिगम्बर मन्दिर में अधिकांश प्रतिमाएं भगवान पार्श्वनाथ की थीं । इसी तरह यहां समोसरण मन्दिरका भव्य परिसर था, जिसमें विशाल समोसरण था । बाहर ३ चौबीसी, उनसे

आस्था की ओर बढ़ते कदम
सन्बन्धित शासनदेव, देवीयों की प्रतिमाएं थीं । यह मंदिर
शिखर जी के नीचे सबसे करीब है ।

एक भव्य मंदिर गुजराती समाज का था, जिसकी अपनी धर्मशाला थी । यहां विशेष रूप से गुजराती ठहरते हैं, यहां गुजराती खाना आराम से मिलता है, रात्रि को पहुंचने का फायदा यह रहा कि हमने सभी मंदिर की आरती में कुछ समय के लिये भाग लिया । फिर हम खाना खाने के लिये बाजार में आये, यहां थकान के कारण कम भोजन ही लिया, पर मैं एक एक बात उल्लेख करना चाहता हूं कि मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन के पांवों में एक पत्थर चुभने के कारण चोट लगी । इतना घाव होते ही उसने मेरे साथ यात्रा में मेरा साथ दिया । यह सब उसका मेरे प्रति समर्पण भाव का चिन्ह है ।

भोजन करने के बाद हमने सुवह का कार्यक्रम तय करना था । हमने धर्मशाला के मुनीम से यात्रा के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कल यहां वर्षा हुई थी, कल को कोई यात्रा वहां नहीं जा सकेंगे । पहाड़ की फिसलन है । मैंने कहा 'मौसम जैसे भी हों, हमें कल यात्रा करवायें । मुनीम जी ने कहा, "ऐसी बात है तो दादा भौमिया के यहां प्रार्थना में शामिल हो जाओ, सुवह चार बजे आपको उठावेंगे । यहां यात्रा में उपवास किया जाता है, अगर आप नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, कोई नकदी हो तो जमा करवाकर रसीद ले लो, बाकी पूजन सामग्री भेंट ले लो, सुवह तो आपको यात्रा करनी ही है । "

मैंने मुनीम जी की सारी बातों की ओर ध्यान दिया । उन्होंने हमें यह भी पूछा कि आपको डोली चाहिये तो वजन करवा लो, सुवह डोली वाला सुविधा से यात्रा करवा देंगे । मैंने कहा, "हम प्रभु दर्शन पैदल करेंगे, उन्होंने हमारा नाम

लिख लिया। मैंने एक नौकर लिया, उसको एक टार्च संभाली। हमारा कुछ सामान था जो पूजा के काम के लिए था। फिर भोमिया जी महाराज के चरणों में विधि सहित प्रसाद अर्पण किया। भोमिया के भक्त यहां मनुष्य ही नहीं पशु भी हैं। वहां यात्रियों के साथ कुत्ते स्वयं जाते हैं। यात्रियों को रास्ता भटकने नहीं देते। इसलिये कुत्तों की खूब सेवा होती है। उन्हें भोजन व दूध प्रदान किया जाता है। यह बात इस तीर्थ की विशेषता है कि यात्रा की तैयारी भोमिया जी के भजन कीर्तन से शुरू होती है। यहां हर समय अतिशय घटित होते रहते हैं।

हम रात्रि को सोने के लिये अपने कमरे में पहुंचे। यह विशाल कमरा था। हमें शाम के खाने की पर्ची दी गई क्योंकि यात्री अक्सर ४ बजे शाम वापस आ जाते हैं। शाम को उतरते समय लड्डू व नमकीन दिया जाता है। वहां एक चाय की दुकान खुली थी। सुबह चार बजे से पहले हम उठे, भोमिया जी को वन्दना कर हम चले। हाथ में पहली वार लाठी पकड़ी। लाठी का पहले तो हमें कोई लाभ महसूस नहीं हुआ पर आगे जब उतराई आई, तब छड़ी का महत्व पता चलता गया।

हम सुबह ही दो लड़कों से मिले, जो आदिवासी थे। वह पेढी के सिपाही थे, दोनों तीरअंदाज तीर के पक्के निशानची थे। जंगली जानवरों से यात्रियों की रक्षा करने के लिये इस तरह की व्यवस्था श्री आनन्द जी कल्याण जी पेढी ने कर रखी है। यहां सब लोग प्रभु पार्श्वनाथ जी की जय-जयकार करते पर्वत पर चढ़ते हैं। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष नवयुवक सभी एक भावना से चलते हैं। मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन को चाय की तलाश थी। सो हम दोनों ने एक होटल में चाय पी, क्योंकि पहाड़ की चढ़ाई थकाने वाली

होती है । हम पर्वत राज की ओर बढ़ने लगे । कुछ ही किलोमीटर चलने पर सीतानाला आया । यहां एक बार पुनः चाव पी, क्योंकि सुबह के नाशते का कोई स्थान इस तीर्थ स्थान पर नहीं, वैसे भी ऊपर शुद्धि का काफी ध्यान रखा जाता है । यह स्थान प्रदूषण मुक्त स्थान है ।

अपने सहधर्मीयों के साथ तीर्थंकर परमात्मा के गुणगान गा रहे थे, हम आगे बढ़ रहे थे, रास्ते में एक डोली वाला मिला । इस डोली को चार आदमी उठाते हैं । एक वांस की वहंगी में एक हल्का आसन लगाया जाता है जिसे रखने और उठाते समय डोली वाले पार्श्वनाथ की जय बोलते हैं । सारा पर्वत जयकारों से गूँज रहा था । हम एक ऐसे संसार में पहुंच चुके थे, जहां हमें एक ही स्थान नजर आता था, वह था समेत शिखर । यात्रा कठिन जरूर है, पर इस यात्रा में यात्री कभी थकते नहीं । जीवन में परम सौभाग्य से ऐसे तीर्थ के दर्शन हो रहे थे, जहां एक नहीं, दो नहीं, २४ में से २० तीर्थंकर मोक्ष गये । अनन्त चरित्रात्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया था ।

जिस स्थान से प्रभु मोक्ष गये । पहले यहां उनके मन्दिर थे जो शिखर वेध थे, परन्तु अकबर के काल में विजली गिरने से सारे मन्दिर समाप्त हो गये, तो समाज ने उन स्थानों पर चरन चिन्हों की स्थापना की, जिनका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है, जिनका पहले वर्णन किया जा चुका है ।

सीतानाले के बाद हमें उन दोनों को सिपाहियों को छोड़ना था । वहां से हम और वह छोटा सा नौकर जो काफी होशियार था और रास्ते का जानकार था, हमारे साथ था । हमें अब सीधी और कठिन चढ़ाई शुरू करनी थी जो तीन किलोमीटर से अधिक थी । अब लाठी ही हमारा सहारा

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 थी । इस लाठी की महानता हमें अब प्रतीत हो रही थी । अब सांस फूल रहा था, हम काफी चढ़ाई पर थे । नीचे देखने से हमें यह नहीं लगता था कि हम नीचे का रास्ता पैदल चल कर आये हैं । रास्ते में रुकना भी भयंकर प्रतीत होता था, चढ़ने का उत्साह बना हुआ था ।

करीब दस वजे हम पहली टोंक पर पहुंचे । यह हमारे लिये मांगलिक गणधर गौतम स्वामी की टोंक थी । उसे वन्दना कर ऊपर लिखित टोंक आने लगीं हर टोंक का अपना शिखर है । परिक्रमा के लिये पक्का मार्ग है । यह चरण अधिकांश भूरे पत्थर पर उत्कीर्ण हैं । सभी वेदियां संगमरमर की बनी हुई हैं । यात्रा शुरू हो चुकी थी, हर तीर्थंकर की टोंक का शास्त्रों में अलग नाम है । उस टोंक की स्तुति व परिक्रमा करके चावल चढ़ाये जाते हैं । इसी परम्परा का निर्वाह भी हम कर रहे थे । पर्वत की यात्रा करते हमें दो घण्टे बीत चुके थे । पास ही एक ऊंचे पहाड़ पर एक टोंक देखी, इसकी चढ़ाई एक किलोमीटर है, इतना ही उतराना पड़ता है । ज्यादा यात्री इस टोंक को छोड़ देते हैं, पर मेरे मन में ऐसा करने का विचार नहीं था । हम दोनों इस टोंक पर चढ़े । चन्द्रप्रभु की टोंक की पहाड़ी का नाम भी चन्द्रप्रभु पहाड़ी है, हम वापिस आये तो आसपास तीर्थंकरों की टोंकों के दर्शन करते रहे । दोपहर के २.३० बजने को थे । हमारी आधी यात्रा सम्पन्न हो चुकी थी । हम यात्रा के अगले महत्वपूर्ण पड़ाव की ओर आगे बढ़े ।

जल मन्दिर की यात्रा :

हम जलमंदिर पहुंच चुके थे । हम जलमंदिर के बारे में क्या वर्णन करें ? यह पर्वत के मुकुट का नगीना है । यहां शीतकुंड का झरना मन्दिर जी शोभा में चार चांद लगाता

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 है । इस मन्दिर जी में पहुंचकर यात्री स्नान करते हैं । हमने यहां स्नान किया, पुनः पूजा के वस्त्र धारण प्रभु पार्श्वनाथ के मंदिर आये । यह स्थान परम शांति प्रदान करने वाला है । यहां पहुंचकर लगता है कि हमने जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य पूरा कर लिया है, यह पर्वत स्वर्ग का मनोरम दृश्य प्रतीत होता है । मन्दिर जी में श्री सांवलिया पार्श्वनाथ अपनी आभा के साथ विराजमान हैं । आसपास शासनदेव, शासनदेवीयों की प्रतिमाएं हैं, यह मन्दिर पूर्णरूप से संगमरमर का बना हुआ है, मन्दिर भव्य है, मनोरम है । यात्रियों को आकर्षित करता है । बड़ी बात यह है कि सारे पर्वत पर यहीं एक मन्दिर है । बाकी तो टोंके हैं ।

हमने जलकुंड के पवित्र कुंड को देख, यहां आसपास के वन प्रकृति सम्पदा से भरे पड़े हैं । यहां औषधियों के भण्डार है । यह औषधियां स्थानीय आदिवासी लोग धर्मशाला में बेचते हैं । हर विमारी की औषधि है । यहां की औषधियां भी चमत्कारी हैं । स्नान के बाद हमने पुजारी की सहायता से पूजा सम्पन्न की । फिर हमें इसी पुजारी ने खाना बनाकर खिलाया । यहां के पुजारी भक्तों का विशेष सम्मान करते हैं । प्रभु पार्श्वनाथ की साक्षी से मैंने अपने धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन को शाल ओढ़ाया । यह उसकी समर्पित आत्मा को महत्वपूर्ण भेंट थी ।

फिर मन्दिर जी में हम कुछ समय रुके । रुकने के बाद हमने पुनः यात्रा प्रारम्भ की, पर अभी दो टोंक ही सम्पूर्ण की थीं कि आसमान पर घनघोर बादल छा गये । इन बादलों में मधुवन के मन्दिरों का समूह, अपनी अनुपम छटा बिखेर रहा था । अभी कुछ ही दूर चले होंगे कि वर्षा शुरू होने लगी । पहाड़ों में वर्षा इसी तरह अचानक ही होती है, पर ज्यादा ऊंचाई के कारण यह वर्षा तूफान के साथ आई ।

हम आगे बढ़ रहे थे, वर्षा पड़ रही थी । कुछ ही समय के बाद हमें इस पर्वत का सबसे ऊंचा शिखर दिखाई दिया । यह शिखर प्रभु पार्श्वनाथ की टोक थी । यह अन्तिम शिखर था ।

वर्षा से हम पूर्ण रूप से भीग चुके थे, हमने प्रभु पार्श्वनाथ की टोंक में बैठकर आराम लिया । हमें टोंक से पहुंचने से पहले एक खाली डोली वाला मिला, जिसने हमें डोली में बैठने का आग्रह किया । हमारे द्वारा यही उत्तर था कि इस समेत शिखर जी की यात्रा हमें पैदल ही करनी है । हम किसी के कंधे पर चढ़कर जाना ही नहीं चाहते । यह टोंक बहुत भव्य है । इस पर चढ़ने के लिये पक्की सीढ़ियों का निर्माण किया गया है । इसकी दो मंजिलें हैं, निचली मंजिल प्रभु पार्श्वनाथ की समाधि चरण है, हमने वहां पूजा की, वहां भी पुजारी विधि से पूजा करा देता है । वहां हमें बैठे-बैठे ४ वज्र गये । वर्षा थमने का नाम नहीं ले रही थी । इधर गर्मी के दिन दड़े होते हैं, इस तरीके से हमें दिन बड़ा नजर आ रहा था । यात्रा में समय का कोई ध्यान न रहा । हम वर्षा रुकने का इंतजार कर रहे थे ।

चमत्कार :

वर्षा रुकने पर हम चले जब हम पर्वत से नीचे उतर रहे थे तो एक भाई ने शिखर पर से पूछा, “आप यात्री हो ?” मैंने कहा, “हां हम यात्री हैं ।” उसने कहा “नीचे स वायरलस आया है, आप जल्दी नीचे पहुंचो, आप को लेकर सारी धर्मशाला में चिन्ता व्याप्त है ।” फिर उसने हमसे देरी का कारण पूछा । मैंने कहा, “भैया ! क्या करें, भारी वर्षा के कारण हम पार्श्वनाथ की टोंक में रुक गये थे । जब वर्षा थमी तो हम नीचे उतर रहे थे ।” उस भाई ने कहा, “तुम

जल्दी प्रस्थान करो, यह पर्वत है, यहां जल्द अंधेरा हो जाता है ।”

हमने उसकी बात की ओर ध्यान दिया, उसकी बात सही थी । ज्यों-ज्यों हम नीचे उतर रहे थे, उतना भयंकर अंधेरा बढ़ रहा था, जंगल की शून्यता का अनुभव होने लगा, वर्षा के कारण कुछ फिसलन थी । पांवों कहीं रखते, जाता कहीं था । पांच-छः वार मेरा धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन फिसला, पर मैंने मौके पर उसे संभाला । फिर अंधेरा छा गया, हमें एक दूसरे को पहचानना मुश्किल हो गया । इस भयंकर जंगल में टॉर्च जाला लड़का हमें रास्ता दिखा रहा था । भयंकर जंगल में हम फंस चुके थे । हमारा आवाज का रिश्ता रह गया । इतना भयंकर अंधकार था कि इधर नीचे धर्मशाला वालों को हमारी कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई तो उन्होंने ६ व्यक्तियों को तीन गैस देकर रवाना किया । इस सघन जंगल में भगवान पार्श्वनाथ की जय ही हमारे काम आई । जब हम थक जाते तो साथ वाला लड़का हमें जय-जयकार करने को कहता । हम अभी सीतानाले की ओर पहुंचे भी नहीं थे कि ६ व्यक्तियों का दल भगवान पार्श्वनाथ की जय-जय करते हुए हमें मिल गये । प्रभु पार्श्वनाथ ने अपने भक्तों की सहायता के लिये यह चमत्कार किया । उन व्यक्तियों ने पहले हमारी कुशलता पूछी, फिर आगे बढ़कर रास्ता दिखाने लगे । सारा जंगल इस प्रकाश से जगमगा उठा । अब हमें धर्मशाला पहुंचाने का जिम्मा उन लोगों का था । उनके साथ तबरे हमारे साथ चले सिपाही भी थे । वह अपने तीरों से सुसज्जित थे । यह अलौकिक काफिला धीरे-धीरे सीतानाले के पास पहुंचा । यहां पक्की सड़क थी, जहां कभी डाक बंगला बना था, परन्तु अब यहां ठहरने की इजाजत नहीं । सड़क भी भारत सरकार ने

वनानी शुरु की थी, जिसकी इजाजत आनंद जी कल्याण जी पेड़ी ने नहीं दी । समाज की बदकिस्मती है कि यहां सौ साल से श्वेताम्बर व दिगम्बर कानूनी अदालती लड़ाई लड़ते आ रहे हैं । जिसका समाज को काफी नुकसान पहुंचा है । समाज का पैसा पानी की तरह बहा है ।

भयंकर फिसलन व मिट्टी गिरने के कारण हम धीरे-धीरे चल रहे थे । हम रात्रि में ८ बजे अपनी यात्रा सम्पन्न कर सके । फिर नीचे आकर पार्श्वनाथ पर्वत को प्रणाम किया । यह सिद्धभूमि व मोक्ष भूमि है, इसलिये हर जैन के लिये हर क्षण, हर पल इसको वन्दन करना जरूरी है । हम नीचे उतर चुके थे, अब हमारे शरीर में थकावट बहुत हो चुकी थी । २७ कि.मी. की पहाड़ी यात्रा भयंकर कठिनाईयों से भरी हुई थी, पर प्रभु पार्श्वनाथ व भोमिया जी की कृपा भक्तों पर ऐसी है कि संकट कभी आता नहीं । हमने एक हलवाई से प्रशाद खरीदा, भोमिया जी को धन्यवाद रूप में अर्पण किया । इतनी थकावट के बावजूद हमने साथ खुले मन्दिरों के दर्शन किये, फिर धर्मशाला में पहुंचे । हमारे मुनीम जी ने हमसे कहा, “श्रावक जी ! आपको यात्रा में काफी कठिनाई आई होगी, हमें चिन्ता सताती रही ।” मैंने कहा, “समेदशिखर तो मोक्ष भूमि है, इसकी गोद में कोई कष्ट उपद्रव नहीं आता । वाकी देव, गुरु व धर्म की कृपा से हमें कोई कष्ट नहीं आया ।”

पुनः हमने होटल में खाना वनवाया क्योंकि भोजनशाला वन्द हो चुकी थी । सूर्य उदय के पश्चात् किसी भी जैन तीर्थ पर भोजन की व्यवस्था नहीं है । ऐसा जैन धर्म का सख्त नियम है जिसे सारे मुनिराज श्रेष्ठ, श्रावक वर्ग जीवन भर पालन करता है । महाव्रतों के बाद छठा रात्रि भोजन परित्याग व्रत है, पर हन अभी श्रावक के व्रतों के धारक

नहीं, हम तो मात्र जैनधर्म के असूलों को मानने वाले हैं ।

मेरा धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन थक चुका था । मैंने होटल में भोजन तैयार करवाया, तब तक वह सो चुका था, मैंने उसे उठाया और खाना खाने को कहा । उसने बहुत अल्पमात्रा में खाना खाया । अब रात्रि काफी व्यतीत चुकी थी, यहां की मार्केट रात्रि को भी खुली रहती है । मैंने परिजनों को भेंट करने के कुछ उपहार खरीदे । जैन तीर्थ पर यही उपहार प्रसाद होता है । रात्रि बीती, सुबह हुई, हमने पुनः सारे मन्दिरों के दर्शन किये ।

मंदिरों में दर्शन पूजा से अभूतपूर्व शांति मिली । यह तीर्थ तीर्थराज है । यहां इतना शांत वातावरण है कि भिन्न-भिन्न देशों-प्रदेशों, भाषा, संस्कृतियों के यात्रियों के दर्शन होते हैं । यहां अनन्त तीर्थकर आये, भविष्य में भी आयेंगे और मोक्ष प्राप्त करेंगे । दिगम्बर मान्यता तो यह कहती है कि तीर्थकर जन्म अयोध्या में लेते हैं, मोक्ष समेदशिखर से जाते हैं । पर वर्तमान चौबीसी में यह आश्चर्य हुआ है कि तीर्थकर कई स्थानों पर जन्मे । चौबीसवें में से २० ही यहां मोक्ष पधारे । धर्मशाला के यात्रियों से नजदीक पड़ने वाले तीर्थों के बारे में पूछा । एक यात्री ने बताया यहां से २८ कि.मी. की दूरी पर प्रभु महावीर का केवलज्ञान स्थान है, पर १६ कि.मी. दूरी पर श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा मान्य लछुवाड़ है जो अपभ्रंश नाम है । इसका असल नाम लिच्छवी वाड़ होना चाहिये क्योंकि प्रभु महावीर लिच्छवी कुल के थे । उनका वंश ज्ञात था ।

महावीर की श्वे० जन्म भूमि - लछवाड़ की ओर :

मैंने केवलज्ञान स्थान को वहीं से भाव-वन्दन किया । हमें एक यात्रियों का संघ मिल गया जो क्षत्रिय कुंडग्राम रहा था । वहां दो सीटें आराम से मिल गई । इस संघ में एक भजन मंडली व एक श्रीयति भी थे, जो गृहस्थ वस्त्र में थे । समेदशिखर में सराक जाति के वच्चों के उत्थान के लिये बहुत सारे यतियों ने पाठशाला खोल रखी है, जहां उन्हें मुफ्त शिक्षा दी जाती है । प्राचीन संस्कारों का ज्ञान करवाया जाता है । यह जाति जैन तीर्थंकरों को मानती है । इनकी गिनती विहार, बंगाल, उड़ीसा में पाई जाती है । दिगम्बर मुनि भी इनके गांवों में पाठशाला खोलकर इन्हें संस्कारित करते हैं । यह शाकाहारी समाज प्रभु पार्श्वनाथ को अपना इष्ट मानता है । “सराक” श्रावक का अपभ्रंश है ।

हम उसी गाड़ी में जा रहे थे, रास्ते में एक स्थान पर गाड़ी रुकी । यहां भी धार्मिक स्थल था, कुछ समय रुककर चायपान किया । सफर ज्यादा लम्बा था, हमें अब थकावट नहीं थी, मन में एक उत्साह था । प्रभु महावीर की तीसरी जन्मभूमि के दर्शन करने का सौभाग्य हमें मिल रहा था । चौदह सौ सालों से जैन तीर्थ यात्री इस स्थान की यात्रा करते रहे हैं । जन्मभूमियों में यह सबसे प्राचीन है । यहां के स्थानीय आदिवासी प्रभु महावीर के भक्त हैं । यह अपने ढंग से प्रभु महावीर के प्रति श्रद्धा रखते हैं । उस दिन भी एक जलूस आदिवासी पर्यूषण पर निकाल रहे थे । गांव में खूब चहल-पहल थी, लछुवाड़ भी अपनी नदियों व हरियावल चित्त को मंत्रमुग्ध करती है ।

यह स्थान वाया सिकन्दरीया में पड़ता है । विहार में

हम जहां-जहां भी गये, हमें नकसलवाड़ियों का सबसे अधिक प्रभाव हर स्थान पर लगा । यहां के हर गांव में लाल झंडे दिखाई देते हैं । हम जिस दिन लछुवाड़ पहुंचे, उस दिन गांव के बाहर आदिवासी अपनी वेषभूषा में नाचते गाते पहाड़ के नीचे वाले मन्दिर में आ रहे थे । खूब ढोल, नगारे बज रहे थे । हर स्थान पर चहल-पहल थी ।

दर्शन :

यह स्थान प्रभु महावीर का जन्मस्थल माना जाता है । गांव का मन्दिर श्री यतिजी का है । जहां धर्मशाला, भोजनशाला है, रहने की सुन्दर व्यवस्था है, प्रभु महावीर का जन्म स्थान ऊपर पहाड़ी पर है । जहां तलहटी में प्रभु महावीर की २००० वर्ष से ज्यादा प्राचीन प्रतिमा विराजमान है, मंदिर में प्राचीनता के दर्शन कदम-कदम पर होते हैं । एक पहाड़ी पर राजा सिद्धार्थ के महल के खण्डहर हैं ।

पहाड़ के दूसरी ओर ब्राह्मण कुंडग्राम है, कुंडग्राम के दो भाग थे - ब्राह्मण कुंडग्राम व क्षत्रिय कुंडग्राम । प्रभु महावीर का जन्म जीव ब्राह्मण कुंडग्राम के ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी गर्भ में ८४ दिन रहा । फिर शकेन्द्र ने इस गर्भ का परिवर्तन क्षत्रिय कुंडग्राम नरेश राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के यहां स्थापित कर दिया । यह विवरण श्वेताम्बर आगम आचारांग व कल्पसूत्र में मिलता है । यही ब्राह्मण व ब्राह्मणी प्रभु महावीर के प्रथम चतुर्मास में साधु बने । आत्म कल्याण कर मोक्ष के अधिकारी बने । भगवान महावीर के तीन कल्याणक वहीं हुए । यह तीन कल्याणक थे, च्यवन, जन्म व दीक्षा ।

प्रभु महावीर की दीक्षा छोटी सी नदी पार करके बहुसाल चैत्य में हुई थी । यह सुन्दर वन था । इसकी

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 सुन्दरता अभी कम नहीं हुई । यहां के लोग सरल व विनम्र हैं । अभी-अभी साध्वी चन्दना ने प्रभु महावीर के २६०० जन्म दिवस पर यहां एक स्कूल की स्थापना की है । इस स्थान का विकास हो रहा है । उनकी प्रेरणा से यहां वलि प्रथा वन्द हो चुकी है । अब साध्वी जी यहां परोपकारी योजना चालू कर रही हैं ।

यह तीर्थ लछुवाड़ से दूर स्थित कुंडलधार तलहटी के ऊपर स्थित है । प्रभु महावीर के जीवन के तीस वर्ष यहां व्यतीत हुए थे । तलहटी में दो छोटे मन्दिर भी हैं । इन स्थान को च्यवन व दीक्षा नाम से संबोधित किया जाता है । प्रभु की प्रतिमा प्राचीन होने के साथ-साथ पद्मासन में स्थित है । टहरने के लिये यहां की धर्मशाला में १०० कमरे हैं । सभी कमरे सभी सुविधाजनक हैं । पहाड़ पर पानी की सुविधा है । इसका जिला जमुई है । यहां पहाड़ी पर चढ़ने में कठिनाई होती है ।

लछुवाड़ यात्रा :

हम तीन वजे के बाद लछुवाड़ पहुंचे । हमने पहले वहां धर्मशाला वाले मन्दिरों के दर्शन किये, फिर पहाड़ पर ट्राक से गये । वहां भव्य परिसर में प्रभु महावीर का मन्दिर है । जिसे स्थानीय लोग व श्वेताम्बर समाज इस स्थान को जन्म स्थान कहते हैं । प्राचीन काल से ही यात्री लोग प्रभु महावीर की प्राचीन प्रतिमा के दर्शन कर आत्म शांति अनुभव करते रहे हैं । यह कार्य जल्दी ही सम्पन्न हो गया । हम पर्वत की सौरभ्य घाटी में प्रभु महावीर के चरणों में झून रहे थे । फिर नीचे उतरे । वापसी पर वाकी के मन्दिरों के दर्शन किये । मैंने प्रभु महावीर की तीसरी जन्म स्थली देख ली थी । अब हम वापस आये । लोगों का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
आग्रह था कि हम रुकें, पर घर से निकले काफी दिन हो गये थे । उन दिनों एस.टी.डी. कोई सुविधा नहीं थी कि घरवालों को कुछ सूचना दे पाते ।

वापस सिकन्दरीया आये, शाम हो चुकी थी । हमने तांगा लिया । मात्र दो कि.मी. पर ही बस स्टैंड आ गया । यहां हमारा अगला गन्तव्य स्थान को बस पकड़ना थी । हमारी कुछ यात्रा ट्रेन से सम्पन्न हुई । रात्रि पड़ चुकी थी, यात्रा का क्रम चालू था । हमें यह तय करना था कि हम बौद्धगया जायें या सीधे बनारस । दोनों स्थान महत्वपूर्ण व दर्शनीय थे । पर इतनी लम्बी यात्रा का अन्त भी सुखद था । मेरे मन में अपने धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन को तीर्थ यात्रा कराने की भावना थी । इस यात्रा में विहार के २-३ स्थानों को छोड़कर सभी जैन इतिहासिक स्थानों की यात्रा हमने कर ली थी । सबसे बड़ी बात प्रभु महावीर के जन्म स्थानों की यात्रा, राजगृही, पावापुरी व समेद शिखर की यात्रा थी । रास्ते में जो तीर्थ आये हमने दर्शन किये । चंपापुरी में भूचाल आया हुआ था, जिसका पता हमें नहीं था । इन तीर्थों का पता हमें बहुत बाद में चला । बाकी हम जन्म स्थान के कारण लम्बा मार्ग तय कर लिया था । वहां से लछुवाड़ के बस स्टैंड से वाराणसी आने के कुछ सफर हमने ट्रेन से किया ।

बोध गया :

हमें पता चला कि यहां करीब ही प्रसिद्ध हिन्दू व बौद्ध तीर्थ नजदीक पड़ता है । शाम हो चुकी थी । हमने एक जीप ली । उसे पता किया कि वाराणसी को यहां से कब ट्रेन मिलेगी । उसने बताया कि रात्रि को यहां से कोई ट्रेन नहीं जाती । आप गया जी रुकें । यह अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल

है । सुबह यहां हिन्दू व बौद्ध तीर्थों की यात्रा कीजिये । हम रात्रि को २ वजे यहां पहुंचे । यहां स्टेशन के करीब एक होटल में ठहरे । यहीं थोड़ा भोजन किया, फिर सो गये । लम्बी यात्रा की थकान हमें महसूस हुई । सुबह हमने कमरा छोड़ा । अपना सामान लेकर गया दर्शन करने निकले । गया एक प्राचीन शहर है । यहां एक नदी है जिसे बौद्ध उरवेला नदी कहते हैं । इस तीर्थ का पुराणों में बहुत वर्णन है । यहां पांडों की भरमार है । यहां सारे भारत से पिंड दान करने आते हैं । गली गली में कुरसीनामे वही उठाये पांडे घूमते हैं, जो वह पिण्ड भराने वाले का नाम दर्ज कर लेते हैं । यह प्राचीन हिन्दू मन्दिरों, धर्मशालाओं का अच्छा समूह है । यहां पांडे आपसे पहचान जरूर प्राप्त करते हैं । वह आपका जिला व गांव का नाम अवश्य पूछते हैं । फिर वही पांडा आपके पास पहुंचता है जिसके पास आपके गांव का रिकार्ड है ।

गया का दूसरा भाग बोधगया है । इसका सम्बन्ध महात्मा बुद्ध से है । यहां संसार के हर देश का मन्दिर देखने को मिलता है । दो दिगम्बर जैन मन्दिर भी हैं । यहां अधिकांश विदेशी यात्री ही आते हैं । यहां वह स्थान हजारों साल से बरकरार है, जहां महात्मा बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी । वह इतिहासिक वटवृक्ष है, भगवान बुद्ध का चवूतरा है । महात्मा बुद्ध का प्राचीन मन्दिर है । इसकी प्राचीनता व भव्यता इतिहासिक है । वृक्ष के बारे में प्रसिद्ध है कि वट वृक्ष की एक शाखा सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र व पुत्री सघमित्रा ने भिक्षु बनकर, श्रीलंका के अनुराधापुर में लगाई । मध्य काल में आक्रमणकारियों ने इस मन्दिर का प्रारूप बदल डाला । इस वृक्ष को उखाड़ फेंका । करीब १०० वर्ष से पहले श्रीलंका वाली वृक्ष की शाखा को यहां लगाया

अवस्था की ओर बढ़ते कटन
गया है । इस वृक्ष के पत्ते यहां के यात्रियों के लिये यादगार हैं ।

“कहते हैं महात्मा बुद्ध ज्ञान की तलाश में काफी स्थानों पर भटके, कई सन्यासियों से मिले । उन्होंने कटोर तप किया, उनका शरीर का अस्थियों का पिंजर बन गया । उनके शरीर की नाड़ियां तक दिखाई देने लगीं । वह कमजोर पड़ गये । ऐसी अवस्था में वह इस वृक्ष के नीचे पधारे ।”

“रात्रि का समय था, एक काफिला गुजर रहा था । काफिले में एक नृतकी गा रही थी । उसने अपने साथी साजिदों को कहा, “तू इकतारा ध्यान से बजा । तू इसकी तार को इतना मत कस कि तार टूट ही जाये । तार को इतना ढीला मत छोड़ कि यह साज बजना बंद हो जाये ।”

“मात्र यह उद्बोधन के दो शब्दों में बुद्ध को ज्ञान की किरण दिखाई दी, उन्होंने सोचा “शरीर को इतना सुखाना भी नहीं चाहिये कि यह काम करना बंद कर दे । शरीर को इतना ढीला भी नहीं छोड़ना चाहिये, कि यह स्वच्छन्द बन जाये, धर्म को छोड़कर अधर्म को अपनाए । बुद्ध ने कटोर तप छोड़ दिया, उन्होंने ध्यानमार्ग अपनाया । बुद्ध ने अपने धर्म को ध्यान मार्ग का नाम दिया । उन्होंने मध्यम मार्ग का रास्ता प्ररूपित किया ।”

“फिर सुबह हुई, सिद्धार्थ शाक्यमुनि बोधि को प्राप्त हो गये । अचानक एक स्त्री आई । वह बंट के वृक्ष के नीचे खीर चढ़ाने आई थी । वहां बंट वृक्ष के नीचे बैठे महात्मा बुद्ध को इसने साक्षात् ब्रह्मदेवता मानकर खीर अर्पण की । बुद्ध ने खीर खाई, उनकी भूख मिटी । खीर इतनी स्वादिष्ट थी कि उन्होंने उस स्त्री से पूछा, “यह खीर इतनी स्वादिष्ट क्यों है ?”

स्त्री ने कहा, “महाराज ! मेरे यहां सौ गायें हैं, मैंने

उन सब को दुहा, इनका दूध पचास गायों को पिलाया, फिर उन ५० गायों के दूध को २५ गायों को पिलाया, फिर इन्हीं गायों का दूध १२ गायों को पिलाया, उन १२ गायों का दूध मैंने ६ गायों को पिला दिया, फिर मैंने दूध दुहकर २ गायों को पिला दिया । एक को पिलाया । फिर उन दो गायों के दूध से मैंने ये खीर बनाई है । सो इस खीर में १०० गायों का दूध समाया है, इसलिये ये खीर पुष्टिदायक है । बुद्ध ने बड़े आराम से पेट भर खीर खाई । खीर खाने के बाद उनमें अनुपम शक्ति का संचार हुआ । वह सारनाथ पहुंचे, जहां उन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया था ।

गया यात्रा :

हम सुबह एक रिक्शे से रवाना हुए । सर्वप्रथम मैंने हिन्दू गया जी तीर्थ के दर्शन किये । एक पुरोहित जी हमारे गांव से संबंधित थे, वह मुझे साथ ले गया, उसने बड़े विधि विधान के साथ मुझे यहां के मन्दिरों के दर्शन करवाये । फिर नदी में पूजा करवाई । गया तीर्थ में पण्डे ही पण्डे हैं यहां पितृश्राद्ध व प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है । यह सब लोग हिन्दू पुराणों के अनुसार करवाते हैं । इस तीर्थ का महात्म्य हिन्दू पुराणों से भरा पड़ा है । मैंने यहां भी पूजा की । पुरोहित को यथाशक्ति दक्षिणा दी, फिर बौद्ध गया के लिये रवाना हुए ।

बौद्ध गया में :

बौद्ध गया ३ कि.मी. की दूरी पर अंतराष्ट्रीय धार्मिक स्थल है । यहां बौद्ध भिक्षु कदम-कदम पर मिलते हैं । कुछ तो मन्दिरों में यात्रा के लिये आते हैं, कुछ मन्दिरों में स्थापित मठों में रहते हैं । सारा बौद्ध जगत यहां आता है । भारत में इस तीर्थ की महत्ता इसलिये भी है कि यह अपने सही

स्वरूपों में स्थापित है । यह लंका, वीयतनाम, कम्बोडिया, इंडोनेशिया, चीन, सिक्किम, भूटान, जापान, ब्रह्मा, पालिष्ठ देशों के मन्दिर देखने योग्य हैं । यह मन्दिर कला का प्रतीक है । इन मन्दिरों में सोने की भी प्रतिमाएं हैं ।

हम भी यहाँ दोपहर को पहुंचे । यह स्थल आप घूमना चाहें तो कितने दिन रह सकते हैं, पर हम तो महात्मा बुद्ध का ज्ञान स्थल देखना चाहते थे । हम कुछ ही समय के बाद ऑटोरिक्षा से बौद्ध गया पहुंचे । बुद्ध का यह प्राचीन मन्दिर अपने भव्य शिखर तथा प्राचीन कला का प्रतीक है । यहां स्वयं राजा अशोक आया था, यह मन्दिर शायद अशोक के समय बने हों, पर वह चवूतरा व वृक्ष वहां पहले का था । कुछ ही समय बाद हम मन्दिर परिसर में पहुंच गये ।

हमने बौद्ध गया में अनुपम श्रद्धा देखी । यहां पर स्थान आस्था भक्ति के दर्शन होते हैं । फिर हम दोनों ने विभिन्न देशों के मन्दिरों के दर्शन किये । यहां हमें बहुत से बौद्ध भिक्षुओं से मिलने का अवसर मिला । दोपहर हो चुकी थी, हम खाना खाने की तलाश करने लगे । यहां अधिकांश होटल शुद्ध नहीं । सो बस स्टैंड पर एक शुद्ध होटल मिल गया । हम हमेंशा मारवाड़ी होटल में खाना खाते थे, ऐसे होटलों में बरेलु खाना बनता है । शुद्ध शाकाहारी खाना ही जैन श्रावकों के लिये शोभा देता है, यही जैन धर्म की पहचान है । प्राचीन काल से ही जैनों में खाने की व्यवस्था समाज का अंग रही है, जिसे जैन लोग सहधर्म वात्सल्य कहते हैं

वाराणसी की ओर

बस स्टैंड से हमने सफर में तेजी लाने के लिये वाराणसी के लिये एक टैक्सी पकड़ी । वह गाड़ी एम्बेसडर थी । गाड़ी चली, हम जी.टी. रोड पर चल रहे थे ।

अचानक ही सहस्राराम शहर आया । यह स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जगजीवन जी का संसदीय क्षेत्र था । यहां हमें शाम होने वाली थी कि गाड़ी में पंक्चर हो गया । उस जंगल में हमें पंक्चर की दुकान व चाय की दुकान मिली । पंक्चर लगने लगा, मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने ड्राइवर से कहा, “भाई ! ध्यान से पंक्चर चैक करवा लो, जो समय लगेगा, हम रुक जावेंगे ।” ड्राइवर ने कहा, “साहब, एक ही पंक्चर था, अब हम रवाना होंगे । पंक्चर पक्का था, उसकी ट्यूब को चढ़ाने से पहले चैक किया गया तो उसमें एक पंक्चर और था । फिर ड्राइवर ने पंक्चर लगाने वाले को कहा, “तूने पंक्चर की ओर ध्यान नहीं दिया, मेरी सवारी परेशान हो रही है ।” इसी वातालाप में आधे घण्टे से ज्यादा समय लग गया । मेरे धर्मभ्राता कुछ सफर की दुकान से परेशान हो गया था, पर यात्रा तो जारी रखनी थी । घर छोड़े काफी समय हो चुका था, अभी कितने दिन और लगेंगे, पता नहीं था, क्योंकि यात्रा का अभी काफी लम्बा शडियूल हमारे सामने था ।

हन शाम के चार बजे वाराणसी पहुंचे । वाराणसी हिन्दू धर्म का प्रथम तीर्थ है । ६४ तीर्थों में सबसे बड़ा तीर्थ है । इसका नाम काशी, बनारस , मुगल सराय प्रमुख है । यह काशी विश्वनाथ के मन्दिर के कारण प्रसिद्ध है । वाराणसी प्राचीन भारत में धर्म, कला व संस्कृति का केन्द्र रहा है । यहां भगवान महावीर ने चतुर्मास किया था । श्री उपासक दशांग सूत्र के दत्त उपासकों में से दो उपासक इसी पवित्र भूमि से थे । यह स्थान अनेकों तीर्थंकरों के कल्याणकों का स्थल रहा है, जो वर्तमान वाराणसी के आस पास सुशोभित है ।

यहां भगवान बुद्ध अनेकों बार पधारे । इसी स्थान पर उन्हें शिष्यों की प्राप्ति हुई । यहां उनका प्रथम उपदेश हुआ,

आस्था की जोर बढ़ते कदम
 यहां विशाल मठ व अशोक स्तूप देखने योग्य है । भारत सरकार की वर्तमान सरकारी मोहर भी इसी स्थल के अशोक स्तूप से प्राप्त हुई थी, इस पर तीन शेर हैं । इस स्थान पर बौद्ध व जैन मन्दिरों का विशाल समूह व धर्मशालाएं हैं । वाराणसी पान, पांडे, घाट, ठग के लिये प्रसिद्ध है । मन्दिरों की गिनती करना कठिन है, मस्जिदें बहुत हैं । हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री पार्श्वनाथ जैन शोध विद्यापीठ हैं । यहां अनेकों जैन शोध संस्थान प्राचीन काल से चले आ रहे हैं । दिगम्बर जैन समाज ने अनेकों गुरुकुल बनाये हैं । यहां संग्रहालय है, जहां विपुल मात्रा में पुरातत्व सामग्री मिलती है, यहां मिल्क का काम बहुत होता है । लोग मेहनती हैं । पान तो अधिक मात्रा में खाया जाता है । बाजार, गलीयां तंग हैं, सारा शहर गंगा के किनारे बसा है, हजारों घाट हैं । घाटों पर मन्दिर व धर्मशालाएँ हैं । ~~घाट वाराणसी की पहचान है ।~~

यह भूमि २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्म भूमि है । प्रभु के पिता राजा अश्वसेन व माता वामादेवी थी । यह स्थान भेलुपुरी मुहल्ले में है । यहां प्रभु के चार कल्याणक हुए ।

इस स्थान से १.५ कि.मी. की दूरी पर गंगा नदी के तट पर जैन घाट है । स्टेशन से यह ४ कि.मी. दूर है, यह स्थान प्रभु सुपार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा है । वाराणसी से २३ कि.मी. दूर चन्द्रपुरी तीर्थ है जहां चन्द्रप्रभु भगवान के चार कल्याणक हुए थे ।

वाराणसी से ७ कि.मी. दूरी पर सारनाथ है । इसे सिंहपुरी कहते हैं । यहां भगवान श्रेयांस नाथ के चार कल्याणक हुए थे । सारनाथ भी श्रेयांसपुरी का अपभ्रंश लगता है ।

इस प्रकार वाराणसी में चार तीर्थंकरों के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान कल्याणक हुए थे ।

वाराणसी में इन तीर्थ के अतिरिक्त १२ श्वेताम्बर नन्दिर व ११ दिगम्बर नन्दिर तीर्थ की शोभा में चार चांद लगाते हैं । यहां राजघाट व अन्य स्थानों पर खुदाई के समय जो पुरातत्व सामग्री प्राप्त होती है, वह स्थानीय कला भवन में सुरक्षित है । इनमें अनेकों पाषाण व धातु की अनेकों कलात्मक जैन प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं ।

वाराणसी तीर्थ का इतिहास प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से प्रारम्भ होता है। वह वही पवित्र धरती है जहां भगत कवीर, संत तुलसीदास, संत रविदास, सैन भक्त जैसे नहापुरुष पैदा हुए । मीराबाई यहां आई थी । भक्ति मार्ग के अनेकों भक्तों का सम्बन्ध इस धरती से है ।

हमारा वाराणसी आगमन :

हम वाराणसी पहुंचे तो रात्रि होने वाली थी, सबसे पहले यहां के प्रसिद्ध घाट में राजा हरीशचन्द्र का घाट देखा । जहां मरने के लिये हर हिन्दू की कामना रहती है कि उसका अंतिम संस्कार इस घाट पर अग्नि संस्कार इस घाट पर हो । यहां मुर्दे को जलाने का ठेका ठेकेदार वाराणसी नगर पालिका को देता है जो करोड़ों रुपये तक पहुंचता है । यहां राजा हरीशचन्द्र ने सत्य की परीक्षा दी थी । हरीशचन्द्र ने यहां चण्डाल के नौकरी की थी, उसकी रानी तारा ने भी नौकरी की थी । हरीशचन्द्र के पुत्र रोहित को सांप ने डसा, हरीशचन्द्र के जिम्मे इस शनशान का जिम्मा था । वह हर मृतक के परिवार से एक शुल्क लेता था । इसी कारण उसने अपने पुत्र व पत्नी तक को नहीं छोड़ा, पर हरीशचन्द्र ने अपनी परीक्षा दी, वह इस परीक्षा में सफल

आस्था की ओर बढ़ते कदम
हुआ । इसीलिये सत्य व हरीशचन्द्र पर्यायवाची शब्द हो गये ।

फिर यहां के घाट देखे, एक मन्दिर का नाम मानस मन्दिर है जहां सारी दीवारों पर रामायण लिखी गई है । दुर्गा मन्दिर भी प्रसिद्ध है । यहां रामभक्त हुनमान का विशाल मन्दिर है ।

फिर हम प्राचीन काशी विश्वनाथ के मन्दिर में पहुंचे, यह एक तंग गली में था । इस मन्दिर के ऊपर सोना लगा है, इस मन्दिर के एक भाग को गिरवा कर ही मुगल बादशाह औरंगजेब ने मस्जिद निर्मित की है जिसे ज्ञानवापी मस्जिद कहा जाता है । दोनों स्थान पास पास होने से सुरक्षा का ध्यान सरकार की ओर से रखा जाता है । इस तरह रात्रि को जितने भी हिन्दू मन्दिर खुले थे, उनके दर्शन किये । यहां के हिन्दू मन्दिर काफी देर तक खुले रहते हैं । यहां साधु-सन्यासियों के झुण्ड घाटों पर देखे जा सकते हैं । यहां मांगने वालों की कमी नहीं । हिप्पी लहर के सन्यासी घाट पर देखे जा सकते हैं अब यहां उनकी गिनती कम हो चुकी है । यहां ठहरने के लिये होटल, धर्मशालाओं, लॉज, रेस्टोरेंटों की भरमार है । यहां का प्रमुख उद्योग पर्यटन है । गंगा तट पर किशतीयां देखी जा सकती हैं । यह किशतीयां एक घाट से दूसरे घाट पर पहुंचाने का महत्वपूर्ण व सरस्ता साधन है । कई मन्दिरों तक तो बिना किशती के पहुंचना असंभव है ।

संसार में यह शहर अनुपम आस्था व श्रद्धा का प्रतीक है । जहां भारत के प्रमुख तीन धर्मों में स्थल हैं जिसे प्राचीन काल से विद्या का केन्द्र बनने का सौभाग्य प्राप्त है । यहां अनेकों विद्यापीठ हैं जहां संस्कृत पढ़ाने के मुख्य केन्द्र हैं । इसका प्रमाण यहां संस्कृत विश्वविद्यालय है । हिन्दू विश्वविद्यालय है जिसकी स्थापना प्रसिद्ध नेता राष्ट्रवादी मदन मोहन

मालविया ने की थी । यहां भारतीय विद्या पढ़ाने का अच्छा प्रवन्ध है । प्राकृत, नेपाली भाषाओं के अतिरिक्त यहां जैन बौद्ध व हिन्दू धर्म के अध्ययन के लिये अच्छे केन्द्र हैं । इनमें से कई केन्द्रों को देखने का मुझे सौभाग्य मिला । हिन्दू विश्वविद्यालय को मैंने सारा साहित्य भेंट किया । काशी विद्वानों की जननी है, यहां की मिट्टी में गुण हैं कि यहां सरस्वती पुत्रों की भरमार है । यहां शंकराचार्य भी आये थे । यहां विभिन्न धर्मों में आपसी शास्त्रार्थ हुए थे । यहां स्वामी आचार्य प्रसिद्ध तर्कवादी पंडित यशोविजय जी भी गुजरात से यहां आये थे । यहां की पीठों में धर्म, भाषा, न्याय, तर्क की शिक्षा का जैसा प्रवन्ध है, वैसा भारत में कहीं नहीं देखा जा सकता ।

आज भी धर्म, संस्कृति व इतिहास का केन्द्र है । यह तीर्थ है । गंगा नदी इसके चरणों में बहती है । इस नगर का कण-कण पूजनीय है । जब मुस्तमान भारत में आये तो उन्हें भी वाराणसी पसन्द आया । उन्होंने यहां रुकने का मन बनाया । अनेकों मस्जिदों का निर्माण किया । वाराणसी के पास ही उन्होंने नया नगर बनाया जिसका नाम मुगल सराय है । शेरशाह सूरी ने इस नगर को जी.टी. रोड से जोड़ दिया । इससे पहले यह किस मार्ग से जुड़ा था इसका वर्णन भारतीय इतिहास में कम मिलता है । यहां चीनी यात्री ह्यूनसांग भी आया था । उसने यहां बौद्ध तीर्थों की स्थिति के बारे में वर्णन बताया है । रात्री हो चुकी थी । हमने एक धर्मशाला में स्थान ग्रहण किया, फिर बाहर से भोजन किया । यहां की रात्रि बहुत सुन्दर होती है । गंगा के किनारे सारा शहर झिलमिला रहा था । लगता था जैसे समुद्र के बीच दीप हों । सारा वातावरण धार्मिक भजनों व आरतियों से गूंज रहा था । सारा वातावरण आत्मा को भक्ति की ओर

आस्था की जोर बढ़ते कदम
 ले जाने वाला था । यहां विभिन्न धर्मों के लोग आपस में प्रेम से रहते हैं । सारी रात बाजार बंद नहीं होते । खाने पीने से विपुल सामग्री हर समय मिलती है, वह भी शुद्ध और ठीक कीमत पर । बड़ी बात यह है कि इस शहर में लाखों की संख्या में यात्रियों का आवागमन रहता है । मुगल सराय मुख्य स्टेशन है । यहां कोयले की बड़ी थोक मार्केट है । यहां से कोयला ट्रकों से कोयले का लादान होता है । सारे भारत के कोयले के व्यापारी इसी स्थान पर रहते हैं, उनके दफ्तर भी इसी शहर में हैं ।

रात्री काफी हो चुकी थी, थकावट के बावजूद हम काफी घूम चुके थे । यहां के मुहल्ले बहुत तंग हैं यात्रा ज्यादा पैदल करनी पड़ती है । दूसरे यहां भीड़ इतनी रहती है कि पैदल चलकर व्यक्ति जल्द अपनी मंजिल पर पहुंच सकता है । हमने अगले दिन के लिये यात्रा का कार्यक्रम बनाया । हम अभी वाराणसी में थे । उसी हिसाब से हमने प्रोग्राम बनाया ।

प्रभु पार्श्वनाथ व उनका जन्म स्थान :

वाराणसी के राजा अश्वसेन व माता वामा देवी के यहां २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ७७७ ई०पू० में हुआ था । उस समय यहां हठयोगियों का जमाना था । उन्होंने अपनी बहादुरी से एक जंग जीती थी । जिस राजा की उन्होंने सहायता की थी उसकी पुत्री प्रभावती की शादी आपसे से हुई थी । शरणागत की रक्षा के लिये आपको यह युद्ध करना पड़ा । यह कुशस्थल के राजा प्रसेनचित्त थे, जिन्हें कलिंग के राजा यवन राज ने तंग करना शुरू कर दिया था ।

जब कुछ बड़े हुए तो एक योगी आपके शहर में

आस्था की ओर बढ़ते कदम

आया । उसने जंगल में पंचाग्निनी तप प्रारम्भ किया । लोग उनके दर्शन करने जा रहे थे । आपको लोगों ने उस योगी के दर्शन करने को कहा । आप हाथी पर सवार होकर योगी के पास जंगल में आये । वहां योगी को देखा । उसकी अग्नि में जीवित नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा था । प्रभु पार्श्वनाथ तीन ज्ञान के धारक थे । प्रभु पार्श्वनाथ ने कहा, “योगी राज ! तू कैसा तप कर रहा है ? जिस लकड़ को तू जला रहा है उस लकड़ी में नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है ।”

योगी ने कहा, “तुम संसारिक राजकुमार है, तुम्हें क्या पता है कि योगी क्या होता है ? तू भौतिकवादी है । तुझे धर्म कर्म का क्या पता ?”

योगी की बात सुनकर प्रभु पार्श्वनाथ ने एक हाथ में कुल्हाड़ी ली, फिर उस लकड़ को कुल्हाड़ी से चीरा । नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा था । प्रभु पार्श्वनाथ ने उसे नवकार मंत्र सुनाया । वही मरकर धरेन्द्रचन्द्र व पद्मावती बने ।

प्रभु पार्श्वनाथ ने सांसारिक सुखों को छोड़ा, फिर दीक्षा ग्रहण की । १०० दिन की तपस्या के बाद उन्हें केवल्य ज्ञान हुआ । प्रभु पार्श्वनाथ का प्रथम उपदेश भी इस नगर में हुआ । डा० जैकोबी ने भारत का प्रथम इतिहासिक महापुरुष भगवान पार्श्वनाथ को नाना है । प्रभु पार्श्वनाथ का समय हठयोगियों का समय रहा है । वह योगी हठ योग से स्वर्ग व मोक्ष की इच्छा करते थे । जब प्रभु पार्श्वनाथ तपस्या कर रहे थे तो हठ योगी मरकर देव बन चुका था । उसे अपना पूर्व जन्म याद था । उसका पिछले जन्म में जो अपमान सहा था, उसके कारण वह प्रभु पार्श्वनाथ का विद्वेषी बन गया । उसने सात दिन-रात्रि द्रुपद अपने देव बल से वर्षा प्रारम्भ की

। प्रभु पार्श्वनाथ का आधा शरीर वर्षों के प्रभाव से जलमग्न हो गया । शहर के सभी मकान डूब गये । लोग त्राहि त्राहि करने लगे । प्रभु पार्श्वनाथ के सेवक धरनेन्द्र व पद्मावती ने इस परिषद में सहायता की । धरनेन्द्र ने अपना फन फैलाकर प्रभु पार्श्वनाथ पर अपना छत्र किया । मिथ्यात्वी कमठ जितनी वर्षा करता रहा, प्रभु पार्श्वनाथ का आसन उतना ही ऊँचा होता गया । आखिर प्रभु पार्श्वनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हो गया । कमठ का अहंकार समाप्त हुआ । प्रभु पार्श्वनाथ का समोसरण लगा जिसमें अनेकों जीवों ने प्रभु का उपदेश सुनकर आत्मा का उदार किया । कई भव्य आत्माओं ने मुनिव्रत व श्रावक व्रत ग्रहण किया । फिर प्रभु पार्श्वनाथ ने कश्मीर से कन्याकुमारी तक का अपना जन उपयोगी धर्म उपदेश दिया । यही कारण है कि जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में सबसे अधिक पूजा भगवान पार्श्वनाथ की होती है । उन्हें प्रभावक तीर्थंकर के रूप में जाना जाता है । समेद शिखर पर प्रभु पार्श्वनाथ मोक्ष पधारे थे । इसलिये हमने प्रभु पार्श्वनाथ के जन्म स्थान का वर्णन संक्षेप में किया है ।

श्री भेलुपुरी तीर्थ :

यह तीर्थ वाराणसी स्टेशन से ३ कि.मी. दूर भेलुपुरी मुहल्ले में स्थित है । यहां हम आटोरिक्षा में पहुंचे । यह मन्दिर भारतवर्ष का एक मात्र मन्दिर ऐसा मन्दिर है, जहां श्वेताम्बर व दिगम्बर जैन एक ही वेदी में भगवान पार्श्वनाथ की पूजा करते हैं पर कुछ समय हुआ जब दिगम्बर मन्दिर की स्थापना के इसी मन्दिर के अहाते में हुई है । यहां श्वेताम्बर व दिगम्बर धर्मशाला है । हम प्रभु पार्श्वनाथ की जन्म स्थली में स्वयं को पाकर जीवन को धन्य मान रहे थे । यह वह स्थल था, जहां राजकुमार पार्श्व ने जन्म

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 लिया । उनकी क्रीड़ा स्थली इसी वाराणसी के घाट रहे ।
 उन्होंने यहां ही दीक्षा ली । अनेकों वार वह जनकल्याणार्थ
 हेतु यहां पधारे । उनकी इस याद को उन्होंने भक्तिपूर्वक
 संभाल कर रखा । आज भी प्रभु पार्श्वनाथ के दीवाने इस
 जगह पूजा, भक्ति से अपना जीवन धन्य करते हैं । इस
 मन्दिर में अधिकांश प्रतिमायें धातु की हैं । हमारे लिये यह
 सौभाग्य का समय था । हम प्रभु पार्श्वनाथ की भक्ति में
 मगन हो गये । हमारे सामने इतना आध्यात्मिक वातावरण
 था कि इसका नशा उतारने से भी नहीं उतर रहा था ।
 भजन, स्तवन, मंत्रोच्चार से भाव पूजा व अष्टद्रव्यों से द्रव्य
 पूजा हो रही थी । हम यहां कुछ समय रुके, आसपास के
 स्थलों के दर्शन किये, फिर अगले गन्तव्य की रवाना हो
 गये ।

श्री भदेनीपुर तीर्थ :

यहां से चलकर, हम १५ कि.मी. की दूरी पर भदेनी
 तीर्थ पहुंचे । यह तीर्थ गंगा के किनारे है । यह सातवें
 तीर्थंकर सुपाश्वनाथ की उच्चन, जन्म दीक्षा, केवल्य ज्ञान हुए
 थे । यह मन्दिर जैन घाट पर स्थित है, स्टेशन से यह ४
 कि.मी. दूरी पर है । यह वाराणसी का भाग है । यहां से
 गंगा नदी के तट पर स्थापित मन्दिरों का नजारा अति
 शोभायमान लगता है । शांत वातावरण में कल-कल बहती
 हुई गंगा नदी भी अपनी मन्द मधुर स्वर में मानो प्रभु का
 नाम निरन्तर संस्मरण कर रही हो । यहां श्वेताम्बर व
 दिगम्बर धर्मशालाएं व मन्दिर हैं । हम दोनों मन्दिरों में पहुंचे
 । यहां भक्तों का तांता लगा मिला । यह वाराणसी के
 मन्दिरों की खूबी है कि आप जिस मन्दिर में जाओगे, भक्तों
 की कमी नहीं मिलेगी । यह मन्दिर अपनी प्राचीनता का

आस्था की ओर बढ़ते कदम
जीता जागता प्रमाण है । हमें इस तीर्थ के दर्शन, वन्दना का अवसर मिला, यह प्रभु सुपार्श्वनाथ का निमन्त्रण था ।

श्री चन्द्रप्रभु का जन्म स्थान-चन्द्रपुरी :

भगवान चन्द्रप्रभु का च्यवन, जन्म, दीक्षा व केवलज्ञान के स्थान का नाम चन्द्रपुरी है । वाराणसी से यह २३ कि. मी. है । स्टेशन से सभी प्रकार के वाहन उपलब्ध हैं । यहां दिन भर वसों का आगमन रहता है । मन्दिर के लिये जीप उपलब्ध है । कादीपुर व रजवीरा रेलवे स्टेशन से ४ कि.मी. की दूरी है । यह तीर्थ वाराणसी-गाजीपुर मार्ग पर सड़क के दाहिनी ओर स्थित है । इस तीर्थ का कृष्ण-कृष्ण वन्दनीय है । गंगा तट पर बने दिगम्बर व श्वेताम्बर मन्दिर दोनों आस पास हैं । दोनों मन्दिरों की व्यवस्था एक ही गंगा के किनारे स्थित इस पावन स्थली का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोरम है । हमने इस तीर्थ की यात्रा जीप द्वारा की । इस मन्दिर में काफी प्राचीन प्रतिमा है । दोनों मन्दिर सुन्दर प्रतिमाओं से सुशोभित हैं । भगवान चन्द्रप्रभु जी की प्रतिमा मनोहारी है । हृदय में वैराग्य उत्पन्न करने वाली है ।

यहां १५-१५ कमरे की दो श्वेताम्बर व दिगम्बर धर्मशाला है । भोजनशाला की सुन्दर व्यवस्था है । हमारा यह सौभाग्य था कि हम भगवान चन्द्रप्रभु के जन्म स्थान को वन्दना कर रहे थे । यहां भी यात्रियों की कोई कमी नहीं है । यात्री यहां काफी रुकना पसन्द करते हैं । यात्री कई दिन रुककर प्रभु भक्ति में स्वयं को समर्पित करते हैं । इस नगर का नाम चन्द्रवती भी है ।

प्रभु चन्द्रप्रभु को वन्दना पूजन किया । फिर हमें यहां के जैन-बौद्ध तीर्थों की ओर रवाना होना था । हम भ्रमण करते थक चुके थे, पर एक तीर्थ को छोड़ना भी ठीक नहीं

आस्था की ओर बढ़ते कदम
लगता था । हमने इस नगरी को प्रणाम किया और आगे
वढ़ गये ।

श्री सिंहपुरी :

यह स्थल प्रभु श्रेयांस नाथ च्यवन, जन्मदीक्षा व
केवलज्ञान स्थल है । यह स्टेशन वाराणसी छावनी से ३ कि.
मी. दूर है जहां से सभी आवागमन के साधन उपलब्ध हैं ।
इसका दूसरा नाम सारनाथ है । यहां महात्मा बुद्ध का प्रथम
उपदेश हुआ था, यहां अनेकों बौद्ध मन्दिर व मठ हैं ।
देश-विदेश के बौद्ध भिक्षु घूमते देखे जा सकते हैं । सारनाथ
के चौराहे पर एक टीले पर प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है
। श्वेताम्बर मन्दिर सारनाथ से १ कि.मी. दूर हीरावणपुर
गांव में है । यह स्थान चन्द्रवती तीर्थ से १५ कि.मी. की दूरी
पर है । इस क्षेत्र का इतिहास भगवान श्रेयांस नाथ से शुरु
होता है जहां दिगम्बर मन्दिर है । उसके पास १८३ फुट
ऊंचा प्राचीन कलात्मक अष्टकोण स्तूप है । इसे बौद्ध
अशोक स्तूप कहते हैं । पर मन्दिर में एक पट लगा है,
इसमें कहा गया है, “यहां प्रभु श्रेयांस नाथ का समोसरण
हुआ था । उनकी स्मृति में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने यह स्तूप
वनवाया था । यह लगभग २२०० वर्ष पुराना है । यहां के
प्राचीन विशाल स्तूप की विचित्र कला वरणातीत यहां श्वेताम्बर
व दिगम्बर धर्मशालाएं हैं । यहां रहने के लिये गैस्ट हाऊस
भी हैं । हमने यहां देखा कि जैनों से अधिक यहां विदेशी
यात्री ज्यादा आते हैं । हमने श्वेताम्बर व दिगम्बर मन्दिर
की पूजा में भाग लिया । यहां बौद्ध पालीशोध संस्थान में
प्रतिमाओं की भरमार है । महात्मा बुद्ध की अधिकांश
प्रतिमाएं इस शोध संस्थान के संग्रहालय में हैं । सभी
प्रतिमाएं लाल रंग की हैं । इस स्थान पर भारत सरकार का

चिन्ह मिला था जो अशोक के स्तम्भ पर खुदा था । इसके टुकड़ों को जोड़कर वर्तमान चिन्ह बनाया गया है ।

प्राचीन बौद्ध मठों के खण्डहर, यहां बौद्ध संस्कृति के केन्द्र व तीर्थ का प्रमाण हैं । यहां स्वयं अशोक ने मठ की स्थापना की थी । यहां भिक्षुओं को पढ़ाने का अच्छा संस्थान था, यहां से मैंने बौद्ध धर्म के दो ग्रन्थ खरीदे । एक का नाम है बौद्धचर्या, दूसरा था धम्मपद । यह पाली संस्थान से बौद्ध ग्रन्थों पर विशाल स्तर पर काम होता है । यहां सारे ग्रन्थों को पुनः प्रकाशित करवाया जा रहा है । भगवान बुद्ध के २५०० साला निर्वाण महोत्सव पर भारत सरकार ने समस्त पाली साहित्य का देवानगरी में करवाकर प्रकाशित करवाया ।

अब रात्रि होने वाली थी । टैक्सी वाले ने हमें कहा, “यहां एक प्राचीन श्वेताम्बर जैन मन्दिर देखने योग्य है ।” हमारी इच्छा को जानकर उसने गाड़ी इस मन्दिर की ओर घुमा दी । यह वाराणसी स्टेशन से ३ कि.मी. दूर मध्य में गंगा के किनारे है । इसकी कला अत्यन्त दर्शनीय है । प्रभु पार्श्वनाथ का उपदेश स्थल होने के कारण इसे पवित्र माना जाता है । मन्दिर विशाल है, इसमें वर्तमान के २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं स्थापित हैं ।

भूत, वर्तमान और भविष्य की चौवीसी व २० विहरमान तीर्थंकरों की सुन्दर प्रतिमाएं हैं । यह शाश्वत तीर्थंकरों का पट्ट है । यहां ६६ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं । ऐसी भव्य प्रतिमाएं दुर्लभ हैं । यह उपाश्रय और शास्त्रों का विशाल भण्डार है । मन्दिर के निकट ही ८ जैन मन्दिर हैं ।

वाराणसी में बहुत कुछ देखने योग्य है । असल में यहां आकर व्यक्ति कुछ भी छोड़ नहीं सकता । इस यात्रा का इतना सार है कि यहां आकर व्यक्ति हर क्षण, हर पल प्रभु

भक्ति में डूबा रहता है । यहां की धरती के सूक्ष्म कणों में वह शक्ति है कि व्यक्ति को दूर से खींचती है ।

वाराणसी में सभी कुछ देखने योग्य है । मार्ग में व्यास देव का मन्दिर है । इन सभी मन्दिरों में हमें कुछ क्षण प्रभु को नजदीक पाने का अवसर मिला । यहां की जीवनशैली अपनी पहचान आप है । यहां के लोग बहुत मीठा बोलते हैं । सभी लोग बहुत मेहनती व धार्मिक हैं, सभी प्रभु से डरते हैं । यहां आकर जाने को दिल नहीं करता ।

घर वापसी

पर जब व्यक्ति घर से निकलता है तो उसे यात्रा समाप्त कर वापस घर आना होता है । इसी दृष्टि से अब हम धर्मभूमि का प्रणाम कर आगे बढ़ने वाले थे । हम वापस आने का प्रोग्राम बनाने लगे । हम मुगल सराय स्टेशन पर पहुंचे ।

फिर उसी स्टेशन से राजधानी गाड़ी द्वारा रात्रि को २ बजे चले, हमें टिकट मिल चुकी थी, सुबह देहली पहुंचे । देहली से बस द्वारा अपने घर पहुंचे । हम यात्रा से वापस आये, अपने-अपने घर पहुंचे । मन में एक प्रेरणास्पद यात्रा थी । इस यात्रा के माध्यम से हम जैन संस्कृति, इतिहास व कला के बारे में जान चुके थे । हमारी लम्बे समय से पलने वाली इच्छा पूरी हो रही थी । यह यात्रा हमारी देव, गुरु व धर्म के प्रति आस्था का प्रतीक थी । इस यात्रा के कारण हमारा सम्यक्त्व दृढ़ हुआ है । इस यात्रा के माध्यम से हमें हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, विहार में तीर्थ यात्रा करने का अवसर मिला । इन प्रदेशों का रहन-सहन, सभ्यता, भाषा व परम्पराओं को जानने का अवसर मिला । इन तीर्थ स्थानों के पुद्गल प्रमाण इतने पवित्र हैं कि जन्म जन्म तक आत्मा निर्मल व पवित्र हो जाती है । इन तीर्थों पर पहुंचते ही मन

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 में अद्भुत उत्साह पैदा होता है । तीर्थों में हुई घटनाएं
 आंखों को आ घेरती हैं । इतनी लम्बी यात्रा में हमें बहुत
 ज्ञान प्राप्त हुआ है । हमने जो पुस्तकों में ज्ञान पढ़ा था,
 गुरुओं से जाना था सभी चिन्तन को मौके पर जाकर देखने
 का अवसर मिला । इससे हमारी आस्था बलवती हुई । हमें
 इस यात्रा के माध्यम से एक-दूसरे को समझने का अच्छा
 मौका मिला । हम अपने गुरुओं से मिले । उनके दर्शन
 किये, उनसे अपने प्रश्नों का समाधान किया । एक इतिहास
 व पुरातन के विद्यार्थी होने के नाते हमें इस यात्रा से जैन,
 बौद्ध, हिन्दू पुरातन स्थलों को देखने का अवसर मिला ।
 सारी यात्रा श्रद्धामयी वातावरण में हुई । भारत की पुण्यभूमि
 पर अनेकता में एकता के दर्शन हुए । ऐसा वातावरण-गृहस्थी
 में निलना मुशकिल है । घर में रहकर व्यक्ति घरेलू
 समस्याओं में उलझा रहता है । ऐसे में मानसिक शांति के
 लिये तीर्थ यात्रा का अपना महत्व है । हमें सारी यात्रा में
 कहीं भी किसी तरह की रुकावट नहीं आई । छोटी-मोटी
 तकलीफ के इलावा सारी यात्रा सद्भावना के माहौल में
 सम्पूर्ण हुई । यह यात्रा हमारे रिश्ते को भी दृढ़तम करने में
 मील का पत्थर साबित हुई है । मैंने अपने धर्मभ्राता रवीन्द्र
 जैन के साथ इकट्ठे यात्रा करने का वायदा पूरा किया ।
 अब अगले प्रकरण में हमारे द्वारा की गई अन्य तीर्थ
 यात्राओं का वर्णन है जो हम दोनों ने की थीं ।

प्रकरण १३

हमारे द्वारा संक्षिप्त यात्राएं

यह यात्राएं एक से तीन दिन में सम्पन्न हुई । सभी यात्रा का सम्बन्ध जैन तीर्थों से था । यहां मैं सबसे पहले श्री महावीर जी की यात्रा का वर्णन करूंगा । इसके पीछे कारण था, जब मैं कुछ अस्वस्थ था तो मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन ने यह मन्त्र मांगी, “हे भगवान! अगर मेरा धर्म भ्राता पुरुषोत्तम स्वस्थ हो जाए तो मैं रवीन्द्र जैन तुम्हारे चरणों, उसके साथ आकर वन्दन करूं ।” मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा । प्रभु महावीर की करुणा का यह चमत्कार था कि मुझे लगा कि श्री महावीर जी तीर्थ चमत्कारी है । मेरी तकलीफ से पहले हम दोनों में से वहां कोई नहीं गया था । इस स्टेशन का नाम श्री महावीर जी भी जरूर पता था ।

जब मैं स्वस्थ हो गया, तो मैंने इस तीर्थ के बारे में पता किया । मुझे पता चला कि यह स्थान दिल्ली-भरतपुर लाइन पर है । हम दोनों ने यात्रा का कार्यक्रम बनाया । यह यात्रा मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन की मेरे लिये की प्रार्थना का फल थी । इस प्रार्थना में मैंने शक्ति देखी है । अब उस दिन से लेकर आज तक वर्ष में वह मेरे लिये प्रार्थना रखे श्री महावीर जी जाता है ।

तीर्थ इतिहास :

इस तीर्थ का इतिहास ३०० वर्ष से ज्यादा पुराना है । यह तीर्थ राजस्थान के जिला करेली में स्थित है । यह स्थान देहली से ३०० कि.मी. दूर है । आगरा से भी यहां पहुंचा जा सकता है, आगरा से १७० कि.मी. है । पहले इसका जिला सवाई माधोपुर था । अब यह करेली जिला में है इस

नगर का प्राचीन नाम चांदनपुर था । यहां मीणा जाति का एक गवाला रहता था । वह सरलात्मा व प्रभु भक्त था । उसके पास एक गाय थी, वह गाय अन्य पशुओं के साथ चरने एक टीले पर जाती थी । वह गाय जब शाम को वापिस आती तो उसके स्तनों में दूध गायब होता । इसका कोई कारण उस गवाले की समझ में नहीं आ रहा था । इस कारण गवाला संशय में पड़ गया । आखिर दूध की चोरी कौन करता है ? इसकी पड़ताल करनी चाहिये । गवाला इसी सोच में अगली सुबह उठा । उसने उस गाय का पीछा किया, गाय एक टीले पर पहुंची । गाय के स्तन पर दूध झरने लगा, गवाला हैरान हुआ । फिर चमत्कार के वारे में उसने सोचना शुरू किया । इस टीले में अवश्य ही कोई खजाना छुपा है । इसी कारण गाय ने चमत्कार दिखाया है । गवाला घर चला गया । उसने सोचा कि मैं कल खुदाई करूंगा, खजाने की तलाश करूंगा ।

गवाला रात्रि को सोकर सुबह जागा । अगली सुबह उसने सारा टीला खोदा, पर कहीं कुछ न मिला । फिर थक कर घर आया । अगली रात्रि को स्वप्न में उसे आकाशवाणी हुई, “टीले को धीरे से खोदो । इसके गहरे में प्रभु प्रतिमा है, उसे आराम से निकाल लेना ।”

आकाशवाणी सुनकर गवाला प्रसन्न हुआ । उसने देववाणी के अनुसार कार्य प्रारम्भ किया । भूगर्भ से भगवान महावीर की सुन्दर प्रतिमा निकाली । गवाले ने उस प्रतिमा को एक झोंपड़ी में स्थापित कर दिया । उसी गांव में कुछ जैन श्रावक आये । उन्होंने इस चमत्कारी प्रतिमा की चर्चा सुनी । जब वह प्रतिमा वाले झोंपड़े में पहुंचे, प्रतिमा के दर्शन उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई । उन्होंने गांव वासियों को बताया “यह प्रतिमा भगवान महावीर की है, हम इसकी पूजा

के लिये आपके गांव में मन्दिर की स्थापना करना चाहते हैं ।”

चमत्कार :

गांव वासीयों ने सहर्ष एक ऊंचे टीले पर मन्दिर बनाने की आज्ञा प्रदान की । कुछ समय बाद मन्दिर बनकर तैयार हो गया । श्रावक जन आने लगे । गांव में भव्य मेला लगा । प्रभु महावीर की ताम्रवर्ण प्रतिमा को रथ में बैठाया गया, पर यहां भी एक चमत्कार घटित हुआ । रथ एक कदम भी आगे न बढ़ा, पुनः दूसरा रथ लाया गया । दूसरे रथ की स्थिति भी वैसी ही रही । रथ को खींचने के लिये कई पशु लगाये गये, पर रथ वहां ही खड़ा रहा । इतने में आकाशवाणी हुई, “जब तक यह गवाला प्रतिमा को हाथ नहीं लगायेगा, तब तक रथ नहीं चलेगा ।”

इस देववाणी के अनुसार भीड़ में से उस गरीब गवाले को बुलाया गया । उसने प्रतिमा को स्पर्श किया । उसने प्रतिमा को सिर पर उठाकर रथ में स्थापित आसन पर बिठाया गया । फिर रथ को स्पर्श किया, रथ शीघ्रता से आगे बढ़ा । तब से यह परम्परा बन गई है कि इस गवाले के परिवार वाले रथ को हाथ लगाते हैं, तभी रथ यात्रा शुरू होती है ।

यह स्थान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है । यहां हर जाति, वर्ण, धर्म के लोग आते हैं । निम्न वर्ग माने जाने वाले लोग प्रभु महावीर को अपना सर्वस्व मानते हैं । यहां महावीर जयन्ति पर एक मेला लगता है जिसका सारे राजस्थान में बहुत महत्व है । सभी लोग अपने-अपने गांवों से नाचते-गाते आते हैं, अपनी परम्परा के अनुसार प्रभु महावीर की पूजा अर्चना करते हैं ।

इस मन्दिर से अनेक चमत्कारी घटनाएं जुड़ी हुई हैं । एक मंत्री जोधराज पर झूठा आरोप लग गया । राजा ने उसे फांसी का अकारण हुक्म सुनाया । सैनिक उसे वध स्थान पर ले जा रहे थे । रास्ता जंगल से गुजरता था, तभी उस मंत्री ने रास्ते में प्रभु महावीर का मन्दिर देखा । उसने प्रभु महावीर को वन्दना की, फिर उसने मन्नत मानी - अगर मैं इस दोष से मुक्त हो जाऊं तो प्रभु महावीर का तीन शिखर का भव्य जिनालय बनाऊंगा । सिपाही मंत्री जोधराज को जंगल में ले गये । उसे तोप के सामने खड़ा किया गया । गोला दागना शुरू किया । तोप का गोला जोधराज के पांव के पास आकर टण्डा हो गया । मंत्री को मारने के लिये जितने गोले दागे गये, सब टण्डे पड़ते गये । कोई भी गोला उसे नुकसान नहीं पहुंचा सका । इस बात की सूचना राजा को दी गई । राजा ने कहा, “तुम्हारे में क्या शक्ति है, जो तोप के गोले को टंडा कर रही है ।”

दीवान जोधराज ने कहा, “महाराज ! मेरे पास तो चांदनपुर के स्वामी भगवान महावीर की शक्ति है । मुझे उसके नाम का आधार है और कोई शरण नहीं ।”

राजा ने प्रभु महावीर की शक्ति को पहचानते हुए, मन्त्री को दोषमुक्त कर दिया । मन्त्री ने उसी टीले पर एक भव्य तीन शिखर के मन्दिर का निर्माण कराया । जिसमें अब काफी परिवर्तन हो चुका है । इस मन्दिर में प्रभु महावीर के अतिरिक्त एक वेदी में प्रभु पुष्पदंत व प्रभु ऋषभदेव की स्थापना की गई । आसपास की वेदीयों में सभी तीर्थंकरों की प्राचीन प्रतिमायें स्थापित की गईं । यह मन्दिर अब विशाल तीर्थस्थल है । यहां अनेकों शोध संस्थान मन्दिर व धर्मशालाओं का समूह है । बड़ी बात यह है कि यहां सारा संसार प्रभु महावीर की इस चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन करने

आता है । जयपुर नरेश भी इस मन्दिर के परम भक्त थे । उन्होंने दो गांव इस मन्दिर को भेंट किये थे । यह स्थल विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल बनता जा रहा है । दिगम्बर समाज का यह पूजनीय तीर्थ मथुरा, भरतपुर, वयाना, हिडोन के बाद आता है । इस तीर्थ के लिये दिल्ली व आगरा से वरों भी मिल जाती हैं ।

यहां इस मन्दिर के साथ ही एक चरण छतरी है, यह वह स्थान जहां से यह प्रतिमा निकली थी । इस प्रतिमा का चरण उसी परिवार को जाता है, जिस परिवार ने इस प्रतिमा की खोज की थी । यह प्रतिमा कई तरह से अतिशय पूर्ण है । प्रतिमा की आयु १००० वर्ष से ज्यादा है, यह मुस्कुराती प्रतिमा है । ऐसी प्रतिमा भगवान महावीर की कम मिलती है । चेहरे में वीतराग झलकती है । अभी हिडोन से निकली प्रतिमाएँ मन्दिर में विराजमान की गई हैं जो इतनी ही प्राचीन हैं ।

इस मन्दिर के पास कमलावाई का मन्दिर है, जो प्रभु पार्श्वनाथ को समर्पित है । सारा मन्दिर कांच का बना है । इसमें प्रभु पार्श्वनाथ के पूर्व भवों का चित्रण किया गया है । चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं, अनेकों तीर्थंकरों के कांच चित्र हैं । साथ में विशाल कन्या महाविद्यालय है । यहां २२०० से अधिक बालिकाएं शिक्षा अर्जित करती हैं ।

गंभीर नदी के पार शांतिधाम नामक मन्दिरों का एक परिसर है, जिसका निर्माण आचार्य शांतिसागर महाराज जी की प्रेरणा से श्रावकों ने करवाया था । इस मन्दिर में खड़ी भगवान शांतिनाथ जी की ३१ फुट की प्रतिमा है । चारों तरफ २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं जो पीत जैसलमेरी पत्थर से निर्मित हैं । भगवान शांतिनाथ जी की प्रतिमा के एक तरफ भगवान पार्श्वनाथ, दूसरी ओर भगवान महावीर स्वामी

हैं । इस मन्दिर के नीचे दो मन्दिरों में भगवान नेमिनाथ व भगवान पार्श्वनाथ की विशाल वैठी प्रतिमाएं हैं । यहां खरीदो फरोखत की अच्छी मार्किट है । भोजनशालाएं हैं । होटलों में शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध है । यहां एक विशाल गुरुकुल व संस्कृत पाठशाला है, जहां दसवीं कक्षा तक पढ़ाई समाज की ओर से निःशुल्क दी जाती है । दिगम्बर समाज ने यहां मन्दिर के अन्दर जैनशोध पीठ स्थापित कर रखी है । इसकी अपनी पत्रिका है । यहां जैन मन्दिर के प्रचार, प्रसार की सामग्री विपुल मात्रा में उपलब्ध होती है । यात्रियों की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता है । यह मन्दिर की बस स्टेशन तक सात किलोमीटर की यात्रा करती है । वह यात्रियों को लाती है और स्टेशन पर छोड़ती है । यह सेवा दिन-रात चालू रहती है । इसमें कभी विलम्ब नहीं होता । इतनी सुविधाओं के कारण यात्रा सरल हो जाती है । यात्री हर ट्रेन से उतरते हैं, चढ़ते हैं । स्थानीय ग्रामीण प्रभु भक्त हैं । यहां धर्मशालाएं में कुली आसानी से उपलब्ध होते हैं । यहां सुरक्षा व्यवस्था दृढ़ बनाई गई है । यात्री के जानमाल को कोई हानि न हो, इस बात का ध्यान रखा जाता है । यहां पूजन सामग्री के लिये मन्दिर में अलग केन्द्र है । मन्दिर के बाहर बाजार में हर प्रकार के जैन भजनों की कैसेट, वीडियो, पुस्तकें आसानी से उपलब्ध होती हैं । मन्दिर में यहां एक पुस्तक विक्रय केन्द्र है । मन्दिर का भव्य कार्यालय है जो दिन रात खुला रहता है । क्योंकि यात्री २४ घण्टे आते-जाते रहते हैं ।

इसी मन्दिर के पास एक और भव्य जैन मन्दिर है, जिसकी अपनी मार्किट है । यहां भी एक धर्मशाला है, यहां सभी धर्मशालाएं मन्दिर के अधीन हैं । यात्रियों के लिये डी-लक्स कमरो से लेकर साधारण कमरे हैं, जिनका किराया

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 बहुत ही कम है । यात्रियों से भरा होने के बावजूद भी यहाँ अनुपम शांति है । इस तीर्थ के रेलवे स्टेशन पर भी इस मन्दिर व प्रतिमा का माडल लगाया हुआ है । यहाँ के स्थानीय ग्रामीण लोग जैन संस्कारों में रंगे हैं । उन्हें जैन यात्रियों से अच्छा व्यवहार करना आता है । यहाँ सरकारी विद्यालय भी है ।

भारत सरकार व राजस्थान सरकार इस मन्दिर व तीर्थ के विकास की ओर विशेष ध्यान देती है । इस तीर्थ की प्रबंधक समिति का कार्यालय जयपुर में स्थित है । शांतिधाम में एक नया मन्दिर स्थापित हो चुका है । यहाँ सब मन्दिरों में भव्य कीर्ति स्तम्भ हैं । शांतिधाम के सामने एक चैत्य और है । शांतिधाम मन्दिर परिसर रेत के टीलों से घिरा हुआ है । इसकी दूसरी तीर्थ की यात्रा मैंने नवम्बर २००१ प्रभु महावीर के २६०० साला जन्म कल्याणक पर सपरिवार की । तब तक मैं इस तीर्थ की प्रगति को देखकर प्रसन्न हुआ । यहाँ यात्रियों की भीड़ के कारण प्रभु महावीर स्वयं हैं । पर यहाँ की व्यवस्था का भी इसमें प्रमुख हाथ है । ऐसी व्यवस्था हमें आनन्दजी कल्याणजी पेढी समेदशिखर (विहार) में देखने को मिली ।

यह तीर्थ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है, इसके अतिशय का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं । इसी चमत्कारी प्रभाव के कारण हम यहाँ आये । मैंने यह यात्रा अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ की थी क्योंकि ऐसी उसकी भावना थी ।

तीर्थ श्री महावीर जी की यात्रा :

मैं अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साथ दिल्ली की ओर रवाना हुआ । यहाँ हम दोपहर को पहुँचे । दोपहर को जनता मेल ट्रेन आती है । वह ट्रेन सैंटरल वाम्बे को जाती

आस्था की ओर बढ़ते कदम
है । गांव में कुछ खेती होती है, गांव के ज्यादा लोग फौज में है । मन्दिर के ज्यादा मुलाजम भी इसी गांव के हैं । यहां स्थानीय ग्रामीणों में प्रभु महावीर व जैन धर्म के प्रति अथाह श्रद्धा है ।

फिर हम मुख्य मन्दिर के बाहर शांतिधाम में पहुंचे । इसके लिये हमें नदी पार करनी पड़ी । यहां चौबीस भगवान की भव्य प्रतिमाओं को प्रणाम किया । वापस फिर गांव में आये । मंदिर के पास एक अन्य मन्दिर के दर्शन किये । वापसी पर हम बस द्वारा पहुंचे । यहां से भरतपुर, मथुरा होते हुए वापिस दिल्ली पहुंचे । यह ऐसे क्षेत्र का सफर था जो मेरे धर्म की आस्था को दृढ़ करने में सहायक बना । इस यात्रा में मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन की मेरे स्वास्थ्य के लिये मानी मन्नत पूरी हुई । इससे मुझे अनुभव हुआ कि मेरा शिष्य मेरी सेहत का कितना फिक्र करता है । यह फिक्र उसका शुरु से है । आज भी प्रणाम के बाद मेरे स्वास्थ्य का समाचार ज्ञात करना अपना धन समझता है । उस का प्रणाम समर्पण की जीती-जागती मिसाल है । वह मेरी हर आज्ञा को पूर्ण रूप से अपनी शक्ति अनुसार पूरा करता है । कई बार मैं सोचता हूं कि वह व्यक्ति किस मिट्टी का बना है, जिसे अपने भूत, वर्तमान तथा भविष्य की कोई चिन्ता नहीं ।

प्रभु महावीर की भाषा में कहें, ‘विनय मूल धम्भ’ “विनय धर्म का मूल है ।” विनय और श्रद्धा उसके आसपास चक्कर लगाती है, उसके जीवन में हर पल घटित होती है, सचमुच गुरु की मेहनत, शिष्य के चरित्र से झलकती है । सो अपने इन्हीं गुणों के कारण सरलता व सहज भाव स्वयं प्रकट हो जाता है ।

दिल्ली यात्रा-महरोली :

इस यात्रा में हमें वापसी पर देहली आना पड़ा, देहली तो कई बार आना होता रहता है, पर इस यात्रा में हमने आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज के दर्शन व वन्दन का लाभ लिया । अब उनसे काफी परिचय हो चुका था । सो उनसे खुलकर ज्ञान चर्चा हुई । हमने उन्हें अपना सम्पूर्ण पंजाबी साहित्य अमेरिका, कैंनेडा में वांटने के लिये दिया । इन देशों में व्याप्त मात्रा में पंजाबी हैं । यूनीवर्सिटियों में धर्म का अध्ययन होता है । एक बार हमें देहली के पास महरोली स्थित दादावाड़ी तीर्थ देखने का सौभाग्य प्रथम बार इस यात्रा में मिला । यह देहली का प्राचीन तीर्थ है, मुरलमानों के आगमन से कुछ समय पहले देहली में दादा मणिधारी श्री जिनचन्द्र का स्वर्गवास हुआ था । यह मन्दिर जंगलों में है । इनकी समाधि चमत्कारी है । अब तो यहां विशाल धर्मशाला, भोजनशाला है । दादावाड़ी में भगवान ऋषभदेव का मन्दिर है ।

एक कृत्रिम जिनालय का समूह है जो शत्रुंजय तीर्थ की आकृति बनाने की सुन्दर चेष्टा की गई है । धरती पर शत्रुंजय तीर्थ को प्रदर्शित किया गया है । यह एक अच्छा उपक्रम है । जो शत्रुंजय महातीर्थ के दर्शन नहीं कर सकते । इस स्थान के दर्शन शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की प्रेरणा ले सकते हैं ।

हमारी तिजारा यात्रा :

हम इन तीर्थ यात्राओं के बाद खामोश बैठ गये थे, एक बार अचानक देहली जाना हुआ । हमारे पास खुला समय था । यह अवसर विश्व पंजाबी सम्मेलन का था । हमें एक पुरतक स्वः पूज्य प्रवर्तक श्री शांतिस्वरूप जी महाराज

को समर्पित करनी थी । यह अभिलाषा हमारी गुरुणी उपप्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की थी । उन्होंने की इच्छा को पूर्ण करने हमें मेरठ जाना पड़ा । मेरठ जैनों की अच्छी आवादी वाला शहर है ।

देहली से २०० कि.मी. दूरी पर है । सम्मेलन की एक शाम पहले मेरठ रवाना हुए । प्रवर्तक पूज्य श्री शांतिस्वरूप जी महाराज के पहले हमने दर्शन नहीं किये थे । परन्तु गुरुणी जी के आदेश का पालन जरूरी था, सो शाम को यहां जाने का कार्यक्रम बन गया । पूज्य श्री शांतिस्वरूप जी महाराज आगमों के महान ज्ञाता थे । रात्रि को हम जैन नगर मेरठ में पहुंचे । यह नगर भी पूज्यश्री की देन है । पाकिस्तान से आये सहधर्मी भाईयों को इस नगर में बसाया गया है । इस नगर में जैन स्थानक, हस्पताल, समाधि, धर्मशाला, मन्दिर व पार्क है । नगर के बाहर अच्छा अतिथिगृह है । मेरठ नगर इतिहासिक नगर है । अधिकांश स्थानीय आवादी मुस्लिम है । फिर जैनों का नन्वर आता है । इन जैनों में स्थानीय व पाकिस्तान से आये जैन सम्मिलित हैं । स्थानीय जैन अधिकांश दिगम्बर हैं । हम देर रात्रि पहुंचे । पूज्य श्री के दर्शन किये । उनका आशीर्वाद प्राप्त किया । महासती जी का सन्देश दिया, उन्हें पुस्तक भेंट की । महाराजश्री पुस्तक को देखकर प्रसन्न हो गये । वहां के प्रधान ने फोटोग्राफर का प्रबन्ध किया । हम कुछ घंटे स्थानक में रुके, फिर मेरे धर्मभ्राता ने मझे परामर्श दिया कि क्यों न देहली वापसी पर तिजारा तीर्थ की यात्रा कर ली जाये । हम रात्रि मेरठ जैन नगर में रुके । सुबह होते सम्मेलन में भाग लेने के लिये देहली की ओर रवाना हुए । यहां आकर हमने श्री तिजारा तीर्थ का कार्यक्रम बनाया ।

श्री तिजारातीर्थ :

यह तीर्थ दिल्ली से ११७ कि.मी. दूर है । दिल्ली, रिवाड़ी, अलवर, जयपुर, महावीर जी से यह सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है । यहां हर रविवार को मेला लगता है । इसका नाम प्राचीन ग्रन्थों में देहर है । यह १६५६ की श्रावण शुक्ला संवत् २०१३ में भगवान चन्द्रप्रभु की श्वेतवर्ण की दिव्य चमत्कारी प्रतिमा भूगर्भ से प्राप्त हुई थी । यह अतिशय पूर्ण तीर्थ है । यहां लोगों की मनोकामना पूर्ण होती है । यहां भव्य मन्दिर में समोसरण बनाया गया है । पास भव्य धर्मशाला बनी है । जहां से प्रभु चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्राप्त हुई थी । वहां चरण छतरी बनी हुई है । मन्दिर के सामने मान स्तम्भ है ।

यहां एक अन्य मन्दिर है, जो प्रभु पार्श्वनाथ को समर्पित है । इस मन्दिर में मनोज व सातिशय प्रतिमाएं विराजमान हैं । यहां ३०० कमरों की धर्मशाला है । सभी सुविधाओं से युक्त है ।

भगवान चन्द्रप्रभु की प्रतिमा का स्वप्न साहुशांति प्रसाद जी जैन को आया था । उसी स्थान पर यह भव्य मन्दिर बना है । इसी मन्दिर के दर्शन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ । हम वस द्वारा गुड़गांव के मार्ग से तिजारा पहुंचे । तिजारा राजस्थान के अलवर जिले में पड़ता है । यह स्थान पत्थरों की खानों से भरा पड़ा है । यहां मूर्ति व पत्थर का व्यापार बहुत होता है । इस स्थान पर हम दोनों दोपहर के समय पहुंचे । मन्दिर में कुछ यात्री थे । मन्दिर के व्यवस्थापक ने हमें रुकने को कहा । हमारे पास समय का अभाव था । सर्वप्रथम मन्दिर के मान स्तम्भ को प्रणाम किया । प्रभु चन्द्रप्रभु की प्रतिमा एक सुन्दर वेदी में

आस्था की ओर बढ़ते कदम
विराजमान थी । वहां प्रभु चन्द्रप्रभु की पूजा अर्चना की, मन को अभूतपूर्व शांति मिली । मन प्रसन्नता से झूम उठा ।

यहां हमने वह स्थान भी देखा जहां मस्तक झुकाने से हर प्रकार की शारीरिक व्याधि दूर हो जाती है । मन्दिर का परिसर विशाल है । प्रबंधकों ने हमें खाने का आमन्त्रण दिया । हमें उनके अनुग्रह के आगे शीश झुकाना पड़ा । हम खाना खाकर सन्तुष्ट हुए । फिर मन्दिर के आसपास निहारा । यहां मन्दिर के आसपास पहाड़ियां हैं । मन्दिर एक टीले पर स्थित है ।

यहां एक छोटा सा बाजार है । यहां दैनिक उपयोग की हर वस्तु आराम से मिल जाती है । यहां धर्म प्रचार सामग्री, भजनों के ऑडियो कैसेट, वीडियो कैसेट, पुस्तकें हर समय मिलती हैं । यहां मन्दिर में धर्मप्रचारक आते जाते रहते हैं, यह मन्दिर चाहे नया है, पर यहां की प्रतिमाएं बहुत प्राचीन हैं । प्रतिमा इतनी आकर्षक है कि जब कोई चन्द्रप्रभु भगवान का वर्णन करता है, इसी प्रतिमा का उल्लेख होता है । यह प्रतिमा १००० वर्ष प्राचीन लगती है । इस प्रतिमा पर कोई शिलालेख नहीं, फिर भी यह स्थान ऐसा है, जहां पहुंचते चन्द्रपुरी के प्रभु चन्द्रप्रभु की याद आ जाती है । इस तीर्थ के बारे में यह बात प्रसिद्ध है :-

“नगर तिजारा, देहरा, अलवर राजस्थान,
जहां भूमि से प्रगटे, चन्द्राप्रभु भगवान ।

पिछले सालों में यहां यात्रियों का आगमन काफी बढ़ा है । इन गांवों में खेती की जमीन कम ही पर्याप्त है । पर यह तीर्थ श्री महावीर जी जैसी विशाल संस्थाओं से सुसज्जित नहीं । कुछ भी हो इस तीर्थ पर आकर मेरी आस्था को नया आयाम मिला । यह तीर्थ व प्रतिमा दिगम्बर जैन परम्परा से जुड़ी है । इसी कारण अधिकांश लोग दिगम्बर ही यहां आते

आस्था की जोर बढ़ते कदम
हैं । शारीरिक कष्टमुक्ति के लिये यहां स्थानीय लोग भी आते हैं । यह तीर्थ में मेरी आस्था जुड़ी है ।

हमारी हस्तिनापुर यात्रा :

हस्तिनापुर का नाम आते ही महाभारत का चित्र दिमाग में आ जाता है । भगवान ऋषभदेव के एक पुत्र ने इस नगर का निर्माण किया था । महाभारत के अनुसार यह कौरवों की राजधानी थी । यह कुरु देश में पड़ती थी । इस नगर का इतिहास बहुत गौरवमय है । यहां प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को एक वर्ष घूमने के वाद आहार मिला था । इस दान का लाभ उनके पोत्रे श्रेयांस कुमार ने लिया । प्रभु एक वर्ष तक घूमते रहे । कोई उन्हें कन्या भेंट करता, कोई हाथी और कोई घोड़ा, पर भोजन कोई न देता क्योंकि लोग दानविधि नहीं जानते थे । यह भगवान के पूर्व जन्म के अशुभ फल का उदय था । भोजन न मिलने के पीछे एक दिलचस्प कहानी है ।

पूर्वभव कथा :

एक बार प्रभु का जन्म राजा के रूप में हुआ, उस समय सभ्यता इतनी विकसित नहीं थी । गांवों से किसान इकट्ठे होकर आये, राजा से कहने लगे, “प्रभु हमारे पशु फसल खा जाते हैं । खेतों से कुछ नहीं निकलता, कोई समाधान करें ताकि हमारी खेती बची रहे ।”

राजा ने कहा, “तुम उनके मूंह पर छिपकली बांध दो, तुम्हारी फसल की रक्षा हो जायेगी ।”

ग्रामीणों ने अपने पशुओं के मूंह पर छिपकली बांध दी, भोले किसानों ने उन पशुओं के आगे दाना पानी रखा, मूंह बंधा होने के कारण वह कुछ न खा सके ।

अगली सुबह किसान फिर आये और कहने लगे,

“राजन् ! हमारे पशु तो कुछ खाते नहीं ।” राजा ने कहा, “क्या तुमने खाने के समय उनके मुंह से छिपकली खोल दी थी ?”

किसानों ने कहा, “हमें आपने बांधने को कहा था, खोलने को नहीं ।”

राजा ने कहा, “जाओ पहले छिपकली खोलो ।” किसानों ने मुंह पर बांधी छिपकली खोल दी । पशुओं ने खाना शुरू कर दिया । इस पापकर्म का फल उन्हें इस जन्म में भोगना पड़ा ।

शास्त्र कहते हैं कि यही राजा अगले जन्म में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव बना, फिर उन्होंने गृह त्यागा, उनके साथ अनेकों राजा भी साधु बने । अधिकांश तप से डर कर भाग गये । प्रभु अकेले रह गये । भोजन की तलाश में हस्तिनापुर पहुंचे । श्रेयांस कुमार महल में बैठा नगर की शोभा देख रहा था । प्रभु को देखते ही उसे मन प्रभव ज्ञान हो गया । उसे याद आया कि पूर्वभव में वह भी एक श्रमण था । श्रमण को दान देने की विधि याद आ गई । इस प्रकार दान देने के कारण वह इस युग का प्रथम दानी कहलाया । राजा श्रेयांस कुमार भगवान ऋषभदेव का पोत्र व तक्षशिला नरेश बाहुवली का पुत्र था ।

प्रभु ऋषभदेव की याद में आज भी लोग वरसी तप करते हैं । जिस स्थान पर प्रभु का पारना हुआ था, वहां आते हैं । यह दिन अक्षय तृतीया था । यह पारणा इक्षुरस स हुआ था, इसी कारण लोग भी इक्षुरस से पारना करते हैं, जैसे प्रभु ऋषभदेव का पारना पोत्र द्वारा सम्पन्न हुआ, उसी तरह वरसी तप पर आये लोग पोत्र से पारना करवाते हैं । जहां प्रभु ऋषभ को दान मिला था, उस स्थान पर एक प्राचीन स्तूप है । हस्तिनापुर में १६वें तीर्थंकर प्रभु शांतिनाथ

का जन्म हुआ था, जिन्होंने अपने पूर्वभव में एक कवूतर की रक्षार्थ अपना नांस दान किया था । उनके चार कल्याणक यहां हुए । उनके जन्म के समय महामारी फैली हुई थी जो पैदा होते शांत हो गई । उनकी माता रानी अचीरा, पिता राजा विश्वसेन थे । प्रभु श्री शांतिनाथ तीर्थंकरों में से चक्रवर्ती बने, उन्होंने ६ खंडों को विजय किया ।

इसी धरती पर प्रभु कुथुनाथ व प्रभु अरहनाथ के चार कल्याणक हुए, वह भी चक्रवर्ती बने, फिर उन्होंने तप कर केवल ज्ञान प्राप्त किया । इस प्रकार यहां तीन तीर्थंकरों के १२ कल्याणक हुए हैं ।

यहां प्रभु मुनि सुव्रत स्वामी का समोसरण आया था । इनका समय रामायण के समक्ष टहरता है । उन्होंने अपना धर्मप्रचार कश्मीर, पंजाब, गंधार तक किया था ।

प्रभु मल्लीनाथ व भगवान् पार्श्वनाथ का समोसरण यहां आया था । प्रभु पार्श्वनाथ ने भी कश्मीर, कुरु, पंजाब, गंधार देशों में विचरण किया था ।

अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर यहां जैन धर्म देशना के लिये पधारे तो यहां के राजा ने प्रभु महावीर से संयम अंगीकार किया । यह स्थान प्रभु महावीर की पावन चरणरज से पवित्र है । इस तीर्थ पर साधु हजारों सालों से जैन साधु, आचार्य व श्री संघ यात्रा के लिए रहे हैं । आचार्य जिनप्रभव सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में इस तीर्थ का वर्णन ४०० वर्ष पूर्व किया है । यह तीर्थ गंगा के किनारे स्थित था । आज भी गंगा यहां से ७ कि.मी. दूर बहती है । गंगा ने इस तीर्थ का विनाश कई बार किया है । इस तीर्थ की यात्रा मुगल काल में भी होती रही है । पं: बनारसी दास ने भी अपनी यात्रा विवरण में इसका वर्णन किया है । प्राचीनता के नाम पर आज भी यहां स्तूप देखे जा सकते

हैं । गंगा नहर की खुदाई में कुछ प्राचीन प्रतिमाएं निकली थीं जो अब यहां के प्राचीन दिगम्बर मन्दिर में विराजित हैं । यह तीर्थ सिद्धभूमि है । जैन इतिहास के अनुसार विष्णु कुमार मुनि ने ५०० मुनियों की रक्षा की थी । उसी में रक्षा बंधन का पर्व हुआ । इस प्रकार दो पर्वों का सम्बन्ध हस्तिनापुर से है ।

आचार्य श्री जिनप्रभव मुनि ने यहां अनेकों प्राचीन मन्दिरों का वर्णन किया है । जो उनके समय स्थापित थे । आज जिस स्थान पर मन्दिर है, वह एक ऊंचे टीले पर स्थित है । ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में इसी स्थान पर मन्दिर रहा होगा । यहां प्रभु कुथुनाथ, प्रभु अरहनाथ व शांतिनाथ के चरण युगल स्थापित हैं । यह जंगल का क्षेत्र है, यहां प्रकृति के दृश्य अति सुन्दर हैं, यहां प्राचीन विदुर के किले की दीवारें हैं । यहां दो टीले हैं, एक को कौरव का टीला कहते हैं, दूसरे को पांडव का टीला । यहां भरपूर गन्ने की फसल होती है । इस तीर्थ के बारे में शास्त्रों में आया है :-

“पोत्रं श्री ऋषभदेव श्रेयांसः श्रेयांसन्वितो दाता,
वितं शुद्धेक्षुदयो न विद्यते भूतलेन्थन ।”

अर्थात् ऋषभदेव के समान पात्र श्रेयांस के समान श्रद्धा-भक्ति और भावपूर्वक देने वाला दाता, इक्षुरस के समान शुद्ध-निषेध आहार इस पृथ्वी पर अन्यत्र नहीं हुआ । इसी पारणे की खुशी में श्रेयांस कुमार के पिता महाश्रमण वाहुवली ने उनकी स्मृति में तक्षशिला में चरण चिन्ह स्थापित किये ।

जैन इतिहास में १२ चक्रवर्ती हुए । उनमें से ८ यहां पैदा हुए । इन छठ चक्रवर्तीयों में आठवां चक्रवर्ती नर्क में गया । चौथे व आठवें ने दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त

किया । ५, ६, ७ चक्रवर्ती १६, १७, १८ तीर्थंकर के रूप में पैदा हुए । चौथे चक्रवर्ती सनतकुमार थे ।

बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत के समय गंगदत्त गृहपति च कार्तिक सेठ इसी नगर के थे । जो मरकर देवलोक गये ।

इस समय विष्णु कुमार मुनि ने श्री सुव्रताचार्य से दीक्षा ग्रहण की । यहां का राजा नमूचि था । नमूचि जैन साधुओं से घृणा करता था । एक वार सुव्रताचार्य ७०० साधुओं सहित पधारे । नमूचि ने मुनियों को सात दिनों के अन्दर निकलने का आदेश दिया । विष्णुमुनि ने पैर टिकाने के लिये तीन पग पृथ्वी मांगी । राजा नमूचि इस बात के लिये मान गया । मुनि विष्णु कुमार ने एक पग से सारी पृथ्वी को मापा, फिर दोनों पैरों से लवण समुद्र को माप लिया । तीसरा पांव उन्होंने नमूचि के सिर पर रखा, जिससे मुनि संघ का कष्ट टला । इस दिन का नाम रक्षा बंधन पड़ा ।

२२वें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि के एक भव में यहां का राजा शंख था, उसके पिता शंख ने राज्य त्याग मोक्ष प्राप्त किया ।

भगवान् अरिष्टनेमि के समय यहां दमदत्त मुनि हुए, जिन्होंने कठिन तप कर मोक्ष प्राप्त किया । यह बल, महाबल ने दीक्षा ग्रहण कर देवलोक प्राप्त किया । प्रभु महावीर आयु के ५७वें वर्ष में मिथिला से विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे थे । यहां के राजा शिव ने अपने पुत्र को राज्य देकर संयम ग्रहण किया । प्रभु महावीर का यहां अपने शिष्य गणधर गौतम से वातालाप हुआ था ।

यहां ही पोटिल श्रावक व उसकी ३२ पत्नियों ने संयम ग्रहण कर देवगति प्राप्त की ।

तीर्थ दर्शन :

इस धरती पर इतिहास ने अपने को बहुत वार

आस्था की ओर बढ़ते कदम

दोहराया है । यहां प्राचीन काल से ५ मन्दिरों-व ५ स्तूपों का वर्णन आया है । यहां पांचों स्तूप तो विद्यमान हैं पर यहां कोई जैन मन्दिर अधिक पुराना नहीं । सभी मन्दिर मुस्लमानों के शासन के अन्तिम दिनों के हैं । सभी मन्दिर व स्तूप विक्रमी १७-१८ शताब्दी तक विद्यमान थे । आक्रमणकारी के आक्रमण व गंगा की भयंकर बाढ़ इस तीर्थ को बहाकर ले गई । अब यहां बचे हैं रेत के ऊंचे-ऊंचे टीले ।

जैन समाज प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक और उनके बाद इस तीर्थ से जुड़ा रहा है । यहां पर कुछ प्रसिद्ध संस्थाओं का हम परिचय दे रहे हैं । श्वेताम्बर मन्दिर

यहां मूलनायक प्रभु शातिनाथ का मन्दिर धर्मशालाओं से घिरा हुआ है । इस प्रतिमा की स्थापना १६२६ वैसाख के दिन श्रीजिन कल्याण के द्वारा हुई थी । इनको अब भव्य रूप दे दिया गया है । इस तीर्थ की व्यवस्था में श्री आनन्द जी कल्याण जी पेड़ी अहमदाबाद का अभूतपूर्व सहयोग है । इस मन्दिर में धर्मशाला के अतिरिक्त भव्य भोजनशाला, पारणस्थल, पारणा मन्दिर, शोभायमान है ।

श्री ऋषभदेव का पारणा स्थल व भव्य मन्दिर :

भगवान ऋषभदेव व श्रेयांस कुमार के जीवन से सम्बन्धित झांकियां संगमरमर में कलाकृत की गई हैं । यह झांकियां मनमोहक रूप से देखी जा सकती हैं । भगवान शातिनाथ का चौमुखा मन्दिर वालाश्रम है । जहां आसपास के गांवों के बच्चे गुरुकुल में पदति से पढ़ते हैं । यहां दादावाड़ी व धर्मशाला है । एक जैन स्थानक भी हस्तिनापुर में है, जहां रहने की व्यवस्था भी है ।

श्री श्वेताम्बर जैन निशियां

श्वेताम्बर मन्दिर से दो कि.मी. दूरी पर एक प्राचीन स्तूप है, जहां भगवान ऋषभदेव ने पारणा किया था । पास ही उनकी चरण पादुका हैं । इन चरणों पर छत्री बनी हुई है । यहां भगवान ऋषभदेव से सम्बन्धित चित्र लगाये गये हैं ।

इन स्तूपों के पीछे प्रभु शांतिनाथ, प्रभु कुथुनाथ व श्री आदिनाथ के चरण हैं । एक छत्री में भगवान मल्लिनाथ के चरण हैं । अब यह स्थल बहुत विकसित हो चुका है । यह पक्की सड़क से जुड़ा है । यहां एक पारणा मन्दिर, एक तीर्थंकरों का मन्दिर व एक गुरु मन्दिर बन चुके हैं । इस तीर्थ के पीछे गंगा नहर बह रही है । इस स्थल से प्रभु शांतिनाथ की धातु प्रतिमा भी निकली थी । यहां खड़ी दिगम्बर प्रतिमा कायोत्वर्ग भी इसी दिगम्बर मन्दिर में विराजित है । यहां भी कैलाश पर्वत का निर्माण हो रहा है, जो अपने आप में अनुपम होगा ।

दिगम्बर जैन संस्थाएं :

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर- यह मन्दिर २०० वर्ष पुरातन है । इसका निर्माण दिल्ली के सेठ ने राजा की आज्ञा से उस स्थान पर बनाया था जो धरती से ५० फुट ऊंचा है । यहां मन्दिर में विशाल धर्मशालाओं का समूह है । यात्रियों के टहरने के लिये समुचित व्यवस्था मन्दिर की ओर से प्रदान की जाती है ।

यहां मूलनावक प्रभु शांतिनाथ हैं । साथ में धातु की विशाल प्राचीन प्रतिमा इसी मन्दिर में स्थापित है जो श्वेताम्बर निशियों से निकली थी । यहां प्रभु कुथुनाथ व प्रभु आदिनाथ की प्रतिमाएं हैं । सामने कीर्ति स्तम्भ है । इस मन्दिर के

पीछे चार छोटे-छोटे मन्दिर हैं । एक तरह से नन्दीश्वर दीप की स्थापना की गई है, जहां मूर्तियों की भरमार है ।

साथ में समोसरण मन्दिर की विशाल रचना शास्त्र विधि के अनुसार की गई है । चारों तरफ प्रभु की प्रतिमा है । इसके देव-देवियां, तिर्यंच, मनुष्य द्वारा भगवान की देशना सुनने का दृश्य जीवन्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

साथ के मन्दिर में प्रभु पार्श्वनाथ व अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं, जो काफी प्राचीन प्रतिमाएं हैं । उसी के पास एक रास्ता जंगल को जाता है । इस जंगल में समेदशिखर पर्वत की रचना की गई है । शिखरजी के अनुसार ही निशियां स्थापित की गई हैं । उसी तरह जल मंदिर है ।

इसी मन्दिर में जद हम वापिस आते हैं तो दूसरी तरफ भगवान वाहुवली का आधुनिक मन्दिर है । इस तरफ प्राचीन मन्दिर में एक ब्रह्मचारी आश्रम मन्दिर है, जहां शस्त्र स्वाध्याय की सुन्दर व्यवस्था है ।

यह मंदिर शिखर जी की तरह वंदरों की वनस्थली है । सारे हरिनापुर में अंग्रेजों के जमाने से ही शिकार खेलना मना है । इसका कारण यहां जंगल व जंगली जानवर अपना प्राकृतिक जीवन जीते हैं ।

श्री दिगम्बर निशियां :

दिगम्बर जैन समाज की पांच निशियां हैं । यहां चरण के स्थान पर स्वास्तिक बनाये गए हैं । एक निशि तो श्वेताम्बर निशि से ३ कि.मी. की दूरी पर है ।

श्वेताम्बर निशियों के सामने तीन तीर्थंकरों की छत्रियां हैं । जहां स्वास्तिक हैं । इस टीले पर एक प्राचीन स्तूप भी है । शायद यह उन पांच स्तूपों में से एक है ।

श्वेताम्बर निशियों से वापस हरतिनापुर आते एक जंगल में दिगम्बर निशियां हैं । एक प्राचीन गुफा है, इन निशियों से बाहर निकलते ही हम मुख्य सड़क पर आ जाते हैं ।

जम्बूद्वीप :

हम जिस क्षेत्र में रहते हैं, उसे जम्बूद्वीप कहते हैं । जम्बू का अर्थ जामुन है । शायद इसी कारण इस क्षेत्र का नाम यह पड़ा । हम भरत खण्ड में रहते हैं । यह क्षेत्र द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ है । इनके मध्य एक लाख योजन का सुमेरु पर्वत है । यह जैन भूगोल का विषय है । इसका ज्योतिष व गणित से सम्बन्ध है । पर इस बात को संसार के सामने सहज ढंग से प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया दिगम्बर जैन समाज की महान साध्वी माता ज्ञानमती जी ने । माता ज्ञानमती जी आचार्य देशभूषण महाराज की शिष्या है । वह परम विदुषी है, इनके १०० से ज्यादा ग्रन्थ जैन धर्म के विभिन्न विषयों पर छप चुके हैं । वह अयोध्या, कुण्डलपुर जैसे तीर्थों का जीर्णोद्धार वन चुकी है ।

उन्होंने भगवान महावीर की २५वीं जन्म शताब्दी पर इसका निर्माण कार्य शुरू करवाया । इस विस्तृत परिसर का उद्घाटन स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी ने किया था । बड़े लम्बे समय के बाद धरती का श्रृंगार जम्बूद्वीप बना । यहां सात समुद्र, द्वीपों, चैत्यालय व प्रमुख पर्वत की स्थापना उल्लेखनीय ढंग से की गई है । यहां वाहन से घूमा जाता है । जम्बूद्वीप को समझने के लिये गाईड की जरूरत है । सुमेरु पर्वत ८१ फुट ऊंचा बनाया गया है । इसके भीतर की सीढ़ियां चढ़ने पर चार मंजिलें आती हैं । दूसरी मंजिल सबसे ऊंची है । हर मन्दिर पर चहुमुखी प्रतिमाएं

आस्था की ओर बढ़ते कदम
हैं । इस जम्बूद्वीप में हजारों छोटी-बड़ी प्रतिमाएं हैं ।

इस परिसर में ध्यान मन्दिर में ही ध्यान किया जाता है । ध्यान चौबीस तीर्थकरों का ध्यान है, इस परिसर में बहुत जिन मंदिर हैं । जहां धातु व संगमरमर की प्रतिमाएं हैं । दीवार पर जैन धर्म से सम्बन्धित चित्रों को अलंकृत किया गया है ।

एक कमल मन्दिर है, जो जलमंदिर में स्थापित है । एक संगमरमर पर कमलनुमा छत के अंदर प्रभु महावीर जी मूलनायक हैं । एक आर्ट गैलरी है । यहां प्रकाशन विभाग है, जहां से माता जी के सभी ग्रन्थ मिल सकते हैं । यहां माता जी का आश्रम भी है । इस भव्य परिसर में हजारों यात्री रोजाना आते हैं ।

तीर्थराज हस्तिनापुर की यात्रा

इस तीर्थ की प्रथम यात्रा मैंने उस समय की थी जब हम श्री महावीर जी गये थे, वापसी पर दिल्ली आये तो पता लगा कि अक्षय तृतीय का मूल शुभ अवसर है । एक बात मैं बता दूं कि मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन १९७० में पहली बार इस तीर्थ पर आये थे, फिर हर वर्ष वरसी तप के समारोह में भाग लेते रहे हैं । १९४७ में नया हस्तिनापुर बनाया गया जिसे सरदार पटेल उत्तर प्रदेश की नई राजधानी बनाना चाहते थे । उन्होंने पाकिस्तान से आये शरणार्थियों को यहां मकान बनाकर दिये । परन्तु दुर्भाग्यवश प्रधानमंत्री श्री नेहरू की विरोधता से यह कार्य सम्पन्न न हो सका । श्री नेहरू लखनऊ को राजधानी बनाने के पक्ष में थे । हस्तिनापुर के गांव में व्याप्त पंजाबी आवादी है । ज्यादा सिक्खों को यहां जमीनें मिली हैं, यह सारे गांव शरणार्थियों के हैं ।

हम दिल्ली से मेरठ पहुंचे, शाम हो चुकी थी, यहां

तीर्थ पर पंजावियों का अच्छा जमाव था । हमें यहां स्वर्गीय श्री सत्य पाल जैन जीरे वाले मिले, उन्होंने हमारे ठहरने की सुन्दर व्यवस्था कर दी । तपस्वियों के लिये अलग प्रबन्ध किया जा रहा था । आम लोगों के लिये अलग प्रबन्ध किया जा रहा था । यहां कई तपस्वी हमारी पहचान के थे । हमारे लिये इस तीर्थ पर आना परम सौभाग्य का अवसर था । हमें इस तीर्थ पर जनसाधारण की आस्था का प्रमाण मिला ।

मैंने अपने कमरे में अपना सामान टिकाया । हमें कमरा दिगम्बर धर्मशाला में मिला । मेले के अवसर पर दोनों समाज इकट्ठे हो जाते हैं । सभी धर्मशालाओं का कंट्रोल मेले के कारण श्वेताम्बर समाज के हाथ में था । वह जैन एकता का अच्छा प्रमाण है । हमने रात्रि को सभी मन्दिर देखे । उस समय जम्बूद्वीप का निर्माण हो रहा था । गुजराती धर्मशाला भी सड़क पर तैयार हो रही थी । यहां धार्मिक वातावरण था । यहां पहुंचकर संसार से कट चुके थे । यहां आकर हमारे सामने तीर्थंकरों का इतिहास आंखों के सामने घूम गया । वह धरती पर तीर्थंकर प्रभु के समोसरण आवे । हमारे लिये यहां का कण-कण पूजनीय व वन्दनीय है ।

हमारी यह प्रथम यात्रा थी । रात्रि में पारणा स्थल व सामने के स्तूप नजर आवे । रास्ते में माता ज्ञानवती जी के दर्शन किये । शाम को यहां की भोजनशाला में भोजन किया । यहां हर धर्मशाला में भोजन की सुन्दर व्यवस्था है । दिगम्बर धर्मशालाओं में भोजन का प्रबन्ध बताने पर ही किया जाता है । हरितनापुर की प्राकृतिक छटा में हम सो रहे थे । विभिन्न मंदिरों में दानियों की बोलीयां चल रही थीं । यह बोलीयां पूजा के लिये होती हैं । सबसे बड़ी बोली श्रेयांस कुमार बनने की होती है । यह बोली लाखों रुपये तक

आस्था की ओर बढ़ते कदम पहुंचती है । सारी रात्रि में आवागमन बना रहता है । मन्दिर को सुन्दरता से सजाया जाता है । हर तरफ से देश के विभिन्न प्रान्तों के श्रावक व श्राविकाओं के दर्शन हो रहे थे ।

वरसी तप पारणे का आंखों देखा हाल

आखिर वह मंगलमय बेला आ गई । पहली वरसी तप का अर्थ समझना जरूरी है, जिसकी पूर्ति के लिये यह समारोह होता है । श्रावक अक्षय तृतीया के अगले दिन पुनः उपवास करता है । एक दिन भोजन करता है, एक दिन शुद्ध निराहार रहता है । उस दिन भी वह जल ग्रहण करता है । इस तरह ६ मास विना भोजन के जो तप किया जाता है उसे वरसी तप कहते हैं । वह भगवान ऋषभदेव को स्मरण करने का ढंग है । उन्हें जिस तरह साल के बाद भोजन मिला था, उसी तरह उनके भक्त उसी विधि से पारणा करते हैं । यह पारणा उनके पोत्र श्रेयांस कुमार पारणाक्षु रस से करवाया था । ठीक इसी बात को ध्यान में रखकर तपस्वियों के पोत्र द्वारा इक्षुरस से सम्पन्न करवाया जाता है, अगर किसी के पोत्र नहीं है तो वह किसी बच्चे को धर्मपोत्र मानकर यह शगुन पूरा करता है ।

तपस्वी सर्वप्रथम सुवह मन्दिर में दर्शन का पारणा स्थल पर जलूस की शक्ति में जाते हैं । सभी यात्रियों के साथ उनके परिवार-रिश्तेदार होते हैं । सभी पारणा स्थल पर पूजा करते हैं । पूजा वालों की भीड़ रहती है । इस तरह दोपहर का समय हो जाता है । लोग सुवह मन्दिर में आते हैं, फिर मुख्य मन्दिर में पूजा की जाती है । इस तरह दोपहर के समय यह सनारोह पारणा मन्दिर में शुरू होता है । सभी पारणे वाले लन्दी पंक्तियों में बैठते हैं ।

सर्वप्रथम सभी पारणा वालों का स्वागत मन्दिर कमेटी की ओर से होता है । फिर ध्वजसं कुमार बना व्यक्ति हर पारणे वाले को कुछ न कुछ प्रभावना के रूप में भेंट वांटता है । तपस्वी परस्पर तोहफों का आदान-प्रदान करते हैं । यहां मुनिजनों के उपदेश भी होते हैं । उनकी तपस्या का अनुमोदन होता है । भविष्य में तपस्या करने की प्रेरणा दी जाती है । तोहफे में सोने व चांदी के गहने, वस्त्र, नकदी, पुस्तक, सिक्के भेंट किये जाते हैं । तपस्वी इन भेंट को आगे अपने रिश्तेदारों में वांट देते हैं । उस दिन हर तपस्वी कुछ न कुछ दान मन्दिर को करता है । हैसीयत के अनुसार प्रभावना वांटता है । जैन धर्म में तीर्थंकर गोत्र के बीस बोलों (कारणों) में प्रभावना अंग भी एक है, जिसका अर्थ है धर्मप्रचार करना । धर्मप्रचार का कोई भी अंग हो उसे प्रभावना की ध्रेणी में रखा जाता है । शास्त्र व मुनिराज हमें उपदेश देते हैं । यह प्रभावना अंग तीर्थंकर गोत्र कर्म का कारण है ।

हम इस समारोह में हाजिरी दे रहे थे । यहां विशाल मंडप में एक तरफ शोभायमान ध्वज । दूसरी ओर इक्षुरस तैयार हो रहा था । वहां जनसाधारण के लिये भी इक्षुरस उपलब्ध था । तपस्वियों के लिये यह व्यवस्था एक घंटे की थी । तपस्वियों का आधा दिन बीत चुका था । दो बजे के करीब पारणा आरम्भ हुआ । चांदी के छोटे-छोटे कलशों में इक्षुरस एक बड़े पात्र में डाला जा रहा था । इन कलशों के बारे में कहा जाता है कि भगवान् ऋषभदेव ने १०८ कलशों से पारणा किया था । यही प्रक्रिया चांदी के कलश के रूप में दोहराई जाती है । १०८ छोटे कलश भरने से इस आधा किलो से कम ही रहता है । १०८ एक मांगलिक अंक है । यह नौ का प्रतीक है । ९ का अंक जैनधर्म में बहुत

आस्था की ओर बढ़ते कदम
महत्व रखता है क्योंकि नवकार मंत्र में ६ की संख्या प्रमुख है । ६ का अंक अखण्ड माना जाता है ।

उस दिन १३० तपस्वी थे । इनमें अधिकांश महिलाएं थी, पर कई पति-पत्नियों तपस्वी जोड़ों के दर्शन करने का सौभाग्य मिला । कभी-कभी उपवास करना कठिन है, पर यह तो आलौकिक तप महोत्सव था । हमने हर तपस्वी को प्रणाम किया, कुछ सोधु-साधियों के पारणे भी थे जो ज्यादा गुजरात से थे । इनके दर्शन किये । मंगल पाठ सुना, फिर भोजनशाला से दोपहर का भोजन किया । करीब तीन बजे हम यहां से रवाना हुए ।

यहां से वापसी मुजफ्फर नगर होते हुए, हम यमुनानगर पहुंचे । जहां मैं कुछ समय के लिये मैं अपने रिश्तेदारों से मिला । अब वापसी पटियाला के रास्ते से रात्रि के दो बजे मैं अपने निवास धूरी पहुंचा । रास्ते में मुजफ्फर नगर, खतौली, देवबंध, सहारनपुर जैसे इतिहासिक शहर आये ।

तब से अनेकों बार हरिनापुर की यात्रा कर चुके हैं । कभी हरिद्वार के करीब होने से, कभी देहली से हरिनापुर पहुंचे । हर बार इस तीर्थ की तरक्की देखी, लोगों की भीड़ बढ़ी है, नये-नये निर्माण हो रहे हैं । जब पहली यात्रा की थी तब यहां से गंगा नदी दूर थी । करीब सात किलोमीटर दूरी पर कुछ एक हिन्दू धर्म के मन्दिर हैं क्योंकि इस शहर का सम्बन्ध महाभारत से भी रहा है । उस समय के किले की दीवारें व खुदाई के चिन्ह, वालाश्रम के टीले के पीछे देखे जा सकते हैं ।

हमारी हरिद्वार दिल्ली यात्रा :

जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं, कुछ काम ऐसे होते हैं, जिन्हें करने से आत्मा को प्रसन्नता होती है । ऐसी ही

घटना मेरे जीवन में घटित हुई । आज जब मैं तीर्थ यात्राओं का वर्णन कर रहा हूँ, इनमें एक तीर्थ यात्रा हरिद्वार की है जो मैंने अपने धर्मभ्राता श्री रवीन्द्र जैन के आग्रह से विधिपूर्ण सम्पन्न की । यह तथ्य सर्वमान्य है कि उत्तर भारत में हरिद्वार हिन्दू धर्म का सर्वमान्य तीर्थ है, यहां गंगा बहती है । गंगा हिन्दू धर्म, विशेष रूप से ब्राह्मण आस्था में बहुत महत्व रखती है । इसी आस्था को सम्मुख रखकर इसी गंगा किनारे १२ वर्ष के बाद कुम्भ लगता है । जहां देश-विदेश से करोड़ों यात्री डुबकी लगाकर स्वयं को धन्य मानते हैं । गंगा हिमालय के 'गंगोत्री' स्थान से निकलकर हरिद्वार तक पहुंचती है । हरिद्वार के घाटों पर हजारों सालों से हिन्दू यात्री, साधुओं के झुण्ड हर रोज आते हैं । हरिद्वार में हजारों मन्दिर, आश्रम, अन्न क्षेत्र हैं । गंगा से एक हिन्दू का जन्म से मरण तक का संबंध जुड़ा हुआ है । उत्तर भारत के लोग हर रोज यहां पुण्याज्जन हेतु स्नान करते हैं । इस तरह वे आश्रमों में साधुओं के दर्शन करते हैं । मन्दिरों की पूजा, अर्चना में भाग लेते हैं । जिस स्थान पर मुख्य स्नान होता है, उसे हरि की पौड़ी कहते हैं । यहां भी अन्य तीर्थों की तरह हर धर्म, राष्ट्र, जाति के लोग आते हैं ।

मैंने अनेकों बार इस स्थल की यात्रा की है पर यह विभिन्न बात थी कि मेरे धर्मभ्राता ने इस स्थान की यात्रा नहीं की थी । इसके कई कारण थे । सबसे बड़ा कारण किसी सहयोगी का साथ न मिलना, दूसरे किसी तीर्थ पर बिना प्रयोजन से कोई नया व्यक्ति अकेला नहीं जा सकता । वैसे भी बिना कारण व्यक्ति का घर से निकलना कठिन है । हमारे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने मुझसे कई बार हरिद्वार देखने की इच्छा जाहिर की । ऐसा कोई कारण नहीं था कि हम दोनों यात्रा सम्पन्न कर पाते और मैं अपने

अस्था की ओर बढ़ते कदम
धर्मभ्राता की इच्छा पूरी कर पाते ।

पर जब अनुकूल अवसर आता है तो सारे कार्य ठीक होने लग जाते हैं । ऐसा ही समय हमारे जीवन में आया । आचार्य श्री सुशील मुनि जी की वरसी का महोत्सव दिल्ली में आचार्य डाक्टर साधना जी महाराज के नेतृत्व में मनाया जाना था, उसके लिये निमन्त्रण मिला, हम गोविन्दगढ़ से गाड़ी द्वारा हरिद्वार रवाना हुए । यहां हजारों की संख्या में जहां वैष्णव मन्दिर हैं वहां अब हरिद्वार में जैन धर्म के तीन मन्दिर बन चुके हैं । एक दिगम्बर मन्दिर जो हरि की पौड़ी के पास वाली गली में स्थित है । दूसरा श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर जैन मन्दिर, जो दूधधारी के आश्रम के पास स्थित है । यह मन्दिर धर्मशाला युक्त है । यह भव्य मन्दिर पिछले वर्षों में बना है । इस मन्दिर में हर तल पर चार समोसरण युक्त प्रतिमाएं हैं । नीचे तल में एक मन्दिर में प्रतिमाएं हैं । इस मन्दिर में एक उपाश्रय, भोजनशाला, लाईब्रेरी, धर्मशाला है । यह मन्दिर ऐसी जगह स्थित है जहां गंगा नदी मन्दिर के पास से बहती है । इस मन्दिर के कारण अधिकांश जैन साधु-साधवियों का हरिद्वार, ऋषिकेश तक यात्रा संभव हो चुकी है । मेरे मन में अपने धर्मभ्राता को यात्रा के अतिरिक्त यह मंदिर दिखाने की योजना थी ।

हमारी हरिद्वार यात्रा :

हमने मूलतः दिल्ली जाना था । रास्ते में अचानक ही यह प्रोग्राम बन गया । मैं अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन की इच्छा पूरी करना चाहता था । अचानक ही जब मैंने ड्राइवर से कहा कि गाड़ी हरिद्वार ले जाओ । इस बात को सुनकर मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के मन में मेरे प्रति श्रद्धा के चिन्ह

उभरने लगे । मेरे लिये गंगा का स्नान कोई नई बात नहीं थी, परन्तु मैं इसे धर्मभ्राता के साथ यात्रा सम्पन्न करना अपना सौभाग्य समझता था । इसी श्रद्धा आस्था के बंधन में बंधे हम इस तीर्थ पर आ पहुँचे । यह विल्कुल नया अनुभव था । आज तक मैं इस स्थान पर आता रहा हूँ । पर अपने धर्मभ्राता से किया लम्बा वायदा अब पूर्ण होने का समय आ चुका था । हरिद्वार की पवित्र भूमि हमें अपनी ओर आकर्षित कर रही थी । कुछ ही समय बाद हम हरिद्वार की ओर घूमे । गंगा की एक धारा सड़क के साथ चल रही थी । यह गंगा की वह भूमि है जहाँ बहुत सी सभ्यताओं का विकास हुआ । हम ११ वजे के लगभग हरिद्वार पहुँचे । वहाँ मैंने सर्वप्रथम गंगा किनारे हरि की पौड़ी पर उतरना ठीक समझा ।

इस समय गमी अपने परम उत्कर्ष पर थी, गंगा की धारा कल-कल करती वह रही थी । यह दृश्य इतना अनुपम था । इस क्षेत्र में प्रकृति प्रवास करती है । अब गंगा की सीढ़ियों को संगमरमर से पक्का कर दिया गया है । वहाँ नंगे पांव चले । यह फर्श तप रहा था । जल्दी से गंगा की गोद में पहुँचे । जितनी बाहर गमी थी उतनी गंगा शीतलता प्रदान कर रही थी । गंगा में हम दोनों ने डुबकी लगाई । मैं यहाँ एक बात और बता दूँ कि मेरे धर्मभ्राता को तैरना नहीं आता । इस कारण वह जल से डरता है । पर मेरे कहने पर उसने मेरे साथ डुबकी लगाई । यह अभूतपूर्व अनुभव मेरे जीवन की महत्वपूर्ण प्राप्ति है । यह गंगा स्नान अपने धर्मभ्राता को करवा कर मैंने जीवन के वायदे की पूर्ति की । कुछ भी हो मेरे लिये यह स्नान एक अद्भुत अनुभूति छोड़ गया ।

मैंने स्नान के बाद हरिद्वार के प्रसिद्ध मन्दिर देखे । फिर मैंने अपने धर्मभ्राता को लक्ष्मण झूला दिखाया ।

समयाभाव के कारण हमें हरिद्वार शीघ्र छोड़ना पड़ा । यहां से हम हरिद्वार के बाजार देखने गये । यहां के बाजार नवीनतम व प्राचीन सभ्यता के संगम हैं । हरिद्वार में देखने को बहुत कुछ है । हजारों सन्यासियों के दर्शन करने का अवसर मिलता है, पर सबसे महत्वपूर्ण गंगा का स्नान है । हमने गंगा के श्री वेदान्तानन्द का आश्रम देखा । यहां विभिन्न देवी-देवताओं के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं । यहां पहले श्री अभयमुनि नाम के जैन मुनि की थी । हरिद्वार में एक दार्शनिक स्थल भारत माता का मन्दिर है । यहां अनेकों आश्रम में विद्या तथा योग का प्रबन्ध है । यहां गुरुकुल कांगड़ी का वर्णन उल्लेखनीय है, जिसकी स्थापना आर्य समाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने की थी । इस केन्द्र ने देश की स्वतन्त्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

हरिद्वार से वापसी :

हरिद्वार से हम देहली जाना चाहते थे । जहां आचार्यश्री नृशील कुमार जी महाराज की स्मृति में एक समारोह रखा था । उसी समारोह में हमें भाग लेना था । हम मुजफ्फर नगर आये । यहां से हम मीरापुर-गणेशीपुर मार्ग से हम हरिद्वार तीर्थ पहुंचे । इस तीर्थ का वर्णन मैंने पिछले प्रकरण में कर दिया है । हम शान को हरिद्वार पहुंचे । सबसे पहले हम भगवान् शांतिनाथ के मन्दिर में रुके । प्रबंधकों ने हमें उठरने के लिये कहा, पर मैंने अपनी दिल्ली की मजबूरी बताई । प्रभु शांतिनाथ, आदिनाथ, कुंथुनाथ की भूमि को वन्दना की । मन्दिर से निकलकर पारणा स्तूप की तरफ गये । पारणा मन्दिर अब बहुत विकास कर चुका है । यहां मन्दिरों का अच्छा समूह बन गया है । मैंने जब पहली हरिद्वार यात्रा की थी, जब हरिद्वार में जम्बूद्वीप वन में

रहा था । अब यहां भी मन्दिरों का समूह बन गया है । इसी तरह दिगम्बर जैन मन्दिर में बहुत नये निर्माण हो चुके हैं । यहां गुजराती लोगों ने एक नई १०० कमरों की डीलक्स धनशाला बनवाई गई है । हम इस स्थल पर दो घण्टे रुके । रात्रि पड़ चुकी थी ।

रात्रि को हम मेरठ पहुंचे । करीब ६ वज्र चुके थे, हम खाना खाने के लिये एक भोजनालय में आये । फिर मेरठ को अलविदा कहा । मेरठ से मोदीनगर, मोहन नगर, राजियाबाद होते हुए हम दिल्ली पहुंचे । वहां हम अपने घर पश्चिम विहार दिल्ली में रुके ।

सुबह आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज के सम्मेलन में भाग लिया । उनके सम्मेलन में सभी धर्मों के लोग भाग ले रहे थे । इस सम्मेलन की प्रधानगी तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री के. नारायणन ने की थी । इस सम्मेलन में हमारी भगवान महावीर पुस्तक (द्वितीय संस्करण) का विमोचन श्री नारायणन ने किया । यह पहली पुस्तक का दूसरा संस्करण था । हमने विमोचन के पश्चात् यह ग्रन्थ आचार्य श्री के चरण-कमलों में समर्पित किया । यह हमारी कम्प्यूटर पर प्रकाशित प्रथम पुस्तक थी । इस अवसर पर हमारी संस्था ने आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज को सम्मानपूर्वक एक चादर समर्पित की । इस चादर को उपराष्ट्रपति श्री नारायणन ने आचार्य श्री को भेंट किया । उपराष्ट्रपति द्वारा एक जैन मुनि का उनके आश्रम में पहला आश्रम पहला समारोह था । यह समारोह काफी रंगारंग था । सभी वक्ताओं ने आचार्यश्री की राष्ट्र के प्रति सेवाओं को याद किया गया ।

इस समारोह में भाग लेने के पश्चात् हम वापिस घर आ गये । यह हरिद्वार की यात्रा जो मैंने अपने धर्मभ्राता के

आस्था की ओर बढ़ते कदम
साथ सम्पन्न की, उसकी इच्छा की पूर्ति थी । उसकी नेत्रे प्रति श्रद्धा व आस्था का प्रतीक थी । वह संक्षिप्त यात्रा ने धार्मिक जीवन पर अमिट छाप छोड़ गई है ।

इस यात्रा में हरिद्वार का महत्व इसलिये है क्योंकि इस पूर्व मेरे धर्मभ्राता ने इस तीर्थ की यात्रा नहीं की थी । वाकी स्थलों पर तो वर्ष में एक-दो बार आना जाना रहता है । इस यात्रा में मैंने हस्तिनापुर के विकास देखने का अवसर मिला । अब प्राचीन काल की तरह गंगा हस्तिनापुर तीर्थ को स्पर्श करती, गाजियाबाद, शाहदरा पहुंचती है । दिल्ली के अधिकांश हिस्सों को गंगा का जल सप्लाई किया जाता है । यह जल कृषि के क्षेत्र में भी उपयोग होता है ।

इस यात्रा के बाद काफी समय हम लम्बी यात्रा के लिये नहीं निकले । दिल्ली में तो आना जाना बना रहता है । हर यात्रा जीवन में ज्ञान की वृद्धि का कारण होती है । इस दृष्टिकोण से हर यात्रा सम्पन्न की जाती है ।

प्रकरण १४

मेरी राजस्थान तीर्थ यात्रा

मै महावीर इंटरनैशनल संस्था का मालेरकोटला इकाई का उप-प्रधान था । इस संस्था के अखिल भारतीय महावीर इंटरनैशनल संस्था के उप-प्रधान श्री धर्मपाल ओसवाल हैं । वह परोपकार व शाकाहार के कामों में भाग लेते रहते हैं । इस संस्था का विश्व स्तरीय सम्मेलन जयपुर में होना तय था । उनका अनुरोध था कि मैं इस सम्मेलन में भाग अवश्य लूं । इस संस्था का मुख्य कार्यालय जयपुर में स्थित है । इसकी स्थापना जयपुर के एक जैन आई.ए.एस. अधिकारी श्री जे. सी. मेहता ने की थी । इसका उद्देश्य भगवान महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार करना है । इन सिद्धान्तों में प्रमुख हैं शाकाहार । शाकाहार ही अहिंसा का प्रमुख आधार है । शाकाहारी व्यक्ति सहज भाव से करुणा व सत्य की प्रतिमा होता है । इस संस्था की एक खास बात है कि संस्था में कोई भी शाकाहारी व्यक्ति शामिल हो सकता है । इसके लिये आयु, जाति, रंग का भेद नहीं रखा जाता । यह संस्था परोपकार के काफी कार्य करती है । इस संस्था की प्रमुख सहयोगी संस्था है भगवान महावीर कल्याण केन्द्र जयपुर । यह संस्था कृत्रिम अंगों का निर्माण करती है । फिर अपंग व्यक्तियों को ढूंढ कर, उनके साईज के अंग लगाती है । संसार में जयपुर के कृत्रिम अंग बहुत ही हल्के होते हैं । इस संस्था को राष्ट्रीय स्तर पर बहुत सम्मान मिल चुके हैं । जिन भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त सेवा सम्मान प्रमुख हैं । कृत्रिम अंग की सेवा विल्कुल निःशुल्क होती है ।

संस्था की दान सज्जन चला रहे हैं । इसकी एक ब्रांच लुधियाना में खुल गई है । मानवता की इस सेवा के

जार्जिया की ओर बढ़ते कदम
 अतिरिक्त हम संस्था के सदस्य गरीब विद्यार्थियों की शिक्षा में सहयोग देते हैं । रक्तदान कैम्प आयोजित करते हैं । प्राकृतिक विपदाओं में लोगों को हर प्रकार से सहयोग देते हैं । ऐसी संस्था में रहकर मानवता की सेवा की जा सकती है । महावीर इंटरनैशनल की संसार भर में शाखाएं हैं ।

इसी संस्था का सम्मेलन जयपुर में था । हमें विधिवत निमन्त्रण पत्र मिला । हमें इस सम्मेलन में डेलीगेट का दर्जा मिला था । उन दिनों पंजाब में महावीर इंटरनैशनल की मात्र ३-४ शाखाएं ही खुल पाई थीं । इस संस्था में जैनों के चारों सम्प्रदाय के लोग व सभी शाकाहारी शामिल हैं । यह संस्था निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है । जैन मुनियों के प्रवचन आयोजित करती है ।

हमारी जयपुर यात्रा :

हमारा काम इस प्रकार का है कि हमारा घर से बाहर जना काफी कठिन हो गया है । पहले घर की देखरेख की व्यवस्था बनानी पड़ती है । घर में माता पिता और वुजुर्ग हैं उनके स्वास्थ्य की चिंता मुझे हर समय रहती है, पर मुझे महावीर इंटरनैशनल का निमन्त्रण था । इस दो दिन की कन्फ्रेंस में हमारा जाना जरूरी था फिर भी मुझे घर में पिता के अस्वस्थ होने के कारण लगता था कि हम नहीं जा पायेंगे । मैंने अपने धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन से कहा तुम मंडी रोविन्दगढ़ आ जाना और फिर जैसा प्रोग्राम बनेगा हम चलेंगे । इन दिनों में मेरे धर्म आचार्य अणुव्रत अनुशारता आचार्य तुलसी जी महाराज का चतुर्मास था । वैसे भी जयपुर राजस्थान की राजधानी है । कला, संस्कृति, धर्म का नगम है । इस शहर को भारत का पैरिस कहा जाता है । राल व गुलाबी पत्थरों से निर्मित यह शहर पर्यटकों की

राजस्थान की ओर बढ़ते कदम
 स्वप्न स्थली है । यह विशाल राजमार्ग अपना आकर्षण रखता है ।

राजस्थान टूरिज्म द्वारा स्वागतम होटल से नियमित होटल से यात्रा की जा सकती है । राजस्थान के इस नगर में सैकड़ों जैन मन्दिर हैं, स्थान हैं, जैन उपाश्रय हैं, प्रकाशन संस्थान हैं । जैन समाज की यहां अनेकों शिक्षण संस्थान व हस्पताल मानव जाति की सेवा में कार्यरत हैं । राजस्थान के शहर में देखने को बहुत कुछ है । इस प्रकार की संरचना बहुत सुन्दर है, खुली सड़कें हैं ।

दर्शनीय स्थल :- जयपुर में हवा महल, सिटी पैलेस, म्यूजियम, डवल खेटड़ी, सोशल म्यूजियम, आमेर के महल, नाहरगढ़, रामगढ़, जन्तर मन्तर, जौहरी बाजार, टैक्सटाईल के लिये बापू बाजार, त्रिपोलिया (तांबे-निकासी की वस्तुएं) शॉपिंग सैन्टर देखने योग्य हैं ।

राजस्थान की इस प्राकृतिक व ऐतिहासिक भूमि पर स्थापत्य कला के प्राचीनतम अप्रतिम सौन्दर्य वाले मन्दिरों, गढ़ों, रानियों के जौहर, वीरता में रंगी माटी का एक और मनोरम महल है जिसे सिटी पैलेस के नाम से जाना जाता है । यह मात्र महल ही नहीं एक नगर भी है ।

इसके उत्तर पश्चिम महल के मध्य में दुग्ध धवल सात मंजिल संगमरमरी पत्थरों से चन्द्रमहल में महाराजाओं का अतीत सजीव हो उठा है । चन्द्रमहल से उत्तर के महल के वर्गाचे में गोविन्दजी का मन्दिर है । जयपुर में सर्वप्रसिद्ध पांच मंजिल हवामहल सिटी पैलेस के निकट ही हैं । महाराजा सवाई प्रताप सिंह ने संवत् १७६६ में इसका निर्माण करवाया था । इसकी स्थापत्य शैली भी अद्भुत है, पीछे ३६० खिड़कियों से ठंडी हवा आकर शीतलता प्रदान करती है । यह महल देखने में पिरामिड जैसा दिखता है ।

ग्रन्थ की ओर बढ़ते कदम
 सूर्य उदय के समय सूर्य की सनिग्ध किरणों से हवामहल का सौन्दर्य और अभिभूत कर देता है । इसका नजारा देखने योग्य होता है ।

शहर के दक्षिण रामनिवास उद्यान में जयपुर का जादूघर है । चिड़ियाघर इस स्थान पर है, यह खाई से घिरा हुआ है, यहां सिंह, बाघ, स्वतन्त्र घूमते हैं । जयपुर से ६ कि.मी. दूर १७३४ में जयसिंह द्वितीय द्वारा निर्मित नाहरगढ़ या सुन्दरगढ़ दुर्ग है । जयपुर के दक्षिण से आठ किलोमीटर की दूरी पर सिसोदिया रानी का बाग है ।

मानसिंह की तृतीया पत्नी गायत्री देवी द्वारा निर्मित मोती का महल मोतीडुंगरी काफी ख्याति प्राप्त है । शहर से १६ कि.मी. दूर सांगनेर जैन तीर्थ है, जहां रत्नों से निर्मित जैन प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं । यह मन्दिर १५०० ई० से जैन मन्दिरों का समूह बना था । यह शहर खण्डर वन चुका है । वर्तमान में यहां १० जिनालय हैं । इनमें प्रमुख हैं मन्दिर संघी जी, मन्दिर अढ़ाई पेड़ी जी तथा मन्दिर वधीचन्द्र जी ।

रानी के बाग के सामने निकट ही विद्याधर का बाग है । जयपुर का मूल आकर्षण शहर से ११ कि.मी. उत्तर पूर्व में जयपूर-दिल्ली रोड पर आमेट का किला है । राजपूत स्थापत्य का यह सुन्दर नमूना है, जिसका निर्माण १५६२ में राजा मानसिंह ने किया था । राजा मानसिंह की वहन जोधावाई अकबर की पत्नी थी । उसी से सलीम पैदा हुआ था । इस विशाल किले की पूर्ति १०० साल में हुई थी । इसको सम्पूर्ण करने का श्रेय सर्वदा जयसिंह को है । इसकी चमक-दमक आज भी उसी तरह है ।

आमेट का दूसरा नाम कछवाहा अम्बर है । यह कछवाहा राजपूतों की प्राचीन राजधानी थी । राजपूत शैली में यहां महल अपनी चमक दमक हेतु प्रसिद्ध हैं । इन महलों

में जनाना महल, मनोरम जयमहल, सुहाग मन्दिर, सुख मन्दिर आकर्षण का केन्द्र है । इस महल के निकट जयगढ़ का किला है । इसी के पास यह जैन मन्दिर प्रसिद्ध है ।

मन्दिर सांवला जी प्रभु नेमिनाथ को समर्पित है । मन्दिर संघीजी प्राचीन मन्दिर है । इसमें चन्द्रप्रभु की प्रतिमा है । संकटहरण मन्दिर प्रभु पार्श्वनाथ को समर्पित है । यह एक १८वीं सदी का कीर्ति का स्तम्भ है ।

बरखेड़ा तीर्थ :

यहां प्रभु ऋषभदेव की प्रतिमा है । इस तीर्थ का जीर्णोद्धार आचार्य श्री नित्यनन्द जी ने किया था । विशाल मन्दिर दर्शनीय है । इसमें प्रभु शांतिनाथ, प्रभु पार्श्वनाथ, उद्देश्य पुंडरिक स्वामी, प्रभु दमदत्त स्वामी की भव्य प्रतिमाएं हैं ।

पार्श्वनाथ-कुंथलगिरि :

इस तीर्थ की स्थापना प्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य श्री देशभूषण ने १८५३ में की थी । जयपुर से पूर्व में अरावली पर्वत माला को जोड़ती एक ४०० फुट ऊंची शिखर पर १०० सीढ़ियां पार करनी पड़ती है । यह महावीर जी के रास्ते में पड़ता है । जयपुर का इतिहास काफी प्राचीन है । जयपुर से पहले आमेट ही नगर था, इस नगर के खण्डहर आमेट के किले में देखे जा सकते हैं । जयपुर में कुछ कार्य विश्वप्रसिद्ध हैं । यहां सबसे बड़ा मूर्ति उद्योग है । यहां इस काम का पूरा बाजार है । इसमें संगमरमर की प्रतिमा के अतिरिक्त धातु प्रतिमाओं का कार्य प्रसिद्ध है । यहां की साड़ी, रजाई अपने आप में उदाहरण है ।

जयपुर में कई हस्तलिखित भण्डार बहुत प्रसिद्ध हैं । यहां जैन कला संस्कृति सुरक्षित है । भारी मात्रा में हिन्दू

जास्था की ओर बढ़ते कदम
मन्दिर हैं । इनमें प्रसिद्ध विरला मन्दिर है जो सारा संगमरमर का बना हुआ है । जयपुर नरेश श्री महावीर जी तीर्थ का परम भक्त था । उसने इस तीर्थ की महिमा सुनकर इस तीर्थ के नाम एक गांव कर दिया था । जयपुर कला का केन्द्र है, यहां सोने की स्याही व कांच से चित्र बनाने वाले कारीगर हैं । इस प्रकार जयपुर और इसके आसपास का इलाका जैन व हिन्दू संस्कृति के स्थलों से भरा पड़ा है । यहां राजस्थान के लोग सज्जन, दानी, सात्त्विक वृत्ति के हैं । इस शहर को बहुत से साहित्यकार, आचार्य, उपाध्याय, मुनि, महारथी की जन्मभूमि रही है, जिन्होंने जैनधर्म, कला, साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

इस भूमि पर जाने के लिये मेरे धर्मभ्राता श्री रवीन्द्र जैन मंडी गोविन्दगढ़ पहुंचे । काफी कामों में से इस यात्रा के लिये समय निकालना काफी कठिन था । पर पूज्य पिताजी ने मुझे यात्रा के लिये सहर्ष विदा किया । उस समय दिन के ११.३० बजे चुके थे । हम बस द्वारा देहली पहुंचे, उस समय शान के ४ बजे थे । हम जयपुर वाले स्टैंड पर पहुंचे । हमें राजस्थान ट्रांसपोर्ट की बस मिल गई । यह बस अहमदाबाद जानी थी । पहले बस राजस्थान हाऊस गई । वहां से जयपुर के लिये बस वालों ने अखबार, पत्रिकायें उटाईं, फिर बस दिल्ली-जयपुर के मार्ग पर चल पड़ी । दिल्ली के निकलते ही रात्रि हो चुकी थी । सड़क बहुत खुली है । एक साथ काफी ट्रैफिक स्पीड से गुजर सकता है ।

बस जयपुर-अहमदाबाद रूट नं: ८ से गुजर रही थी । दूर तक बस्ती का नाम नहीं था । आधी रात हो चुकी थी, एक टूरिस्ट स्थल आया, वहां सभी सरकारी बसें रुकती हैं । यह बंगला ए.सी. बंगला था, जहां यात्रियों के खाने-पीने ठहरने का अच्छा प्रबन्ध था । इस स्थल पर

हमारी बस रुक गई । यहां सभी वैसे आध घण्टे तक ठहरती हैं । खाने के इलावा चाय काफी का अच्छा इंतजाम है । हमने यहां परोसा जाने वाला खाना खाया । कुछ ही समय के बाद हम जयपुर पहुंचे । रात्रि के दो बजे हम होटल में पहुंचे । वहीं कान्फ्रेंस का आयोजन था । रात्रि को भी महावीर इंटरनैशनल के कार्यकर्ता बैठे थे । यह भव्य होटल एक विशाल परिसर में स्थित था । यहां हर प्रकार की व्यवस्था प्रबन्धकों ने कर रखी थी । कान्फ्रेंस में आने वालों को जयपुर दिखाने की व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी । हमें ठीक कमरा दिलवाया । गमी के दिन थे, पर राजस्थान में जितनी गमी पड़ती है, उतनी ही रात को ठंड होती है । अब रात्रि थी, खाने का कोई समय नहीं था, चाय का कोई समय नहीं था । ऐसे में हमने कुछ आराम करना ठीक समझा । रात्रि के चार बजे रहे थे । हम सैर करने की नीयत से बाहर निकले । एक स्थान पर चाय मिल गई, चाय पीकर हम होटल आ गये ।

आचार्य श्री तुलसी जी के दर्शन :

मेरे गुरुदेव आचार्य श्री तुलसी जी व वर्तमान आचार्य श्री महाप्रज्ञ साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा एक भव्य स्थल पर विराजमान हैं । हमें उनका पता चला, सोचा कि पहले अपने गुरुदेव के दर्शन किये जायें । काफी समय से उनके दर्शन नहीं किये थे । पंजाब में विचरण के बाद उनके दिल्ली में दर्शन करने का अवसर दो-तीन बार मिला था । बाद में लम्बे अन्तराल के बाद उनके दर्शन का यह अवसर था, वैसे मैंने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन जैन विश्व भारती लाडनू में कई बार किये हैं । लाडनू आचार्यश्री की जन्मभूमि है । यहां के अनेकों साधु-साधवियां तेरापंथ जैन संघ की शान है ।

यहां १००० वर्ष पुराना दिगम्बर मन्दिर है । यहां जैनों की वरती है । आचार्यश्री जयपुर में एक भव्य स्थान में ठहरे थे, इस स्थान के पास ही उनका प्रवचन स्थल था । आचार्यश्री जहां निकलते, वहां सारा राजस्थान उमड़ पड़ता । इनके साथ एक छोटा बाजार चलता जहां राजस्थान की बनी हर वस्तु साहित्य मिल जाता । इस साहित्य में शास्त्र, चित्र, ध्यान साहित्य आराम से मिल जाता । उसी स्थल पर यात्रियों के रहने का व्यापक प्रबंध था । आचार्य तुलसी का प्रवास राजस्थान की संस्कृति के खुले दर्शन का प्रतीक है ।

हम रिकशे में एक स्थान पर पहुँचे, सुबह का समय था । आचार्य श्री प्रवचन स्थल के पास एक मकान में चतुर्मास हेतु विराजमान थे । उस दिन आचार्यश्री तुलसी अस्वरथ थे । उन्हें श्वास की तकलीफ थी । हम दोनों ने उन्हें तिक्खतों के पाठ से वन्दना की । वह हमें अच्छी तरह पहचानते थे । वह कुछ कहना चाहते थे, पर इस रोग के कारण बोल नहीं पा रहे थे । ऐसा हमने पहली बार देखा था । पास बैठे साधु-साध्वी चिन्तित थे । आचार्यश्री अपने धैर्य का पूरा प्रमाण प्रस्तुत कर रहे थे ।

हमने हर एक साधु-साध्वी के चरणों में वन्दन किया । फिर साध्वी प्रमुख कनकप्रभा से आचार्यश्री के स्वारथ के वारे में वातर्चीत की । हमने अपना साहित्य युवाचार्य महाप्रज्ञ को समर्पित किया । इस साहित्य में अन्य पुस्तकों के साथ-साथ मेरे द्वारा लिखित अनजाने रिश्ते पुस्तक प्रमुख थी । युवा आचार्य से हमारी अपने साहित्य के वारे में बात हुई । उस समय कुछ कार्यकर्ताओं ने एक योजना हमारे सम्मुख रखी - सारे ध्यान साहित्य का पंजाबी अनुवाद किया जाये, मैंने इस बात के लिये हामी भर दी, पर किसी कारणवश हमें इस प्रसंग में कोई प्रगति नहीं मिली । कुछ

सम्पर्क का अभाव भी रहा, पर कुछ भी हो, जयपुर में आचार्य तुलसी जी व उनके शिष्य परिवार के दर्शन हमारे लिये मंगलमय आशीर्वाद था । हमने वहां कुछ साहित्य व प्रचार सामग्री ली । फिर वहां के लोगों से दर्शनीय स्थलों की जानकारी मांगी । श्रावक वर्ग में कई ऐसे श्रावक थे, जो हमारी इस मीटिंग में शामिल होने के लिये आये थे । इन्हीं श्रावकों ने हमें अजमेर नाथ द्वारा रणकपुर तीर्थ की यात्रा का सुझाव दिया । हमें करीबी रास्ता बताया गया । हम वापिस सभा स्थल पर आ गये ।

महर्षि इंटरनैशनल की मीटिंग उसी होटल में शुरू हुई । इस मीटिंग की कार्यवाही तीन दिन चलनी थी । हमने इसमें एक दिन के लिये भाग लिया, फिर दूसरे दिन जयपुर देखने का कार्यक्रम बनाया । इस क्रम में हमने एक आटो रिक्शा पूरे दिन के लिये किया । उसे कहा “तुम जितना जयपुर दिखा सकते हो दिखा दो, शाम तक तुम्हें हमारे साथ रहना है । दोपहर का खाना हम खा चुके थे । जब आचार्य तुलसी के दर्शन करने गये थे, तब हम मूर्तियों वाला बाजार आराम से देख कर आये थे । जयपुर की भव्यता बेमिसाल है । इतना शान्त शहर जहां हर तरह के लोग घूम रहे थे । हमारी इच्छा सारा जयपुर देखने की थी, पर हमें आसपास के तीर्थ भी देखने थे । सबसे पहले हम आमेट के किले में पहुंचे । यह किला जयपुर से अलग ही स्थान पर स्थित है । यह स्थान जयपुर की अपनी पहचान है । यह किला ८ कि.मी. के रकबे में फैला है । एक ऊंची पहाड़ी पर विशाल किला भारतीय इतिहास की धरोहर है । हम आटो से आमेट किला पहुंचे । उस समय भयंकर गर्मी पड़ रही थी । किले के द्वार पर हाथियों की विशाल संख्या खड़ी थी, यहां पर्यटकों को हाथी पर सवार करा कर सारा किला

आस्था की ओर बढ़ते कदम

घुमाते हैं । मैंने हाथी के वजाये जीप को प्रमुखता दी क्योंकि हाथी द्वारा इतना भव्य किला देखने के लिये विपुल समय चाहिये था । यह किला अकबर के सेनापति व साले राजा मानसिंह ने बनवाया था ।

मैंने गाईड की सहायता से जीप द्वारा किला घूमने का निश्चय किया । किले में गणेश पोल देखने योग्य है । गाईड की मदद से पुरानी तोपें देखीं । इस स्थान पर तोप बनाने का कारखाना देखा, एक बड़ी तोप देखीं । ऐसी तोप अन्यत्र दुर्लभ है । सारा किला राजपूत शैली का बना हुआ है । इस किले में अनेकों भव्य महल अपनी शान से खड़े हैं । यह किला भारतीय इतिहास में राजा मानसिंह व अकबर के रिश्तों का प्रतीक है । सारा किला पूर्ण सुरक्षित है । इसी कारण यहां फिल्मों की शूटिंग होती रहती है । किले में कई भव्य संग्रहालय हैं । किले को देखने में हमें चार घंटे से ज्यादा समय लगा । फिर हमने विभिन्न जैनतीर्थ देखे । यह रात्रि यहां व्यतीत हो गई ।

सुबह को हमने हवामहल, सिटी पैलेस, जल नहल, विरला मन्दिर देखे । सिटी पैलेस में बहुत ही भव्य म्यूजियम है । इस दिन भी बहुत व्यस्त रहे । कुछ समय दोनों दिन हम कान्फ्रेंस में शामिल हुए । फिर हमारा राणकपुर, अजमेर, नाथ द्वारा, मुच्छेला महावीर व कीर्ति स्तम्भ देखने का कार्यक्रम बना । कुछ कलात्मक जैन मन्दिर देखे । फिर अगले गन्तव्य के स्थान पर चलने के लिये बस स्टैंड पर आये ।

जयपुर से अजमेर :

हमने जयपुर का बस स्टैंड पहले रात्रि को देखा था । अब हम शाम को अजमेर जैसे ऐतिहासिक शहर की ओर

अस्थी की ओर बढ़ते कदम
 रवाना हुए । यहां की बस सेवा बहुत ही सुन्दर है । हमने
 ऐसी बस अजमेर के लिये पकड़ी । जयपुर से अजमेर १२०
 कि.मी. दूर है । इस नगर का प्राचीन नाम अजयमेरु था ।
 यह नगर राष्ट्रीय मार्ग ८ पर स्थित है । यहां से १ कि.मी.
 की दूरी पर हिन्दू धर्म का तीर्थ पुष्कर है । पुष्कर तीर्थ एक
 तालाब के किनारे स्थित है । संसार की रचयिता माने जाने
 वाले ब्रह्मा का, रास्ते में यहां एक मात्र मन्दिर है - मन्दिर है
 पुष्कर । मन्दिरों के कारण राजस्थान का ये पयंटन स्थल
 है । पुष्कर का मेला बहुत प्रसिद्ध है । जहां बैल, ऊंट,
 गधे द्वारा करोड़ों रुपये का व्यापार होता है । यह अजमेर
 हावड़ा, दिल्ली, इन्दौर, चित्तौड़, आगरा, जोधपुर से जुड़ा
 हुआ है । रेलवे स्टेशन बाहर से २ कि.मी. है ।

तीर्थ-दर्शन :

राजस्थान का प्रमुख नगर अजमेर ऐतिहासिक व
 धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । यहां का प्रमुख दिगम्बर
 जैन मन्दिर सोनी जी की नसिया है । सुभाष वन के निकट
 लाल पत्थरों से निर्मित जैन मन्दिर को लाल मन्दिर कहते
 हैं । यह मन्दिर सुन्दर नक्काशी से अलंकृत है । हाल के
 एक अंश में गिल्ट किये काम के माडल में मानव जन्म के
 क्रमिक विकास और जैन पुराणिक गाथाओं को उत्कीर्ण किया
 गया है । दो पृथक-पृथक प्रखण्डों में इसका निर्माण हुआ
 है । दोनों के प्रवेश द्वार अलग अलग हैं । इसके एक भाग
 में तेरह द्वीप की रचना है जिसके अढ़ाई दीप की रचना
 विस्तृत है ।

दूसरे भाग में अयोध्या नगरी का भव्य निर्माण किया
 गया है । यहां भगवान ऋषभदेव के पांच कल्याणक उत्कीर्ण
 किये गये हैं । सिद्धाकर चैत्याल्य नसिया नाम से प्रसिद्ध

आस्था की ओर बढ़ते कदम
मन्दिर का निर्माण सेठ मूलचन्द सोनी ने १८६५ में करवाया था। इसी कारण इसका नाम सोनी जी की नसिया है ।

अजमेर में आचार्य जिनदत्त सूरि का स्वर्गवास हुआ था । उनकी भव्य समाधि विनय नगर क्षेत्र में स्थित है । इस पावन तीर्थ का निर्माण १२वीं शताब्दी में हुआ था । दादागुरु श्री जिनदत्त सूरि का जन्म सन् १०७६ में गुजरात के घोलकानगर में हुआ था । ६ वर्ष की आयु में आपने संन्यस ग्रहण किया । आपका यह स्थान चमत्कार पूर्ण है । सन् ११५५ में ७६ वर्ष की अवस्था में दादागुरु देव अजमेर स्वर्गलोक पधारे । उनके तपोवन के प्रभाव से अंतिम समय में ओढ़ाई गई चादर, चरण पादुका व मुंहपट्टी स्वतः बिना जले अग्नि से बाहर आ गिरी । यह वस्तुएं आज भी जैसलमेर के ज्ञान भंडार में देखी जा सकती हैं जिन्हें एक कांच की पेटी में सुरक्षित रखा गया है ।

मन्दिर में प्रभु पार्श्वनाथ जी की चरण पादुका एक सप्त धातु प्रतिमा विराजमान है । प्रभु विमलनाथ की प्रतिमा भी है । यह स्थान तीन तरफ से अरावली पहाड़ से घिरा हुआ है । यहां का वातावरण आत्मा को शांति प्रदान करता है ।

अन्य दर्शनीय स्थल :

अजमेर में स्टेशन से कुछ दूरी पर ख्वाजा साहिब की दरगाह है । यह मुस्लिम जगत का पवित्र तीर्थ है । यहां सब धर्मों के लोग शीश झुकाते हैं । बादशाह अकबर ने इस स्थान को दो दिशाल देगें प्रदान की थीं ।

दरगाह के पास ढाई दिन का झोंपड़ा मस्जिद है, इसे मुहम्मद गौरी ने बनवाया था, सन् ११६८ में इसका निर्माण हुआ था । डेढ़ घंटे में २०५५ फीट की ऊंचाई चढ़कर

तारागढ़ पहाड़ पर एक दुर्ग है, जिसका निर्माण १५७० में अकबर ने किया था । सफेद संगमरमर से बना अब्दुल्ला खां का मकबरा दर्शनीय स्थल है । दो पहाड़ों के बीच लुनी नदी पर कृत्रिम झील झरना सागर बनाई गई है । जहांगीर ने यहां एक सुन्दर उद्यान दौलत बाग का निर्माण करवाया । १६३७ में शाहजहां ने मरमरी दीवारों पर चार सुन्दर छत्र और संगमरमर लगवाया । यहां एक साईं बाबा का मन्दिर अभी बना है । अजमेर से मात्र ११ कि.मी. दूरी पर उत्तर पश्चिम में १५३६ फीट की ऊंचाई पर हिन्दुओं का पुष्कर तीर्थ है । अजमेर व पुष्कर के बीच नाग पहाड़ सीमा रेखा का काम करता है । पुष्कर के दो बस स्टैंड हैं । यह तीर्थ एकमात्र ब्रह्मा मन्दिर के लिये प्रसिद्ध है । इस तीर्थ पर अन्य मन्दिर हैं, जिनकी संख्या ५०० से अधिक हैं ।

पुष्कर में ५२ घाट हैं । प्रतिवर्ष अक्तूबर-नवम्बर में १० दिनों का मेला लगता है । भव्य माता का मन्दिर चारों ओर से सौरभ्य वातावरण से घिरा हुआ है । इसी मन्दिर के निकट अजमेर के दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की छत्रियां व चवूतरों के भव्य दर्शन होते हैं । पुष्कर झील के दूसरी ओर सावित्री पहाड़ है । तीर्थ यात्रियों व पर्यटकों को यह सीधा मन्दिर अपनी ओर आकर्षित करता है । यहां सावित्री देवी व सरस्वती की पूजा होती है । पूजा सिर्फ महिलाएं ही कर सकती हैं । पुरुषों को यहां पूजा करने का अधिकार नहीं ।

बस स्टैंड से थोड़ी दूरी पर रंगनाथ मन्दिर है जो द्राविड़ शैली का है । मन्दिर का सोने का कलश भी दर्शनीय है । यह मन्दिर पुष्कर की शान है । अजमेर में कावर मार्ग पर मां लिपावास में ८०० वर्ष प्राचीन दो कल्पवृक्ष हैं । ऐसा माना जाता है कि १२ वर्षों में एक बार दो तरह के पुष्प यहां लगते हैं । अजमेर पहाड़ियों से घिरा सुन्दर करवा है ।

इसका मुकुट पुष्करधाम है । पुष्कर तीर्थ का हिन्दू पुराणों में बहुत गुणगान गाया गया है । विदेशी पर्यटक पुष्कर के मेले में दस दिन तक टिके रहते हैं ।

हमारा अजमेर भ्रमण :

हम जयपुर से अजमेर पहुंचे । हमें पता चला कि यहां से राणकपुर को छोटा रास्ता जाता है, पर हमारी बस रात्रि को अजमेर पहुंची । हमने सबसे पहले अजमेरी ख्वाजा की दरगाह पर जाना ठीक समझा, यह दरगाह बस स्टैंड से नजदीक पड़ती थी, रात्रि के ८ बज चुके थे । इस कारण हम अजमेर के दो स्थान पर गये । एक दरगाह, दूसरा अढ़ाई दिन का झोपड़ा :

दरगाह में बेहद भीड़ थी, यह भारत की पुरानी दरगाह मानी जाती है । हर जाति, धर्म के लोग यहां श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं । इस दरगाह का इतिहास भारत में मुस्लिमों के इतिहास से शुरू हो जाता है । विशाल परिसर है, जहां अकबर द्वारा दान दी गई इतिहासिक दो देगें हैं जहां श्रद्धालु चावल, गुड़ डालते रहते हैं । यहां लंगर चौबीस घण्टे चलता है । इस लंगर को प्राप्त करने लम्बी-लम्बी लाईनें लगी हुई थीं । एक व्यक्ति सीढ़ी द्वारा देग तक पहुंचा हुआ था । एक बड़ी देग है, दूसरी छोटी । दोनों देगें कभी खाली नहीं रहती । यहां सेवा करने वालों को खादिम कहा जाता है । यह पण्डों से कम नहीं, हर समय कब्बालियां चलती रहती हैं । सारी कब्र के आसपास चांदी का विशाल परिकोटा है । इस दरगाह में गये तो खादिमों ने हमें घेर लिया । एक खादिम ने हमारे द्वारा श्रद्धावश समर्पित चादर को मजार पर चढ़ाया । फिर हमारे हक में दुआ की । दरगाह एक विशाल बाजार में बनी है । जहां बहुत भीड़ रहती है । हर प्रान्त व

धर्म का व्यक्ति वहां देखा जा सकता है । फिर हम दरगाह से बाहर आये, इन खादिमों ने हमें अपना नाम दर्ज करने के लिये कहा, फिर उन्होंने ख्वाजा के लंगर के लिये दान मांगा, हमने यथा शक्ति दान दिया ।

फिर अढ़ाई दिन का झोंपड़ा देखा । यह मस्जिद एक प्राचीन खण्डहरों से बनाई गई है । ऐसा इसके शिल्प से लगता है । हमने दो स्थान एक ही रात्रि में देखे । ख्वाजा की दरगाह के बाद हम दादावाड़ी पहुंचे । यह दादावाड़ी प्राचीन चमत्कारी जैन आचार्य का समाधिस्थान है । जैसे अजमेरी ख्वाजा के यहां आकर मन की मुरादें पूरी होती हैं, उसी तरह यह स्थल भी मन की मुरादें पूरी करने वाला है । रात्रि हो चुकी थी । हम अजमेर के बाजार में घूमना चाहते थे, पर सबसे पहले एक होटल में कमरा लिया, वहां अपना सामान टिकाया, फिर गमी से मुक्ति पाने के लिये स्नान किया । रात्रि का खाना खाने और बाजार में चहल कदमी करने निकले । भूख ज्यादा लगी थी, मारवाड़ी होटल में खाना खाया, फिर अजमेर के तंग बाजारों की रौनक देखी, अजमेर रौनक वाला शहर है । सारे बाजार में सबसे ज्यादा रौनक हमें ख्वाजा की दरगाह वाले बाजार में लगी । रात्रि को बाजार में पुलिस का व्यापक प्रबन्ध होता है । इस बाजार में यात्रियों के लिये होटल, गैस्ट हाऊस व धर्मशालाएं हैं । दरगाह में चढ़ाने वाली चादर, फूल व प्रसाद की दुकानें हैं । ख्वाजा का लंगर शुद्ध शाकाहारी होता है । ऐसा दरगाह के खादिमों ने बताया । लम्बी थकावट के बाद हम वापिस होटल में आये । यहां खूब नींद आई, सुबह को हमने सबसे पहले पुष्कर तीर्थ की यात्रा की । राजस्थान की यह सबसे बड़ी कृत्रिम झील है । हर जगह पंडे पुरोहितों के झुंड घूम रहे थे । सबसे ज्यादा रौनक ब्रह्मा जी के मन्दिर में

आस्था की ओर बढ़ते कदम
देखने को मिली, फिर अलग-अलग देवी-देवताओं के मन्दिर देखते दोपहर हो गई । यहां व्यापक भीड़ थी ।

वापसी में सोनी जी की नसिया में आये । यहां दिशाल जैन मन्दिर है, यहां दिगम्बर सम्प्रदाय ने अयोध्या नगरी की सुन्दर रचना की है । यह नगरी भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि है । इस मन्दिर में जैन इतिहास की घटनाओं का सुन्दर चित्रण है । इसके अतिरिक्त मैंने वे सभी स्थान देखे जिसका मैंने वर्णन पीछे किया है । सोनी जी की नसिया मन्दिर की भव्यता, कला अपने आप में इतिहास है । अजमेर ने बहुत से देशभक्तों को जन्म दिया, इसमें देश की शान पर मिटने वाले श्री अर्जुन दास सेटी इस नगर की शान थे । अजमेर की यात्रा मेरे जीवन की उपलब्धि है । विशेष रूप से अजमेरी खवाजा, दादवाड़ी व सोनी जी की नसिया देखने के बाद मेरी धर्म के प्रति आस्था को नया आवाम मिला ।

नाथद्वारा की यात्रा :

राजस्थान में नाथद्वारा तीर्थ हिन्दू धर्म का प्रसिद्ध तीर्थ है । यह मन्दिर भगवान कृष्ण को समर्पित है । मुस्लिम काल में जब प्रतिमाएं तोड़ी जा रही थीं इस प्रतिमा को एक भक्त ने रथ में सवार किया । यह वृंदावन से चला । एक स्थान पर ठहरा । रात्रि को उस भक्त को स्वप्न में भगवान कृष्ण ने दर्शन दिये । उसे आदेश हुआ कि मेरी प्रतिमा को रथ में सवार कर मरु भूमि में ले जाओ जहां यह रथ स्वयं चले रुके, तब वहां मेरा मन्दिर बनाकर स्थापित कर देना । भक्त ने भगवान के आदेश का पालन किया, उसने प्रतिमा को रथ पर सवार किया । रथ बढ़ने लगा । प्रतिमा का प्रभाव था कि कोई आक्रमणकारी इसे खंडित नहीं कर सका, रथ ने मरुभूमि में प्रवेश किया । एक जंगल में रथ स्वयंमेव रुक

गया । भक्त ने लाख कोशिश की, रथ न चला । भक्त ने वहां विश्राम किया, रात्रि को देव ने पुण्य आदेश दिया, मुझे यहां स्थापित कर दो, मुझे यहां कोई खतरा नहीं, यहां मेरी पूजा अर्चना करो, सबकी मनोकामना पूरी हो जायेगी ।”

भक्त ने उसी जंगल में भव्य मन्दिर का निर्माण किया । यहां धर्मशाला की धीरे-धीरे महानता बढ़ने लगी । भक्तजनों का तांता देखकर अनेक मन्दिर व धर्मशालाएं यहां बनीं ।

इस प्रतिमा को लोगों ने श्रीनाथ का नाम दिया, तब से नाथद्वारा के नाम से प्रसिद्ध है । यह अजमेर-उदयपुर मार्ग पर स्थित है । नाथद्वारा से पहले किशनगंज, व्यावर जैसे जैन नगर आते हैं । यहां हर शहर की धर्मशालाएं बनी हैं । पर यहां होटलों का अभाव है । मूल प्रतिमा श्यामवर्ण की है । यह प्रतिमा भव्य, प्राचीन व दर्शनीय है । हर सुबह भक्तों की लम्बी-लम्बी लाईनें नाथद्वारा के मन्दिरों में लग जाती हैं । बहुत लम्बे इंतजार के बाद प्रतिमा के पुण्य दर्शन होते हैं । हम अजमेर से रात्रि को बस पर सवार हुए । डीलकरा बस सेवा सारी रात्रि चलती है । सुबह चार बजे हम नाथद्वारा की पवित्र धरती पर उतरे । यह बस बाईपास से जाती थी । जिसका हमें पता नहीं था, रात्रि काफी थी, कोई रिकशा भी उपलब्ध भी नहीं था । करीब. तीन कि.मी. घूमकर हम नाथद्वारा मन्दिर में पहुंचे । वहां लम्बी कतारें लगी थीं । लोग धर्मशाला से स्नान कर, तैयार होकर जा रहे थे । हम भी उन भक्तों में शामिल हो गये । एक घण्टा इंतजार करने के बाद हमारी बारी आई । फिर एक धर्मशाला में जाकर स्नान किया । फिर नाथद्वारा के मन्दिर देखे, सुबह का नाश्ता किया । फिर आगे जाने का विचार बनाने लगे । हमें राणकपुर जाना था, पर रास्ते में जो भी दर्शनीय स्थल

आते थे, उनकी भी यात्रा करनी जरूरी थी । हम नाथद्वारा वस स्टैंड पर आये, वहां किसी ने सलाह दी कि आप जीप द्वारा सफर करें, इसमें समय की बचत होगी और ज्यादा स्थल देख पाओगे । इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर हम एक जीप पर सवार हुए । उसे यात्रा के बारे में समझा दिया ।

सांडेराव तीर्थ की यात्रा :

रास्ते में हम जा रहे थे तो सदप्रथम राणा प्रताप की हल्दी घाटी देखी । यह क्षेत्र उदयपुर जिले में पड़ता है । सांडेराव जैन कला का मुख्य केन्द्र है । यहां की प्रतिमा का इतिहास २५०० वर्ष पुराना माना जाता है । प्रतिमा के परिसर की कारीगरी सुन्दर है । यहां चमत्कारी मणिभद्र वक्ष का स्थान है, ठहरने के लिये धर्मशाला व भोजनशाला की व्यवस्था अच्छी है, यहां नूतनायक भगवान पार्वनाथ जी हैं ।

श्री खुडाला यात्रा :

सांडेराव से ६ कि.मी. की दूरी पर प्रभु धर्मनाथ की संवत् १२४३ की प्राचीन प्रतिमा, कलात्मक मन्दिर में स्थित है, यहां भी ठहरने व भोजन की सुन्दर व्यवस्था है, रास्ते में एक लिंग तीर्थ के दर्शन भी किये, जो नाथद्वारा से २५ कि.मी. की दूरी पर है ।

श्रीघाणेराव तीर्थ :

इस तीर्थ का निम्न राणकपुर जाने वाली सड़क पर हुआ है, इस गांव में राणकपुर तीर्थ के निर्माता धारणाशाह की चौदहवीं पौड़ी निवास करती है । यह नौमंजिला स्तूप है । जिसकी आठवीं नौवीं मंजिल में चतुर्मुखी मन्दिर है । दो जैन मंदिर इस कीर्ति स्तम्भ के पास हैं जो कला का सुन्दर

नमूना है ।

इस प्रकार रास्ते में हम तीन जैन तीर्थों की यात्रा कर चुके थे, दो हिन्दू तीर्थ भी हमने देखे, समवाभाव के कारण हम हम शीघ्र राणकपुर पहुंचना चाहते थे ।

दोपहर हो चुकी थी, हमने एक स्थान पर खाना खाया । फिर राणकपुर की ओर रवाना हो गये । यह रास्ता पहाड़ी था, भयंकर गर्मी के बावजूद यह पहाड़ियां मन को शान्ति प्रदान कर रही थीं । यह सब अरावली के दामन में स्थित थीं । राजस्थान का कण-कण भारतीय कला एवं इतिहास की एक मूंह बोलती तरवीर प्रस्तुत करता है ।

निर्माण कार्य को रोकने का कारण पूछा तो शिल्पीयों ने कहा "हम ऐसे श्रावक के यहां काम नहीं कर सकते, जो घी में से मक्खी निकाल कर, उससे लगे घी को मूँछों को लगाता है। ऐसा व्यक्ति इतने बड़े भव्य कार्य को कैसे करेंगे। मन्दिर में तो करोड़ों रूपए का द्रव्य लगना है।

सेठ ने शिल्पीयों से प्रार्थना की "हे शिल्पीयो ! मैंने मक्खी की जान बचा कर कृपणता का प्रमाण नहीं दिया, यह कार्य तो मेरे अहिंसा अणुव्रत का प्रमाण है। वाकी घी का अपव्यय करना कहां ठीक है, मैंने तो घी जैसे द्रव्य को पवित्र मान कर अपनी मूँछों पर लगाया है। सो आप शीघ्र कार्य शुरू करें। जल्द ही प्रभु ऋषभदेव को स्थापित करो। आप की मजदूरी रोजाना दी जाएगी। आप प्रभु का नाम लेकर कार्य शुरू करो। मुझे मेरे स्वप्नों की जिनालय स्थापित कर जिनशासन की प्रभावना आप की सहायता से करनी है।" सेठ की बात सुन कर मन्दिर का कार्य शुरू किया।

सेठ की बात कारीगरों व दीपा को समझ आ चुकी थी। पास वाले पहाड की खान से पत्थर मंगवाया गया। संगमरमर का पांच मंजिला कलात्मक भवन तैयार होने लगा। इसी बीच भगवान ऋषभदेव की चतुर्मुखी प्रतिमा स्थापित करने की योजना बनी। सारा मंदिर छठे वर्ष में बन कर तैयार हो गया। अंत मंदिर संवत् १४६६ में आचार्य सोम सुन्दर जी महाराज के कर कमलों से भव्य मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

राणकपुर जैन धर्म की श्रद्धा स्थली और भारतीय शिल्प का अनूठा उदाहरण है। इस विशाल मन्दिर के हर इंच पर कला का निखार है। यह तीर्थ विदेशी आक्रमणों के बावजूद सुरक्षित रहा। प्राकृतिक सौंदर्य के बीच स्थापित यह राणकपुर तीर्थ भारतीय शिल्प का नाभि स्थल है।

इस की प्रथम झलक से हमारे भारतीय शिल्पीयों की लगन व कला का पता चलता है। हमारी भारतीय वास्तु विद्या कितनी विशाल थी, कारीगर कैसे सिद्धहस्त थे ? पत्थर में कैसे जान डाल देते थे ? इसका प्रमाण यह तीर्थ है। मन्दिर के शिल्प समृद्ध गुंजों एवं स्तम्भों को देख कर ऐसा लगता है जैसे भारतीय स्थापत्य की अंगूठी में यह मन्दिर रूपी हीरा जड़ा हो। यह तीर्थ और इस का वातावरण देवलोक से कम नहीं है।

मन्दिर के मुख मंडप के प्रवेश द्वार में स्थापित एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस तीर्थ की स्थापना में यहां के राजा राणा कुम्भा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उन्होंने यह स्थान दान दिया था। सेठ धारणीशाह निकटवर्ती गांव वादिया के निवासी थे। वह राणा कुम्भा के मंत्री थे। मंत्री ने अपने आश्रय दाता को मन की भावना बताई। राजा ने वर्तमान स्थल मन्दिर को दिया। इस स्थल का नाम राणकुम्भापूर पड़ा जो बाद में राणकपूर के रूप में जाना गया। यह एक नगर भी बस गया। धारणा ने भक्ति पूर्वक पूर्वक यह नाम दिया।

राणकपूर का मन्दिर अरावली की पहाड़ीयों में सुरक्षित है। पर्वटक दूर दूर से इसे निहार कर प्रसन्न हो जाता है। ज्यों ज्यों मन्दिर के करीब पहुंचता है, उपशिखरों पर हवा में घंटियों की टंकारें उसके हृदय को आन्दोलित करने लग जाती हैं। प्रभु ऋषभदेव की प्रतिमा के दर्शन कर भावाविभोर हो जाता है। चाहे वह मन्दिर जैन शिल्प पर आधारित है पर इस के निर्माता ने रामायण और महाभारत के कुछ दृष्य का यहां शिल्पाकरण किया गया है।

यह मन्दिर सम्प्रदायिक उदारता का प्रतीक है। २५ सीढ़ीयां चढ़ने पर पर्वटक को पाषाण की शिल्पकृत छत

की ओर आकर्षित होता है। छत पर एक पंच शरीरधारी वीर पुरुष की विशाल प्रतिमा अंकित की गई है जिसका सिर एक - शरीर पांच हैं। यह प्रतिमा महाभारत का कीचक है। यह दृष्य अत्यंत मनोहर और कौतुहल भरा है। इसी छत पर रामायण और महाभारत की अनेकों घटनाओं का वर्णन है।

प्रवेश द्वार पार करते ही अगल-वगल दो प्रकोष्ठ बने हुए हैं। जिस में जैन तीर्थंकरों की प्राचीन प्रतिमाएं हैं। एक प्रकोष्ठ में खड़ी व बैठी प्रतिमाएं हैं। कुछ प्रतिमाएं तो विदेशी अक्रांता का शिकार हो चुकी हैं। पर भगवान् ऋषभदेव के प्रताप से मन्दिर मूल रूप सुरक्षित हैं। कुछ ही सीढ़ीयां चढ़ने पर प्रथम प्रांगण आता है। यह मन्दिर को सूक्ष्म तोरणों को देखा जा सकता है। मगर यहां खड़े हो कर शिल्प की विशालता को निहारा जा सकता है। मन्दिर में जिधर भी नजर डालें उधर खम्भे ही खम्भे दिखाई देते हैं। इनकी संख्या १४४४ है। विशेषता यह है कि हर स्तम्भ पर कला का नया रूप है। हर स्तम्भ अपने आप में शिल्प का स्वतन्त्र आयाम है। संसार में यह एक मात्र इमारत है जहां संगमर की स्तम्भावली दिखाई देती है।

जब हम प्रांगण में खड़े हो कर अपनी दृष्टि छत की ओर निहारते हैं तो कला का विशाल जीवंत रूप पाते हैं। इस छत पर बनी हुई है एक कल्पवल्ली यानि कल्पतरु का एक लता दिखाई देती है। यह मन्दिर भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस स्थान का नाम मेघनाद मंडप कहा जाता है।

चार कदम आगे बढ़ते ही भक्त स्वयं को छज्जे नुमा गुम्बज के नीचे पाता है। गुम्बजों में लटकते झूमर ऐसे लगते हैं मानों कानों में रत्न जडित कुण्डल लडक रहे हों। यही दोनों और दो ऐसे स्तम्भ हैं जिनमें मन्दिर निर्माता

धरणाशाह व शिल्पकार दीपा की प्रतिमाएं हैं जो इतिहास कहती हैं। बाईं ओर सेठ जी की प्रतिमा और दाईं ओर शिल्पी दीपा की प्रतिमा है। यह प्रतिमाएं भारतीय इतिहास कला संस्कृति की धरोहर हैं। मूल मन्दिर में १६ देवीयों की प्रतिमाएं शोभायमान हैं। दीपा की प्रतिमा स्थापित कर सेठ धरणाशाह ने जैन समाज को गरीब अमीर की भेद रेखा समाप्त करने का संदेश दिया है।

गर्भ ग्रह के बाहर निर्मित तोरण, शिल्प कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहां पहुंचते ही भक्ति का सागर हृदय में उछलने लगता है। इसी मूल गर्भ गृह में भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा है। यह प्रतिमा ६२ फुट की कायोत्सर्ग पद्मासन में परिकर सहित है। मन्दिर के तीनों ओर भी इसी तरह की तीन प्रतिमाएं हैं। इसी कारण इस का चतुर्मुख जिनप्रसाद है। गर्भ गृह की आंतरिक संरचना स्वरितकार कक्ष के रूप में की गई है। मूल मन्दिर के बाहर रक्षक देव की चमत्कारिक प्रतिमा स्थापित है।

गर्भ गृह के बाहर दो विशाल घंटे हैं। जिनमें से एक को नर व दूसरे को मादा कहा जाता है। यह भेद घंटनाद करने से पता चलता है। घंटे में ऐसी आवाज आती है जैसे कोई नवकार मंत्र के सार शब्द ओम की ध्वनि कर रहा हो। मूल मन्दिर की बाईं ओर एक दिग्गल वृक्ष है। जिसे रायण वृक्ष कहा जाता है। वृक्ष के नीचे प्रभु ऋषभदेव के चरण शत्रुंजयतीर्थ की याद दिलाते हैं। वृक्ष के पास एक सहरत्रकूट नामक स्तम्भ है जो अधूरा है। इस के पूरा करने के अनेकवार कोशिश की गई पर पूरा नहीं हो पाया। सहरत्रकूट स्तम्भ के सामने एक हाथी पर प्रभु ऋषभदेव की माता विराजमान है। माता मरुदेवी सरलात्मा थीं। वह अपने पुत्र के वातसत्य भरी रहती थी। एक बार प्रभु अयोध्या

आस्था की ओर बढ़ते कदम पधारे। प्रभु ऋषभदेव का समोसरण लगा। माता मरूदेवी हाथी पर बैठी समोसरण में आ रही थी। रास्ते में सोचती जाती “मेरा पुत्र ऋषभ कोई बड़ा आदमी बन गया है, जो मेरी खबर नहीं ले रहा। मैं सब से उसे उपाम्लभ दूंगी कि उसने मुझ बुढ़ीया की खबर सार क्यों नहीं ली।” माता क्या जाने कि उस का बेटा तो केवली बन कर तीन लोक का नाथ प्रथम तीर्थंकर बन चुका है। संसार को मोक्ष मार्ग का रास्ता बता रहा है। उस की धर्म दर्शना तो मैं देव, मनुष्य, पशु सभी उस का उपदेश सुनने आते हैं।”

माता मरूदेवी समोसरण के करीब पहुँची। समोसरण में देव, राजा, मनुष्य व स्त्रियों के समूह उस की देशना सुन रहे थे। माता मरूदेवी को समोसरण में पहुँचते ही रागद्वेष समाप्त हो गया। हाथी पर बैठे बैठे वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गई। श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार इस युग में प्रथम मोक्ष जाने वाली वह पहली जन्मु दीप भरत क्षेत्र की पवित्र आत्मा थी।

उसी माता मरूदेवी को इस मन्दिर में हाथी पर बैठे दिखाया गया है। इसी के पास एक विशाल तल घर है। हमलावरों से यहां प्रतिमाओं को छिपा कर रखा जाता था।

मूल गर्भ गृह की दाहिनी ओर पार्श्वनाथ की एक ऐसी प्रतिमा है जिस के सिर पर एक हजार नागफण हैं। ऐसी मूर्ति सारे भारत में एक ही है। इस मूर्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि सभी सर्प एक दूसरे से गूँथे हैं। इनका अंतिम भाग अदृश्य हैं।

यहां परिकल्पित गुम्बजों में एक ऐसा गुम्बज है जिसे अगर ध्यान पूर्वक न देखा गया, तो यात्री उस गुम्बज को मन्दिर की कला समृद्धि में बाधक वनेगा। मन्दिर के अपनी भाग में निर्मित यह गुम्बज वास्तव में शंख मण्डप है।

उसमें ध्वनि तरंग के विज्ञान को स्थापित किया गया है। गुम्बज के एक छोर पर एक शंख बना हुआ है जिस में प्रसारित होने वाली ध्वनि से सम्पूर्ण गुम्बज तरंगित दिखाया गया है।

मन्दिर के वर्गाकार गर्भ गृह से अध्ययन प्रारम्भ किया जाए तो मन्दिर की सुस्पष्ट क्रमवद्धता दिखाई देती है। यह मन्दिर पश्चिमी पहाड़ी की ढलान पर स्थित अपनी अनुपम छटा बिखेर रहा है। मन्दिर के पश्चिमवर्ती भाग को इस दिशा से कुछ उंचा बनाया गया है। लगभग ६२ गुण ६० मीटर लम्बे चौड़े क्षेत्रफल की ढलान का चारों ओर की दीवार मन्दिर की उंचाई की वाह्य संरचना में मुख्य भूमिका रखती है। मन्दिर के चार प्रवेश मंडप दो तल के हैं और तीन ओर की भित्तियों से घिरे हैं। मनोहारी प्रवेश मण्डप में सबसे बड़ा मंडप पश्चिम की ओर है जो मुख्य प्रवेश मण्डप है।

मन्दिर के परिसर में छह देवकुलिकाएं हैं। जिन पर छोटे छोटे शिखर हैं। यह शिखर मन्दिर की शोभा को बढ़ाते हैं। मन्दिर का शिखर तीन मंजिल का है। मन्दिर के उत्तंग शिखर पर लहराता ध्वजा संसार को अहिंसा व शांति का उपदेश देता है। पूर्णिमा की चांदनी में यह मन्दिर अपनी अलौकिक छटा बिखेरता है।

इस मन्दिर के अतिरिक्त यहां तीन मन्दिर और हैं। यह सभी मन्दिर कला का खंजाना हैं। इन में दो मन्दिर २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को समर्पित हैं। एक मन्दिर सूर्य देव का प्राचीन मन्दिर है। भगवान पार्श्व नाथ के मन्दिर की कला, भगवान ऋषभदेव के मन्दिर से कम नहीं। इस मन्दिर का निर्माण कारीगरों ने अपनी कला प्रदर्शित करने के लिए बची खुची सामग्री से किया था। कारीगरों की प्रभु

पाश्वर्नाथ के प्रति भक्ति का प्रतीक यह मन्दिर कला प्रेमीयों का तीर्थ है। सूर्यदेव का मन्दिर एक अलग पहाड़ी पर है। इस का निर्माण कब और कैसे हुआ ? इस का पता नहीं चलता ? इसके निर्माता के उल्लेख भी नहीं मिलता।

राणकपूर के मन्दिर पाषाण की मूर्त कल्पना है। इतिहास, कला व प्राकृतिक परिवेशों इस स्थान को भारतीय पर्यटन एवं आराधना स्थलों का सिन्धूर सावित करते हैं। अमेरिका के विश्व मान्य विद्वान लुइ जुहान के अनुसार स्थापत्य कला एवं आध्यात्मिकता की यह आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति है।

राणकपूर में एक छोटी सी मार्किट मन्दिर के बाहर है जहां दैनिक उपयोगिता की हर वस्तु मिल जाती है। यह मन्दिर का प्रबंध आनंद जी कल्याण जी पेड़ी के आधीन है। इसी पेड़ी के आधीन धनशाला बनी हुई है। जहां यात्रीयों के रहने का सुन्दर प्रबंध है। पूजा करने वालों के लिए पूजा सामग्री हर समय उपलब्ध होती है। भोजनशाला व रहने का उत्तम प्रबंध है। यह मन्दिर में एक स्तम्भ टेढ़ा है। इस पर कलाकारी भी नहीं हुई।

एक बार प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी राणकपूर के मन्दिर देखने आईं। वह मन्दिर को देख कर अत्यधिक प्रभावित हुईं। उन्होंने टेढ़ा स्तम्भ देखा। उन्होंने यहां के प्रबंधकों को कहा “यह स्तम्भ टेढ़ा क्यों है ? अगर आप कहें तो मैं फ्रांस के इंजिनियरों को बुला कर इसे सीधा करवा दूंगी।”

प्रबंधकों ने वहां काम कर रहे शिल्पीयों से इस के बारे में विमर्श किया। शिल्पीयों ने कहा “यह स्तम्भ हमारे बुजुर्गों ने जान कर टेढ़ा स्थापित किया है। इस का कारण यह है कि वह चाहते थे कि शिल्प कला के इस केन्द्र को

किरसी की नजर ना लगे। इसी कारण उन्होंने यह टेढ़ा स्तम्भ लगाया है। इसे उखाड़ने की जरूरत नहीं है।”

शिल्पीयों के उत्तर से श्रीमती इन्दिरा गांधी अत्यधिक प्रभावित हुईं। उन्होंने शिल्पीयों की श्रद्धा व भक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इस प्रकार राणकपूर मन्दिर का कण कण नैसर्गिक सौंदर्य से भरा पड़ा है। यह मन्दिर सत्यं-शिवमं-सुन्दरं का जीता जागता प्रतीक है। संगमरमर से बना यह मन्दिर धरती पर प्रभु भक्तों का तीर्थ है। देशी विदेशी पयंटकों के लिए पयंटन स्थल है। यहां तीर्थ के मन्दिरों फोटो लेना वर्जित है। यहां हर रोज यात्रीयों व श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है। अभी अभी कांग्रेस अधक्षा श्रीमती सोनिया गांधी ने इस मन्दिर की यात्रा की। वह भी इस की कला से बहुत प्रभावित हुईं।

हमारी राणकपूर यात्रा

हम नाथ द्वारा से चले थे। रास्ते में कई स्थलों को देखते हमें शाम हो चली थी। धकावट बहुत ज्यादा थी। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। मन्दिर को देख कर सारी गर्मी भूल चुके थे। हम ने धर्मशाला में सामान टिकाया। फिर स्नान कर खाना खाया। शाम की भव्य आरती में शामिल हुए। यहां राजस्थानी व गुजराती भक्तों की भरमार थी। पंजाबी तो हम दो ही थे। व्यवस्थापकों का प्रबंध सुन्दर था। यह सुन्दर व्यवस्था भी लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। रात्रि को राजस्थानी, गुजराती वेशभूषा में लोग घूम रहे थे। यहां अथाह शान्ति मिलती है। मन्दिर में प्रवेश करते एक अलौकिक अनुभव घटित होता है। ५० साल तक इस भव्य निर्माण, इस पर लगा करोड़ों का द्रव्य प्रभु ऋषभदेव के प्रति सेठ धरणीशाह के समर्पण व श्रद्धा का प्रतीक है। राजस्थान के

इस तीर्थ स्थल की रात्रि भी अनुपम थी। लगता था कि आकाश से कोई देव विमान धरती पर अभी अभी उतरा है। हम आरती में भाग लेने के पश्चात् मन्दिरों की यात्रा पर निकल पड़े। मन्दिर सभी इसी एक खण्ड में स्थित हैं। अरावली की सुन्दर पहाड़ी, नाग की तरह वलखाती सड़कें यात्रीयों का ध्यान बरबस खींच लेती हैं।

रात्रि को अपने कमरे में विश्राम के लिए पहुंचे। शांत वातावरण में काई ध्यान योगीयों के लिए यह अच्छा स्थल है। आधी रात के बाद हम सो गए। सुबह ४ बजे उठे।

फिर मन्दिर के दर्शन किए। एक पूजा की बोली मैने ली। एक भाई ने विधिवत् पूजा करवाई। फिर राजस्थान के इस शहर में इस मन्दिर व वाकी मन्दिरों का अवलोकन किया। राजस्थान की लम्बी यात्रा ने मुझे कई अनुभव प्रदान किए हैं। राजस्थान जैन इतिहास, कला, संस्कृति व साहित्य की अनूत्त धरोहर है। राजस्थान भारत का वह भाग है जहां हर शहर में किला है, किले में जैन मन्दिर है। राजस्थान के इन भागों में जैन साहित्य को पर्याप्त सुरक्षण मिला है।

राजस्थान के इस भाग में सेठ भामा शाह, विमलशाह, व धरणीशाह को इस मरुधरा ने जन्म दिया है। हम राणकपूर के मन्दिरों को श्रद्धा से शीश झुका कर वापिस आ रहे थे। हमारे मन में जहां प्रभु भक्ति का उफान चल रहा था वहीं धरणीशाह सेठ की भारतीय संस्कृति को अनमोल देन को भुला पाना मुश्किल है था। वैसे एक स्वप्न साकार होता है, इस स्वप्न को पूरा करने का श्रेय शिल्पी दीपा को जाता है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य सोमप्रभव सूरि जी महाराज महान रहे थे। जिन्होंने अपनी सशक्त प्रेरणा देकर इस भवन जिन मन्दिर का निर्माण कराया। सेठ, शिल्पी व धर्म गुरु तीनों की भक्ति

यात्रा की ओर बढ़ते कदम

रूपी त्रिवेणी इस मन्दिर के कण कण में प्रकट होती है। देव, गुरु व धर्म की त्रिवेणी इस मन्दिर के भक्तों के हृदय पटल से प्रफूटित हो कर सम्यक्त्व रूपी समुद्र को जन्म देती है। यह तीर्थ यात्रा हमारी अर्हत प्रभु के प्रति सहज समर्पण व अपने धर्म भ्राता की इच्छा को परिपूर्ण करती है।

मुच्छैला श्री महावीर जी :

राणकपूर में हम ने दोपहर का खाना खाया। पुनः सभी मन्दिरों में पूजा अर्चना वन्दन किया। फिर राणकपूर तीर्थ को वन्दन नमस्कार किया। वापिस अपनी जीप में सवार हुए। यह भी महज इतफाक था कि हम यहां पहुंचे तब भी भयंकर गर्मी में थे। वापसी सफर भी इसी गर्मी में कर रहे थे। कुछ किलोमीटर चलने के पश्चात हम एक नाले के ऊपर से गुजर रहे थे यह बरसाती नाला है। इस नाले के एक ओर सड़क जाती थी। उस सड़क पर एक साईन बोर्ड लगा था। “तीर्थ राज श्री मुच्छैला महावीर जी”

इस बोर्ड को पढ़ा। मन में उत्सुकता जागी। ड्राइवर के इस स्थान के बारे में पूछा। ड्राइवर ने उत्तर दिया “साहिब ! यह तीर्थ प्रसिद्ध चमत्कारिक तीर्थ है। मन्दिर चाहे छोटा है पर प्राचीन है। यह तीर्थ की यात्रा भी आपको करनी चाहिए।”

मैंने अपने धर्म भ्राता रविन्द्र जैन से इस यात्रा के बारे में विमर्श किया। उसने मेरी बात में हामी भरी। करीब ५ किलोमीटर चलने पर हम एक गांव में पहुंचे। इस गांव में एक भव्य प्राचीन मन्दिर के दर्शन हुए। हम मन्दिर में पहुंचे। गांव होने के कारण यहां यात्री तो आते हैं, पर ठहरते कम हैं। हम इस मन्दिर में पहुंचे। मन्दिर के मुख्य पुजारी को इस मन्दिर के इतिहास के बारे में पूछा। पुजारी ने कहा “यह

मन्दिर भगवान महावीर के समय का है। इस बात की पुष्टि इस मन्दिर के पास खण्डित मन्दिर के खण्डहर व प्राचीन प्रतिमाओं से होती है। वर्तमान मन्दिर राजकपूर जैसे शिल्प पर आधारित छोटा सा मन्दिर है। इस नें प्रभु महावीर की भव्य प्रतिमा है। मैंने पूछा “इस मन्दिर का नाम मुच्छैला महावीर कैसे पड़ा ? न तो महावीर के मूर्ते थीं। फिर क्या कारण है कि इसे मुच्छैला महावीर कहते हैं ?”

पुजारी ने मेरी जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा “यह क्षेत्र भी राणा कुम्भा के क्षेत्र में पड़ता था। यह मन्दिर तब अपनी परम उत्कृष्ट सीमा पर था। वहां साहुकारों की भव्य बस्ती थी। यहां का राजा राणा कुम्भ प्रभु महावीर का भक्त था। उसने प्रभु महावीर की इस प्रतिमा की पूर्ण सेवा भक्ति का व्रत ले रखा था। वह हर रोज मन्दिर में प्रभु महावीर की पूजा भक्ति करता था। एक दिन वह मन्दिर में पूजा के लिए न आ सका। पुजारी ने प्रभु का पवित्र गंधोधक ले कर राज दरवार में आए। पूजारी की आंखों की दृष्टि कमजोर थी। उनकी मुंछों का एक वाल उस गंधोधक में गिर पड़ा। पुजारी वाल गिरने को देख न सका।

पुजारी जी ने अपना लाया गंधोधक राजा को दिया। राजा ने गंधोधक में जब वाल देखा तो राजा कुम्भा को हैरानी हुई। राजा ने पुजारी को व्यंग करते हुए कहा “पुजारी जी क्या बात है प्रभु की प्रतिमा के क्या मूर्ते उग आई हैं, जो गंधोधक में वाल आ रहे हैं ?”

बात साधारण थी। पर राजा की बात सुन कर पुजारी को गहरा आघात पहुंचा। पुजारी आखिर पुजारी था। वह अपने प्रभु का अपमान कैसे सहन कर सकता था ? वह मन्दिर में वापिस लौटा। आकर उस ने प्रभु के समक्ष गुप्त अभिग्रह गुप्त प्रतिज्ञा धारण कर लिया। वह अभिग्रह था कि

जब तक प्रभु की प्रतिमा के मूँछे न प्रगट हों, तब तक अन्न जल का त्याग करता हूँ। इस विचित्र गुप्त अभिग्रह को पुजारी के इलावा कोई नहीं जानता था। कई दिन यह अभिग्रह चलता रहा। पुजारी का अभिग्रह पूरा करने के लिए राजा व श्रावकों ने भरसक प्रयत्न किए पर अभिग्रह पूरा नहीं हो रहा था। पुजारी जी की शरीरिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी।

भक्त की लाज उस का भगवान है। यह ऐसा रिश्ता है जो सहज समर्पण का रिश्ता है। इस रिश्ते में कुछ भी घटित हो सकता है। ऐसा ही चमत्कार पुजारी के साथ हुआ। हुआ यूँ, एक दिन राजा राणा कुम्भा प्रभु महावीर की इस प्रतिमा के दर्शन करने आए। उन्होंने जब प्रभु महावीर की प्रतिमा के दर्शन किए तो उन्हें प्रभु महावीर की प्रतिमा के ऊपर दाढ़ी-मूँछें अंकित हुईं नजर आईं। राणा को अपनी भूल का एहसास हुआ। राणा ने पुजारी जी से कहा “महाराज आप की पूजा करते भक्ति साकार हो गई है। मैंने आज प्रभु महावीर की पूजा करते उनके दाढ़ी-मूँछें देखी हैं। आप को मेरे मजाक के कारण जो आघात पहुंचा है उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। मैंने प्रभु महावीर की इस प्रतिमा का स्पष्ट चमत्कार देख लिया है। आप की भक्ति की शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ। इस भक्ति के कारण इस प्रतिमा का अतिशय देखने का मूँछे अवसर मिला है। आप प्रभु महावीर की भक्ति में डूबे सच्चे भक्त हैं। हम आप पहचान नहीं सके। मेरा व्यंग्य कटु था। जिस के कारण आप की आत्मा को आघात कष्ट पहुंचा। इस का जो प्राश्चित आप दें, मैं ग्रहण करता हूँ।”

राजा राणा कुम्भा ने पुजारी से क्षमा मांगी। पुजारी ने कहा “राजन ! आप ज्यादा कष्ट अनुभव न करें।

आस्था की ओर बढ़ते कदम

आप तो प्रभु भक्त हैं। मैं भी प्रभु का साधारण भक्त हूँ। प्रभु प्रतिमा का एक भक्त द्वारा अपमान एक भक्त कैसे सहन कर सकता था ? इसी कारण मैंने यह अभिग्रह किया। आप के कारण मेरा यह गुप्त अभिग्रह फलित हुआ। इस तीर्थ की व जैन धर्म की प्रभावना हुई। आप तो नमित्त मात्र हैं। यह घटना तो होनी थी सो हो गई। आप व्यर्थ चिंता मत करें। आप के कारण मेरी भक्ति सफल हुई।”

इस प्रकार मुच्छैला तीर्थ और इसकी प्रतिमा के चमत्कार संसार में पहुंचे। अब संसार के कोने कोने से इस चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन करने भक्तजन आते हैं। इस प्रकार पुजारी ने हमें इस तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास सुनाया।

जैसे पहले कहा गया है कि यह मन्दिर राणकपूर मन्दिर से आकार में छोटा जरूर है पर भीतरी कला दृष्टि से राणकपुर मन्दिर का प्रभाव इस गर्भ गृह व प्रवेश द्वार में देखा जा सकता है। इस मन्दिर की छत भी जैन शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। इस मन्दिर की छत के उपर भी १६ विद्यादेवीयां अलंकृत हैं। प्रभु महावीर की भव्य प्रतिमा भी कलात्मक है। मन्दिर के बाहर निकलते ही कुछ खण्डीत प्राचीन प्रतिमाएं मन्दिर परिसर में रखी हुई हैं। लगता है पहले इस स्थान पर कोई भव्य मन्दिर रहा होगा जिस की समस्त प्रतिमाएं हैं व मन्दिर किसी कारण विध्वंस का शिकार हो गए। मन्दिर की यात्रा चरम सुख देने वाली है।

मन्दिर व गांव प्रदूषण मुक्त, शान्त स्थान पर है। गांव छोटा है यहां के ग्रामीण प्रभु महावीर की श्रद्धा से पूजा अर्चना करते हैं। छोटी सी धर्मशाला में पर्याप्त संख्या में यात्री यात्रा करते रहते हैं। भोजनशाला में हर समय यात्रीयों को भोजन उपलब्ध होता है। इस मन्दिर व धर्मशाला की देखभाल भी एक पेढी करती है।

हम मुच्छैला महावीर तीर्थ की यात्रा सम्पन्न कर वापिस सड़क पर आए। कुछ किलोमीटर चलने पर गोमती का चोराहा आया। हमने जीप नाथ द्वारा से ली थी और वापस भी वहां तक थी। पर किसी की सलाह पर हम गोमती के चोराहे पर ही उतर गए। यहां से हमें जयपूर के लिए सीधी बस मिलती थी। सो हम यहां रुक कर बस का इंतजार करने लगे।

कुछ ही समय बाद एक बस द्वारा हम जयपूर पहुंचे। तब रात्रि पूरी व्यतीत हो चुकी थी। यह यात्रा पूरी रात्रि की थी। हम जयपूर सुबह ४ बजे पहुंचे। जयपूर से देहली दिन में पहुंच गए। रास्ते में हमने अलवर देखा, यहां प्राचीन महल, किले प्रसिद्ध हैं। पत्थर का व्यापार मूर्ति कला का यहां काफी कार्य होता है।

दिल्ली में कुछ समय रुक कर स्नान किया। फिर देहली से बस पकड़ कर वापिस मण्डी गोविन्दगढ़ आ गए। शाम हो चुकी थी। मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन भी मालेरकोटला चले गए। यह यात्रा हमारे लिए जैन इतिहास, कला व साहित्य के प्रति जागृति पैदा करने वाली थी। इस यात्रा ने हमें तीर्थंकरों की परम्परा के प्रति श्रद्धा को नया आयाम व बल दिया। यह हमारी संयुक्त यात्राएं थीं। अगले प्रकरण में अपनी उन यात्राओं का वर्णन करूंगा जो मैंने अपने परिवार व रिश्तेदारों के साथ सम्पन्न कीं।

प्रकरण १५

मेरी तृतीय तीर्थ यात्रा

अहमदाबाद इतिहास दर्शन

जैसे मैंने पिछले प्रकरण में उल्लेख किया था कि मैं कुछ यात्राएं अपने धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन के साथ की थीं कुछ उल्लेखनीय यात्राएं मैंने सपरिवार की थीं। इन यात्राओं के कारण मुझे धर्म में सम्यक्त्व प्रदान करने वाले मुनि श्री जयचन्द जी महाराज के दर्शन का लाभ मिला था। उनका चतुर्मास अहमदाबाद में था। इस अहमदाबाद का प्राचीन नाम कणावती था। यह दिल्ली से ८८६ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। ग्यारहवीं सदी में श्री कर्णदेव ने इस नगरी की स्थापना की थी। पहले इस का नाम आशपल्ली था। यह नगर वैभद सम्पन्न था। इस नगर ने बहुत उतार चढ़ाव देखे हैं। मुसलमानों ने इसे अहमदाबाद नाम दिया। यह नगर भारत का विशाल जैन जनसंख्या वाला नगर है। यहां २२५ जिन मन्दिर हैं। यह नगर जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र है। यहां का सबसे प्राचीन जैन मन्दिर चेहरी वाड है। यह मन्दिर प्रभु संभवनाथ को समर्पित है। यह ११ हस्तलिखित भण्डार हैं। अनेकों संशालाएं, प्रकाशन संस्थाएं इस नगर की शान हैं। हस्तलिखित भण्डार में हजारों वर्ष प्राचीन ग्रंथ का संकलन है। अनेकों शोध संस्थाएं इस नगर ने जैन धर्म को दी हैं।

अहमदाबाद का प्रमुख आकर्षण दिल्ली दरवाजे के बाहर सेठ हठी सिंह की वाड़ी मन्दिर प्रमुख तीर्थ स्थान है। यह भव्य मन्दिर सेठ हठी सिंह ने बनवाया था। यहां के भण्डारों में अनेकों हस्तलिखित ग्रंथों का विपुल संग्रह है।

भारत के श्वेताम्बर समाज का प्रमुख संगठन आनंदजी कल्याण जी पेढी का मुख्यालय है। यह पेढी प्रमुख जैन तीर्थों की व्यवस्था करती है। नए मन्दिरों का निर्माण, पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार इस पेढी का प्रमुख कर्तव्य है। संसार भर में इस पेढी ने अनेकों मंदिरों के निर्माण में सहयोग दिया है। यह पेढी सन् १८८० में रजिस्टर्ड हुई थी। इसी पेढी ने समेद शिखर तीर्थ खरीद कर श्वेताम्बर समाज को अर्पित किया है। अहमदाबाद में लालभाई दलापत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर है। यह जैन शोध संस्थान है जहां पर हजारों ग्रंथ, प्राचीन चित्र, मुर्तियां व प्राचीन सामग्री का संग्रह है। यह शहर जैनों का प्रमुख केन्द्र होने के कारण यहां हर सम्प्रदायों के साधु साध्वियों का विचरण रहता है।

यहां का प्रमुख आकर्षण हटी सिंह का जैन मन्दिर है यह मन्दिर कलात्मक है। इसकी भव्यता देखकर शत्रुंजय के मन्दिरों का ध्यान आंखों के सामने आ जाता है। यहां हिन्दी गुजराती, अंग्रेजी के अनेकों जैन पत्रिकाएं निकलती हैं। कई शोध पत्रिकाएं भी निकलती हैं। सरस्वती पुस्तक भण्डार में जैन धर्म के हर विषय पर हर ग्रंथ उपलब्ध है।

अहमदाबाद जैन मन्दिरों के ईलावा व्यापार का प्रमुख केन्द्र है। यहां का प्रमुख व्यापार कपड़े की मिलें हैं। यहां बड़ी मार्केट है। जहां भारत वर्ष के कपड़े के व्यापारीयों की दुकानें हैं। व्यापार का केन्द्र होने के कारण धर्मशाला, होटल काफी हैं। यहां पर भद्रफोर्ट, सैयद सिदी जाला, गीता मन्दिर, कांकेदिया झील, वाल वाटिका, व झूलती मीनारें दर्शनीय हैं और पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

सेट हटी सिंह के मन्दिर में मूल नायक प्रभु धर्म नाथ सुशोभित हैं। यहां अनेकों स्थानक, उपाश्रय हैं। वैसे तो गुजरात में गृह देवालय प्रचुर मात्रा में है गुजरात में जैन

धर्म का आगमन प्रभु महावीर के ५०० साल बाद आगमन हो गया था। आचार्य भद्रबाहु के समय जैन संघ दो भागों में विभक्त हो गया था। एक राजस्थान, महाराष्ट्र व गुजरात में फैल गया। यह सम्प्रदाय श्वेताम्बर कहलाया। दिगम्बर सम्प्रदाय कर्नाटक, तामिलनाडू व मध्य प्रदेश में फैला। गुजरात का इतिहास दरअसल जैन इतिहास है। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द सूरि जी महाराज, दादा जिन दत्त व आचार्य यशोविजय के नाम प्रसिद्ध हैं। यहां आचार्य हेमचन्द की प्रेरणा से परमार्हत राजा कुमारपाल को जैन धर्म में दीक्षित करके जैन धर्म का प्रचार करवाया और उसे राज्य धर्म का दर्जा दिलाया।

अहमदाबाद से ८ किलोमीटर की दूरी पर सरखेज गांव में प्रभु वासुपूज्य का मन्दिर है। यहां पर श्री पद्मावली माता श्री चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमाएं भव्य रूप में स्थापित हैं। यह तीर्थ दर्शनीय व चमत्कारी है। गुजरात में वस्तुपात, तेजपाल जैसे मंत्री ने जैन कला को प्रोत्साहित किया।

अहमदाबाद में जैनों के अतिरिक्त हिन्दु व मुसलमानों का धर्म स्थान विपूल मात्रा में है। यहां ही जनसंख्या वैष्णव है। गुजरात ने अपनी कला संस्कृति को जीवंत रखा है। जैन इतिहास का काफी वर्णन गुजरात से संबंधित है। यहां अमूर्ति पूजक सम्प्रदाय के संस्थापक लोकाशाह हुए। ऋषि सम्प्रदाय के प्रथम ऋषि लव जी भी सूरत के निवासी थे। इस तरह अनेकों इतिहासक घटनाओं का केन्द्र यह गुजरात है। इस सदी का महान दार्शनिक श्री रायचन्द भी गुजरात के थे जिन्होंने स्वयं प्रमाणिक जीवन जीया। उनके प्रभाव से मोहनदास कर्मचन्द गांधी का जीवन बदल गया। भारतीय राजनीति के अनेकों नक्षत्रों को गुजरात ने जन्म दिया है। आज भी यहां ड्राई स्टेट है। गुजरात भारत

गुजरात की ओर बढ़ते कदम
का पहला राज्य है जहां शरावबंदी मजबूती से लागू है। यहां अंतराष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र है इस के लोहा व दवाई उद्योग प्रसिद्ध है।

गुजरात में शिक्षा के साथ साथ अपने संस्कार जिंदा हैं। यहां के स्थानीय लोग धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। अपने धन का अधिकांश हिरसा तीर्थ मन्दिरों को समर्पित करते हैं। हर सुबह मन्दिरों में श्रावक श्राविकाएं अर्चना पूजा के लिए इकट्ठे होते हैं। इन लोगों पर आधुनिकता व पश्चिम का कोई असर नहीं। आज भी हिन्दी के बाद गुजराती भाषा में जैन धर्म का साहित्य मिलता है। प्राचीन समय में गुजरात के एक सुरक्षित क्षेत्र था जहां कला व संस्कृति का विकास हुआ। ज्वेताम्बर के हजारों मुनि व साध्वियों का संबंध गुजरात से है।

अहमदाबाद की ओर प्रस्थान :

मेरा अहमदाबाद का भ्रमण का कारण मुनि श्री जयचन्द्र जी महाराज के दर्शन थे। वह मुनि के दर्शन लम्बे अंतराल के बाद होने थे। पूज्य गुरुवर के अनेक समाचार प्राप्त हुए पर जाने का कोई कारण नहीं बन रहा था। यह प्रोग्राम में मेरे साथ मेरे बच्चे, मेरी बहिन उर्मिला व उनके बच्चे भी थे। मेरी बहिन जैन धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धावान है। हमें गुरुधारणा सपरिवार इन्हीं मुनि राज की कृपा से हुई थी। यह हमें जैन धर्म के संस्कार प्रदान करने वाले महात्मा थे। दरअसल इन मुनियों के साथ हमारे धार्मिक रिश्ता तो था साथ में यह मुनि राज हमारे परिवार के दिशा निदेशक भी रहे हैं।

सर्व प्रथम में सपरिवार गोविन्दगढ़ से अम्बाला टावनी पहुंचा। फिर मैंने वहां से सर्वोदय एक्सप्रेस पकड़ी।

जार्जिया की जोर बंदी कटन
 दिल्ली से सावरमती एक्सप्रेस पकड़ कर अगले दिन ३ वजे अहमदाबाद पहुंचे। ट्रेन का सफर वच्चों की दृष्टि से सुविधाजनक होता है। वैसे भी इतना लम्बा बस का सफर हमारे लिए कठिन था। हम दोपहर के पश्चात अहमदाबाद में लाल बाग स्थित मुनि श्री जय चन्द्र के प्रवास स्थल पर पहुंचे। कुछ समय के दर्शन करने के पश्चात् हमारी टहरने की व्यवस्था एक अच्छे परिवार में कर दी गई। मुझे गोविन्दगढ़ से चलते समय मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने कहा था कि अगर समय मिले तो पालीताना की यात्रा भी कर लेना। मैंने अपने धर्मभ्राता को उत्तर दिया "अगर प्रभु ऋषभदेव ने बुलाया तो मैं रुकने वाला कौन होता हूँ।"

यह बात महज इत्फाक थी। मैंने इतनी लम्बी यात्रा की आज्ञा घर वालों से प्राप्त नहीं की थी। पर यह बुलावा तो आदिश्वर दादा का था। शत्रुंजय तीर्थ के दर्शन को तीन लोक के देवता तडपते हैं। फिर मेरी क्या औकात है ? मैं तो प्रभु का साधारण भक्त हूँ। उसका दास हूँ। मेरा सौभाग्य है कि मुझे वीतराग परमात्मा, पांच महाव्रती गुरु, सर्वज्ञ परमात्मा का धर्म प्राप्त हुआ है। उसकी मौज में मेरी मौज है। अहमदाबाद पहुंचा कर, वहां मैंने सर्वप्रथम अपने गुरु श्री जय चन्द्र जी को अपना पंजाबी साहित्य समर्पित किया। उन्होंने मुझ से मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन की कुशलता पूछी। मैंने सारी गतिविधियों से उन्हें अवगत कराया। उन्होंने पंजाबी साहित्य की प्रेरिका साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज के कार्यों का अनुमोदन किया। फिर मैंने दो दिन रुक कर अहमदाबाद के दर्शनीय स्थल देखे। इन में प्रमुख हटी सिंह का जैन मन्दिर, उसकी कला मेरे लिए अवर्णनीय है।

अहमदाबाद देखा जाए तो धनवानों का शहर है। सम्पन्ता व सादगी गुजराती शैली का महत्वपूर्ण अंग है। जैन

धर्म में सहधर्मी की सेवा इतनी महान मानी गई है कि यह तीर्थंकर नाम कर्म गोत्र का कारण मानी गई है। इस सहधर्मी भावना के कारण सभी जैन एक दूसरे का ध्यान रखते हैं। यह विशेषता जैन धर्म में पाई जाती है।

मैंने जहां अहमदाबाद की यात्रा की थी। वहां मैंने उन लोगों से आस पास के पर्यटन स्थलों पर जाने का कार्यक्रम बनाना था। जो जैन गुजरात आए, वह पालिताना सिद्ध क्षेत्र की यात्रा न करे, यह असंभव है। वैसे भी गुजरात, राजस्थान में जैन धर्म की जड़ें इतनी गहरी हैं कि वर्तमान सभ्यता इसे प्रभावित नहीं कर सकती। मैंने श्री जय चन्द्र जी महाराज से गुजरात के प्रसिद्ध स्थलों की जानकारी प्राप्त करनी थी। उन्होंने मुझे जानकारी ही उपलब्ध नहीं करवाई बल्कि मार्ग दर्शन भी दिया। मेरी आगामी तीर्थ यात्रा का कार्यक्रम बना दिया।

मैंने दो दिन अहमदाबाद प्रवास किया। कला, धर्म, साहित्य का त्रिवेणी संगम यहां पर कण कण देखने को मिला। गुजरात के जैन हिन्दु, सिक्ख धर्म के ईलावा ईसाई, मुस्लिम व पारसी व्यापक संख्या में रहते हैं। सारे अपनी भाषा कला व संस्कृति को गुजरात की दृष्टि से देखते हैं। अहमदाबाद में जैन साहित्य हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती व अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होता है। अहमदाबाद में जैन साहित्य के अतिरिक्त दूसरे धर्मों का साहित्य गुजराती व अंग्रेजी में मिल जाता है।

इस प्रकार अहमदाबाद प्रवास का समय ठीक ढंग से गुजरा। गुजरात की संस्कृति की अहमदाबाद में देखने को मिल जाती है। गुजरात में सब से ज्यादा प्रेम यह लोग अपनी भाषा व संस्कृति से करते हैं। सभी भाषाओं के ग्रंथों का लिपियांतर भी गुजराती में मिल जाता है। जैसे कल्पसूत्र

के अनेकों रूप मिलते हैं। गुजरात में जैन मन्दिरों के लिए पूजा उपयोगी वस्तुएं बनती हैं। मुनियों व साध्वियों के उपयोगी उपकरण मिलते हैं।

अब मैंने उपयोगी सामान लिया। टैक्सी से अगले गंतव्य स्थान पालिताना की ओर सपरिवार रवाना हुआ। सारा रास्ता गुजराती संस्कृति की झलक हर कदम पर मिलती है।

श्री वल्लभीपूर तीर्थ :

अमहदाबाद से ५३ किलोमीटर दूरी पर वल्लभीपूर तीर्थ है। जैन श्वेताम्बर परम्परा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। किसी समय यह वैभवपूर्ण सम्पन्न नगर था। जैन आगमों की अंतिम वाचना से यह सम्पन्न हुई। पहली वाचना आचार्य स्थूलिभद्र की प्रधानगी में पाटलीपूत्र में सम्पन्न हुई। इस से पहले भी एक वाचना का उल्लेख खण्डगिरी के कुमारगिरी पर्वत पर राजा मेघ वाहन खारवेल द्वारा सम्पन्न कराने का वर्णन वीर वि० सं० २०० में पाया जाता है। प्रभु महावीर के वाद जो पूर्व साहित्य की परम्परा थी इस का वर्णन नदी सूत्र में विस्तार से मिलता है। उस समय तक पूर्व परम्परा के १४ पूर्व श्रुतधर आचार्य को याद थे। आर्य स्थूलिभद्र का काल मोर्य काल का है। आचार्य स्थूलिभद्र का परिवार नंद के मन्त्री पद पर आसीन रहा। उस समय पाटली पूत्र साजिशों का केन्द्र बन गया। आचार्य स्थूलिभद्र उस के बड़े भाई व बहिनों ने दीक्षा ग्रहण की। इस समय पहला १२ वर्ष का अकाल पड़ा। कुछ साधु भद्रबाहु से १४ पूर्वों का ज्ञान सीखने नेपाल गए। पर उन्होंने साधु को यह ज्ञान न दिया। फिर मगध संघ ने आज्ञा दी कि आचार्य स्थूलिभद्र आदि को वाचना दें। आचार्य स्थूलिभद्र नेपाल गए। सभी साधु पूर्वों का अध्ययन

करने गए। १० पूर्वों का ज्ञान अर्थ सहित दिया गया।

एक दिन रथूलिभद्र की सात बहनें अपने भाई के दर्शन करने आईं। साध्वी बनी बहनों ने आचार्य भद्रबाहु से कहा “गुरुदेव ! हमारा भाई कहां है ?” आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा “गुफा में तुम्हारा भाई ध्यानार्थ है।”

बहनें गुफा की ओर गईं। तो क्या देखती हैं कि एक शेर बैठा है। सभी साध्वी भय के कारण वापिस लौट आईं। सारी बात आचार्य भद्रबाहु को बताई। आचार्य भद्रबाहु ने साध्वियों से कहा “तुम अब जाओ, तुम्हारा भाई वहाँ मिलेगा। वह विद्यावल से शेर बन गया है।”

बहनें दूसरी बार गईं तो उन्होंने अपने भाई रथूलिभद्र को पाया। उस दिन भद्रबाहु ने रथूलिभद्र को पूर्वों का मूल अभ्यास कराया। उन पूर्वों का अर्थ नहीं बताया। आचार्य रथूलिभद्र ने बहुत प्रार्थना की। पर भद्रबाहु स्वामी ने सोचा कि भविष्य में इस पूर्व विद्या कोई दुर उपयोग कर सकता है। इस लिए मुझे यह ज्ञान भविष्य में किसी को नहीं देना।”

आचार्य रथूलिभद्र ने पाटलीपुत्र में सभी अंग उपांगों के जानकारी से वाचना की। इस समय १२वीं अंग दृष्टिवाद समाप्त हो चुका था। वह दृष्टिवाद अंग किसी को याद नहीं था।

आगमों की दूसरी वाचना मथुरा में आयं रकदिल की प्रधानगी में सम्पन्न हुई। तब तक साधू आगमों की अधिकांश भाग भूल चुके थे। इस लिए दूसरी वाचना में आगम लिखे गए। इस में पाठ भेद सामने आए। इसे माथुरी कहा जाता है। उस समय मथुरा जैन कला, संस्कृति धर्म का केन्द्र था।

आगमों की दो वाचनाएं इसी वल्लभी में सम्पन्न

हुई। उसे समय यहां श्री देवधिगणि क्षमाश्रमण सहित पांच सौ आचार्य इकट्ठे हुए। लम्बे विमर्श हुए। पिछली माधुरी वाचना को सामने रखा गया। साधू की भूलने की शक्ति को ध्यान में रख कर समस्त आगमों को ताडपत्र लिखने का निर्णय लिया गया। यह क्रान्तिकारी कदम था। श्री संघ ने ताड पत्रों पर ५०० आचार्यों से आगम लिखाने का कार्य शुरू करवाया। यह इतिहासक कदम था जिस के कारण हमें आज समस्त आगम उपलब्ध होते हैं। जब ताड़ पत्र जीर्ण शीर्ण होने लगे तो कागज पर आगम लिखने की परम्परा चली। आज भी हाथ से आगम लिखने की परम्परा तेरापंथ समाज में प्राप्त होती है। अब तो लिपि के सुन्दर नमूने भी आगमों के रूप में प्राप्त होते हैं।

वल्लभी में आगम लिखने का इतिहासक वि. सं. ५११ से शुरू हुआ। इससे पहले तो सारा साहित्य श्रुत परम्परा के रूप में उपलब्ध होता था। वल्लभी नगरी अपनी प्राचीन धरोहर को सनेटे हुए है। यहां का जैन मन्दिर भव्य है जहां प्रभु ऋषभदेव की प्रतिमा मूलनायक के रूप में दर्शन होते हैं। प्रतिमा पद्यासन में स्थित है।

इसी मन्दिर के नीचे के भाग में देवधिगणि क्षमाश्रमण एवं पांच सौ आचार्यों की प्रतिमाएं कलात्मक ढंग से बनाई गई हैं। सभी आचार्य ताडपत्र पर शास्त्र लिखते प्रदर्शित किए गए हैं। यह मन्दिर इतिहासक मन्दिर हैं। यह तीर्थ सरस्वती उपासकों के लिए पूजनीय हैं। गुमनाम आचार्यों के प्रति श्रद्धा से झुक गया। सारे भारतवर्ष में शायद ही यह एक मात्र स्थान जहां इतनी प्रतिमाओं के माध्यम से जैन इतिहास को जिंदा रखा है। वह श्री संघ साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने ऐसे चमत्कारी आचार्यों के मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर को देख कर धर्म के प्रति आस्था जागती है। प्रभु

आस्था की ओर बढ़ते कदम
के प्रति समर्पण का भाव जागता है। साथ में श्वेताम्बर जैन
साहित्य को लिपिवद्ध करने वाले आचार्य देवार्धिंगणि को
वन्दना करने को आत्मा लालायित हो जाती है।

मैंने भी इस इतिहासक वल्लभी तीर्थ की यात्रा
की, तो मेरे मन में वह सारे भाव जागृत हुए जो एक लेखक
के मन में जागते हैं। आचार्य श्री ने अपनी कलम से प्रभु
महावीर के उपदेशों को मूलरूप में सुरक्षित करने की चेष्टा
की है।

शत्रुंजय तीर्थ पालिताना

शत्रुंजय तीर्थ जैनों का प्रमुख सिद्ध क्षेत्र है। यह समस्त जैन समाज का तीर्थ है। श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों इसे सिद्ध क्षेत्र मानते हैं। इस तीर्थ पर भगवान ऋषभदेव ६६ बार पधारे थे तब से सभी तीर्थंकरों के समोसरण यहां लगे। करोड़ों मुनियों व साध्वियों ने इस क्षेत्र से मोक्ष पधारे। श्री अतंकृतदशांग में भगवान नेमिनाथ के अनेकों मुनियों व साध्वीयां इस पर्वत से मोक्ष गए। इस तीर्थ का इतिहास बहुत प्राचीन है। चाहे इस तीर्थ पर किसी तीर्थंकर का कोई कल्याणक नहीं हुआ पर यहां से करोड़ों भव्य आत्माओं ने तप कर मोक्ष प्राप्त किया। इस पर्वत का कण कण पवित्र है। इस लिए इसे विमलाचल पर्वत कहते हैं। कर्म रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त होने के कारण इस का नाम शत्रुंजय पड़ा। सिद्ध परमात्मा की मोक्ष भूमि होने के कारण इसे सिद्धांचल पर्वत भी कहा जाता है। इस पर्वत का वर्णन ग्रंथ शत्रुंजय महात्म्य में मिलता है। इस ग्रंथ के अनुसार इन सब तीर्थों में यह तीर्थ पापनाशक, मुक्तिदायक कहा गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान आदि शत्रुओं पर विजय पाई। अनेकों भव्यात्माओं ने मोक्ष रूपी लक्ष्मी का वरण किया। इसी कारण इस पर्वत की हर चोटी पर जैन मन्दिर स्थापित किया गया है। हर जैन सुवह जब देवदर्शन को जाता है तो यह मंत्र पढ़ता है।

नमस्कारं मंत्र समोः, शत्रुंजय समः गिरिः

वीतरागो समः देवो, वा भूतो न भविष्यती

अर्थात् - नमस्कार मंत्र से बढ़ कर कोई मंत्र नहीं, शत्रुंजय गिरि से बड़ा कोई महान तीर्थ नहीं। वीतराग

के समान कोई देवता नहीं। यह वार्ते न भूत काल में थी न वर्तमान में है, न भविष्य काल में होगा। फिर भक्त कहता है :

सिन्धांचल सुमरूं सदा, सोरष्ट देश मजार

मनुष्य जन्म पावुं सदा, वदुं वार हजार।

यहां मूल नायक आदिश्वर दादा की पूजा अर्चना वन्दना करना हर जैन अपने जीवन का सौभाग्य समझता है। इस तीर्थ का वातावरण अध्यात्मिकता से भरा पड़ा है। भक्त उपर वाले स्तवन में कहता है “मैं सिन्धांचल तीर्थ को नमस्कार करता हूं जो सोराष्ट्र में स्थित है। मनुष्य जन्म पाकर मैं हजारों वार वन्दना करता हूं।

तीर्थ दर्शन :

शत्रुंजय तीर्थ की उंचाई तलहटी से २०० फुट है। इस तीर्थ पर ६८१३ से ज्यादा कलात्मक व इतिहासक जिनालय हैं। इस तीर्थ का प्रथम जीणोन्दार भगवान ऋषभदेव के पुत्र चक्रचर्ती भरत ने कराया था। इस तीर्थ के २१ से ज्यादा जीणोन्दार का इतिहास प्राप्त होता है। पालीताना को मन्दिरों का शहर माना जाता है। विश्व इतिहास में कला व श्रद्धा की दृष्टि से यहां सब अनुपम, सुन्दर है। सारे संसार से तीर्थ यात्री आदिश्वर दादा के दर्शन करने आते हैं। जैन धर्म में समेद शिखर के बाद इस तीर्थ का स्थान है। सारे तीर्थ में भव्य धर्मशालएं हैं। हजारों साधू, साध्वी यहां यात्रा करने आते हैं। धर्मशाला में भी मन्दिर हैं। पालीताना स्टेशन के पास जम्बूदीप आदि प्रसिद्ध मन्दिर त्रिलोक रचना का सुन्दर नक्शा प्रस्तुत करते हैं। कार के रास्ते भावनगर से ५५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अहमदाबाद से पालीताना २५५ किलोमीटर की दूरी पर है। तलहटी से

आदिनाथ भगवान की टोंक का रास्ता ४ किलोमीटर है जिस में ३७५० सीढ़ियां हैं। बीच बीच सीधा रास्ता है। रास्ते में स्थान स्थान पर विश्रान् स्थल हैं। यहां टण्डा स्वच्छ जल की व्यवस्था है। तलहटी से ३ किलोमीटर चढ़ने के बाद दो रास्ते दिखाई देते हैं। एक रास्ता भगवान आदिनाथ के मुख्य मन्दिर की ओर जाता है और दूसरा रास्ता वन वाली टोंक की ओर जाता है। मुख्य टोंक की ओर जाने पर सर्वप्रथम रामपोल और वाधनपोल दिखाई देती हैं। आगे हाथी पोल में यात्री प्रवेश करता है। यहां नूर्य कुण्ड, भीम कुण्ड व ईश्वर कुण्ड दिखाई देते हैं।

इस पर्वत पर बने सभी मन्दिर अलग अलग विभागों में बंटे हैं। हर एक विभाग को टोंक कहते हैं। एक एक टोंक में अनेकों मन्दिर हैं और चारों ओर बड़ा परकोटा है। यहां के मन्दिर देव विमान जैसे लगते हैं। जैसे हजारों देव विमान इस पर्वत पर उतरे हों। मोतीशा की टोंक में २१६ मन्दिर हैं। इस के इलावा भारी मात्रा में देहरीयां हैं। सबसे ज्यादा मन्दिर आदिश्वर नाथ टोंक पर हैं।

इस पर्वत पर १० टोंक हैं। इस पास ही धनवसही टोंक पर पद्मापुरी मन्दिर की रचना है। इन टोंक के पवित्र नाम इस प्रकार हैं।

१. श्री आदिश्वर प्रभु की मुख्य टोंक २. मोती शाह टोंक ३. वालावसही ४. प्रेमवसही ५. हेमवसही ६. उजमवसही की टोंक ७. साखर वसही ८. छीपावसही ९. सवासोम की टोंक १०. खरतरवसही ११. तलहंटी पर धनवसही।

इन सब में सवासोम की टोंक में चोमुख मन्दिर सब से उंचा है। यह मुख्य मन्दिर है जहां मूलनायक प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिश्वर जी विराजमान हैं। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। मोतिशाह की टोंक में १६ मन्दिर और १२३

छोटी देहरीयां है। यह मन्दिर नलिनी गुल्म विमान का दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

एक पहाड़ जिसे अद्भुत जी कहते हैं वहां भगवान् ऋषभदेव की १८ फुट उंची १४ फुट चौड़ी पद्मासन प्रतिमा विराजित है। यह प्रतिमा पहाड़ खोद कर बनाई गई है।

पालिताना की पश्चिम दिशा में पहाड़ के तलहटी में श्री आदिनाथ पादुका मन्दिर है। साथ में अन्य तीर्थंकरों के चरण चिन्ह स्थित हैं। इसी के करीब शत्रुंजय नदी बहती है जहां तीर्थंकर भगवान् उपदेश देते हैं वहां स्वर्ग के देवता समोसरण की रचना चतुर्मुखी आकार में करते हैं। प्रभु के अष्ट प्रतिमायें ३४ अतिशय होते हैं। यह दृश्य इस समोसरण मन्दिर में दृष्टि गोचर होता है। मन्दिर की उंचाई १०८ फुट है। बीच बीच में ४८ फुट की उंचाई तथा चौड़ाई ७० फुट है। इस मन्दिर में १०८ जैन तीर्थों के दर्शन एक साथ एक ही स्थान पर होते हैं।

शत्रुंजय श्रद्धा और कला की दृष्टि से जैन धर्म का सर्वोपरि तीर्थ स्थल है। समस्त भारत में जैन तीर्थ हैं पर शत्रुंजय पालिताना का अपनी अलग पहचान है। यहां का कंकर कंकर शंकर है। इस यात्रा से जन्म के पाप नष्ट होते हैं। यहां की माटी को मस्तक पर लगाने के लिए देवता भी तरसते हैं। तीर्थ दर्शन से मनुष्य तो क्या, देव भी कृत कृत हो जाते हैं। पालिताना वह भूमि है जहां देवताओं का दिव्यत्व हर दिशा में झलकता है। पालिताना संसार की चिंता से मुक्त करने वाला तीर्थ है। जैन धर्म में उस प्राणी का जन्म लेना व्यर्थ माना जाता है जिसने जन्म लेकर दो तीर्थों का वन्दन नहीं किया। यह वह तीर्थ है जहां हर समय यात्रीयों का आवागमन बना रहता है। यहीं प्रमुख तीर्थ है जहां साधु

साध्वीयों का आना विपूल मात्रा में रहता है। पालीताना स्थावर व जंगम तीर्थ की दृष्टि से पुण्यभूमि है। यह जंगम तीर्थ साधु साध्वीयों के दर्शन का लाभ भी प्राप्त होता है।

पालीताना नगर के करीब ५ किलोमीटर के क्षेत्र में विशाल धर्मशालाओं का समूह है। छोर छोर पर पावन जिनालय हैं। पर असल तीर्थ तो तलाहटी से शुरू होता है। जैसे पहले कहा जा चुका है कि यहां ८६१३ मन्दिरों में ३३ हजारों जिन प्रतिमाएं हैं। पालीताना तीर्थ के १०८ नाम हैं। पर्वतमाला पर निर्मित व टोंकों में मोतीशाह की टोंक भव्यता की जीती जागती मिसाल है। पालीताना को शाश्वत तीर्थ माना जाता है। यहां पर अनंत भव्य जीवों ने निर्वाण रूपी ज्योति को प्रज्वलित कर कर्म बंधन को तोड़ा। प्रभु ऋषभदेव की स्मृति में वरसी तप के पारणें होते हैं। इस दृष्टि हरितनापुर और पालीताना दोनों ही स्थानों पर भव्य मेले लगते हैं।

पालीताना वास्तव में पादलिप्तपूर का अपभ्रंश हुआ है जो तीर्थ का वर्तमान नाम है। प्रभु ऋषभदेव ने वर्तमान काल के तीसरे आरे में हुए। पालीताना तीर्थ उनसे पहले भी था। प्रभु ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती से लेकर मंत्री कर्माशाह के नाम इस जीर्णोद्धार में शामिल हैं। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को छः कोस की प्रदक्षिणा लगाई जाती है जिस में एक लाख से अधिक यात्री भाग लेते हैं।

शत्रुंजय तीर्थ के समान शत्रुंजय नदी की महिमा भी गंगा से ज्यादा जैन ग्रंथों में उल्लेखित की गई है। यह नदी शत्रुंजय पहाड़ी पर स्थित यह मन्दिरों का नगर पालीताना शहर के दक्षिण में है। यहां के मन्दिर दो जुड़वां चोटीयों पर निर्मित हैं। यह पहाड़ समुद्र की सतह से ६०० मीटर की उंचाई पर है। ३२० मीटर लम्बी इस प्रत्येक चोटी पर यह

मन्दिर निर्मित है। यह पंक्ति दूर से देखने में अंग्रेजी के अक्षर एस (S) के आकार की दिखाई देती है। विभिन्न आकार प्रकार के इन बहुसंख्यक मन्दिरों में विराजित जिन प्रतिमाएं संसार को अहिंसा व शान्ति का संदेश देती हैं। सं. १६५० में सेठ धनपत सिंह लक्ष्मीपत सिंह द्वारा बनाए गए। इस मन्दिर में ५२ देवालय है। मार्ग में छोटी मोटी अन्य देहरीयां हैं जिनमें चक्रवर्ती भरत, भगवान नेमिनाथ के गणधर व भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ की चरण पादुकाएं हैं। यह वारिखिल्ल, नारद, राम, भरत, शुक परिव्राजक, धान थावच्चा पूत्र, शैलकसूरि, जाली, मयाली तथा अन्य देवी देवताओं की देहरीयां हैं। बीच मार्ग में राजा कुमार पाल कुण्ड और साला कुंड आते हैं। साला कुंड के पास जिनेन्द्र टूक है। जिस में ज्यादा गुरु मूर्तियां व देव मूर्तियां हैं। इन में माता पद्मावती देवी की प्रतिमा कलात्मक दृष्टि से सुन्दर है।

हम आगे बढ़ते हैं तो वहां रास्ता विभाजित होता है। आगे हाथी पोल में प्रवेश करने से पहले भव्य मन्दिर से पहले रामपोल और छीपसी पोल है। आगे हाथी पोल में प्रवेश करते समय सूरजकुण्ड, भीम कुण्ड, एवं ईश्वर कुण्ड दिखाई देते हैं।

१. पहली टोंक का निर्माण सेठ नरशी केशव जी ने सं. १६८१ में कराया था। इस भव्य टोंक में भगवान शांतिनाथ जी की भव्य प्रतिमा है।

२. दूसरी खरतरवसही टोंक है। इसे चौमुख टोंक भी कहते हैं। यह पर्वत के उतरी शिखर पर निर्मित है। शत्रुंजय में निर्मित टोंकों में यह सर्वोच्च टोंक है। काफी दूर से ही इस मन्दिर का उंचा शिखर दिखाई देता है। इस टोंक का नव निर्माण सं. १६७५ में सेठ सदासोम ने करवाया था। मन्दिर में आदिश्वर प्रभु की चौमुख जीके रूप में चार विशाल

प्रतिमाएं हैं। इसी टूंक में तीर्थंकर ऋषभदेव माता मरुदेवी का मन्दिर है। इस मन्दिर के पीछे पांडव मन्दिर है। जिस में पांच पांडव, कुन्ती व द्रौपदी की प्रतिमाएं स्थापित हैं।

३. तीसरी टोंक का निर्माण छीपा भाईयों ने करवाया था। उनके नाम से इसे छीपावसही टोंक कहते हैं। सं. १७६१ में निर्मित इस मन्दिर में आदिश्वर नाथ मूलनायक के रूप में विराजमान हैं।

४. चौथी टोंक साखरवसही है। सेठ साखर चन्द प्रेम चन्द द्वारा सं. १८६५ में इस टोंक पर भगवान ऋषभदेव, चंद्रानन, वाग्विषेण व वर्तमान शाश्वत तीर्थंकारों की प्रतिमाएं विराजित हैं।

५. छठी छीपावसही टोंक का निर्माण छीपा भाई द्वारा सं. १८८६ में हुआ था। यहां मूलनायक द्वितीय तीर्थंकर श्री अर्जुननाथ हैं।

६. सातवीं सेवावसही टोंक है। मोदी श्री प्रेमचन्द्र लवजी द्वारा इस इसका निर्माण सं. १८४३ में हुआ। इस में मूल नायक प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव हैं।

७. आठवीं वालवसही टूंक है। मन्दिर का नव निर्माण सं १९६३ में वाला भाई द्वारा हुआ है। इस में मूलनायक आदिनाथ परमात्मा विराजमान हैं।

८. नवमीं टोंक मोतीशाह की है। सेठ मोतीशाह ने विशालतम मन्दिर का निर्माण सं १८६३ में करवाया था। मन्दिर में कई छोटे बड़े मन्दिरों का भव्य समूह है। यहां मूलनायक भगवान ऋषभदेव हैं।

प्रेम वसही टूंक के पास एक विशेष मन्दिर बना हुआ है। इस में प्रभु ऋषभदेव के १८ फुट उंची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। इसे अद्भुत बाबा कहते हैं।

शत्रुंजय पर्वत की कुछ टूंक में तीर्थंकर ऋषभदेव

जार्जिया की ओर बढ़ते कदम
श्वेतवर्णीय २.१६ मीटर उंची पद्यासन प्रतिमा विराजमान हैं।
इस प्रतिमा के बारे में कहा जाता है कि :-

गिरिवर दर्शन विरला पावे।

जिन शत्रुंजय तीर्थ नहीं भेट्यो तो गर्भ वास
कहतरे।

यह मुख्य मन्दिर माना जाता है जो भव्य परिसर
से घिरा है। मूल मन्दिर में रावण वृक्ष का प्राचीन है। इस वृक्ष
के नीचे प्रभु ऋषभदेव ने तपस्या की थी। आज यहां २५
फुट की विशाल चरण पादुकाएं भक्तों की आत्मा का कल्याण
करती हैं।

पालीताना में आगम मंदिर प्रसिद्ध है। जिस में
सभी ४५ आगम शिलाओं पर खुदे हुए हैं। जम्बूदीप, विशाल
न्यूजियम दर्शनीय है।

पीर अंगारे शाह :

यहां एक अनुपम स्मारक पीर अंगारे शाह की
कब्र है। जहां हर तीर्थ यात्री पर्वत पर चढ़ने से पहले शीश
झुकाता है। इस संत ने तीर्थ की रक्षा के लिए आक्रमणकारीयों
पर अंगारे बरसाए थे। इस कारण इसका नाम अंगारे शाह
पड़ा। इस मुस्लिम फकीर ने मूर्ति भंजक विदेशी आक्रमणकारीयों
से इस तीर्थ की रक्षा की थी। जैन समाज इस अज्ञात संत
के ऋण से कभी कभी मुक्त नहीं हुआ। इस कारण अंगारे
शाह को संत ही नहीं भूमि रक्षक देव के रूप में पूजा जाता
है। इस तीर्थ पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। अंतकृतदशांग
ग्रन्थ में यहां से मोक्ष जाने वाले साधु साध्वीयों का वर्णन
मिलता है।

इस तीर्थ पर हर राज्य शासन में शिकार पर
प्रतिबंध रहा है। मुगलकाल में महाराज अकबर ने कई

फुरमान आचार्य जिनचन्द्र व आचार्य हीराविजय को दिए। इस तीर्थ को कर से मुक्त किया। इस तीर्थ पर बने मन्दिरों को देखकर हैरानी होती है कि इतने बड़े पत्थर इतने उंचे पहाड़ पर कैसे शिल्पी द्वारा पहुंचाए गए होंगे।

पालिताना यात्रा :

मैं भावनगर देखने के बाद शाम को पालिताना पहुंचा। वहां मैं पंजाबी धर्मशाला में ठहरा। अगली सुबह हमारी यात्रा शुरू होनी थी। यह यात्रा आस्था की यात्रा थी। जैसे मैंने पहले ही कहा था कि यह मन्दिर नगर मन्दिरों का राजा है। मन्दिरों का शहर है। पुण्य उदय से ही ऐसे तीर्थ के दर्शन होते हैं।

मैं व मेरा परिवार हम तीर्थ पर पहुंच कर श्रद्धा से गद्गद् हो उठा। इस तीर्थ की यात्रा से ज्ञान का प्रकाश सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। मिथ्यात्व सहित १८ पापों का नाश होता है। मुझे स्वयं अनुभव हुआ, मैंने पाया कि यहां का कण कण भगवान है। यह साधु, साध्वी, श्राविक, श्राविकाओं के झुंड प्रति सुबह तीर्थ नायक के दर्शन करने निकल जाते हैं। इस तीर्थ का सर्वप्रथम उल्लेख मेरी दृष्टि में अंतकृतदशांग सूत्र में आया है। इस तीर्थ की यात्रा मैंने एक रात्रि के आराम के बाद शुरू की। पहले पहाड़ के नीचे देखने योग्य स्थल देखे। व्यवस्था अच्छी है। पंजाबी धर्मशाला में पंजाबी सहधर्मी के दर्शन हुए। गुजराती भाषा मुझे कठिन नहीं लगी। वैसे गुजराती हिन्दी भाषा समझ लेते हैं।

सुबह उठे, सूर्य देव के दर्शन से पहले पर्वत राज की चढ़ाई शुरू हुई। यह यात्रा कुछ उसी प्रकार की थी जैसे रामेद शिखर की थी। पर इस यात्रा में एक विशेषता थी वह पहाड़ पर दही का भोजन। कितने ही दही बेचने वाले

उपर घूम रहे थे। वैसे भी हमें गुजराती भोजन के स्थान पर पंजाबी भोजन धर्मशाला में प्राप्त हो गया। यह मारवाड़ी भोजन था, जो पंजाबी भोजन से ज्यादा अंतर नहीं। अठाई घंटे की थकान वाला यात्रा के बाद मन्दिरों का क्रम शुरू हुआ। मैंने श्रृद्धा-भक्ति के साथ आदिश्वर दादा के चरणों में पूजा की। पूजा के वस्त्र व द्रव्य व भाव पूजा की। यथा शक्ति सभी मन्दिरों के दर्शन किए। यह मन्दिरों का नगर, देव विमानों का समूह है। ऐसा अलौकिक तीर्थ संसार के मानचित्र पर देखने को उपलब्ध नहीं होता। ऐसे तीर्थ की यात्रा करना जिन भक्ति का प्रतीक है। हमारा जीवन धन्य हो गया। मैं अपना जीवन सफल मानता हूँ कि मुझे भगवान् ऋषभदेव की अलौकिक, चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन का सौभाग्य मिला। मैंने प्रभु से विश्व शांति व अपने धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के लिए आशीर्वाद मांगा। यहां सत्य, अहिंसा व अनेकांत के कण कण में दर्शन होते हैं। इस तीर्थ पर आकर प्रभु आदिश्वर से यही मांगा जाता है कि बार बार अपने दर्शन देना। अपने चरणों में बुलाना।

सिद्धांचल की पवित्र यात्रा करके मैंने जीवन का वह कर्तव्य पूरा किया जो हर जैन के लिए आवश्यक है। संसार में पालीताना सचमुच अनूठा स्थल है जहां श्रृद्धा, कला व भक्ति का समुद्र ठाटें मारता है। इन्हीं यात्रा को पूर्ण कर मैं वापस अहमदाबाद आया। यहां पूज्य गुरुदेव श्री जय चन्द महाराज के पुनः दर्शन किए। मैं अपने बीच उन्हें पाकर आत्म विभोर हो रहा था। फिर मैंने गुरुदेव से वापसी की आज्ञा मांगी। उन्होंने मंगल पाठ सुना कर आशीर्वाद दिया। अहमदाबाद से हम ने विचार किया कि क्यों न कला के केन्द्र माउंट आवू की यात्रा की जाए। इसी संदर्भ में मैंने सपरिवार इस तीर्थ व पर्यटन स्थल की यात्रा की।

माउंट आबू की यात्रा

तीर्थ दर्शन :

भारतवर्ष के प्रमुख पर्यटन स्थलों में माउंट आबू का नाम सारे विश्व में फैला है। उंची पर्वतमालाओं के बीच विकसित इस पर्यटन स्थल का प्राकृतिक रूप धरती पर स्वर्ग है। माउंट आबू के लिए आबू रोड़ स्टेशन पर उतरना पड़ता है। यहां से किलोमीटर दूर देलवाड़ा के विश्व प्रसिद्ध जैन मन्दिर हैं। जो व्यक्ति एक बार इन मन्दिरों के दर्शन कर लेता है वह ताज महल को भूल जाता है। यहां की सूक्ष्म कला अनूठी है। मन्दिर में शिल्प के विभिन्न प्रकार मिलते हैं। इन मन्दिरों को कई दिन देखने पर भी इन वारीकीयों का रहस्य समझना कठिन है। इस मन्दिर ने जैन शिल्प कला को शाश्वत सम्पदा को अपने में संजोकर रखा है। यहां के संगमरमरी मन्दिर एक ओर शिल्पियों की अनूठी कला को प्रस्तुत करते हैं, वहां यह मन्दिर तीर्थंकरों की वीतरागता का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहां का वातावरण एक हिल स्टेशन की भांति है। इस तीर्थ पर अन्य धर्मों के स्थल व पर्यटन स्थल हैं। हर वर्ष १६ लाख यात्री विश्व के कोने कोने से यहां आते हैं।

देलवाड़ा पांच जैन मन्दिरों का समूह है। यहां दो मन्दिर अत्यंत विशाल है। शेष तीन मन्दिर, मन्दिर की विशालता के पूरक हैं। शिल्प सौंदर्य की सूक्ष्मता, कोमलता और गुम्बजों तथा मेहरावों का वारीक अलंकरण पहली दृष्टि में पर्यटक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाता है। मन्दिर के दर्शन से अध्यात्मि वातावरण प्राप्त होता है। नृत्य और नाट्यकला के उकेरे गए शिल्प चित्र अद्भुत व अनुपम हैं। मन्दिर की छतों पर लटकते, झूलते गुम्बज और मुख मण्डल

आस्था की ओर बढ़ते कदम
 के आस पास फैले परिसर में शिल्पांकित मां सरस्वती, अंबिका, लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, पद्मावती, शीतला आदि देवीयों की प्रतिमाएं शिल्पकला के अदभूत नमूने हैं। शिल्प कला की वारीकी देखने के लिए इन मूर्तियों के नाखून और नारसग्र आदि का अवलोकन ही काफी है।

इन मन्दिरों में शिल्पीयों ने अपनी छैनी के जौहर दिखाए हैं। मन्दिर की सभी प्रतिमाएं कटोर संगमरमर में उत्कीर्ण की गई हैं। इस से स्वयं ही देखने वालों को शिल्पीयों के श्रम का आभास होने लगता है। मन्दिर के उत्कीर्ण को गहराई से देखने पर आभास होता है। कि उस काल के शिल्पीयों की मुख्य अभिरूचि आलंकारिक अपेक्षा मूर्तिकार ने देव प्रतिमा के अंकन में विशेष सिद्ध-हरतता प्राप्त कर ली थी। इन देव प्रतिमाओं में नायको, विद्याधरों, अप्सराओं, तथा जैन धर्म के अन्य देवी देवताओं का अंकन सम्मिलित है। इन का निमाण गुम्बजों, स्तम्भों, तोरणों में हुआ है।

कला व शिल्प के भण्डार यह जैन मन्दिरों में जैन तीर्थंकरों का चित्रण स्वाभिक है पर मन्दिर के निर्माताओं सूत्रधारों और शिल्पीयों ने सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति का शिल्प प्रस्तुत करके अपनी धर्म के प्रति उदारता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। यही नहीं, यहां भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों को प्रस्तुत किया गया है। अपने प्रेमी का इंतजार करती प्रियेसी को यहां स्थान दिया गया है। यहां कुल छह मन्दिर हैं। इनमें पांच श्वेताम्बर, एक दिगम्बर है। इन का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

महावीर स्वामी का मन्दिर :

जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर को समर्पित इस सादे मन्दिर में भगवान महावीर

सहित ६ भव्य व सुन्दर प्रतिमाएं हैं। इसका निर्माण १५८२ में हुआ था। मन्दिर के बाह्य भाग की छतों पर आवरिश चित्रकारी क्षतिग्रस्त सी हो गई है। यह मन्दिर यहां निर्मित सब से छोटा मन्दिर है। यह मन्दिर प्रभु महावीर के अहिंसा के संदेश को हर कोण से प्रस्तुत करता है। यही मन्दिर सादगी में भी अपना प्रभाव छोड़ता है।

विमल वसही - इतिहास :

देलवाडा परिसर के इस भव्य परिसर का निर्माण महाराजा भीमदेव के मंत्री, धर्मपारायणा, सेनापति सेठ विमलशाह ने करवाया था। अपने जीवन का बड़ा हिस्सा उन्होंने श्रमण संस्कृति व कला को समर्पित कर दिया। इस मन्दिर के शिल्पी थे, महान शिल्पकार कीर्तिधर। उनके निर्देशन में इस कला निधि का निर्माण सं १०३१ में सम्पन्न हुआ। इस भव्य जिनालय की प्रतिष्ठा आचार्य वर्धमान सूरि के कमलों से सम्पन्न हुई। करीब १५०० शिल्पी मन्दिर का निर्माण किया। सेठ विमलशाह श्रमिकों को हमेशा प्रसन्न रखते थे, इस की झलक इन मन्दिरों का हर पत्थर कहता है। इस मन्दिर पर १८५३ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं खर्च आईं। यह उस जमाने की बात जब शिल्पीयों व मजदूरों को बहुत ही कम श्रम मिलता था। आचार्य श्री के सानिध्य में प्राण प्रतिष्ठा का कार्य मंगलमय ढंग से सम्पन्न हुआ।

सेठ विमलशाह के वंशज पृथ्वीपाल ने जीर्णोद्धार सं १२०४ से १२०६ तक इस मन्दिरों की देहरीयों का निर्माण कर इस मन्दिर को चार चांद लगाए। अपने पूर्वजों की यश कीर्ति को चिरस्थायी रखने के लिए उन्होंने विशाल हरितशाला वनाई। इस हरितशाला के द्वार पर विमलशाह को अश्वारूढ़ प्रतिमा के रूप में भव्य रूप से दिखाया गया है। सन १३६१

में अलाउद्दीन खिलजी ने इस जिनालय को काफी नुकसान पहुंचाया। इस क्षति की पूर्ति मंडोर (जोधपुर) के बीजड़ व लालक भाईयों ने करवाई। उन्होंने इन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

मन्दिर के मुख्याद्वार में प्रवेश करते ही संगमरमरी भव्य कलात्मक छतों, गुम्बजों, तोरण द्वार को देख कर मन प्रसन्न हो जाता है। अलंकृत नकाशी, शिल्पकला की भव्यता और सुकोमलता की झलक यहां हर तरफ दृष्टि गोचर होती है। इस मन्दिर में ५७ देवरीयां हैं। जिनमें विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएं परिवार सहित विराजमान हैं। प्रत्येक देहरी के नक्काशीपूर्ण द्वार के अन्दर दो दो गुम्बज हैं। जिनकी छतों पर उत्कीर्ण शिल्पकला दर्शकों को अभिभूत करती है।

मन्दिर के दसवीं देहरी के बाहर २२ तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन के दृश्य अंकित हैं। मुख्य द्वार से प्रभु नेमिनाथ की वाराज का दृश्य व कृष्ण की जल क्रीडा का उत्कीर्णन हुआ है। रंगमंडप में सप्या, सरस्वती, लक्ष्मी व भरतवाहुवती वृद्ध का दृश्य, अयोध्या व तक्षशिला के दरवार दर्शनीय हैं।

वाईसवीं व तेईसवीं देहरी के बीच एक गुफानुमा मन्दिर है। जिस प्रथम तीर्थंकर प्रभु आदिश्वर नाथ की शयावणीय प्रतिमा स्थापित है। यहीं प्रतिमा माउंट आवू में विमल शाह को प्राप्त हुई थी। उन्हें माता अंविका ने आदेश दिया था जिस के फलस्वरूप उन्होंने यह प्रतिमा भूमि खुदवा कर निकाली थी। जब यह प्रतिमा प्रकट हुई तो ब्राह्मणों ने इस स्थान पर जैन मन्दिर बनाने की आज्ञा प्रदान नहीं की। इस का कारण इस तीर्थ का ब्राह्मण तीर्थ होना था। विमलशाह मंत्री था। वह चाहता तो राजा से मन्दिर की आज्ञा जारी करवा सकता था। परन्तु विमलशाह मंत्री व

सेनापति होते हुए भी परमाहंत था वह अहिंसा में विश्वास रखता था। उसने ब्राह्मण समाज से प्रार्थना की कि वह यहां से प्राप्त जिन प्रतिमा को विराजित करने के लिए व जिनालय बनाने के लिए स्थान दें। ब्राह्मणों ने कहा “मंत्री जी ! एक ब्राह्मण तीर्थ पर जैन मन्दिर कैसे बन सकता है ? यह वह धरती है, जहां परशुराम ने क्षत्रियों का नाश किया था। हमारे लिए यह पवित्र तीर्थ है। हम जैनों को मन्दिर नहीं बनाने देंगे।” श्रावक विमलशाह ने चतुरता से काम लेते हुए कहा “हे विद्वानो ! आप मुझे धरती का छोटा सा टुकड़ा प्रदान करे, मैं उसकी मुंह मांगी कीमत चुकाने को तैयार हूं।” ब्राह्मण नेता ने मंत्री विमलशाह की बात सुनी। फिर ब्राह्मणों के नेता ने परस्पर विमर्श करके कहा “अगर तुम सचमुच प्रभु भक्त हो और मन्दिर बनाना चाहते हो तो जितनी भूमि चाहिए उतनी भूमि पर स्वर्ण मोहरें बिछा दो”

उस जमाने में स्वर्ण की मोहरें बड़ी बात थी। विमलशाह ने यह शर्त मान ली। स्वर्ण मोहरों के मध्य में छिद्र होता था। विमलशाह ने सोचा “यह ब्राह्मण खाली जमीन देख कर अपनी बात से मुकर न जाएं, इस लिए सर्व प्रथम इन छिद्रों को सोने से बंद करना चाहिए।” बड़े लम्बे समय तक विमलशाह ने करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं के छिद्र बन्द करवाए। फिर इन्हें हाथी पर लाद कर उस स्थान पर लाया गया। सारे स्थान पर मोहरें बिछा दी गईं। ब्राह्मणों ने वह स्थान विमलशाह को इतनी बड़ी कीमत लेकर दिया। इस प्रकार यह मन्दिर बड़े कठोर संघर्ष से तैयार हुआ।

जैसे पहले बताया गया है इस मन्दिर की ५७ देहरीयां हैं इन में से दसवीं देहरी का वर्णन किया जा चुका है। तेइसवीं देहरी में अंबिका माता की आकर्षक प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा विमलशाह की कुल देवी रहीं है।

३२वीं देहरी पर श्री कृष्ण द्वारा कालिया दमन का दृश्य अंकित है। एक और श्री कृष्ण पाताल लोक में शेष नाग पर शयन कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर यमुना तट पर गेंद व गुल्ली डंडा खेल रहे हैं।

३२वीं देहरी में १६ हाथ वाली सिंह वाहिनी विद्यादेवी की कलात्मक मूर्ति है। ४२वीं देहरी के गुम्बज में मयूरारसन सरस्वती, गजवाहिनी लक्ष्मी, कमल पर लक्ष्मी, गरुड़ पर शंखेश्वरी देवी की मनमोहक प्रतिमाएं यात्रीयों का ध्यान अपनी ओर खींचती हैं। यह सूक्ष्म कला का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

४४वीं देहरी में नक्काशीदार तोरण और परिसर युक्त श्री वारिषेण तीर्थंकर की शाश्वत प्रतिमा विराजमान है। ४६वीं से अड़तालसवीं देहरी के बाहर गुम्बज में १६ हाथ वाली शांतला, सरस्वती और पद्मावती देवीयों की चमत्कारी प्रतिमाएं विराजमान हैं।

मन्दिर का सर्वोत्तम कलात्मक भाग उसका रंग मंडप है। १२ अलंकृत स्तम्भों, और कलात्मक सुन्दर तोरणों पर आश्रित, बड़े गोल गुम्बज के हाथी, घोड़े, हंस, नर्तक आदि की ग्यारह गोलाकार मालाएं और झूमरों के स्फटिक गुच्छे लटक रहे हैं। प्रत्येक स्तम्भ के उपर वाद्य वादन करती ललनाएं हैं और उनके उपर भिन्न भिन्न प्रकार के वाहनों पर सुशोभित १६ विद्यादेवीयां हैं। रंग मंडप से उपर की झांकी में नौ समकोण आकृति वाली प्रत्येक अलंकृत छत पर विभिन्न पर की खुदाई इस मन्दिर की सुन्दरता में वृद्धि करती है।

१६६१ में विमलवाही की हस्तिशाला का जीणेन्द्रार हुआ था। मूल गर्भ गृह में प्रभु आदिश्वर नाथ की मनोरम प्रतिमा अपना ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। गुड़ मण्डप में ध्यानार्थ प्रभु पार्श्वनाथ की प्रतिमा इस मन्दिर की

सुन्दरता में वृद्धि करती है।

लुणवसही - इतिहास व दर्शन :

देलवाड़ा का यह मन्दिर कला जगत का प्राण है। मन्दिर में इतनी सूक्ष्म कला प्रदर्शित की गई है कि यात्री का ध्यान बरबस उस ओर खिंच जाता है। यह विमलावसही की तरह समानता लिए हुए था। इस कलात्मक मन्दिर का निर्माण वारतुपाल तेजपाल व उनकी पत्नियों ने कराया था। उनके पुत्र का नाम लावण्य सिंह था। इसी का अपभ्रंश लुणवसही हो गया। यह मन्दिर २२वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि को समर्पित है। उनकी श्यामवर्णीय प्रतिमा कसौटी के पत्थर से निर्मित की गई है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा संवत् १२८७ चैत्र कृष्णा तृतीया को आचार्य श्री विजय सैन सूरी जी ने अपने कर कमलों से की थी। इस मन्दिर पर १३ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं खर्च हुई थी। दोनों भाई जैन धर्म के परम श्रावक व धर्म के प्रति समर्पित थे। इस मन्दिर के शिल्पी थे रोमन देव। रोमन देव अपने समय के प्रसिद्ध शिल्पी थे। इस मन्दिर को अलाउद्दीन खिलजी ने क्षतिग्रस्त किया था। ये बात संवत् १३६८ की है जब अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य दल ने मन्दिर के गर्भ गृह व अन्य भागों को क्षतिग्रस्त किया था। सं १३७८ को सेठ चण्ड सिंह ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।

ये मन्दिर मानव जाति के लिए उपहार तुल्य है। इस मन्दिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही मन्दिर अपने भव्य कलात्मक रूप में प्रस्तुत होता है। यहां विश्व प्रसिद्ध देवरानी व जेटानी के गोखले (मन्दिर) हैं। इनका निर्माण दोनों भाईयों की धर्म पत्नियों ने अपने निज द्रव्य से करवाया था। बाईं ओर के गोखले में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव विराजमान हैं। दाईं ओर के गोखले में भगवान् शान्ति नाथ

की प्रतिमा स्थापित है। दोनों गोखलें देवरानी व जेटानी के प्रेम का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। दोनों का शिल्प एक सा है। इनकी की देहरीयां को देखने से लगता है कि शिल्पकार ने इनमें प्राण फूंक दिए हों। इस मन्दिर में ५२ देहरीयां हैं। यहां की हरितशाला में १० हाथी हैं।

मन्दिर के रंग मंडप में पहुंचते ही हमें कला की अनूठी उदाहरण देखने को मिलती है। गुम्बज के मध्य में लटकता झुमका स्टाक विन्दु प्रतीत होता है। मन्दिर की शत बेमिसाल है। हर तरफ शिल्पकला के अनूटे नमूने प्रस्तुत होते हैं। प्रत्येक स्तंभ पर १६ विद्या देवीयां अपने वाहनों सहित खड़ी हैं। चारों ओर कलात्मक तोरण दर्शक का मन मोह लेते हैं। रंग मंडप के दक्षिण की ओर दीवारों और छतों पर श्री कृष्ण जी के जन्म का दृश्य अंकित किया गया है। माता शयन कर रही है। पास ही उस कारागृह को अंकित किया गया है जहां श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। कृष्ण की बाल लीलाओं में उनका गोपाल मित्रों के साथ भ्रमण अंकित किया गया है। यह कार्य नक्काशी व शिल्प का उत्कृष्ट प्रमाण है। रंग मण्डप के आगे नव चौकी है। यहां की छतों पर प्रत्येक में श्रेष्ठतम नक्काशी का आश्चर्यजनक शिल्प है। संगमरमर में ऐसे सुन्दर पुष्प गुच्छ उभर आए हैं, जैसे न पहले दिखते हैं न आगे दिखेंगे।

मन्दिर की परिक्रमा में ५२ देहरीयां हैं जिनके परिकर एवं गुम्बज में कला की वारीकीयां प्रस्तुत की गई हैं। देहरी १ से १० तक क्रमशः अंबिका देवी की प्रतिमा, पुष्प नृतकीयां, पंच कल्याणक, हंस के कलात्मक पट्ट, द्वारिका के दृश्य व समोसरण का दृश्य मन को लुभावने वाला है।

११वें गुम्बज में ७ पंक्तियां हैं। हाथी, घोड़े, नाट्यकला भगवान नेमिनाथ जीवन प्रसंग, विवाह, वैराग्य,

दीक्षा का वर्णन है। प्रभु नेमिनाथ के इंतजार में बैठे राजुल को गवाक्ष में बैठे दिखाया गया है। १८ से २६वीं देहरी के गुम्बजों में कला के विभिन्न पक्षों को उजागर किया गया है। देहरी २६ से २७ के मध्य में विशाल हस्तीशाला है। ये संगमरमर के १० सुन्दर हाथियों की प्रतिमाएं सुशोभित हैं। इस मन्दिर के निर्माताओं ने अपने गुरुजनों की प्रतिमाएं स्थापित की हैं। इस गुम्बज में सुन्दर गहरे जलाशय का कलात्मक दृश्य उभरा हुआ है।

लुणवसही मन्दिर के बाहर दाईं ओर एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। जो भगवान कुन्धुनाथ को समर्पित है। वहां से सीढ़ीयां उतरने पर काले पत्थर का कुम्भ स्तम्भ है। संवत् १४४६ में इसे मेवाड़ के राणा कुम्भा ने बनवाया था। वहीं दाईं ओर वृक्ष के मध्य में युग प्रधान दादा श्री जिनदत्त सूरी की छत्री है। यहां जैन जगत के महा चमत्कारी दादा श्री जिनकुशल सूरी जी महाराज की चरण पादुका भी स्थापित है।

पीतलहर मन्दिर :

इस मन्दिर का निर्माण दानवीर सेठ श्री भामाशाह ने करवाया था। इस मन्दिर के निर्माण का सनय संवत् १३७८ से १३८६ माना जाता है। इस मन्दिर का जीणोद्धार गुजरात के सेठ ने करवाया था। मन्दिर में पांच धातु से निर्मित प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान है। पांच धातु का परिकर आठ गुणा सवा पांच फुट का है। इस प्रतिमा में ज्यादा मात्रा पीतल की है। इसी कारण इसे पीतलहर कहते हैं। इस मन्दिर में प्रतिमा की प्रतिष्ठा संवत् १४६८ में आचार्य श्री लक्ष्मी सागर सूरीश्वर जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई थी। इस मन्दिर में

आस्था की ओर बढ़ते कदम
संगमरमर की कई विशाल प्रतिमाएं हैं जो कि कला का देजोड़ नमूना हैं।

खरतरवसही - पार्श्वनाथ मन्दिर :

पीतलहर मन्दिर के बाईं ओर बना यह मन्दिर काफी विशाल है। जैन धर्म में श्वेताम्बर समाज के ८४ गच्छ हैं। इन में खरतर गच्छ का इतिहासक स्थान है। इस गच्छ की साहित्य कला को बहुत बड़ी देन है। इसका प्रमाण यह मन्दिर व इसके निर्माणकर्त्ता श्रावक माण्डलक हैं। यह पालीताना तीर्थ में भी खरतरवसही है। यह मन्दिर तीन मंजिला है इसके चारों ओर चहुं दिशाओं की ओर प्रभु पार्श्वनाथ की चार प्रतिमाएं विराजमान हैं। इसी लिए इसे चौमुखा मन्दिर भी कहते हैं। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा संवत् १११५ आषाढ़ कृष्ण १ को आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरी जी ने अपने कर कमलों से की थी। मन्दिर का शिखर सुरग्व है। मूल नायक की प्रतिमा श्वतेवर्ण की है। परिकर कलात्मक है। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर दिग्पालों और रिन्नीयों की शृंगारिक शिल्प कृतियां प्रस्तुत की गई हैं। खरतरवसही को कारीगरों का मन्दिर भी कहा जाता है। इसका निर्माण शिल्पीयों ने बाकी बची सामग्री से श्रद्धावश अपना शिल्प प्रस्तुत करने के लिए किया था। मन्दिर की देख रेख सेठ आनंद जी कल्याण जी पेढी करती है।

माउंट आवू पर्यटन स्थल है। यह आवू रोड से ३८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां ठहरने के लिए होटल व धर्मशालाओं की सुन्दर व्यवस्था है। इससे ६ किलोमीटर दूर गोमुख है और आगे जाने पर वशिष्ट ऋषि का आश्रम व श्री हनुमान मन्दिर है। एक हजार सीढ़ियों चढ़ने पर गोमुख तक पहुंचा जा सकता है। यहां सूर्य उदय

जास्था की ओर बढ़ते कदम
व अरुत का दृश्य मनमोहक होता है। सन् साईट प्वाइंट से बाजार मार्ग पर नक्की झील है जो पहाड़ों से घिरी हुई है। यहां प्राकृति अपनी छटा बिखेरती है। यह कृत्रिम झील अनेकों द्वीपों से घिरी है। यहां पर्यटक नौका बिहार का आनंद लेते हैं।

कुछ ही दूरी पर मधुवन के पास ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय शिक्षा विद्यालय विश्व को शान्ति का उपदेश देता है। यहां धार्मिक संग्रहालय है। कोडरा बांध से शहर की जलपूर्ति होती है। इस बांध से तीन किलोमीटर दूर जाने पर अधरादेवी का मन्दिर है। यह मन्दिर पहाड़ को काट कर बनाया गया है। २२० सीढ़ियां चढने पर मन्दिर का मुख्य द्वार आता है। प्रवेश द्वार से आगे का रास्ता तंग होता है, यह अवुर्दा देवी नगर की देवी मानी जाती है। इस का अपभ्रंश आवू पड़ा। इस मन्दिर से नगर का दृश्य मनोरम दिखाई देता है।

इस नगर में श्वेताम्बर जैन स्थानक वासी उपाध्याय श्री कन्हैया लाल ने श्री वर्धमान जैन केन्द्र की स्थापना की है। जहां आगमों पर विशाल स्तर पर शोध कार्य होता है। यहां जैन स्थानक विशाल ग्रंथालय, औषधालय, धर्मशाला व भोजनशाला की सुविधा यात्रीयों को प्राप्त है। आवू तीर्थ राजस्थान गुजरात की सीमा पर विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है।

यात्रा विवरण :

मैं गुजरात की यात्रा सम्पन्न कर सीधा माउंट आवू रोड पहुंचा। जिन स्थानों को मैंने देखा, उनका विवरण मैंने पहले कर दिया है। मेरा उद्देश्य मात्र तीर्थ यात्रा करना था। इस यात्रा में मैंने देखा की आवू तीर्थ पर हमारे श्रावकों

ने अपने धन का सदुपयोग करते हुए जैन कला के माध्यम से जैन संस्कृति की अभूतपूर्व प्रभावना की है। हमारे यह मन्दिर श्रृद्धा, कला व भक्ति का त्रिवैणी संगम हैं। यह तीर्थ व यहां स्थापित मन्दिर मेरी आस्था का केन्द्र हैं। मैंने प्रभु का नाम सुमिरन करते हुए इन तीर्थों की यात्रा धर्म प्रभावना हेतु की। वह श्रावक धन्य हैं, वह शिल्पी धन्य हैं, वह गुरुदेव धन्य हैं जिनकी प्रेरणा व परिश्रम से इस तीर्थ में मन्दिरों का कलात्मक निर्माण हुआ। मैंने यहां मन्दिरों में पूजा अर्चना की।

अचलगढ़ तीर्थ की यात्रा - तीर्थ दर्शन :

यह तीर्थ माउंट आवू से लगभग 99 किलोमीटर की दूरी पर अचलगढ़ स्थान पर है। यह दुर्ग व इतिहासक स्थान है। इस तीर्थ पर जाने के लिए हमें आवू के श्री वर्धमान महावीर केन्द्र से रारता जाता है। यह तीर्थ हिन्दुओं व जैनों का पवित्र स्थान है। देलवाडा से भी यहां के लिए जाया जाता है। अचलगढ़ का किला 8000 फुट की उंचाई पर स्थित है। यहां का चौमुखी का मन्दिर प्रसिद्ध है। दो मंजिलों के इस मन्दिर में चार-चार बड़ी और भव्य प्रतिमा है। इन प्रतिमाओं की संख्या 98 है। यह पांच धातु की हैं। इन प्रतिमाओं का वजन 9888 मन है। मुख्य मन्दिर में जैन तीर्थंकरों के जीवन चरित्र व कुछ जैन तीर्थों का चित्र उत्कीर्ण किये गए हैं। इसके पास प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जी की, श्री कुंथु नाथ जी, श्री पार्श्व नाथ जी, श्री शांतिनाथ जी की प्रतिमाएं हैं। साथ में गुरु समाधि मन्दिर है। प्रसिद्ध चमत्कारी योगीराज श्री शांति विजय ने यहां तपस्या की थी। इस कारण यह स्थान पूजनीय बन गया है।

यहां का अचलेश्वर महादेव का मन्दिर हिन्दु धर्म

का प्रसिद्ध स्थान है। इस मन्दिर के उत्तर में एक विशाल कुण्ड है जो मंदाकिनी कुंड के नाम से पुकारा जाता है। इस मन्दिर के पास ही पत्थर के तीन विशाल पहाड़ दिखाई देते हैं। इस तीर्थ पर कुल ६ देरासर हैं। यहां का प्रमुख मन्दिर श्री आदिनाथ प्रभु का दो मंजिला भव्य मन्दिर है। उपर वाली मन्जिल में श्री पार्वनाथ जी की चौमुखी प्रतिमा विराजमान है।

अचलगढ़ की तलहट्टी में प्रभु शान्तिनाथ का प्राचीन भव्य मन्दिर है। यहां दो धर्मशालाएं हैं। मन्दिर में पुरतकालय, भोजनालय की उचित व्यवस्था है। यहां की प्रतिमा धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करती है।

अचलगढ़ व देलवाड़ा के मन्दिर जैन धर्म, संस्कृति की अपनी पहचान संसार के सामने प्रस्तुत करते हैं। मेरा परम सौभाग्य है कि इस लम्बी धर्म यात्रा में मुझे इन मन्दिरों में पूजा अर्चना का सौभाग्य मिला। इन तीर्थों के दर्शन से मेरी जैन धर्म के प्रति आस्था को नया बल मिला। मुझे जैन इतिहास के बारे में नई जानकारीयां प्राप्त हुईं। इस कला के वेजोड नमूने देख कर उन शिल्पीयों के चरणों में शीश स्वयं ही झुक जाता है, जिनके कुशल निर्देशन में यह भव्य तीर्थ का निर्माण हुआ। विमलशाह व उनके वंशज, वस्तुपाल व तेजपाल जैसे श्रावकों के बारे में इतिहासक जानकारी मिली।

प्रकरण - १६

मेरी संक्षिप्त यात्राएं

मैंने जहां जीवन में लम्बी-लम्बी तीर्थ यात्राएं देव गुरु व धर्म की कृपा से सम्पन्न की हैं उसी तरह मैंने छोटी छोटी तीर्थ यात्राएं संक्षिप्त रूप से सपरिवार सम्पन्न की है। इन यात्राओं में हिन्दु तीर्थों की यात्रा भी है, कांगडा तीर्थ के मूलनायक भगवान ऋषभदेव की यात्रा की है। इसी जैन तीर्थ यात्रा की कड़ी में मैं इस यात्रा में इन स्थानों की यात्रा का वर्णन करना चाहूंगा। इस यात्रा ने मेरी धर्म श्रद्धा को नया बल प्रदान किया है। यह सभी तीर्थ उत्तर प्रदेश में पड़ते हैं। मैंने इन तीर्थों में सर्व प्रथम श्री पुरमिताल की यात्रा की। यह तीर्थ प्रयाग राज के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रयाग दर्शन :

प्रयाग का प्राचीन नाम जैन ग्रंथों में पुरिमिताल है। कभी यह नगर भी प्रभु ऋषभदेव की अयोध्या नगरी का एक वन था। यह क्षेत्र त्रिवेणी संगम के नाम से प्रसिद्ध है। यह ईलाहाबाद जिले में पड़ता है। यहां श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों जैन मन्दिर हैं। श्वेताम्बर जैन मन्दिर में मूलनायक भगवान ऋषभदेव हैं। पर दिगम्बर मन्दिर में मूलनायक भगवान ऋषभदेव के साथ साथ पार्श्वनाथ की अतिशय पूर्ण प्रतिमा विराजमान है। हिन्दुओं का त्रिवेणी संगम होने के कारण इस तीर्थ पर जन समूह उमड़ा रहता है। यहां गंगा, यमुना व सरस्वती का संगम होता है। यहां एक वट वृक्ष के नीचे प्रभु ऋषभदेव की चरण पादुका है। माना जाता है कि प्रभु ऋषभदेव को यहां केवल्य ज्ञान हुआ था। प्रभु का चतुर्थ कल्याणक यहां हुआ था। प्रभु ऋषभदेव जी दीक्षा कल्याण

भूमि पर मन्दिर में विराजित प्रतिमाएं यहां अंग्रेज शासकों ने दिगम्बर समाज को दी थीं, जो छोटे व बड़े दिगम्बर मन्दिर में विराजित हैं। दोनों मन्दिरों में कलात्मक प्राचीन प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं। दोनों समाज की धर्मशाला है। श्वेताम्बर धर्मशाला में भोजन की व्यवस्था है। दिगम्बर धर्मशाला आधुनिक सुविधा युक्त है।

मैंने प्रयाग तीर्थ की यात्रा की। हिन्दु व जैन दोनों परम्पराओं के प्रसिद्ध मन्दिर की यात्रा की। प्रभु ऋषभदेव की केवल्यज्ञान कल्याणक भूमि देखी। विशेष रूप से वटवृक्ष जो प्रभु ऋषभदेव की याद दिलाता है, उसके दर्शन किए।

श्री रत्न पूरी तीर्थ :

यह तीर्थ फैजाबाद, वाराणसी मार्ग पर गांव में स्थित है। अयोध्या से २५ किलोमीटर दूर है। यह तीर्थ बहुत प्राचीन है। तीर्थ पर धर्मनाथ जी के च्यवन, जन्म, दीक्षा व केवल्यज्ञान कल्याणक इसी भूमि पर हुए। यह एक दिगम्बर मन्दिर है। जहां प्रभु धर्मनाथ की मूलनायक के रूप में पूजा होती है।

रत्नपूरी से मैं सपरिवार वाराणसी गया। मैंने सभी वन्दनीय स्थलों को पुनः अपने परिवार सहित देखा, जिनकी मैंने अपने धर्मभाता रविन्द्र जैन से यात्रा की थी। वाराणसी, काशी, मुंगलसराय एक ही स्टेशन के नाम हैं। काशी कला, धर्म, संस्कृति का केन्द्र है। उत्तर प्रदेश का जैन धर्म में प्रमुख स्थान है। यह क्षेत्र अनेकों तांत्रिकों की जन्मभूमि है। इसी क्रम में मेरा अगला स्थल अयोध्या था।

यह एक इतफाक था कि मुझे पुनः वाराणसी और इस के आस पास यात्रा का सौभाग्य मिल रहा था।

वाराणसी काशी विश्वनाथ के मन्दिर के कारण जगत प्रसिद्ध है। इस की यात्रा जहां भारतीय संस्कृति के खुले दर्शन करवाती है वहीं विभिन्न भाषा के लोगों से मिलाप कराती है। वहां यह नगर जैन, बौद्ध व हिन्दु इतिहास की लाखों गाथाएं लिए हुए है।

वाराणसी का वर्णन मैंने पहले भी किया था। यह स्वयं तीर्थंकर पधारे हैं। तीर्थंकर सुपाश्वनाथ, तीर्थंकर पाश्वनाथ, तीर्थंकर श्रेयासनाथ, तीर्थंकर चन्द्रप्रभु के ४ कल्याणक इस स्थान पर हुए। स्वयं श्रमण भगवान महावीर यहां पधारे और लोगों को मुक्ति का मार्ग बताया।

अब मैंने अगला स्थान देखने का मन बनाया। वह तीर्थ था अयोध्या नगरी। जैन इतिहास के अनुसार प्रभु ऋषभदेव ने स्वयं इस नगरी का निर्माण किया था। उस जमाने में इस नगरी का नाम विनिता रखा गया।

अयोध्या तीर्थ की यात्रा

अयोध्या नगरी भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह नगरी सरयु नदी के किनारे स्थित है। यहां जैन धर्म के चार तीर्थंकरों भगवान ऋषभदेव, भगवान अर्जातनाथ, भगवान सूमितनाथा व भगवान अनंतनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल्य कल्याणक सम्पन्न हुए थे। यह तीर्थ भगवान राम की जन्म भूमि के कारण जगत प्रसिद्ध है। रामायण की अधिकांश घटनाओं का इस नगर से संबंध रहा है। इस नगर ने बहुत उतार चढाव देखे हैं। यहां हिन्दु मन्दिर काफी मात्रा में हैं। यह स्थान रत्नपुरी से २८ किलोमीटर की दूरी पर है। यह श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों मन्दिर हैं। श्वेताम्बर मन्दिर कटरा में स्थित है। जहां मूलनायक भगवान अर्जातनाथ की भव्य प्रतिमा है। दिगम्बर

जाम्बू की ओर बढ़ते कदम
मन्दिर रायगंज में स्थित है जहां मूलनायक भगवान ऋषभदेव हैं।

कहा जाता है कि वांवर के सेनापति मीर वाकी ने यहां राम जन्म भूमि पर एक मस्जिद बनाई थी। जिसे १६६२ में गिरा दिया गया। यहां मन्दिर बनाने का कार्य जल रहा है। पर अदालती झगड़े के कारण अभी राम लला की मूर्ति एक स्थान पर स्थापित है। यहां बहुत साधुओं के अखाड़े हैं। यहां के प्रसिद्ध मन्दिरों में हनुमान गढ़ी, तुलसी दास मन्दिर, कनक भवन व सीता रसोई दर्शनीय स्थल हैं। सरयू नदी पर तीर्थंकरों की ५ टोंके हैं।

इस नगर में धर्मशालाएं व होटल कदम कदम पर मिलते हैं। यात्रीयों का हमेशा आवागमन बना रहता है। यहां हिन्दू धर्म के अतिरिक्त कुछ मुस्लिम मस्जिदें देखने योग्य हैं।

प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल

यहां दिगम्बर जैन समाज ने काफी निर्माण कार्य करवाया है। रायगंज में भव्य ऋषभदेव की प्रतिमा है। प्राचीन दिगम्बर मन्दिर में भगवान सुमतिनाथ के चरण विराजमान हैं। एक सरकारी वाग भगवान ऋषभदेव को समर्पित है।

प्रभु अनन्तनाथ के जन्म स्थान पर टोंक है। यह मुहल्ला राजघाट में है। यह १६ तीर्थंकरों के चरण भी विराजित हैं। असफी भवन चोराहा में प्रभु अभिनन्दन के जन्म स्थान पर टोंक (चरण चिन्ह) हैं, जिनकी जनसाधारण पूजा अर्चना करता है। यह भरत बाहुबलि टोंक में चरण चिन्ह हैं।

भगवान अर्जुननाथ के जन्म स्थान पर भी उनका चरण चिन्ह पूजा जाता है। यह टोंक मुहल्ला बकसरिया

टोला तुलसी नगर में स्थित है। पुराना थाना मुहल्ला स्वर्गधाम में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के चरण चिन्ह विराजमान हैं।

मुहल्ला रामकोट में प्रभु श्री राम की जन्मभूमि है, यहां पर हनुमानगढ़ी, कनक भवन प्रसिद्ध हैं। श्री वाल्मिकी रामायण भवन एवं चार धाम मन्दिर छोटी छावनी अयोध्या मुहल्ला वासुदेव घाट में स्थापित हैं। इस तीर्थ पर हिन्दू व जैन धर्म को मानने वाले काफी संख्या में हाज़िर होते हैं।

काफी लम्बे समय से अयोध्या नगरी देखने की इच्छा थी। पर कोई जाने का प्रोग्राम नहीं बन रहा था। एक बार मैं लखनऊ अपने परिवार समेत अपनी वहिन उर्मिल को मिलने गया था। तभी यहां आने का कार्यक्रम बना। मैं सारे परिवार सहित अयोध्या पहुंचा। वहां अपनी गाड़ी में मैंने यह यात्रा सम्पन्न की। अयोध्या भारत का पवित्र नगर है। जहां इक्ष्वाकु कुल संस्थापक भगवान ऋषभदेव पैदा हुए। इस का नाम उन्होंने विनिता रखा। यह मानव सभ्यता का प्रथम नगर था। यहां से प्रभु ऋषभदेव के १०० पुत्र पुत्रीयां हुईं। भरत चक्रवर्ती के नाम से भारत वर्ष पड़ा। ब्राह्मी सुन्दरी व वाहुवलि जैसे महापुरुषों का यह नगर था।

यहां प्रभु ऋषभदेव ने पुरुषों को ७२ कलाएं व रित्रीयों को ६४ कलाएं सिखाईं। यह प्रथम चक्रवर्ती भरत यहां पैदा हुआ। यहीं प्रभु महावीर का पूर्व जन्म मरिचि के रूप में हुआ। मरिची भरत का पुत्र था। प्रभु ऋषभदेव का पौत्र था। एक बार समोसरण लगा हुआ था। भरत ने प्रश्न किया “प्रभु ! आप की सभा में कोई ऐसा जीव है जो तीर्थंकर रूप में जन्मेगा ?” प्रभु ऋषभदेव ने कहा “तुम्हारा पोत्र मरिची चक्रवर्ती, वासुदेव तीर्थंकर के रूप में पैदा होगा।

यह अंतिम वर्धमान तीर्थकर होगा।”

अपने भविष्य को सुन मारिची को अहं पैदा हो गया। इसी अहं के कारण उसे तीर्थकर परम्पराओं के विपरीत कुल में जन्म लेना पड़ा। यह स्थान तीर्थकर परम्परा के वर्णन से भरा पड़ा है। मैंने सभी जैन मन्दिरों में पूजा अर्चना की।

फिर राम मन्दिर हुनमानगढ़ी के दर्शन किए। फिर सयु नदी के पावन तट पर स्नान कर वापस गोविन्दगढ़ आ गया।

प्रकरण. - १७

तेरापंथी स्थलों की यात्रा

मेरी डूंगरगढ़ यात्रा :

मैंने पहले भी लिखा है कि मेरे जीवन में तीन मुनियों का उपकार है। वह थे स्व० श्री रावत मुनि जी, स्व० श्री वर्धमान मुनि जी व श्री जय चन्द जी महाराज। श्री वर्धमान जी, जब अंतिम बार पंजाब पधारे तो वह श्री कमल मुनि जी के साथ थे। उनके दर्शन मैंने मालेरकोटला, पटियाला, नाभा, समाना में किए थे। उस के बाद वह आचार्य श्री तुलसी जी के चरणों में हाजिर हुए। आचार्य भगवान ने उनका चतुर्मास डूंगरपुर में करने का आदेश दिया।

मुनि वर्धमान का जन्म गुजरात के वाव शहर में हुआ था। जब आचार्य श्री तुलसी गुजरात में पधारे तब युवा वर्धमान के मन में संयम लेने का विचार उठा। घर वाले उन्हें छोड़ने को तैयार न थे। घर से सम्पन्न धार्मिक संस्कारों के वर्धमान देव, गुरु व धर्म के प्रति समर्पित थे। घर वालों ने उन्हें बन्धन में डालने के लिए उनकी सगाई कर दी। पर वह सगाई का बन्धन भी उन्हें संसार में बांध न पाया। आप ने आचार्य श्री तुलसी जी से दीक्षा ग्रहण की।

१९६७ में मेरी व मेरे परिवार को इनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह दिन मेरे जीवन का इतिहासक दिन था। जब मुझे अणुव्रत दीक्षा प्रदान की गई तब से वर्धमान मुनि हमारे लिए मुनि ही नहीं थे, वह हमारे परिवार के सलाहकार बन गए, मुझे कदम कदम पर उन्होंने प्रेरणा दी। पर विधि को कुछ और ही मंजूर था। मुनि श्री

वर्धमान डूंगरगढ़ जा रहे थे। उन दिनों भयंकर गमी पड़ रही थी। गमी का भीषण प्रकोप राजस्थान में कुछ ज्यादा होता है। फिर जैन मुनि नंगे पांव व नंगे सिर भ्रमण करते हैं। वैसे भी मुनि श्री वर्धमान महान तपस्वी थे। उन्होंने गर्म कपड़े ओढने का त्याग कर रखा था। अल्प परिग्रह ही उनका जीवन था। उनकी कहानी कथनी एक थी।

डूंगरगढ़ मुनि पहुंचे तो भयंकर गमी के प्रकोप से वेहोश हो गए। इस धरती पर उन्होंने अंतिम श्वास ली। मुझे उनके देवलोका गमन का पता तीन दिन बाद लगा। मुझे भयंकर आघात पहुंचा। इसी आघात को लेकर मैं डूंगरगढ़ सपरिवार पहुंचा। उनके साथी मुनि राज से बात की। उस धरती को प्रणाम किया। वह श्रद्धा व आस्था से भरी यात्रा, एक स्वर्गवासी आत्मा को समर्पित थी। जिन्होंने मेरे जीवन निर्माण में प्रमुख हिरसा डाला है। जिनका आशीर्वाद मुझे ने मेरे हर कार्य में सहयोगी रहा है। पर उनका लम्बे समय के बाद पंजाव आगमन अंतिम आगमन था। उनका मन पंजाव छोड़ने को नहीं था। पर तेरापंथ संघ व्यवस्था में यात्रा का निर्णय आचार्य करता है। उसी आज्ञा को शिरोधार्य करके मुनि वर्धमान जी ने डूंगरगढ़ की यात्रा की थी, जो उनकी अंतिम यात्रा सिद्ध हुई।

डूंगरगढ़ से मेरे मन में उनके पुराने साथी मुनि श्री जय चन्द्र जी महाराज के दर्शन का कार्यक्रम बना। श्री जय चन्द्र जी महाराज तेरापंथ धर्म संघ के प्रमुख संत हैं। मेरी अहमदाबाद यात्रा का कारण भी आप थे। अब इस यात्रा को किए लम्बा समय बीत चुका था। वैसे भी आप व्योवृद्ध तपस्वी व महान धर्म प्रचारक संत हैं। आप उदयपूर के नजदीक एक गांव अंकोला में विराजमान थे।

मैंने डूंगरपूर से लाडलुं की ओर प्रस्थान किया।

जिस का वर्णन मैंने लाडलुं यात्रा में कर दिया है। मुझे अंकोला जाने के लिए उदयपूर जाना पड़ा। उदयपूर भारत का पैरिस है। इसे झीलों का नगर भी कहा जाता है। झील, महलों की प्रसिद्धि के कारण उदयपूर पर्यटन स्थल है। उदयपूर कोई जैन तीर्थ नहीं। पर स्थानिक वासी श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि की यह जन्म, दीक्षा व आचार्य पद स्थली है। यह शास्त्री सर्कल में श्री तारक जैन ग्रंथालय में आचार्य श्री के सभी प्रकाशन उपलब्ध होते हैं। आचार्य श्री व उनके पूर्व आचार्य का यह प्रचार स्थल है। उदयपूर में मैं एक रात्रि रुका। यहां झील जल महल दर्शनीय हैं।

फिर अगले मुनि श्री जय चन्द्र जी महाराज के दर्शन करने के लिए अंकोला पहुंचा। भव्य गांव में मुनि श्री के दर्शन वन्दना का लाभ मिला। उनके साथ मुनि श्री वधमान से जुड़ी स्मृतियों को साझा किया। अब मुझे जैन धर्म की शिक्षा देने वाले आप ही हैं। कुछ मन की सान्त्वना मिली। गुरुदेव ने परिजनों का हाल पूछा।

एक रात्रि अंकोला ठहरे। फिर मूझे बताया गया कि पास ही ऋषभदेव केशरीया जी तीर्थ है। मैंने अंकोला से चल कर इस तीर्थ की ओर प्रस्थान किया।

श्री केशरीया जी :

यह तीर्थ उदयपूर से ६६ किलोमीटर की दूरी पर है। यह मूल नायक आदिश्वर भगवान हैं। जिसे स्थानीय भील काला बाबा कहते हैं। इस मन्दिर को जैन व हिन्दू दोनों मानते हैं। मेवाड़ के राणा यहां हमेशा आते रहते थे। राणा फ़तिहसिंह जी ने प्रभु के लिए रत्नों जडित आंगी भेंट की थी। यहां प्रचूर मात्रा में केशर चढ़ाया जाता है। इस लिए इस

प्रतिमा का नाम केशरीया जी पड गया। वैसे इस स्थान का ऋषभदेव है। जो राष्ट्रीय मार्ग से ८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह मन्दिर ५२ जिनालय युक्त है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। इस मन्दिर के कई जीणोद्धार श्वेताम्बर व दिगम्बर आचार्य ने करवाए। किंवदन्ती है कि इस स्थान की पूजा लंकापति रावण ने भी की थी। यह मन्दिर आपसी कलह के कारण राजस्थान सरकार के आधीन है। जिस का प्रबंध देवस्थान विभाग करता है। मुझे इस यात्रा में श्रद्धा व आस्था के विभिन्न दर्शन हुए।

अन्य यात्राएं

यह यात्रा का मुख्य उद्देश्य तेरापंथ संघ के गुरुदेव के दर्शन करना था। पर रास्ते में जो भी जैन तीर्थ आए उनका विवेचन भी जरूरी है। इस संदर्भ में मैं सर्वप्रथम आचार्य श्री तुलसी जी की जन्म भूमि लाडनू गया। लाडनू राजस्थान का प्राचीन स्थान है। यह ऐसा गांव है जिसे तेरापंथ धर्म संघ का गढ़ कहा जा सकता है। लाडनू गांव ने तेरापंथ सम्प्रदाय के अनेकों साधु साध्वियों को जन्म दिया है। बीसवीं सदी के अंत में इस करवे को नई पहचान मिली, जब आचार्य श्री तुलसी जी भगवान महावीर के २५०० निर्वाण महोत्सव पर जैन धर्म की एक मात्र यूनिवर्सिटी जैन विश्व भारती का निर्माण इस गांव में किया। इस गांव को नई पहचान मिली। यह यूनिवर्सिटी ग्रांट कमिशन से मंजूर है। यहां जैन धर्म, प्रेक्षा ध्यान जीवन विज्ञान पढ़ाने की उच्च व्यवस्था है। संसार भर के विद्वान जैन धर्म के उच्च अध्ययन के लिए आते हैं। यहां शोध केन्द्र, प्रकाशन केन्द्र, साधु साध्वियों के निवास स्थल, ध्यान केन्द्र, प्रवचन केन्द्र, पुस्तकालय के भवन हैं। विद्वानों के रहने के लिए गेस्ट हाउस हैं। बाहर

से आने वाले दर्शनार्थियों के लिए हर राज्य का अपना भवन है। जहां उसी राज्य के लोगों के ठहरने की व्यवस्था है।

लाडनू सुजानगढ़ से ११ किलोमीटर की दूरी पर है। जयपूर-सीकर से ११५ किलोमीटर दूर राजमार्ग पर स्थित है।

लाडनू में प्राचीन बड़ा मन्दिर अपनी वास्तुकला एवं भव्यता के कारण दर्शनीय है। लाडनू में आचार्य तुलसी के निदेशन में आगम वाचना का काम सम्पन्न हो चुका है। नगर परकोटे के बाहर सुखसदन, सम्पूर्ण संगमरमर का निर्मित विशाल जिनालय है। रात्रि में कृत्रिम प्रकाश का विशेष आयोजन दर्शनीय है। लाडनू जंगम तीर्थ है। यह साधू, साध्वियों के अतिरिक्त परमार्थिक संस्था की बहिनों की पढ़ाई का अच्छा प्रबन्ध है। आचार्य तुलसी ने तेरापंथ संघ को हर मामले में नई दिशा प्रदान की।

लाडनू में मैंने अपने आचार्य तुलसी जी के दर्शन किए। एक बात मैं और अर्ज कर दूं, जब मैं आचार्य श्री से अंतिम बार मिला तो आचार्य श्री अपना आचार्य पद त्याग चुके थे। यह पद उन्होंने अपने विद्वान शिष्य आचार्य महाप्रज्ञ को दे दिया था। जब वह गणपति कहलाते थे। आचार्य तुलसी का सारा जीवन क्रान्तिकारी था। उन्होंने स्वयं ही इस पद का त्याग किया जब कि सारा संसार पदों के पीछे भागता है। यह विडम्बना है कि सारे संसार के लोग पदों के लिए लड़ते हैं पर आचार्य तुलसी ने लम्बे समय तक तेरापंथ को संसार में अणुव्रत, प्रेक्षा ध्यान व जीवन विज्ञान के माध्यम से नई पहचान देकर नए आयाम प्रदान किए।

जब मैं वहां पहुंचा तो गुरुदेव अपने कमरे में विराजमान थे। उन्होंने मेरे साथ ढेरों बातें कीं। पंजाब में तेरापंथ समाज की स्थिति, अणुव्रत, जैन एकता व पंजाबी

जैन साहित्य के संदर्भ में उन्होंने अनेकों दिशा निर्देश दिए। शायद मेरी गुरुदेव से अंतिम भेंट थी। उस के कुछ मास बाद ही उन का देव लोक हो गया। यह स्थान उनकी अमर स्मृति है। उन्होंने जैन धर्म में अनेकों जन उपयोगी प्रयोग किए। वह प्रभावक आचार्य थे। मुझे प्रसन्नता है कि वह मुझे सम्यक्त्व प्रदान करने वाली चारित्रात्मा थे। जैन समाज ही नहीं, समस्त मानवता उनके आचार्य पद त्याग से हैरान थी। सारा कार्यक्रम टी.वी. के माध्यम से दिखाया गया। भारत के चुनाव आयोग के प्रधान श्री टी.एन. शेषण उस समारोह में उपस्थित थे। उन्होंने कहा “संसार के इतिहास में आचार्य तुलसी का नाम खणीम अक्षरों में दर्ज हो गया है। संसार के लोग पदों के लिए लड़ते हैं पर वह दिव्य पुरुष खेच्छा से त्याग रहा है। आचार्य तुलसी व उनके शिष्य परिवार के मेरे व सारे परिवार पर बहुत उपकार हैं, जिन्हें भुलाना असंभव है।

सिरियारी तीर्थ :

जैन श्वेताम्बर परम्परा में तेरापंथ संघ का विशेष स्थान है। इस धर्म संघ व उनकी आचार्य परम्परा का मैंने वर्णन पहले कर दिया है। तेरापंथ के प्रथम आचार्य श्री भिक्षु जी थे जो सर्व प्रथम स्थानक वासी आचार्य श्री रघुनाथ जी के शिष्य बने। फिर विचार भेद के कारण उन्होंने १३ श्रमणों को लेकर एक संघ का निर्माण किया। इस संघ में नई व्यवस्था को जन्म दिया। सभी साधू, साध्वीयां, श्राविक, श्राविकाएं एवं आचार्य की आज्ञा में रहने की मर्यादा उन्होंने डाली। उनका जीवन क्रान्तिकारी था। उन्होंने राजस्थानी भाषा में प्रभु महावीर के उपदेश जन्तु समूह में फैलाए। उनके जीवन काल में उनका संघ फला फूला।

आपने जीवन की अंतिम संध्या में आप सिरियारी पधारे। सिरियारी के लोगों को जैन धर्म व प्रभु महावीर का उपदेश सरल भाषा में सुनाया। इसी स्थल पर आप का देवलोक हुआ। इस स्थान पर मुझे आप सबसे पहले आचार्य की समाधि के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। आचार्य श्री का यह समाधि स्थल समस्त श्री श्वेताम्बर तेरापंथ जैन समाज के लिए इतिहासक तीर्थ है। यह स्थान प्रेरणादायक है। यहां आने वाले को देव, गुरु व धर्म के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा मिलती है। तेरापंथी समाज का यह आस्था का केन्द्र ही नहीं तीर्थ स्थान है। यहां आते ही आचार्य श्री भिक्षु स्वामी जी महाराज सारा जीवन आंखों के सामने उमड़ आता है। यहां आकर हमें आचार्य भिक्षु का अनुशासन व संयम का संदेश ध्यान में आता है। आचार्य श्री की विचारक क्रान्ति, आधुनिक तेरापंथ समाज को नया मार्ग प्रदान करती है। आचार्य भिक्षु ने सचमुच जैन धर्म को नया आयाम प्रदान किया है। इस समाधि में कांच के माध्यम से उनके जीवन की घटनाओं को संजीव किया गया है।

मैंने इन अध्ययनों में अपनी उन यात्राओं का वर्णन किया है जो मेरे सम्यक्त्व की यात्रा में सहायक बने। हर तीर्थ का अपना इतिहास है, परम्परा है, पर सारे तीर्थ हमें तीर्थंकरों के जीवन व संदेश की याद दिलाते हैं। हर तीर्थ ने मुझे जैन धर्म व परम्परा के प्रति आस्था व श्रद्धा को जन्म दिया। यह तीर्थ मेरे जीवन में कुछ करने की प्रेरणा देते रहे हैं। मैंने अपनी इन यात्राओं से जैन संस्कृति के दर्शन किए हैं। यह सभी तीर्थ अपने अपने आप इतिहास की कड़ीयां जोड़ने का कार्य करते हैं।

प्रकरण - १८

२१वीं सदी की महान आत्मा से भेंट

मैंने पिछले सभी प्रकरणों में कुछ ऐसी घटित घटनाओं का वर्णन किया है जो मेरे जीवन में श्रद्धा का कारण बनीं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र्य द्वारा धर्म के तत्व को जानने का सुअवसर मिला। जो साधु, साध्वी, आचार्य, उपाध्याय व तीर्थों ने मेरे मन में तीर्थकरो की परम्परा को जानने में, मेरी सहायता की, मैं उन सब का अंतःकरण से आभार करना चाहता हूँ। ऐसे व्यक्तियों के एक नाम अगर उभरता है वह है श्रमण संघ के वर्तमान आचार्य डा० शिवमुनि जी महाराज।

मेरा उन से प्रथम परिचय तब हुआ, जब वह साधु बनने के पश्चात मालेरकोटला अपने गुरु श्रमणसंघ के सलाहकार श्री ज्ञान मुनि जी महाराज के साथ आए थे। श्री ज्ञान मुनि जी आचार्य श्री आत्मा राम जी के विद्वान शिष्य थे। उनका काम उनके गुणों के अनुरूप है। हमारी संस्था ने उन्हें राष्ट्रसंत पद से विभूषित किया था।

आचार्य डा० श्री शिव मुनि जी महाराज का जन्म १८ सितम्बर १९४२ को आज से ५६ वर्ष पूर्व मलोट जिला फरीदकोट निवासी सेठ चिरंजीलाल व माता विद्या देवी के यहां हुआ था। घर से आप सम्पन्न परिवार से थे। आप को बचपन से ही अध्ययन के प्रति लगाव था। जब ज्ञान मुनि जी मोगा में थे आप दसवीं कक्षा में पढ़ते थे। आप को वैराग्य लग चुका था। पर गुरुदेव ने आदेश दिया “अभी पढ़ो, फिर साधु बनना। आप ने घर में रहकर डबल एम. ए. कर लिया। फिर भी घर वालों से आज्ञा न मिली। लम्बे संघर्ष के बाद ३ बहिनों के साथ आप साधु बने।

आप का चतुर्मास मालेरकोटला में था। एक दिन आप स्वध्याय कर रहे थे। आप ने कहा “भैय्या ! साधु तो बन गए। अब करें क्या ? समझ नहीं आता।”

मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने कहा “आप जैन धर्म पर पी.एच.डी. कर लीजिए।”

मुनि जी को सुझाव पसंद आ गया। पर युनिवर्सिटी के नियम सख्त थे। जो साधु परम्परा के विपरीत थे। वाईस चांसलर से मिल कर जैन साधु के लिए नियमों में परिवर्तन कराया गया। इस कार्य में प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान डा एल.एम. जोशी ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने यूनिवर्सिटी के नियम ही नहीं बदलवाए, बल्कि उनके निर्देशक बन उन्हें पी.एच.डी. करवाने लगे। यह कार्य ३ वर्ष चला। डा० शिव मुनि पी.एच.डी. करने वाले प्रथम जैन मुनि हैं। इस कारण उनकी संघ में प्रतिष्ठा बढ़ी। फिर पूना सम्मेलन के अवसर पर आचार्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज ने आप को आचार्य घोषित कर दिया। आचार्य श्री आनंद जी के स्वर्गवास के बाद आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने इस पाट को सुशोभित किया। उनके देवलोक के पश्चात् अब आप इस गरिमापूर्ण पद पर विराजमान हैं।

जब सचित्र महापौर जीवन चारित्र प्रकाशित हुआ तो सार्ध्या श्री स्वर्णकांता जी महाराज की तवीयत अच्छी नहीं चल रही थी। पर सबसे पहली प्रति उन्हें विधिवत् समर्पित की गई। फिर हम देहली में एक समारोह के सिलसिले में पहुंचे थे। वहीं २५ वर्ष पश्चात् आचार्य श्री शिव मुनि जी महाराज के दर्शन किए थे। मिलते ही आपने पहचान लिया। २५ वर्ष का समय काफी लम्बा था। फिर आप को मोन ध्यान का समय था, जब मैंने एक पची पर दोनों के नाम लिख कर भेजे तो आप सिंहासन छोड़ कर

आस्था की ओर बढ़ते कदम

वाहर आ गए। १५ मिनट वार्ते की। आप को सचित्र भगवान महावीर की प्रतिभेंट की गई। समय कम था। आप ने चतुर्मास में आने को कहा। इधर महासाध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज की सेवा में रहने के कारण दर्शन नहीं हो सके। पर छोटी सी मुलाकात ने मुझे आभास दिलाया कि शिव मुनि जी महाराज कितने विनित सरलात्मा हैं। आप के दर्शन से पिछले २५ वर्ष की स्मृतियां हृदय स्तर पर उभर आईं। आचार्य श्री शिव मुनि जी अब महान योगी व जैन एकता के प्रतीक हैं। आप की कृपा से श्री जिनेन्द्र गुरुकुल पंचकुला की जमीन हरियाणा सरकार ने वापस की है। आप महान लेखक हैं। वह विभिन्न भाषा के जानकार हैं। ३६ गुणों के धारक आचार्य हैं। आप ने चतुर्मास में भव्य समारोह इस पुस्तक का विमोचन करवाया, जो २१वीं शताब्दी की उपलब्धि थी।

यह पुस्तक आस्था की गाथा है। आस्था के बिना जीवन अधूरा है। व्यक्ति किसी भी कार्य को करना चाहे, तो आस्था चाहिए। व्यक्ति किसी भी कार्य को करना चाहे, तो आस्था के बराबर है। जहां आस्था नहीं वहां कुछ भी नहीं। इसी आस्था के वश इसी वर्ष में श्री महावीर जी की यात्रा सपरिवार की। जैन धर्म में आस्था को सम्यक् दर्शन कहा गया है। आस्था कोरा ज्ञान ही, वह तो भक्ति है, समर्पण है। आस्था से किया कोई भी कार्य अधूरा नहीं रहता। हमें हर समय आस्था रख कर हर कार्य करना चाहिए। यह मैंने अपने जीवन की यात्रा का सार निकाला है। मेरा जीवन आस्था का सफर है। इस जीवन में अनास्था का कोई स्थान नहीं है। यह सफर तीर्थंकर परम्परा को समर्पित है।